एकाक्षरि तथा सम्प्रहकां

Jayendrapuri Maharaj
Jivan-charitra.

# भूमिका

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १००८ श्री स्वामी जयेन्द्रपुरी जी महाराज महामण्डलेश्वरजी के प्रथम दर्शन ने दक्षिण की यात्रा में मेरे जीवन लक्ष्यको सफल करते हुए मुझे कृतकृत्य बनाया। उसी समय से महामण्डलेश्वर जी के शिक्षाप्रद प्रत्येक उपदेशों तथा व्यवहारों को सावधानी से सुनता तथा देखता रहा। समयानुसार कुछ लिपिबद्ध भी करता रहा। पर महामण्डलेश्वर जी की चरणच्छाया में प्रथम से विश्राम का सौभाग्यभागी न होने के कारण पूर्ववृत्तान्तों से प्रायः अपरिचित रह गया। पूछने पर महाराज जी भी किसी व्याज से अवधीरण कर देते थे। पर सहवासी अन्य महात्माओं से पूछताछ किया करता था। जिससे कुछ जीवन सम्बन्धी घटनाओं से परिचित होता रहा। पर मेरे समागम के पूर्व महामण्डलेश्वर जी के हजारों उपदेश तथा अन्य भव्यक्रियाओं का यथावत् स्वरूप उपलब्ध न होने के कारण जनता को उस अमूल्य सम्मति से वञ्चित ही रहना पड़ेगा। यदि पूर्व कार्यों का भी विवरण उपलब्ध होता तो उससे संसार को कितना विशाल लाभ पहुँचता और मानव जाति अपनी जीवन-यात्रा को सुखपूर्वक ले चलने में किस प्रकार सहयोग प्राप्त करती इसका अनुमान करना असम्भव है। फिर भी "अल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्" इस आधार पर सन्तोष करना ही समुचित होगा।

महामण्डलेश्वर जी के ब्रह्मीभाव के अनन्तर अहर्निश इसी विषय की चिन्ता रहती थी कि किसी भी प्रकार जीवन-चरित जनता के सम्मुख आजाय। इसके लिए जहाँ कहीं भी सुना स्वयं घटना-स्थल पर जाकर तथा पत्रादि द्वारा अथवा घटनावेत्ताओं को अपने पास बुलाकर सत्य घटनाओं का यथाशक्ति पता लगाया। श्री १०८ मण्डलेश्वर श्री स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज ( निर्वाण पीठाधिपति ) का उत्साह प्रदान इस दुरूह कार्यमें अग्रसर होनेके लिए मुझे दृढ़ अवलम्ब था। जिससे कभी भी मैंने अपने को श्रान्त न पाया। जिस समय जीवन-चरित निर्माण विषयक विचारधारा में मेरा चित्त प्रवाहित हो रहा था उससमय वर्तमान मण्डलेश्वर जी के उत्साह प्रदान के समान चित्त अन्यावलम्ब की भी प्रतीक्षा कर रहा था। क्योंकि उसी समय गुरुभक्त-शिरोमणि श्रीमती राजमाता ( सानन्द स्टेट ) तथा श्रीयुत कुमार चिरञ्जीवी रुद्रकुमार जी के भी मनोमन्दिर में एतद्विषयक भावना देवी की पूर्ण

पत्र मेरे पास भेजा।

पूज्य मन्त्रि महोदय !

हमारे प्रातः स्मरणीय गुरूमहाराज की समग्र जीवन घटनाओं का कहीं भी सङ्कलन नहीं, इसलिए इस विषय की चिन्ता निरन्तर मुझे अपना आक्रम्य बनाया करती है। गुरुदेव के जीवन चरित से न केवल मेरा किन्तु असंख्य शिष्यों का महोपकार होता। श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुदेव का जीवन-चरित जो त्रैलोक्य-पावनी गङ्गा के समान तथा मुक्तिदा काशी के समान है। केवल चरित ही नहीं,ब्रह्मयात्रा है। कौनसा ऐसा शुभमुहूर्त होगा जब ऐसे श्रेयस्कर शब्द पढ़ या सुन कर अपने को सर्वतोभावेन कृतार्थ समझेंगे।

मुझे दृढ़ विश्वास है कि आपके जीवन चरित से ऐहलौकिक तथा पारलौकिक सब प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं गुरुदेव का आदेश तथा उपदेश क्लेशाब्धि पार करने के लिए सुदृढ़ पोत है। और जीवन चरित सबकी गीता होगी। क्या मनोरथपूर्त्तिसूचक शुभसमाचार से कृतार्थ करने की सूचना देंगे।

रुद्रदत्त सिंह जी

पैलेस सानन्द (युवराज साहेब

९—६—१९४४ आफ सानन्द स्टेट)

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ वर्तमान मण्डलेश्वर श्री स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज की सहानुभूति तथा सहयोग से जो अङ्कुरित भाव पूर्व पल्लवित हो गये थे, राजमाता तथा राज कुमार जी के उत्साहवर्धक इस पत्र से वह भाव अब कलिका से युक्त होने लगा।

जीवन घटनाओं के अन्वेषणार्थ मैं इतस्ततः परिभ्रमण करता हुआ अहमदाबाद पहुँचा। सन्यासाश्रम में निवास कर रहा था कि एक दिन धर्मानुरागी पं० छबिल भाई के सुपुत्र पं० चम्पकलाल जी मिलने आये। कथाप्रसङ्ग में जीवन चरितप्रकाशन की चर्चा सुनकर आपके मुखारविन्द में पूर्ण विकास का साम्राज्य दिखाई दिया। आपने शीघ्रातिशीघ्र इस भव्य कार्य के प्रारम्भ के लिये अनुमति दी तथा सब प्रकार सहयोग देने के लिये भी वचन देकर उत्कृष्ट गुरुभक्ति का परिचय दिया। अतः इस भव्य कार्य के लिये आप को अनेकशः धन्यवाद है।

इस प्रकार अमूल्य सहयोग तथा सहानुभूति के प्राप्त होने पर भी मेरे सम्मुख अन्य कठिन समस्यायें उपस्थित हुईं। प्रथम तो योग्य लेखक तथा सम्पादक द्वितीय

इस सर्वनियन्त्रण काल में कागज की लब्धि। जिधर भी दृष्टि डालता था मनोनीत विषयों की यथोचित परिपूर्णता की आशा नैराश्य में ही परिणत हो जाती थी। पर आशा को पुनः स्वस्थान में प्रतिष्ठित होने के लिये पूज्यपाद वर्तमान मण्डलेश्वर महोदय का उत्साहवर्धक पत्र पूर्ण अवलम्ब होता रहा।

इधर जीवन-प्रकाशक-मण्डल की विज्ञप्ति पर अनुभवी महात्माओं तथा महामण्डलेश्वर जी की जीवनचर्या से परिचित विद्वानों की श्रद्धाञ्जलियाँ भी आने लगी। जिससे मेरा उत्साह उत्तरोत्तर परिवर्धित होने लगा। अब मुझे कागज की लब्धि के लिये चिन्ता हुई। कारण हमारे पास श्रद्धाञ्जलियाँ अधिक सङ्ख्या में आ चुकी थीं और जीवन घटनाओं के भी मुख्य २ अंशों का उल्लेख करना आवश्यक ही था। इतने वृत्तान्तों के लिये भी न्यूनातिन्यून ५०–६० रीम कागज की आवश्यकता थी। पर मिलने का कोई भी द्वार न मिला। इसी अवसर में परम गुरुभक्त परोपकारनिरत ब्रह्मचारी शिवचैतन्य जी सोत्साह आश्वासन देते हुए कागज लब्धि के लिये उपाय में संलग्न हुए तथा सफल भी होने लगे। यद्यपि यथेष्ट कागज तो न मिला जिससे जीवन घटना तथा लेखों का भी उचित सन्निवेश न हो सका पर ऐसे समय में भी इतना प्राप्त कर लेना ब्रह्मचारी जी के ही अदम्योत्साह का फल है। इसके लिये ब्रह्मचारी जी भूरिभूरि धन्यवादार्ह हैं।

यों तो कई सम्पादक तथा लेखकों से विचार विनियम हुआ पर ऐसे ही लेखक मिलते थे जिन्हें महामण्डलेश्वर जी के सहवास का सौभाग्य न प्राप्त हुआ था और जो जीवन घटना पर कभी अनुसन्धान न किये थे। मुझे अभिप्रेत थे जीवन-घटनानुसन्धाता तथा सहवास सौभाग्यवान्। ऐसी अवस्था में सहसा मेरी दृष्टि संन्यासी संस्कृत महाविद्यालय के साहित्याध्यापक पं० महादेव उपाध्याय की ओर आकृष्ट हुई। कारण, आप मण्डल की आयोजना के प्रथम भी कभी कभी इस विषय में चर्चा किया करते थे। आप घटनावेत्ताओं से इस विषय में पूछताछ भी किया करते थे और स्वयं भी महामण्डलेश्वर जी के सानिध्यसौभाग्य के भागी हो चुके हैं। प्रसङ्गवश चर्चा चलते ही श्रद्धाभक्तिपूर्वक इस भार को आपने सहर्ष स्वीकार कर लेखन तथा सम्पादन किया। अतः आपको अनेकशः धन्यवाद है।

तत्तत्स्थलों के चित्रों की उपलब्धि में राजकुमार सानन्दस्टेट, श्री छबिल भाई, जीवनलाल आशाराम आदि धार्मिक शिरोमणियों ने जो सहयोग दिया इससे मैं आपका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

अस्तु उपादेय हेय, आदरणीय तिरस्करणीय, निरालय-महालयवासी,

साङ्क-निरङ्क, सावद्य-निरवद्य किसी भी मानव के जीवन को परिज्ञात करने का प्रयत्न किया जाय तो इस विषय का परिज्ञान अत्यावश्यक है कि उसके अध्यात्म जगतपर वाह्यजगत् का तथा वाह्यजगत् पर अध्यात्म जगत् का कितना और किस रूप में प्रभाव पड़ा है। वस्तुतः जिन महापुरुषों के चरणपराग से धरित्री पूत हुई है, जिनके आचार से मानव समाज में चिरप्रसुप्तसत्व का उद्बोध हुआ है, उच्छल-दुच्छृङ्खलता का ह्रास हुआ है, प्रायः भद्रदर्शिता की ओर लोग अग्रसर दिखाई दिये हैं, जिन्हों ने समाज की गति में आये हुए दुरन्त परिवर्तन को समूल उत्पाटित करने का भाव स्थापित किया है, जिनका जीवन चक्र की धुरा की समता रखता है, ऐसे महापुरुषों की जीवन घटनाओं का स्वाध्याय मानव जाति के लिये अपरिहार्य विषय है। अन्य प्रमाणावगत वस्तु के विषय में कभी किसी प्रकार से सन्देह भी आ सकता है पर प्रत्यक्षानुभूत विषय में दोषों को अवसर मिलना कठिन हो जाता है। जिनका सदाचार, सदुपदेश अब भी अनेक आप्तों के प्रत्यक्षानुभव का विषय है, जिन्होंने ऐसे वातावरण में भी आजन्म ब्रह्मचर्य का यथावत् पालन किया। जो ब्रह्मविद्या में दर्शनदक्षता में शास्त्रनदीष्णता में, लोकोद्धारकता में धर्मसंरक्षकता में प्राचीन आचार्यों के अव्यवहित पार्श्व स्थित आसन पर आरूढ़ होने की योग्यता से परिपूर्ण थे। जिन्होंने अपनी विचारचातुरी, ज्ञानगाम्भीर्य तथा निरवद्यविद्याविकास से अपने स्वरूप को विस्मृत कर देने वाले भारतीयों को स्वरूप का परिचय देकर प्राचीन गौरव का संरक्षण किया ऐसे महापुरुष की जीवनघटना के अध्ययन से कल्याण प्रत्यक्षतः स्फुट है। किसी किसी घटना में यद्यपि द्विरुक्ति, हो गई है पर जब तक किसी विषय या घटना पर अनेक दिशाओं से आलोक नहीं आता तबतक उसे निर्दोषता तथा परिस्फुटता से सम्वलित नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार के कुछ लोगों के विचार के अनुसार द्विरुक्ति को भी उपादेय ही समझा गया है।

महापुरुष श्री स्वामी जयेन्द्रपुरी जी महाराज महामण्डलेश्वर के जीवन-चरित्र-रत्नके अन्वेषण में जो मुझे कष्ट का अनुभव करना पड़ा तथा धनसमय व्यय भी करना पड़ा इसके लिये मुझे तनिक भी खेद नहीं। कारण इन सब कारणों के अभावमें इस अलौकिक कार्य का होना असम्भव था और लोककल्याण के लिये इसका प्रकाशन भी अपरिहार्य था। जीवन को सफल बनाना भी मुख्य कर्तव्य है।

**स्वामी धर्मानन्द,**
मन्त्री, संन्यासि संस्कृत कालेज,
काशी।

# विषय-सूची

संग्रहकारक तथा प्रकाशक की भूमिका, विषय सूची, लेखक तथा सम्पादक की अवतरणिका—महाराज ब्रह्मचर्य के प्रबल पुजारी—२ पृष्ठ, स्वामी श्री जयेन्द्रपुरी जी महाराज सत्यसंघटन के परिपोषक—८ पृष्ठ, उपसंहार—पृष्ठ १२ )।

जीवन चरित

## प्रथम परिच्छेद ( १ से ८ पृष्ठ तक )

मङ्गलाचरण, पं० हरकृष्ण पन्त, हरकृष्णपन्त के पूर्वज, जन्म ग्रहण, उपलब्ध कुण्डली, हरकृष्णपन्त का वंश, हरकृष्णपन्त की वृत्ति, पितृस्वभाव, भारत की सामाजिक तथा धार्मिक दशा, जन्मभूमि की दशा।

## द्वितीय परिच्छेद ( ९ से १८ पृ० तक )

बाल्यकाल, विवाह, आचरण, दयालुता, आश्चर्य की घटना, पत्नी का देहान्त, पूर्ण वैराग्योदय के साधन, स्वामी ब्रह्मानन्द जी का पुनर्दर्शन, द्वितीयविवाह की योजना, काशीप्रयाण, स्वामी जी की महिमा।

## तृतीय परिच्छेद ( १९ से २९ पृ० तक )

ईश्वरीदत्त की खोज, ईश्वरीदत्त का काशी आना तथा स्वामी ब्रह्मनन्द का दर्शन, स्वामी ब्रह्मानन्द से विरह।

## चतुर्थ परिच्छेद ( ३० से ४४ पृष्ठ तक )

नेपाल यात्रा का आरम्भ, घोरविपिन में प्रवेश, मधुवेनी तीर्थ यात्रा, मुक्तिनाथ की यात्रा, नेपाल यात्रा, गोसाईंकुण्ड की यात्रा, कुरुक्षेत्र की यात्रा, सद्गुरु की प्राप्ति की चिन्ता, घोरविपत्ति का सामना, स्वामी राजेन्द्रपुरी से प्रश्नानुप्रश्न, स्वामी राजेन्द्रपुरी का परिचय, सन्यासदीक्षा, नामकरण, बदरिकाश्रम की प्रथम यात्रा, पटियाला में निवास।

## पञ्चम परिच्छेद ( ४५ से १०३ पृष्ठ तक )

शास्त्रज्ञ का अन्वेषण, पं० शिवकुमार शास्त्री का समागम, स्वप्न में जद्गुरु शङ्कराचार्य का दर्शन, स्वामी जी का गोविन्द मठ में गमन, शङ्करसम्प्रदाय के सन्यासियों का मूल, गोविन्दमठ काशी की गुरुपरम्परा, स्वामीगोविन्दानन्द जी का

दर्शन, स्वामी गोविन्दानन्द जी से अधिकृतस्थान, संन्यासिसंस्कृतकालेज, अध्यापनकार्य, स्वामी जी की ,अस्वस्थता, कमलहस्तविष्णु तथा भगवान् शङ्कर द्वारा आशीर्वाद तथा प्रोत्साहन, यात्रा का प्रारम्भ, प्रयाग का कुम्भ, मण्डलेश्वर जी अस्वस्थ, कनखल निवास, मण्डलेश्वर गोविन्दानन्द जी का समाचार, कनखल से काशी गमन, मण्डलेश्वर जी के साथ कानपुर की यात्रा, फरूखाबाद की यात्रा हृषीकेश की यात्रा, पुनः फरूखाबाद में निवास, दुर्गा में ब्रह्मदृष्टि, वाक्सिद्धि, फरूखबाद से बिदाई, पुनः काशी आगमन, अज्ञातयात्रा, भक्तों की व्यग्रता, मण्डलेश्वर जी का अन्तिम आदेश, साधु-समाज तथा जनता में अशान्ति, स्वामी जी का सदुपदेश, मण्डलेश्वर जी की षोडशी, निर्वाणपीठ, मण्डलीशपदग्रहण की स्वीकृति, मण्डलीशपदाभिषेक, पुष्पाञ्जलिः स्तोत्रम् ।

## षष्ठ परिच्छेद ( १०४ से १४६ पृष्ठ तक )

मण्डलेश्वर जी का ब्रह्मचर्य पर भाषण, ( ब्रह्मचर्य का साधन, ब्रह्मचर्य का फल, ) कुम्भनिर्णय, कुम्भोत्पत्ति, कुम्भस्वरूप, अधर्मोन्मूलनीपताका, जातिभेद पर प्रश्न, वेद का निर्णय, काशी आगमन, पञ्चक्रोशी यात्रा, देवी का साक्षाद्दर्शन, गया की यात्रा, बुद्धगया, वैद्यनाथ धाम, ललुआ, प्रश्नोत्तर, कलकत्ता, कालीघाट की यात्रा, दक्षिणेश्वर यात्रा, तारकेश्वर की यात्रा, ब्रह्मचर्य का प्रभाव, भगवान् श्री कृष्ण तथा ओंकार की अभिन्नता, कीर्तन का महत्व, भुवनेश्वर की यात्रा, जगन्नाथपुरी की यात्रा, योग का प्रभाव ।

## सप्तम परिच्छेद ( १४७ से १८० पृष्ठ तक )

चिदम्बर की यात्रा, रामेश्वर यात्रा, अज्ञात घटना, मदूरा की यात्रा, अनेक तीर्थ यात्रा, बाला जी, वेलूर बेंगलूर की यात्रा, मण्डलेश्वर जी की उदारता, हौस्पेट में निवास, श्रीशैल की यात्रा, पूना की यात्रा, ब्रह्मचारीधर्मदत्त का समागम, ब्रह्मचारी धर्मदत्त जी का परिचय, पूना से नासिक की यात्रा, नासिक से वर्धा, वर्धा से खराङ्गणा, खराङ्गणा से आर्वी, खराङ्गणा से धावन्तरी, सिन्दूरजना से वलगाँव, अमरावती, ओंकार जी, इन्दौर, उज्जैन, रतलाम, डाकोर से अहमदाबाद, धरांग्धा स्टेट होते हुए द्वारका जी, सर्वस्वत्याग, बेटद्वारका, माण्डवीगमन, जामनगर, अहमदाबाद में चातुर्मास, सानन्द स्टेट में श्री मण्डलेश्वर जी का स्वागत, संन्यासाश्रम के दाता भक्त शिरोमणि श्रीयुत छोटे लाल-हीराचन्द जी अहमदाबाद, विप्रवंशावतंस धर्मनिष्ठ यज्ञप्रेमी श्रीमान् छोटाभाई ताराभाई जी मेहता, विप्रवर्य धर्म-

निष्ठ गुरुभक्त छबिलभाई बलवन्तराय जी भट्ट, जीवनलाल आशाराम जी सरसपुर, नमः शिवाय बैंक का शिलारोपण, नड़ीयाद, बड़ोदा, आनन्द, पेटलाद, चित्तौड़गढ़, अजमेर-पुष्कर, उदयपुर, जयसमुद्र, हरिद्वार, हरिद्वार का कुम्भ, नमः शिवाय बैंक का प्रसार, महारुद्रयाग, विराट् आरती, संन्यासी संस्कृत कालेज का वार्षिकोत्सव।

## अष्टम परिच्छेद (१८१ से २१८ पृष्ठ तक)

बद्रीनारायण की यात्रा, कैलाश यात्रा, बदरिकाश्रम से कैलाश तथा पुण्या गिरि तक पड़ावों की नामावली, ध्यानमग्नशिव का दर्शन, मानस सरोवर, संन्यासी संस्कृत कालेज का महोत्सव, फरुखाबाद का चतुर्मास, पंजाब में धर्मप्रचार, हरिद्वार में वारुणीपर्व, बीकानेर, काशी में यज्ञादि, नासिक का कुम्भ, उज्जैन का कुम्भ, ब्रह्मसूत्र का टीका-प्रकाशन, पुनः अहमदाबाद, श्री काशीविश्वनाथमहाविद्यालय की स्थापना, विश्वनाथ पत्र का उद्घाटन, हैदराबाद, पेटलाद की यात्रा, आगरा में भी निवास, बड़ोदा, चांगा गाँव में भक्ति प्रचार, खम्भात, ऊँझा में सत्संग, मुजफ्फरनगर, कैलाशाश्रम में महोत्सव, श्री स्वामीविष्णुदेवानन्द जी महाराज का अभिषेक, कुम्भमेला, महामण्डलेश्वरनामकरण, शिवपुर में विश्वनाथाश्रम, विश्वनाथाश्रम में शिवालय का निर्माण, महारुद्रयागादि, प्रतिमास्थापन, महारुद्रयाग, विद्वत्परिषद्, उत्तर काशी की यात्रा, अहमदाबाद, अन्तिमप्रवचन, उपचार, दर्शकों की भीड़, तेजस्विता की न्यूनता नहीं, अन्तिम उपदेश, महाराज का ब्रह्मीभाव, काशी में समाचार, भक्तों की दशा, काशी शव न आने का कारण, शवयात्रा, शोक सभाये।

## नवम परिच्छेद (२१९ से २३० पृष्ठ तक)

योग्य उत्तराधिकारी के लिए प्रस्ताव, सर्व सम्मति से निर्वाचन, निर्वाचनक्रम, स्वरूपपरिचय, अभिषेक, धार्मिकप्रवृत्ति, अभिनन्दनसमारोह, वर्तमान मण्डलेश्वर द्वारा गोविन्दमठ में विराट पूजन तथा यज्ञादि, दशकोशी चौरासी समारोह, भड़ोच में शिवपञ्चायतन तथा जयेन्द्रेश्वर प्रतिमा स्थापन, अहमदाबाद संन्यासाश्रम में शिवपञ्चायतन मन्दिर की प्रतिष्ठा, महामण्डलेश्वर जी की प्रतिमा की स्थापना।

## दशम परिच्छेद (२३१ से २३७ पृष्ठ तक)

सानन्द अमर चरित, मनोभावनिवेदन, प्रथम दर्शन, कथाश्रवण और वैराग्य बीजारोपण, उपदेश तथा सद्गुरुनिर्धारण की अभिलाषा, राजमाता द्वारा शिवपुर में ओंकारेश्वर की स्थापना, कुम्भ-यात्रा, शुभ प्रवृत्ति।

## परिशिष्ट और श्रद्धाञ्जलि


| संख्या | लेखक-नाम | पृष्ठ |
|---|---|---|
| १ | स्वामी श्री शङ्करचैतन्य भारती जी महाराज (संस्कृत पद्य तथा हिन्दी गद्य) | २३९ |
| २ | महामहोपाध्याय श्री पं० हरिहर कृपालु द्विवेदी जी महाराज (संस्कृत पद्य) | २४० |
| ३ | महामहोपाध्याय श्री पं० गिरधर शर्मा चतुर्वेदी जी जयपुर (हिन्दी गद्य) | २४१ |
| ४ | श्री १०८ देवनायकाचार्य जी महाराज, बम्बई (हिन्दी गद्य) | २४२ |
| ५ | मण्डलेश्वर श्री १०८ स्वामी नृसिंहगिरि जी महाराज (हिन्दी लेख) | २४३ |
| ६ | श्री १०८ स्वामी परमानन्द जी महाराज मण्डलेश्वर (संस्कृत गद्य) | २४४ |
| ७ | श्री १०८ स्वामी भागवतानन्द जी महाराज मण्डलेश्वर (हिन्दी लेख) | २४५ |
| ८ | श्री १०८ स्वामी विष्णुदेवानन्द जी महाराज मण्डलेश्वर (संस्कृत पद्य) | २४८ |
| ९ | श्री १०८ स्वामी विद्यानन्द जी महाराज मण्डलेश्वर (हिन्दी लेख) | २४९ |
| १० | श्री १०८ स्वामी महेश्वरानन्द जी महाराज मण्डलेश्वर (हिन्दी) | २५१ |
| ११ | श्री १०८ स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज मण्डलेश्वर, नारायणमठ (हिन्दी) | २५४ |
| १२ | श्री १०८ स्वामी लक्ष्मणगिरि जी महाराज, सेक्रेटरी महानिर्वाणी अखाड़ा प्रयाग (हिन्दी) | २५८ |
| १३ | श्री १०८ रमतापञ्च पञ्चायती महानिर्वाणी अखाड़ा, दारागञ्ज प्रयाग (हिन्दी) | २५९ |
| १४ | श्री १०८ स्वामी गिरीशानन्द जी महाराज, हरिद्वार (हिन्दी) | २६० |
| १५ | श्री १०८ स्वामी विभूतिपुरी जी महाराज, पुष्कर (हिन्दी) | २६० |
| १६ | श्री १०८ स्वामी कल्याणानन्द जी महाराज, काशी (संस्कृत पद्य) | २६१ |
| १७ | श्री स्वामी रामानन्द जी महाराज, काशी (हिन्दी) | २६३ |
| १८ | श्री स्वामी मोहनानन्द जी महाराज, भीमगोड़ा हरिद्वार (हिन्दी) | २६६ |
| १९ | श्री ब्रह्मचारी शिवचैतन्य जी, काशी (हिन्दी) | २६७ |
| २० | श्री स्वामी दुर्गाचैतन्य भारतीजी महाराज | २७६ |
| २१ | श्री स्वामी वासुदेवानन्द जी | २७७ |
| २२ | श्री स्वामी नृसिंह गिरिजी महाराज के शिष्य श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी | २७९ |
| २३ | श्री स्वामी श्यामानन्दजी | २८० |
| २४ | श्री महन्त स्वामी शङ्करभारती जी, बीकानेर (हिन्दी) | २८३ |
| २५ | श्री स्वामी चिद्घनानन्द पुरी जी, काशी (अंग्रेजी) | २८४ |
| २६ | वासुकिनिवासी श्री बालब्रह्मचारी बासुकि जी, नेपाल (संस्कृत) | २८५ |
| २७ | श्री स्वामी शिवानन्द जी, हृषीकेश (अंग्रेजी) | २८६ |

२८ श्री स्वामी शङ्करानन्द जी भारती, मैसूर (संस्कृत पद्य) २८६
२९ श्री सेठ कन्हैयालाल जी, अहमदाबाद (हिन्दी) २८७
३० श्री सेठ रमणलाल लल्लूभाई जी, अहमदाबाद (हिन्दी) २८९
२७ श्री कल्याण-सम्पादक श्री हनूमान प्रसाद पोद्दार (हिन्दी) २८९
२८ श्री कालीप्रसाद शुक्ल 'सुरेन्द्र' काशी (पद्य) २९०

## गुजराती विभाग

१ श्री रतिलाल मनसुखलाल पटेल व्यवस्थापक, धर्ममंगला, अहमदाबाद गुजराती १
२ धर्मनिष्ठ गुरुभक्त श्री प्रवीण कुमार छबिलराय इनामदार, अहमदाबाद २९
३ श्री स्वामी शिवानन्द जी धन्वन्तरि-गुरु वैद्यराज, अहमदाबाद ४३

## चित्र सूची

१ श्री १०८ स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज महामण्डलेश्वर का तिरङ्गा पृष्ठ सं० १
२ श्री १०८ स्वामी कृष्णानन्दजी महाराज मण्डलेश्वर अवतरणिका के पूर्व
३ श्री १०८ स्वामी जयेन्द्रपुरी जी महाराज जीवन चरित के पूर्व
४ ध्यानमग्नविश्वनाथ तथा सानन्द स्टेट के भवनाथ महादेव का तिरङ्गा
तथा सादा ४४
५ जगद्गुरु श्री शङ्कराचार्य ४९
६ श्री १०८ स्वामी गोविन्दानन्दजी महाराज मण्डलेश्वर ५४
७ कमलहस्त विष्णु तथा शङ्कर भगवान् द्वारा आशीर्वाद ७०
८ श्री स्वामी बालकपुरी जी महाराज ९०
९ श्री १०८ स्वामी जयेन्द्रपुरी जी महाराज चँवरदार १०१
१० श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज १०५
११ प्रयाग-कुम्भ के अवसर पर शेर के सहित महाराज १२२
१२ महिषमर्दिनी भगवती १२७
१३ श्री राजराजेश्वरी देबी १२८
१४ श्री १०८ स्वामी जयेन्द्रपुरी जी महाराज १४५
१५ नमःशिवाय बैंक के प्रचारक नैष्ठिक ब्रह्मचारी श्री धर्मदत्त शर्माजी १५३
१६ श्रीमान् सेठ मोतीलाल जी १५९
१७ भक्त-शिरोमणि बालाभाई ब्रजवल्लभदास जी १६५
१८ सानन्द स्टेट में गुरु दीक्षा के अनन्तर का चित्र १६६

१९ राजकुमार श्री रुद्रदत्तसिंह जी १६७
२० विप्रवर्य छविलभाई वलवन्तराय भट्ट १६८
२१ श्री १०८ स्वामी जयेन्द्रपुरी जी महाराज १६९
२२ श्री मङ्गलदास हरगोविन्द दास पटेल १७०
२३ श्री जीवनलाल आशाराम द्वारा पर्जन्य याग में अपूर्व सवारी, जनसमाज,
भक्त मण्डली, यजमान कृत पूजन १७१
२४ श्री १०८ महन्त हरिहरानन्द जी महाराज १८७
२५ संन्यासी संस्कृत कालेज के अध्यापक वर्ग १८८
२६ श्री १०८ स्वामी शङ्कर भारती जी बीकानेर १९०
२७ श्री १०८ स्वामी मण्डलेश्वर भागवतानन्द जी महाराज १९२
२८ श्री १०८ स्वामी नृसिंहगिरि जी महाराज मण्डलेश्वर १९४
२९ श्री १०८ स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज मण्डलेश्वर १९४
३० श्री १०८ भोलेबाबा जी महाराज १९६
३१ श्री १०८ स्वामी स्वरूपानन्द जी महाराज मण्डलेश्वर १९७
३२ श्री काशी विश्वनाथ तिरङ्गा २०६
३३ श्री स्वामी धर्मानन्दजी महाराज २०९
३४ विप्रवर्य श्री छविलभाई जी २१२
३५ भड़ौच में महामण्डलेश्वर जी की प्रतिमा तथा राजमाता का जपादि २२६
३६ भड़ौच मन्दिर के बाहर का भाग २२७
३७ श्री छोटेलाल हीराचन्द्र जी २२८
३८ अहमदाबाद संन्यासाश्रम में श्री काशी विश्वनाथ २२९
३९ अहमदाबाद संन्यासाश्रम में लक्ष्मीनारायण का मन्दिर २२९
४० अहमदाबाद संन्यासाश्रम में काशी विश्वनाथ का मन्दिर २२९
४१ अहमदाबाद संन्यासाश्रम में काशी विश्वनाथ महाविद्यालय २३०
४२ अहमहाबाद संन्यासाश्रम में शिव पञ्चायतन मन्दिर २३०
४३ श्री राजकुमार रुद्रदत्तसिंह जी सानन्द स्टेट २३४
४४ श्री १०८ श्री जयेन्द्रपुरी जी महाराज २३५
४५ श्री १०८ श्री जयेन्द्रपुरी जी महाराज की प्रतिमा

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ श्री श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ
स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज के चरणकमलों में

# समर्पणम्

इष्टापूर्त सरस्वतीसदनयो-
गागार देवालया ।
नल्पापूर्व जनोपकारिकृतिभि-
र्विख्यातिभाजोभुवि ॥

आशापाश निरासभासितमनो-
ध्यातात्म तत्वस्थितेः ।
शंतन्यास्पदयोर्जयेन्द्रकृतिनः
सैषार्पिता सत्कृतिः ॥

समर्पक—
स्वामी धर्मानन्द,

# नम्र निवेदन

अन्य निम्नलिखित विशिष्ट विद्वानों के भी अत्युत्कृष्ट तथा अनुभूत विषय पर लेख आये हुए हैं, पर कागज के अभाव से बाध्य होकर उन लेखों के प्रकाशनार्थ द्वितीय संस्करण की प्रतीक्षा करनी पड़ रही है।

श्री पं० हरिनाथ जी धर्मशास्त्री, षड्दर्शनाचार्य काशी
,, ,, वामाचरणभट्टाचार्यजी, न्यायाचार्य तर्कतीर्थ काशी
,, ,, वेणीमाधव शास्त्री शास्त्रार्थ महारथी काशी
,, ,, गोपाल शास्त्री दर्शनकेशरी ,,
,, ,, सीताराम जी ज्योतिषाचार्य ,,
,, ,, विजयानन्द जी त्रिपाठी "मानसराजहंस" काशी
,, ,, केदारनाथ जी, न्यायव्याकरणवेदान्ताचार्य जयपुर
,, ,, रुद्रप्रसाद जी अवस्थी, न्यायव्याकरणाचार्य अयोध्या
,, ,, रामानुजजी ओझा, न्यायव्याकरणसाहित्याचार्य काशी
,, ,, केशवदेव जी द्विवेदी, न्यायाचार्य काशी
,, ,, परमहंस जी मिश्र व्याकरणायुर्वेदाचार्य काशी
,, ,, दीनानाथ झा जी न्यायवेदान्ताचार्य अहमदाबाद
,, ,, चिम्मन लाल शास्त्री व्याकरणाचार्य ,,
,, ,, रामाधार त्रिपाठी व्याकरणसाहित्याचार्य ,,
,, ,, रामगोविन्द जी शुक्ल व्याकरणसाहित्याचार्य काशी
,, ,, केदारनाथ जी, न्यायवेदान्ताचार्य वकुलहर मठ
,, ,, मधुसूदन जी व्याकरणसाहित्याचार्य ,,
,, ,, वेणीराम जी वेदाचार्य काशी
,, ,, प्रेमवल्लभ जी धर्मशास्त्राचार्य काशी
,, ,, कल्पनाथ जी शर्मा व्याख्यानकेशरी काशी
,, ,, गिरिजेश कुमार, धनुर्वेद-विशारद मोड़ासा
,, ,, सुरेश झा जी न्यायव्याकरणाचार्य काशी
,, ,, पद्मनाभ मिश्र जी व्याकरणसाहित्याचार्य काशी
,, ,, रामगोपाल जी, कानपुर

# * ॐ नमः शिवाय *

## अवतरणिका

पद-वाक्य-प्रमाण पारावारीण योगीश्वर महामण्डलेश्वरजी के जीवन अवस्था ही में मेरे मन में ये भाव उठते थे कि ऐसे महापुरुष की—जीवन-घटनाओं का लोकोपकार के लिये लेखबद्ध होना अत्यावश्यक है। पर मुझे ऐसे कोई प्रबल साधन उपलब्ध नहीं हुए कि जिससे अपने मनोभावों को विकसित कर सकता। महामण्डलेश्वरजी के ब्रह्मीभाव के अनन्तर कभी-कभी इसके लिये विशेष चिन्ता होती थी फिर भी पूर्वनिर्दिष्ट साधनाभाव मेरे मनोनीत मार्ग में रोड़े हो जाते थे। इस समय संन्यासि-संस्कृत-महाविद्यालय के मन्त्रि-पद पर स्वनामधन्य महाराज श्री स्वामी धर्मानन्दजी हैं। आपके मन्त्रि-पद ग्रहण करते ही विद्यालय, जो ढुण्ढि-राज गली, अपारनाथ के मन्दिर, काशी में हैं, वह महाविद्यालय (कालेज) के रूप में परिणत हो गया। आपने प्रायः सभी विषयों के अध्यापक नियुक्त कर दिये। अध्या-पकों का पुरस्कार, छात्रों की संख्या तथा छात्रवृत्ति भी बढ़ा दी गई। विद्यालय-भवन जो पहले साधारण रूप में चला आ रहा था उसने भी आपके अदम्य परिश्रम से एक विशाल महाविद्यालय के योग्य स्वरूप धारण कर लिया। अपने स्वरूप के योग्य आवश्यक साधनों से भी अपूर्ण न रह गया। महाविद्यालय के विशाल पुस्तकालय की पूर्णता भी आपके ही सराहनीय उत्साह का फल है। ऐसे महोदार, धार्मिक-शिरोमणि, परोपकारी व्यक्ति के लिये इन कामों में सफलता प्राप्त करना आश्चर्य का विषय नहीं है। जिसने ( ॐ नमः शिवाय ) बैंक स्थापित कर भारत के कोने-कोने तथा विदेशों से भी आये हुए ३०००००००००० तीन अरब संख्यक मन्त्रों का पूजनकर शिवपुर काशी में विशाल शिवालय स्थापित करने में पूर्ण सहयोग दिया और अगणित दीनों को सम्पत्तिशाली बना दिया।

अबभी प्रायः शत रुद्रिय पाठ, यज्ञ तथा दान व्रतादि आपका अनवरत चलता ही रहता है। आप विद्वानों की आशा-लता के अवलम्ब कल्प वृक्ष हैं। महाराज मन्त्रीजी के इन सत्कार्यों को देखकर तथा स्वयं भी अनुभव कर मेरी भी आशा-लता में कलिकोद्गम हो गया। मुझे पूर्ण अवलम्ब मिल गया और

सोचने लगा कि अपने विचारों को मन्त्री महाराज के समक्ष उपस्थित करूँ। मन्त्रीजी भी वर्णनीय महात्मा श्रीयोगिराजजी के ही अनन्य भक्तों में हैं। बहुत काल-तक आपने भी महामण्डलेश्वरजी की परिचर्या में ही जीवन सफल किया है। आप मेरे विचारों को समझकर स्वयं एक दिन कहने लगे कि महामण्डलेश्वरजी का जीवन-चरित यदि जनता के सम्मुख आ जाता तो अत्यन्त लोकोपकार होता। आपके इन शब्दों से मेरे हृदय-पटल पर मानों सुधासेक-सा हो गया। अपूर्व उल्लास प्रवृद्ध हुआ अर्थात् उस समय आनन्द-सागर की लहरी के तह में सर्वाङ्ग से गोता खाते अपने को पाया। अब क्या था, कार्य-क्रम बनकर प्रस्तुत होने लगा। श्री मन्त्रीजी के भी उस लोक-विदित उत्साह-वृक्ष की शाखायें अवकाश पाने लगीं। एक व्यवसायी मनुष्य प्रचुर द्रव्य समुपार्जन करने के लिये जितने समय, परिश्रम तथा मूलधन का व्यय करता है, श्री मन्त्री महोदय भी इस पुण्य-कार्य सम्पादन में उससे न्यून न थे। आपने जहाँ कहीं सुना कि महामण्ड-लेश्वरजी की जीवन-घटना का पता लग सकता है, वहीं पत्र तथा किसी को भेजकर या स्वयं जाकर तथा घटनावेत्ताओं को बुलाकर पता लगाना प्रारम्भ कर दिया। इस विषय में व्यय तथा परिश्रम का महाराज मन्त्रीजी ने अल्प भी संकोच न किया। अतः इस लोकोपकारक कार्य का समग्र श्रेय श्री १०८ महाराज मन्त्रि महोदय को ही है। मैं भी जहाँ-तहाँ महामण्डलेश्वरजी के साथ रहनेवाले पूर्ण सहवासी महात्माओं से तत्तत्स्थानों की सत्य घटना की गवेषणा करता रहा। उक्त मन्त्रीजी को ऐसी लगन लगी कि आपने सर्दी, गर्मी, समयाभाव, धनाभाव तथा अनेक वाधाओं को तुच्छ समझते हुए और मुझे भी प्रोत्साहन देते हुए आगे ही पैर बढ़ाया।

अब इसपर किसी महाशय को सन्देह होना विस्मय का विषय नहीं कि वर्णनीय महामण्डलेश्वर के चरित में कौन-सा गुप्त रहस्य है, देश के हित की दृष्टि से कौन-सी महत्वपूर्ण उपादेयता है? आपकी उपदेशमालाओं में भावि तथा वर्तमान संसार के लिये कैसी अनुपम हिताहित-समीक्षा अनुवद्ध है, जिसने मन्त्रि-महोदय तथा आपको वाधाओं की प्रचुरता में भी दृढ़ विचार से विचलित न किया? इसके उत्तर में भी कुछ लिखना आवश्यक है; इसलिये कुछ विशद रूप में अपना लेख वढ़ाना चाहता हूँ।

## स्वामी श्रीजयेन्द्रपुरीजी महाराज—ब्रह्मचर्य के प्रबल पुजारी

प्रायः सभी आचार्यों ने ब्रह्मचर्य के महत्व को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपमें प्रदर्शित किया है, पर महाराज जयेन्द्रपुरी जी ने जिस अपरिहार्य भाव से ब्रह्मचर्य-रक्षण

के साधन तथा अनुभूत फल को प्रत्यक्षतः दिखला दिया है, वह बोधन प्रणाली विशदरूप से कहीं नहीं देखी गई।

बड़े-बड़े महात्माओं तथा महाजनों से मैंने सुना कि स्वामी जी ब्रह्मचर्य पर बहुत ही जोर दिया करते थे। उन्हें दृढ़ निश्चय था कि ब्रह्मचर्य के बिना मनुष्य किसी भी प्रकार के अभ्युदय का भागी नहीं बन सकता। शारीरिक, वाचिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक किसी भी प्रकार का अभ्युदय ब्रह्मचर्य पर निर्भर है। किसी भी जाति के अभ्युत्थान का मूल कारण ब्रह्मचर्य है। उनका कथन था कि निखिल देश के सुसज्जित मुकुट इस भारत को यदि पुनः गौरवान्वित तथा सर्वश्रेष्ठ बनाना है, तो ब्रह्मचर्यातिरिक्त अन्य उपाय नहीं है। स्वामी श्रीजयेन्द्र-पुरी जी ने जैसे स्वयं ब्रह्मचर्य का पालन किया और उससे जो कुछ लोकोत्तर लाभ उठाया, वे चाहते थे कि सभी भारतीय वैसे ही लाभ के भागी हों। इसलिये जनता से उनका विशेष अनुरोध था। उनका कथन था कि जिस देश के पुरुष-सिंहों का सोत्साह गर्जन विपक्षियों को असह्य था, जहाँ के निवासी त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) की तो बात ही क्या मोक्ष तक हस्तामलकवत् समझते थे, वहाँ की उन्हीं की सन्तति, बद्ध पशु की भाँति परमुखापेक्षी बनें इससे बढ़कर खेद का विषय और क्या? इसका मूल हेतु ब्रह्मचर्य-हीनता है। वस्तुतः सोचा जाय कि भारत के अलौकिक गौरव का निदान क्या था? बहुत से विदेशी भारत की प्रतिभा, कर्मकौशल तथा अदम्योत्साह को देखकर जो विस्मित हो गये उसका वीज क्या था? इसका उत्तर "ब्रह्मचर्य" से अन्य हो नहीं सकता।

उपनिषद्, धर्मशास्त्र, दर्शन, षडङ्गवेद, इतिहास तथा पुराण ऐसे अनुपम ग्रन्थ के रचयिता कौन थे? अर्थ-नीति, युद्धकौशल और व्यवहारदक्षता के प्रवर्तक कौन थे? गाम्भीर्य, विचारशीलता, तत्वानुसन्धान के पुजारी कौन थे? समय-समय पर बिखरी शक्ति को एक स्रोत में बहाकर कार्यान्तदर्शी कौन थे? सभी प्रश्नों का। उत्तर आपको एक ही मिलेगा 'ब्रह्मचारी'। अधिक क्या, संसार में जबतक ब्रह्मचर्य की सत्ता रहेगी तभीतक देश का हित स्थिर रहेगा। पद-दलित का अभ्युत्थान, परमुखापेक्षी की स्वतन्त्रता और प्रनष्ट-गौरव का पुनरागमन ब्रह्मचर्य रक्षण पर ही निर्भर है। कारण यह कि बल, बुद्धि, स्मृति, प्रतिभा, धारणा, सहनशीलता, तितिक्षा, उत्साह और सत्य प्रतिज्ञता की परिपुष्टि यथेष्ट रूप में ब्रह्मचर्य से ही हो सकती है। स्वामी श्रीजयेन्द्रपुरी जी महाराज अपने स्वच्छ जीवन में निरभ्र ब्रह्मचर्य का परिचय

देकर अपने अखण्ड पाण्डित्य तथा अप्रतिम प्रतिभा से देश का एक अचिन्त्य उपकार कर गये हैं।

## स्वामी श्री जयेन्द्रपुरीजीमहाराज-सद्धर्म के प्रवर्तक

यदि इस समय विचारपूर्वक देखा जाता है तो सारा संसार विषम अशान्ति की कुक्षि में सर्वथा प्रविष्ट हो रहा है। सभी देश, सभी जातियाँ, सभी राज्य उस अशान्ति वैश्वानर की धधकती हुई विकराल ज्वाला में भस्म हो रहे हैं, विज्ञान के नाम पर चारों तरफ अशान्ति, अस्वास्थ्य, उपद्रव, अकाल, बुभुक्षा, पिपासा का साम्राज्य प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। उन्नति की बैजयन्ती फहराने की दुराशा में बसुमती नर-रक्त से प्लावित हो रही है। जहाँ दृष्टिपात करो केवल हृदयविदारक 'हाय' के अतिरिक्त दूसरा शब्द सुनाई नहीं दे रहा है। इसका मुख्य कारण क्या है? मैं तो समझता हूँ कि सद्धर्म का परित्याग। यों तो अनियन्त्रित कर्तव्य-प्रवाह में जिसको जो क्षणिक एवं सुखकर साधन उपलब्ध हो जाते हैं वे उसी को ही सद्धर्म समझ बैठते हैं पर सद्धर्म से मेरा तात्पर्य, त्रिकालदर्शी योगीश्वर ऋषियों के ज्ञान-नेत्र-दृष्टधर्म से है।

यह बतलाने की आवश्यकता न होगी कि जिन ऋषियों के ज्ञानचक्षु से प्रदृष्ट मार्ग का पथिक बनकर यह सारा संसार शान्ति देवी की स्वच्छ गोद में अपरिमित कालतक सुख लूटता रहा, आज वही कोई भी ऐसी विपत्ति न होगी जिसका भाजन न बना हो। सद्धर्म परित्याग से इस समय इतना परिवर्तन हो गया है कि जहाँ 'नकामयेऽहं गतिमीश्वरात्परामष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा। आर्तिंप्रपद्येऽखिल-देहभाजामन्तःस्थितो येन भवन्त्यदुःखाः। महाराज रन्तिदेव ने अड़तालीस दिन उपवास के बाद प्राप्त अन्न को ब्राह्मण और कुत्तों के सहित चाण्डाल को बुभुक्षित देखकर अर्पण कर दिया और स्वयं अन्न जल रहित ही बने रहे। उस समय उनके मन में ये भाव उठे कि मैं विश्वम्भर परामात्मा से अपरिमित विभूति तथा मुक्ति नहीं चाहता। देहि-समूह के अन्तःस्थित हो उनकी विपत्ति मैं भोगूँ, जिससे वे दुःख रहित हो जाँय। ऐसी भावना ने प्रत्येक व्यक्ति में स्थान पाई थी, प्रत्येक व्यक्ति दूसरों के दुःख से अत्यन्त दुखी होते थे, अपनी विभूति को देश की विभूति समझते थे। सारा संसार वेद तथा धर्मशास्त्र बोधित मार्ग का अनुयायी था। वहीं दुर्बल के मुख से ग्रास तक निकाल लिया जाता है। कहीं पर प्रचुर अन्न राशियाँ सड़कर खाद बन रही है, कहीं असंख्य जन असह्य बुभुक्षा से पीड़ित हो अकाल मृत्यु के कवल बन रहे हैं। सभी जातियाँ उन्मत्त, भ्रान्त, ग्रह-निगृहीत और भूताविष्ट-सी

विवश तथा असहाय बन रही हैं। तुच्छ धनाभिलाषा, महत्वाकांक्षा बड़ी-सी-बड़ी जाति तथा बड़े-से-बड़े देश को नाममात्रावशेष कर रही है। भोगलिप्सा, पशु पक्षियों को भी अस्वस्थ बना रही है।

जहाँ-जहाँ सद्धर्म की हानि हुई वहीं से शान्ति तो न जाने कितने दूर भाग जाती है। वे ही कार्य चित्त में स्थान पाते हैं जो अमृतमुख और विषपरिणाम हैं। इतनी उच्छृङ्खलता व्यापक रूप से बढ़ जाती है कि प्रवञ्चना, कपट, मिथ्याभियोग की तरफ मनुष्य सर्वदा प्रवृत्त दिखाई देता है। देश, ईतियों ( अतिवृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डियाँ, चूहे, हानिकारक पक्षी, राजाओंका परस्पर आक्रमण ) का निवास-स्थान बन जाता है। सब प्रकार के अनियमों से आधिव्याधियाँ तो चिर-सङ्गिनी बन बैठती हैं।

सद्धर्म की विस्मृति ने जितना अहित और अमङ्गल किया है, उतने की कभी आशा भी न थी। सभी लोगों का जीवन आज अत्यन्त परिवर्तित होकर अन्य रूप में दिखाई दे रहा है।

जो चेतन, अमल, सहजसुखराशि जीव संस्कारों के वशीभूत होकर संसारी बनकर जन्म ग्रहण करने लगता है तो वही प्रार्थना करता है कि हे सच्चिदानन्द बोध-स्वरूप परमात्मन्! मैं सर्वदा आत्म-चिन्तन कर शाश्वत सुख प्राप्ति की चेष्टा करूँगा। वही जीव सद्धर्म-विस्मृति से एषणाओं के जाल में फँसकर अपने मुख्य लक्ष्य को तिलाञ्जलि देकर नश्वर वस्तुओं को ही अनश्वर तथा सुखप्रद समझकर अपने को उसी मिथ्या भोग तृष्णा के प्रवाह में बहा देता है और अपने मुख्य लक्ष्य से भ्रष्ट होकर ( पुनरपि मरणं पुनरपि जननं पुनरपि जननी जठरे शयनम् ) का अनुभव करता है। धन-संग्रह और इन्द्रिय-सौहित्य को ही सुख की पराकाष्ठा समझने लगता है। "ब्राह्मणेषु च विद्वान्सो विद्वत्सु कृतबुद्धयः। कृतबुद्धिसु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः" इस परमानन्द श्रीकृष्णचन्द्रजी की उक्ति की अवहेलना कर वैश्य वृत्ति तथा दासत्व को ही उन्नति की चरम सीमा समझकर केवल उसमें लोग लगते ही नहीं पर मुक्तकण्ठ से सद्धर्म की निन्दा भी किया करते हैं। सद्धर्म के परित्याग ने देश को जर्जर बना दिया तथा असंख्य नर-नारियों के हाथ भिक्षा का पात्र समर्पित कर दिया है। जिन स्थानों में सुख एवं शान्ति का स्रोत अविरल बहता था, वहाँ आज गृद्ध, काक, शृगालों का विहरण हो रहा है।

यह स्पष्ट है कि जब-जब सद्धर्म की अवज्ञा हुई सारे संसार को भयङ्कर अमङ्गल का शासन मानना पड़ा था। जनसमाज, अशान्ति, उपद्रव आधि-व्याधियों

का शिकार बनकर अस्मरणीय विपत्तिका भाजन बना। इसमें सन्देह नहीं कि सर्वदर्शी ऋषिबोधित सद्धर्म-पद्धति ही सल्लक्ष्य पर पहुँचानेवाली है।

अब विचारणीय यह बात आ पड़ती है कि चिरकाल से आता हुआ एक प्रवाह रुक जाय और उसकी जगह विशाल रूपमें दूसरा प्रवाह प्रवाहित हो, इसमें कारण क्या ? मैं तो समझता हूँ कि क्षणिक तथा आकर्षक वस्तुओं पर सभी का सुतराम् आकर्षण होता है। प्रकृति के लोभोत्पादक चमत्कृतियों पर मुग्ध होनेवाले अतत्वदर्शी लोगों की शिक्षा-दीक्षा के प्रभाव से प्रभावित होकर सुपरिणाम तथा दुष्परिणाम पर विचार न कर भेंड़ की भाँति विस्तृत अगाध गर्त में लोगों का पतन हो गया है। यद्यपि बहुत से लोग तत्वदर्शिता की अहंता रखते हैं पर विषय विशेष के तत्वानु संधान में कभी सफल न हुए। जैसे अन्धा हाथी की पूँछ को ही हाथी समझने लगता है इसी भाँति प्रकृति के एक देश पर विशद मीमांसा कर अल्पज्ञ अपने को तत्वदर्शिता का पारङ्गत समझता है। वे ऋषि महर्षि जिन्होंने इस पवित्र भारत भूमि को अपने चरण सरोज के पराग से अत्यन्त पूत किया है उनके अतिरिक्त किसी का तत्वदर्शी बनने का दावा केवल साहसमात्र है। अविद्यान्धकार से मुक्त होकर परमपद का यदि किसी ने अनुभव किया तो वे इसी भारत भूमि के महात्मा थे। वे ही तत्वानुसन्धान तथा तत्वावधारण में सफल थे। मानव समाजमें वे ही सुख शान्ति का साम्राज्य स्थापित किये थे। आज उनके मत की अवज्ञा पर मत की श्रद्धा ही अशान्ति-ज्वलन को धधकाकर देश सारी वसुधा को भस्मसात् करने को कटिबद्ध है।

इस विश्व-व्यापिनी अशान्ति का प्रतीकार तथा शान्ति का प्रसार एकमात्र सद्धर्म के प्रचार पर ही निर्भर है पर सद्धर्मादित्य का उदय प्रायः चिरकाल से अवरुद्ध हो गया है, 'सर्वप्रथम सद्धर्मादित्य का उदय भारत भूमि पर ही हुआ था; पर खेद का विषय है कि आज वही भारत भूमि स्वयं चिरकाल से उस प्रकाश से वञ्चित हो रही है। जहाँ ( एतद्देशप्रसूतस्य सक ाशादग्रजन्मनः। स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वं मानवाः। ) इस भारत में उत्पन्न ब्राह्मणों से जगतीतल के सभी मनुष्य अपने-अपने कर्तव्य की शिक्षा लें, यह नियम प्रचलित था; आज वे ही भारतीय अपने कर्तव्याकर्तव्य के विमर्श में भ्रान्त हो रहे हैं। इस काल-परम्परा में अनेक महापुरुष एवं अनेक महात्माओं ने जन्म ग्रहण किया और यथाशक्ति सफलता भी प्राप्त की। अनेक धन्वन्तरि के समान चिकित्सक भी उत्पन्न हुए, जिन्होंने व्याधियों से संसार को मुक्त किया। बहुत से आचार्यों का भी आविर्भाव हुआ, जिन्होंने मनो-

योग से मानसिक व्यथाओं के दूर करने का अत्यन्त प्रयत्न किया पर ऋषि-महर्षि-सम्मत पददलित सद्धर्म के पुनरुज्जीवन में पूर्ण साफल्य न पाया। फिर भी यह कहना पड़ेगा कि वे भी आचार्य धन्यवादार्ह है और भारत भूमि उनकी भी आभारी है कि आज इस वैषम्यपूर्ण संसार में धर्मोद्धार की चर्चा और उसमें सफलता पाने की आशा उन्हीं के सुख निरपेक्ष प्रयत्नाधार पर आश्रित है। यों तो कह सकते हैं कि वे अपने-अपने सम्प्रदायों की पुष्टि में ही सम्पूर्ण मनोयोग दिये थे पर वह भी यदि ऋषिप्रदत्त विचारों से विरुद्ध न हों तो उसे भी उपेय प्राप्ति का एक साधन मानना पड़ेगा। प्रत्येक कार्यसिद्धि के साधन तो भिन्न होते ही हैं पर साध्य यदि अभिन्न हो तो उसे भी सदुपाय ही कह सकते हैं।

वर्तमान युग में स्वामी श्रीजयेन्द्रपुरीजी महाराज ही एक सद्धर्म के प्रचारक अवतार ग्रहण किये थे। जब कि यह बात सिद्ध है कि नियत कारण ही नियत कार्य का जनक होता है तो यह मानना गले-पतित है कि सद्धर्म ही सुख एवं शान्ति का एक मात्र आदि कारण है। ऐसी दशा में भारतीय प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि स्वामी श्रीजयेन्द्रपुरीजी महाराज के आचरण और उपदेशों को समझें और दूसरों को समझाने का प्रयत्न करे। उन्हें स्वयं जानने और जनाने का प्रयास करे, उनकी सदुक्तियों की वेद शास्त्र की कसौटी पर परीक्षा या आलोचना करे। आर्ष ज्ञानपूर्ण मानव! यदि तुम्हें लौकिक अथवा पारमार्थिक सुख एवं शान्ति की लिप्सा है तो तुम्हारे लिये यह अनिवार्य होगा कि स्वामी श्रीजयेन्दपुरीजी को जानना उनके विचार, व्यवहार, तथा उपदेशों का मनन करना। इस दृष्टि से भी स्वामीजी प्रत्येक जन-समुदाय के आलोचनीय, ज्ञेय तथा उपादेय हैं कि सुख-लिप्सा ने किसी को भी नहीं छोड़ा है। चाहे लौकिकी हो अथवा पारमार्थिकी। जो तत्वदर्शी महर्षि "शन्नः कुरुप्रजाभ्यो अभयं नःपशुभ्यः, द्यौः शान्तिः" इत्यादि वेद वाक्यों से सर्वदा सर्व शक्तिमान् बोधस्वरूप परमात्मा से जगत का मङ्गल चाहते थे उन्हीं महर्षियों के उपदेशालोक को, तम हटाकर स्वरुप में लाकर प्रतिष्ठित करना ही स्वामी श्रीजयेन्द्र पुरीजी महाराज का मुख्य लक्ष्य था। अब यह निःसन्देह हो गया कि स्वामीजी का जीवन संसार के प्रत्येक जन्तु के साथ सम्बद्ध है। जिसके जीवन के साथ सार्वजनिक और सार्वदेशिक शुभ सुवद्ध हैं उसके जीवन-चरित को लेखवद्ध करने में जो कुछ कठिनाइयाँ पड़ी हैं उसे कठिनाई नहीं समझते। अब तो पाठक! आपके समझ में आ गया होगा कि स्वामीजी की जीवनी प्रकाशित करने में यह भी एक हेतु है।

## स्वामी श्रीजयेन्द्रपुरीजीमहाराज सत्य संघटन के परिपोषक

आज कल चारों तरफ पत्र पत्रिकायों में संघटन की चर्चा की भरमार दिखाई देती है। इसी विषय पर लम्बे-लम्बे व्याख्यानों की परम्परायें भी सुनी जाती हैं। वस्तुतः सोचा जाय तो इसके बिना छिन्न-भिन्न शक्तिओं से किसी भी महत्त्व पूर्ण कार्य का सम्पादन होना सर्वथा दुरूह अथवा असम्भव है। जिस प्रकार हमें अपने परिवार की रक्षा के लिये जीवनोपयोगी वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है, एक अबोध शिशु को शिक्षित बनाने के लिये सत्सङ्गति की आवश्यकता है, इसी भाँति समाज, जाति तथा देश में सुखशान्ति फैलाने के लिये संघटन की आवश्यकता है। जिस देश में संघटन नहीं, परस्पर स्नेह नहीं, सद्-भाव तथा समवेदना का बन्धन नहीं उस देशवासियों की जीवन-यात्रा कष्टमय विपद्ग्रस्त हो जाती है। जो जाति भाषा, नीति, आदर्श, धर्मगत विभेदों से विखर जाती है उस जाति के सदस्य परम पुरुषार्थ मोक्ष क्या ऐहिक सुखों से भी वञ्चित रहते हैं।

बात यह है कि मनुष्य सामाजिक है। उसे प्रत्येक कार्य में दूसरों की सहा-यता की अपेक्षा करनी पड़ेगी, सभी आश्रमों में असङ्ग रह कर अपनी जीवन-यात्रा उसे भार हो जायगी। अन्ततः किंकर्तव्यविमूढ़ हो जायगा। किसी भी उन्नति-मार्ग में पदार्पण करने के लिये वह अन्ध बन जायगा। प्रत्येक मनुष्य की उन्नति अवनति, शुभ अशुभ उसके पार्श्ववर्ती जनों से सम्बद्ध हैं। इतना ही नहीं समस्त देशवासी के शुभाशुभ से संसृष्ट है। अकेला व्यक्ति लौकिक कार्यान्तदर्शी नहीं हो सकता। प्रत्युत पुनः पुनः असफलता का अनुभव कर देह त्याग के लिये भी कटिबद्ध हो जाता है।

अब इस बात को बतलानें की आवश्यकता न होगी कि देशवासियों की प्रत्येक कार्यसिद्धि के सम्पादन के लिये संघटन की कितनी आवश्यकता है। धन-धान्य की उन्नति, शिल्प की उन्नति, साहित्य की उन्नति तथा किसी भी प्रकार की उन्नति संघटन पर आश्रित है। स्थल विशेष के निर्वाध हुए विना जन पारमार्थिक सुख-साधन में भी असफल रहता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि इसका साधन क्या है, साधनाभाव अथवा असत्साधन से साध्यसिद्धि नहीं होती। केवल 'संघटन की घोषणा' इसका साधन नहीं है, अविच्छिन्न रूपसे चिरकाल से सुखशान्तिमय इस वसुमती पर और

समय भी यह डिण्डिम क्यों न बजाया गया! इसका कारण यह था कि ऋषि-महर्षिबोधित मार्ग पर अभ्रान्त चलने वाले लोगों को इसकी आवश्यकता ही न थी। उस मार्ग को छोड़कर विमोहकारी क्षणिक इन्द्रजाल की चमत्कृतियों पर विमुग्ध होकर उसीको अब लोग सत्मार्ग समझ बैठे हैं। अतः उपाय के बिना उपेय की लिप्सा दुराशा मात्र है।

पाश्चात्य सभ्यता की भित्ति देहात्माभिमान की अपक्व ईंटों पर स्थित है। इस सभ्यता से अपने को सर्वश्रेष्ठ समझने वाले लोग अपने अभ्युदय तथा रक्षा के लिये जो उपाय निश्चित किये हैं उसमें सर्वस्वव्ययपूर्वक नर-संहारक अस्त्रशस्त्रों का सम्पादन ही सर्वप्रथम है। उसका फल मेदिनी को रुधिरप्लावित करने के अतिरिक्त अन्य नहीं है। ऐसी ही अवस्था आने पर भगवद्‌गीता में भगवान् सच्चिदानन्द श्रीकृष्णने आसुरी सम्पत्ति के नाम से कहा है।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते॥

आसुरी भावना के लोग प्रवृत्ति और निवृत्ति नहीं जानते। इस बात का उन्हें ज्ञान नहीं रहता कि कर्तव्य अथवा अकर्तव्य क्या है। शुद्धता, आचार और सत्य तो उनके पास फटकते ही नहीं।

असत्यमप्रतिष्ठन्ते जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहेतुकम्॥

वे कहते हैं कि संसार असत्य और अप्रतिष्ठ है। अकारण परिवर्तित होता रहता है, इसका कोई कारण नहीं। केवल मनुष्यों की विषय-वासना के लिये ही उत्पन्न होता है।

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः॥

इस विचार को स्वीकार कर ये मन्दबुद्धि नष्टात्मा संसार के अहित करने वाले कठोर कर्म करते हैं और जगत् के नाश के लिये पैदा होते हैं।

काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः॥

कभी भी पूर्ण न होने वाली विषयोपभोग की तृष्णा का आश्रयण करते हैं। दम्भ, मान, मद और मोह से व्याप्त रहते हैं। असत्य कल्पनाओं से पूर्ण हो मलिन कार्य करने में सर्वदा प्रवृत्त रहते हैं।

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान ॥

इसी प्रकार आमरणान्त अगणित चिन्ताओं से ग्रस्त रहते हैं। कामोप भोग में डूबे हुए उसी को विश्वस्त बुद्धि से सर्वस्व मानते हैं। असंख्य आशा-बन्धनों से जकड़े रहते हैं। सर्वदा कामक्रोध के वशीभूत हो अन्याय से धन संग्रह करते हैं।

इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ।
इदमद्यमयालब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
असौ मयाहतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ॥
ईश्वरोहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान् सुखी ॥

आज मैंने इसे पा लिया, कल उस मनोरथ को भी पूर्ण कर लूँगा, यह धन मेरा है, दूसरों का धन भी मेरा हो जायगा । इस शत्रु का मैंने नाश कर दिया दूसरों को भी मार डालूँगा। ईश्वर, सर्वश्रेष्ट भोगी, सिद्ध, बलवान् और सुखी मैं ही हूँ।

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोन्योऽस्ति सदृशो मया ।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ॥

सम्पत्तिशाली तथा कुलीन मैं हूँ। मुझसा संसार में दूसरा कौन है ? मैं यज्ञ ( अवैध संगठन ) करूँगा, दूँगा, गुलछर्रे उड़ाऊँगा।

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्तिनरकेऽशुचौ ॥

इस तरह अज्ञान से मोहित, अनेक कल्पनाओं से भटकने वाले, मोहके जटिल बन्धनों से जकड़े हुए ये आसुरी भावना के लोग अपवित्र तथा दुःखमय नरक में गिरते हैं।

अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधञ्च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥

अहङ्कार, बल, दर्प, काम और क्रोध में उन्मत्त हो प्रत्येक प्राणी में वर्तमान परमेश्वर से द्वेष करते हैं और स्थान-स्थान पर उसकी निन्दा करते हैं।

परमानन्द श्रीकृष्ण की इस अभ्रान्त सूक्तियों में नव सभ्यता के प्रतिविम्ब को देखकर कौन ऐसा विज्ञ होगा जो इस पर स्वप्न में भी श्रद्धा करेगा।

खेद की बात है कि त्रिकालज्ञ वैधकार्यप्रवर्तक महर्षियों की जन्मभूमि

इसपुण्य भारत में भी हमारे ही अनेक भाई नवीन सभ्यता की भूल-भुलैया में भटकते हुए भगवद्गीता में निन्दित उस आसुरी भाव के अवलम्बन में ही भारत का अभ्युदय समझते हैं।

संसार के विचारशील पुरुषों की यह धारणा सत्य है कि नवीन सभ्यता से फैलती हुई आसुरी भावना जब तक संसार से उड़ न जायगी तब तक मानव समाज में सुख, शान्ति, और स्वाधीनता का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता। उस भावना को हटाने का एकमात्र उपाय वर्णाश्रम-धर्मका उचित रूपसे प्रचार और प्रसार ही है। ऐसी दशामें संगठन की घोषणा की आवश्यकता नहीं, वह सुतरां सिद्ध है। कारण, यह धर्म श्रीसच्चिदानन्दस्वरूप परब्रह्म परमेश्वर को प्राप्त करने के उद्देश्य से आविर्भूत हुआ है। इस धर्म ही में वैषयिक सुख आनुषङ्गिक अथवा उपेक्षित हैं। इसमें इस प्रकार के नियम अनुस्यूत हैं कि पूँजीपति की निन्दा का तथा अर्थी के असम्मान का अवसर ही नहीं है। अर्थात् आर्थिक वैषम्य से आजकल की तरह हाहाकार का नाम भी नहीं मिलता।

यदि सत्य, चिरस्थायी संगठन तथा समवेदना अभिवांछित है तो वर्णाश्रम धर्म के पुनरुज्जीवन का उपाय सोचना चाहिये। इसका दृढ़ उपाय अपनी प्राचीन संस्कृति का संरक्षण है। समय दोष से इसमें जो दुष्करता की भावना आ गई है उसे सर्वथा हृदय से समूल निकालने का निश्चय करना आवश्यक हैं।

मनु, याज्ञवल्क प्रभृति धर्मशास्त्रकारों ने जगतीतल के मानव समाज के हित के लिये अधिकारिभेद से धर्मकी दो प्रकार व्यवस्था की है। प्रथम तो—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

धैर्य, क्षमा, दम ( असह्य क्लेश को भी प्रसन्नता से सहन करने की शक्ति) अस्तेय ( चोरी न करना ) शौच ( बाह्य तथा आभ्यन्तर पवित्रता ) इन्द्रिय-निग्रह ( इन्द्रियों को वश में रखना ) बुद्धि, विद्या ( आत्मज्ञान ) सत्य, अक्रोध ये दश साधारण धर्म सभी के लिये हैं। अर्थात् प्रत्येक मनुष्य को इन दश धर्मों का पालन करना उचित है।

द्वितीय—ब्राह्मण का-अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान तथा प्रतिग्रह ( याजन तथा अध्यापन के पुरस्कार में प्राप्त द्रव्य से निर्वाह करना )

क्षत्रिय का—अस्त्र-शस्त्र शिक्षा से पूर्ण हो, उत्साह तथा साहस से निर्भीक हो देश तथा वर्णाश्रम-धर्म का रक्षण करना।

वैश्य का—अपने तथा अन्य वर्णों के पोषणार्थ न्यायोचित व्यापार से आर्थिक सम्पत्ति की वृद्धि करना।

शूद्र का—ब्राह्मणादि तीनों वर्णों की शुद्ध भाव से परिचर्या तथा उनसे प्राप्त द्रव्य से अपना निर्वाह करना।

येही विशेष धर्म हैं। इसी को वर्णाश्रम धर्म कहते हैं। इन धर्मों के आचरणाधिकार विभक्त हैं, इसके विरुद्ध आचरण करने वाला भारतीय मनुष्य शास्त्रानुसार अपराधी है। इन धर्मों के जो अधिकारी माने गये हैं उन्हें भी साधारण धर्मोंका पालन आवश्यक है। कारण साधारण धर्मों के विना विशेष धर्मों की पूरी सफलता नहीं हो सकती। इसलिये प्रत्येक व्यक्ति को इन धर्मों का अनुष्ठान तथा प्रचार व्यापक रूपसे करना चाहिये।

अब विचारणीय बात यह है कि हम परस्पर वृत्ति अपहरण में तत्पर रहें, दूसरों के व्यवसाय को अपनाकर अपने लक्ष्य को तिलाञ्जलि दे दें, परस्पर संघर्ष की साधन-सम्पत्ति को सञ्चितकर एकता के लिये भुजा उठावें, फिर भी सफलता की आशा करें, यह कहाँ तक सम्भव हो सकता है। वर्णाश्रमधर्मानुयायियों में कोई भी ऐसा न मिलेगा जिसे दूसरों के साथ समवेदना न हो तथा अन्य की आवश्यकता न हो। सभी लोग परस्पर सम्बद्ध थे प्रत्येक कार्य में प्रत्येक का सहयोग नियमतः प्राप्त था।

स्वामी श्रीजयेन्द्रपुरी जी का यह उपदेश था कि यदि तुम सत्य संघटन चाहते हो। इसके द्वारा देश का पुनरुद्धार चाहते हो तो सबके मूल वर्णाश्रम-धर्म को अपनाओ। तुम्हें आनुषङ्गिक एकता, समवेदना तथा सहयोग सुतरां उपलब्ध होंगे। यह भी जीवन-चरित के लेख का प्रधान कारण है।

## उपसंहार

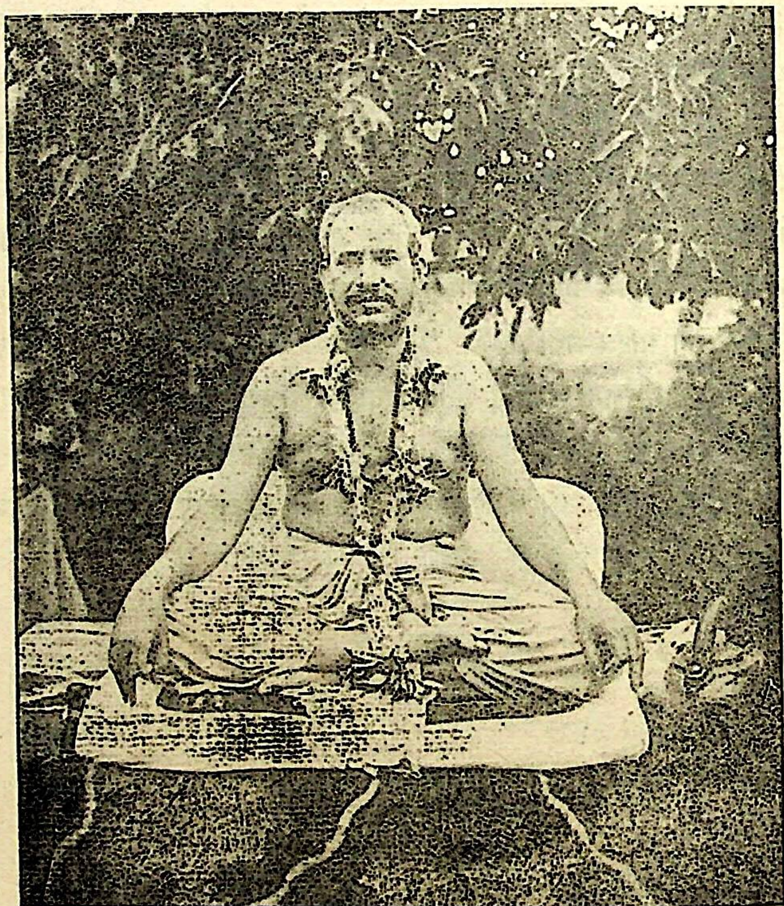
स्वामी श्रीजयेन्द्रपुरीजी महाराज के जीवन-चरित को लिपिबद्ध करने का मैंने इसलिये सोत्साह भार लिया है कि मुझे पूर्ण विश्वास है कि भारत, भारतीय तथा भारती की उन्नति एवं धर्म का पुनरुद्धार स्वामीजी के जीवन-चरित की समालोचना बिना असम्भव है। यदि भारतवासी भारतीयता का गौरव रखना चाहते हैं, परम पुरुषार्थ मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं तो उनके लिये स्वामीजी के आचरण तथा उपदेशों का अवलम्ब लेना अनिवार्य है पर खेद की बात यह है कि स्वामीजी के समग्र उपदेशों से जनता फिर भी वञ्चित रहेगी। कारण, साधु समाज

का इस पर ध्यान ही न था कि स्वामीजी के साथ एक लेखक नियुक्त कर देता जो स्वामीजी के प्रत्येक प्रवचनों तथा उपदेशों को अक्षरशः लिपिबद्ध करता रहता। पर ऐसा न हुआ। फिर भी "अल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्" के नियम से जो कुछ उपलब्ध है उससे भी लोक का हित पर्याप्त रूप में हो रहा है और होगा। सन्यासिसंस्कृत-कालेज काशी के मन्त्रि महोदय महाराज श्रीधर्मानन्दजी ने इस कार्य में प्रथम से ही जो तत्परता दिखलाई है उसके लिए धर्मानुयायी चिरकाल तक अवश्य आपके परिश्रम से उपकृत रहेंगे। आपने स्वामीजी के साथ-साथ रहकर विशेष घटनाओं को लिपिबद्ध कर लिया था, पर मन्त्रीजी का समागम स्वामीजी के साथ विलम्ब से हुआ था; इसलिये पहले कीप्रवचन-मालायें पूर्णतः उपलब्ध न हुईं। जिसके लिये मन्त्रीजी को भी खेद है। पर हमें पूर्ण विश्वास है कि अल्प उपदेश भी संसार के अभ्युदय एवं कल्याण के लिये अपर्याप्त न होगा। आशा करता हूँ कि पाठकगण मन्त्रि महोदय के इस परिश्रम को सफलीभूत करते हुए अपने जीवन को भी धार्मिकता तथा देश-हितैषिता से सम्बद्ध कर सफल बनावेंगे।

महादेव उपाध्याय

**सन्यासी संस्कृत कालेज, काशी।**





ब्रह्मनिष्ठ श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी
श्रीजयेन्द्रपुरीजी महाराज महामण्डलेश्वरजी

॥ श्रीगणेशायनमः ॥



ब्रह्मनिष्ठ श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी
श्रीजयेन्द्रपुरीजी महाराज महामण्डलेश्वरजी का



## —जीवन-चरित—

ॐनमः शम्भवाय च मयो भवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय
च नमः शिवाय च शिवतराय च—( यजुर्वेद )

**※ श्रीकाशी विश्वनाथो विजयतेतराम् ※**

भूमिष्ठाऽपि न याऽत्र भूस्त्रिदिवतोऽप्युच्चैरधस्थाऽपि या,
या बद्धा भुविमुक्तिदा स्युरमृता यस्यां मृता जन्तवः।
या नित्यं त्रिजगत्पवित्रतटिनी तीरेसुरैः सेव्यते,
सा काशी त्रिपुरारिराजनगरी पायादपायाज्जगत्॥

अथ मंगलप्रदप्रातःस्मरणम्

प्रातः स्मरामि विदितात्मयथार्थतत्त्वम्।
सच्चित्स्वरूपनिलयं, कृतकृत्यशेषम्॥
शिष्यालिवृन्दमदमोहविनाशदक्षम् ।
श्रीमज्जयेन्द्रयतिवर्यमहानुभावम् ॥ १ ॥
प्रातर्भजामि निगमार्थविदग्रगण्यम्।
निर्वाणपीठवरभूषणमण्डलेशम् ॥

अष्टाङ्गयोगपरिनिष्ठमुरुप्रभावम ।
आनन्दमूर्तिमनघं जितसर्वलोकम् ॥ २ ॥
प्रातर्नमामि पुरुषोत्तममीड्यपादम् ।
मोहाहिजन्यगरलस्य महौषधाख्यम् ॥
साक्षात्कृतान्तकरिपुं वरपूज्यपादम् ।
आचार्य्यवर्य्यमभयप्रदमप्रमत्तम् ॥ ३ ॥

## प्रथम परिच्छेद

कौन ऐसा व्यक्ति होगा जिसने नगराज हिमालय का नाम न सुना हो ! यह पर्वतराज भारतभूमि की उत्तर दिशा में पृथ्वी के मान-दण्ड के समान है। तपस्या के फलदाता आशुतोष भगवान् श्रीशंकर की यही पर्वत भूमि निवास-स्थान तथा तपोभूमि शास्त्रों में प्रसिद्ध है। त्रैलोक्य-पावनी भगवती भागीरथी का पुण्य दर्शन प्रथम यहीं होता है। अब भी इस प्रदेश में सिद्ध महात्माओं की न्यूनता नहीं है। बड़े-बड़े निर्वीज समाधि तक पहुँचे हुए महात्मा अब भी यहीं पाये जाते हैं।

इसी पर्वतराज की उपत्यका में, जो अल्मोड़े से ४२ मील की दूरी पर है, ढनौली नाम का गाँव बसा हुआ है। जो इस समय अंग्रेजी राज्य के अधिकार में है। बेनीनाग जो एक बहुत ही प्रसिद्ध स्थान है—यह गाँव उसी के समीप है। कैलाश की यात्रा में यह गाँव भी पड़ता है। इससे यात्रा के समय यहाँ सर्वदा चहल-पहल रहती है। एक सुरम्य स्थान होने के कारण यात्रियों के मनोनुकूल निवास-स्थान भी है।

**पं० हरकृष्ण पन्त**

इसी मनोहर गाँव में पं० हरकृष्ण पन्तजी निवास करते थे। ये महाराष्ट्र ब्राह्मण थे। पर्वतीयों में पन्त उपाधि के ब्राह्मण बड़े ही उत्तम कोटि के ब्राह्मण समझे जाते हैं। इनके पूर्वपुरुष महाराष्ट्र देश के थे। अनुसन्धान से प्रतीत होता है कि दो हजार वर्ष पहले किसी पर्वतीय राजा ने विशुद्धाचरण वेदवेदाङ्गपारग कुछ ब्राह्मणों को यज्ञादि कार्य-सम्पादन के लिये महाराष्ट्र देश से बुलाया था। उनके सदाचार तथा वैदुष्य से नितान्त तुष्ट होकर राजा ने उनसे वहीं रहने का अनुरोध किया, तब वे सब प्रकार की अनुकूलता तथा राजा की विशेष श्रद्धा देखकर वहीं रहने लगे।

**हरकृष्ण पन्त के पूर्वज**

उन्हीं आये हुए महाराष्ट्र ब्राह्मणों में हरिहर पन्त भी थे। इस बात का निश्चय नहीं हुआ कि महाराष्ट्र देश के किस भाग या नगर से हरिहर पन्तजी आये थे, पर थे उन्हीं ब्राह्मणों में। उत्तर भारत में आने पर हरिहर पन्तजी ने ढनौली गाँव को ही अपने

मनोनुकूल निवासस्थान निश्चित किया। फिर वंश-परम्परा की उन्नति से उनका कुल-प्ररोह विस्तृत होने लगा। धीरे-धीरे वह कुल कई ग्रामों में बस गया।

**जन्म-ग्रहण**

पूर्वोक्त मूलग्राम में धर्मनिष्ठ पं० हरकृष्ण पन्त की साक्षात् पार्वती स्वरूपा धर्मपत्नी श्रीमती * पार्वती देवी के गर्भ से विक्रम शताब्दी १९३३ आषाढ़ सुदी नवमी को एक पुत्र ने अपने जन्म ग्रहण से मेदिनी को पवित्र किया। इस कुल के लिये वस्तुतः यह एक अपूर्व दिवस था। कारण, हरकृष्ण पन्त की यह पहली सन्तति थी, जिसके लिये पारिवारिक जन चिरकाल से लालायित थे। केवल पिता के ही घर नहीं, बल्कि समग्र कुल में उत्सव तथा उत्साह सीमा पार कर चुका था। प्रति दिन घर-घर उत्सव की आयोजनायें नवीन रूप धारण करती थीं। नामकरण संस्कार का दिवस आया। पिता भगवती के उपासक थे, इसलिये उन्होंने शिशु का नाम ईश्वरीदत्त रक्खा। हरकृष्ण पन्त के ये ही सर्व प्रथम पुत्र थे, जो कुछ अवस्था बीतने पर असार संसार को त्यागकर संन्यास ग्रहण कर स्वामी श्रीजयेन्द्रपुरीजी के नाम से विख्यात हुए, अब तक पर्वत भूमि सिंहोत्पादन में ही प्रसिद्ध थी, पर इन पुरुषसिंह को जन्म देकर सर्वोच्च होते हुए भी गौरवान्विता तथा उच्चतमा हो गई।

श्रीः

## श्री स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज की उपलब्ध कुण्डली की प्रतिलिपि—

ॐ आदित्यादिग्रहाः सर्वे सनक्षत्राः सराशयः।
दीर्घं तदायुः कुर्वन्तु यस्यैषा जन्मपत्रिका॥

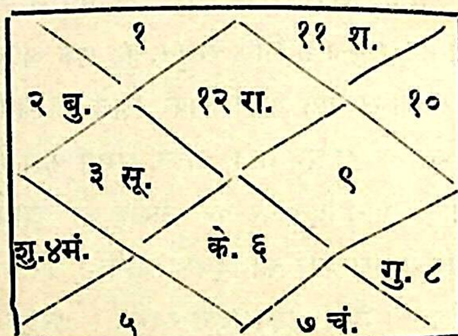
वीरविक्रमार्कराज्येतसंवत्सरे १९३३ श्रीमच्छालिवाहनशकाब्दे १७९८ मासोत्तमे आषाढ़े शुक्ले पक्षे नवम्यां तिथौ घ० १८ प० २० तदुपरि दशम्यां तिथौ शुक्रवासरे चित्रानक्षत्रे घ० २७ प० २६ तदुपरि स्वातौ नक्षत्रे, शिवनामयोगे घ० २७ प० ५७ तदुपरि सिद्धयोगे कौलवकरणे घ० १८, प० २० तदुपरि तैतिलकरणे मीनलग्ने गुरुगृहे चन्द्रहोरायां गुरुनवांशे एवं शुभषड्वर्गाधिके शुभोदये शुभ ग्रहावलोकिते शुभसमये—निशीथे गङ्गावलीविषये ढँडौली नाम ग्रामे सर्वोपमा-

---

* इनका दूसरा नाम हरसुन्दरी देवी भी था—संग्रह-कर्ता।

योग्य-सकलगुण-सम्पन्न-विप्रवंशावतंस पं० श्रीहरकृष्णशर्मणः सकलसद्गुण-संयुतायां हरसुन्दरीनाम्न्यां स्वधर्मभार्यायां सुपुत्रो जातः। तदेतस्य शतपदचक्रानुसारेण स्वातिनक्षत्रस्य द्वितीयचरणे समुत्पन्नत्वात्—'रेवतीरमण' इति राशिनाम प्रसिद्धम्। इष्टघट्यः ४६।५४

अथ जन्माङ्गम्—

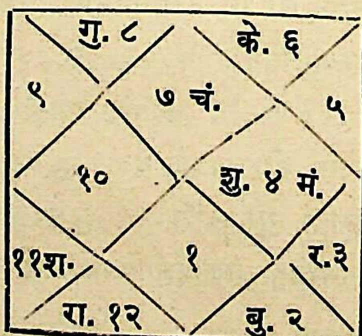



तात्कालिकाः स्पष्टग्रहाः

| र. | चं. | मं | बु. | गु. | शु. | श. | रा. | के. |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| २ | ६ | ३ | १ | ७ | ३ | १० | ११ | ५ |
| १७ | ११ | ० | १७ | १ | २ | १४ | १२ | १२ |
| ५ | २२ | ५ | ४४ | २१ | ९ | २७ | ९ | ९ |
| १५ | २४ | १० | ५४ | ६ | ४३ | २९ | ६ | ६ |

अत्र राहोर्भोग्यांशाः १२।९।६ अतो भुक्तांशाः १७।५०।५४ तेन सर्वग्रहापेक्षया राहोर्भुक्तांशाधिक्यात् राहुरेवात्मकारकः।

तस्माज्जैमिनिमतेन कारकांशकुण्डली—



इस जन्मपत्र के अनुसार उत्तर भारतस्थ ढँढौली ग्राम-निवासी तपोनिष्ठ पं० श्रीहरकृष्ण शर्मा की हरसुन्दरी नाम धर्मपत्नी के दक्षिण कुक्षि से—सर्वधारी नामक विक्रम संवत् १९३३, आषाढ़ मास, शुक्ल पक्ष, १० दशमी तिथि, शुक्रवार निशीथ समय मीन लग्न में पूज्य चरित्र-नायक स्वामीजी का अवतार लेना स्पष्ट है। तथा—इसके अनुसार प्रातःस्मरणीय महाराज का जन्मफल तथा संक्षिप्त पूर्वजन्म एवं अन्तिम गति इसी पुस्तक में अन्यत्र ज्यौ० आ० पं० श्रीसीताराम झाजी के लेख में देखिये।

**हरकृष्ण पन्त का वंश**

ईश्वरीदत्त के अतिरिक्त हरकृष्ण पन्त के और भी दो पुत्र और एक कन्या पैदा हुईं। उन दोनों पुत्रों में एक का नाम केदारदत्त पन्त और दूसरे का नाम मुरलीधर पन्त रक्खा गया। कन्या का नाम कौशल्या देवी पड़ा। दोनों भाई तथा बहन की शिक्षा का प्रबन्ध हरकृष्ण पन्त ने अच्छा कर दिया था। दोनों भाई अब भी ब्राह्मणोचित वृत्ति तथा जमीनदारी का काम करते हैं। कौशल्या देवी का भी पाणिग्रहण संस्कार एक शिक्षित और कुलीन सम्पत्तिशाली ब्राह्मण के साथ किया, जो अल्मोड़े जिले में उन्हीं के गाँव के समीप हैं। उनका परिवार सब प्रकार सुखी एवं सम्पन्न है।

**हरकृष्ण पन्त की वृत्ति**

हरकृष्ण पन्त के वंश परम्परा में विद्वान् होते आये थे; इसलिये पाण्डित्य का प्रचार इनके वंशमें अति प्रसिद्ध था। अध्यापन, कथा-वाचन आदि कार्य भी लोग करते आते थे। इसके अतिरिक्त परम्परागत जमीनदारी को आपके पिता पं० विश्वनाथ पन्त ने विशालरूप दे दिया था, जिसका पूर्ण प्रबन्ध आपको करना पड़ा था। लेन-देन भी प्रायः बहुत फैल गया था। स्वयं भी कई चाय के बगीचों के मैनेजर थे। अर्थात् आपका स्रोत प्रभूत था। पर थे अकेले, इसलिये सारी व्यवस्था का भार आप पर ही था। इससे प्रतीत होगा कि ईश्वरीदत्त का पालनपोषण किस सुचारु रूप में हुआ होगा; जब कि सम्पत्तिशाली मातामह की पूर्ण दृष्टि रहती थी।

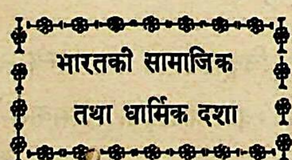
**पितृ-स्वभाव**

हरकृष्णपन्त केवल सम्पत्ति, कुलीनता, विद्वत्ता से ही मान्य न थे, किन्तु मान के साथ-साथ धर्मनिष्ठा, स्वभाव-दृढ़ता, शुभकर्म-पिपासा, हृदयनैर्मल्य की दृष्टि से भी अत्यन्त लोकानुराग के अद्वितीय भाजन थे। ये प्रतिदिन कई घन्टे तक पञ्चदेव की उपसना घर पर ही किया करते थे; पर आपकी भगवती दुर्गा पर विशेष आस्था तथा श्रद्धा थी।

घरके पास आपने देवी का मन्दिर भी बनवाया था और गाँव के विशाल देवी-मन्दिर में भी जाकर प्रतिदिन पूजन किया करते थे। इनका पूर्ण विश्वास था कि जो कुछ मुझे उपभोग के साधन मिले हैं यह भगवती की कृपा है।

पूजन के समय अपने बड़े पुत्र ईश्वरीदत्त को भी साथ-साथ रखते थे और पूजन का विधान एवं देवों की महत्ता का वर्णन किया करते थे। ईश्वरीदत्त जब छोटे-छोटे बच्चों के साथ मिलकर खेलते थे तो कभी राम की कभी गणेश की कभी शङ्कर की कभी दुर्गा की प्रतिमा बनाकर पुष्प पत्रसे सुसज्जित कर धूप-दीप-नैवेद्य भी किया करते थे। माता के निषेध करने पर भी पिता के साथ व्रतोपवास, स्नानादि भी करते थे।

हरकृष्ण पन्त धार्मिकता में जैसे धुरीण थे उसी तरह दयालुता की सीमा भी उनमें अपरिमित थी। वे कभी किसी भी अतिथि को दूर भी पाते थे तो उसे घर लाकर अन्न-वस्त्र से सन्तुष्ट किये बिना न जाने देते थे। इसलिये प्रायः साधु संन्यासी तथा अन्य अतिथि भी उनके पास आया करते थे। वे उन महात्माओं से अपनी धर्म-पिपासा को प्रकट करते थे। परिवार के साथ बैठकर धर्म-चर्चा से अपने को कृतार्थ समझते थे। साधु-समागम तथा शास्त्रालोचन में वे अपना अधिक समय लगा देते थे, जिससे गृहकार्य में कुछ न कुछ त्रुटि रह जाती थी। पर धर्म-पिपासा की अपेक्षा सम्पत्ति-पिपासा को वे तुच्छ और अश्रेयस्कर समझते थे। उन्हें पूर्व सम्पत्ति को बढ़ाने की अपेक्षा अतिथि-सत्कार, ब्रह्मभोज और यात्रियों की सेवा में अत्यधिक सन्तोष होता था। इतना ही नहीं उनकी धर्म-पिपासा उत्तरोत्तर अन्त तक बढ़ती ही गई। कारण, उनको ज्येष्ठपुत्र ने विरक्त हो गृहत्याग कर उन्हें भी संसार से निर्विण्ण कर दिया था। ऐसी दशा में धर्म के अतिरिक्त अन्य अवलम्ब ही क्या था? वह निरन्तर विकसित होती गई, जिसका प्रभाव ईश्वरीदत्त की जननी ही पर नहीं किन्तु सारे पारिवारिकजनों पर पड़ा।

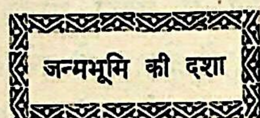



जिस समय इस पुण्यभूमि के भावी पुनरुद्धारक ने जन्म ग्रहण से देश को अलङ्कृत किया था उस समय भारत की सामाजिक दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई थी। कारण, जब से मुगलों का साम्राज्य भारत में स्थापित हुआ, यहाँ की सामाजिक दशा तो उसी समय से छिन्न-भिन्न हो रही थी, पर अब तो बृटिश राज्य

में इसके प्रत्येक अवयवों में शैथिल्य तथा निश्चेष्टता भी आ गई थी। वर्णाश्रम का नाम तो अधिक स्थानों में केवल शास्त्र का विषय हो गया था। हमारे भारतीय नव सभ्यतावलम्बी जन भी प्राचीन प्रथा को ढोंग समझने तथा समझाने लग गये थे। जहाँ स्व स्व कर्तव्यपरायण ब्राह्मणादि एक दूसरे वर्ण से सर्वदा सम्बद्ध तथा अपेक्षित रहते थे, अब वे स्वत्व को भूलकर अपने ही अङ्ग से द्वेष करने लगे। यह तो निश्चित है कि जिस परिवार, ग्राम, नगर तथा देशमें परस्पर द्वेष की मात्रा बढ़ेगी तथा वृत्ति का परिवर्त्तन होगा वहाँ अवश्य मात्सर्य, ईर्ष्या, द्वेष की अग्नि नहीं धधकेगी यदि तो भी तुषाग्नि की भाँति झुलसने में तो सफल होगी ही। यह कहना अनुचित न होगा कि उस समय भारतीय समाज जाति की उन्नति, देश की उन्नति, विद्या की उन्नति एवं कला-कौशल की उन्नति से सर्वथा रहित था। मानो इन वस्तुओं का कभी यहाँ अस्वित्व ही न था। जिस समाज में वेदपाठी ब्रह्मचारियों को पटुभंश में तोते रोक देते थे तथा पाठ शुद्ध कर देते थे, जहाँ के शूद्र भी संस्कृत भाषा-भाषी होते थे, वहाँ के लोगों को पत्र पढ़ाने के लिये दूर-दूर जाना पड़ता था। खान-पान की अव्यवस्था, अनेक प्रकार की कुरीतियों, असदाचार और दुर्व्यवहारों ने देश के वल, वीर्य, शुद्धता, और शान्ति को निर्मूल कर डाला था।

प्राणायाम प्रत्याहार, ध्यान-धारणा, समाधि, गीता, उपनिषद्-पाठ की तो चर्चा कहाँ, ईश्वर के नामोच्चारण को भी लोग भूल रहे थे। चार्वाकों की भाँति किसी भी प्रकार शरीर संरक्षण ही परम-धर्म हो रहा था। मद्यपान, मांसभक्षण आदि घृणित कार्यों का उपयोग ही नहीं किन्तु उपदेश भी दिया जाता था। उनके दोषों को छिपाकर क्षणिक गुणों का प्रख्यापन किया जाता था। केवल जनता ही कुसंस्कारों तथा भ्रष्टाचारों का शिकार न बन रही थी बल्कि उन्हें सत्पथ पर चलाने वाले वेद शास्त्र भी असाध्य रोग से पीड़ित थे। उनका अधिक प्रचार भी न था। उनके सम्मानकर्ता भी अँगुलियों पर गिनने योग्य थे। धार्मिक चर्चा कहीं खण्डन-मण्डन के रूप में सुनाई भी पड़ती थी, वह भी जहाँ परस्पर विरुद्धमतावलम्बी एकत्र हो जाते थे। वेद, वेदान्त, भारत, रामायण आदि धार्मिक ग्रन्थों के समालोचक बहुत कम रह गये थे, फिर भी वितण्डावादियों की कमी न थी। सारांश यह कि सर्वोत्कृष्ट समझी जानेवाली आर्य जाति अपनी वेदवेदाङ्गपारगामिता, सद्बुद्धि, धर्मानुपरोधिव्यवसाय, अदम्य शक्ति को खोकर अकर्मण्य और निर्बल बन बैठी थी। वर्णाश्रम का कोई नियम तो रह ही न गया था। शासक को इन

बातों से सम्बन्ध नहीं, प्रत्युत इसके छेद-भेद में ही लक्ष्य-सिद्धि थी। तो भित्ति के शिथिल होने पर तदाश्रित छत किस आधार पर रह सकती है। उसमें रोग-प्रवेश आश्चर्य नहीं, जहाँ मिथ्याहार-विहार की भरमार है।




अब ईश्वरीदत्त की जन्म भूमि की दशा पर अल्प दृष्टि-पात करना अत्यावश्यक है। अंग्रेजी राज्य के आधीन होने पर भी उस समय तक वहाँ के निवासियों ने अपने धर्म का तिलाञ्जलि नहीं दिया था। पहले बतलाया जा चुका है कि यहाँ पर तीर्थ-यात्री साधु, महात्मा सर्वदा आया करते थे। उनके उपदेशों से वहाँ की जनता में धर्म के प्रति श्रद्धा की कमी न थी। प्रायः लोग पञ्चदेवोपासक थे, पर प्रचुर रूप में शाक्त पाये जाते थे। संसारव्यापी नास्तिकता और वेष भूषा के प्रति दिन नवीकरण के संस्कार ने अभी तक उस प्रदेश में व्यापक रूप न धारण किया था। कारण, ऐसे विषम स्थल में नास्तिकता प्रचारक दल सुख-यात्रा की सुविधाओं को न पाकर वहाँ तक पहुँचते ही न थे। पर साथ-साथ उन लोगों को अधर्माभ्युत्थान में भी, जो सारे भारतधर्मदिवाकर की सर्वत्र फैली हुई किरणों को अवरुद्ध कर रहा था, आकर्षण न था। कहने का सारांश यह कि उन्हें केवल अपने काम से काम था। ऐसी दशा में एक ऐसी विभूति का आविर्भाव होना समस्त देशके हिताहित की गवेषणा पर अत्यन्त आवर्जित होना यह असम्भव नहीं है। ईश्वर की सृष्टि में असम्भव के स्थान में सम्भव के भी जब पुष्कल उदाहरण उपस्थित हैं और जहाँ दया दाक्षिण्य धर्मपरायणता ने अपने पाद को स्थिर रक्खा है, वहाँ ऐसे महापुरुष का आविर्भाव आश्चर्यो-त्पादक नहीं है।

इसमें सन्देह नहीं कि धर्म का प्रभाव सर्वोपरि है। धर्म मनुष्य के जीवन-यात्रा का प्रधान परिचालक है। 'मनुष्य के सामाजिक, पारिवारिक जितने भी कार्य हैं सभी में धर्म प्रधान परामर्शदाता है और प्रत्येक कार्य में साफल्य साधक भी अनुभूत है। फलतः जिस भूमि में परम्परीण कि शुद्ध धर्म का मूल हो ऐसी भूमि में ऐसे धार्मिक सुधारक-शिरोमणि की उत्पत्ति में कुछ भी आश्चर्य नहीं।

---

सदा सुप्रसन्नं सदा ब्रह्मनिष्ठं सदा ब्रह्मतत्त्वे विलग्नं मनस्कम्।
सदा वेदविद्यासु दीप्तं प्रदीप्तं यतिं शङ्करं श्रीजयेन्द्रं नमामि॥

## द्वितीय परिच्छेद

अवस्था के पाँचवें वर्ष में ईश्वरीदत्त को घर पर ही देव नागरी की वर्णमाला की शिक्षा का प्रारम्भ कर दिया गया। पहले परिच्छेद में बतला चुका हूँ कि ईश्वरीदत्त के वंशपरम्परा में संस्कृत विद्यानुराग और धार्मिकता अविच्छिन्न चली आती थी। परम्परागत नियम के अनुसार अक्षरारम्भ के अनन्तर उसी नियम के अनुसार विद्याभ्यास करने लगे। पिता तथा अन्य वयोवृद्ध पारिवारिक जनों ने इन्हें श्लोकों का, जो भगवत्स्तुतिपरक थे, अभ्यास कराया करते थे। पूजन के मन्त्र तथा स्तुति के प्रचुर श्लोक भी उपनयन संस्कार के पहले ही कंठस्थ कर लिये थे और थोड़ी ही अवस्था में आपने हिन्दी की मिडिल परीक्षा प्रथम श्रेणी पास किया था।




दश वर्ष की अवस्था में पिता ने बड़े धूमधाम से ईश्वरीदत्त के उपनयन संस्कार की आयोजना की। पन्त उपाधि के ब्राह्मण उपनयन संस्कार को शास्त्र-नियमानुसार बहुत ही महत्व देते है। अधिक से अधिक सम्पत्ति व्ययकर दान-मानादि करते हैं।

उपनयन संस्कार के अनन्तर पिताने ईश्वरीदत्त को पं० गोपालदत्त पन्त के पास, जिनका निवास-स्थान वेनी नामक गाँव में था और जो ढनौली से आध मील की दूरी पर है, कर्मकाण्ड तथा व्याकरण के अध्ययन का प्रबन्ध कर दिया। अब वे प्रति दिन बड़े ही अनुराग से विद्याध्ययन में निरत रहने लगे। तेरह वर्ष की अवस्था में ही कर्मकाण्ड तथा कुछ व्याकरण का अध्ययन कर चुके थे। इनकी कुशाग्र बुद्धि को देखकर अध्यापक महोदय अत्यन्त प्रसन्न रहते थे; पर इनके पिता को इस बात से सावधान किया करते थे कि आपके लड़के की प्रवृत्ति अधिकतर देवाराधन में तथा स्नान-जपादि में रहती है, मुझे ऐसा सन्देह होता है कि कहीं यह संसार से विरक्त न हो जाय। अध्यापक का यह सन्देह ठीक ही था। कारण, नव वर्ष की अवस्था में जब इनकी दादी का कैलाश वास हो गया था, जो इन्हें प्राणों से भी अधिक समझती थीं, इनके मन में संसार की असारता के भाव तथा वैराग्याङ्कुरोदय हो चुका था। अब तेरह वर्ष की अवस्था में उसका कुछ विकसित रूप दिखाई पड़ने लगा। प्रति दिन ब्राह्म मुहूर्त में उठकर स्नान, सन्ध्योपासन, जपादि में इनका अधिक समय बीतने लगा और मन्दिर का दरवाजा बन्दकर दो-तीन घन्टे एकान्तवास में भी समय बिताने लगे। जब कि इन्हें इससे भी सन्तोष न हुआ तो पर्वत की समीपवर्ती

गुफाओं में योगियों का अन्वेषण करने निकल जाते थे। किसी को न पाकर स्वयं ही वहीं बैठकर योग का अभ्यास करते थे। अब इनकी दिनचर्या प्रायः इसी रूप में व्यतीत होने लगी और अध्ययन के लिये कम समय मिलने लगा।

**विवाह**

मातापिता ने बालक की इस प्रवृत्ति को देखकर सोचा कि यद्यपि एक भविष्णु बालक के लिये यह उचित विवाहकाल नहीं है, फिर भी मनोवृत्ति को परावृत्त करने का एक यही साधन है; इसलिये इनके विवाह की आयोजना करने लगे। कुलीन ब्राह्मणों से विवाह के बारे में चर्चा चलने लगी। जब ईश्वरीदत्त ने पितामाता के विचार को समझ लिया तो अपने सहपाठियों तथा अन्य मित्रों से पिता से इस आग्रह को छोड़ने के लिये अनुरोध कराया, पर पिता-माता को इस दृढ़ विचार से कौन लौटा सकता था। ईश्वरीदत्त पिता-माता के अद्वितीय भक्त थे, कभी भी इनकी आज्ञा की अवहेलना न की थी। विचार के विरुद्ध आदेशों को भी सर्वदा शिरोधार्य करते थे और यथाशक्ति उन आदेशों का पालन भी करते थे। जब सभी विवाह सम्बन्धी बातें तय हो चुकीं और फलदान की तिथि निश्चित हो चुकी तो ईश्वरीदत्त ने पिता के सामने शिर झुकाकर कहा- "पिता जी! आपकी आज्ञा सर्वथा अनिवार्य तथा शिरोधार्य है, पर ईश्वर को सम्भवतः यह स्वीकार नहीं"; पर पिता ने एक न सुनी और लड़के का अनपेक्षित अनभिलषित सम्बन्ध कर ही दिया।

**आचरण**

एक अल्पवयस्क बालक के लिये विवाह-बन्धन समझना कहाँ तक उचित है। फिर भी मनुष्य का स्वभाव होता है कि वह अपनी सुविधाओं के लिये भरसक प्रयत्न करता ही है। विवाह होने पर इनकी मनोवृत्ति सर्वदा उच्चतर होती गई, उसमें तनिक भी परिवर्तन न मालूम पड़ा। घर का अध्ययन तो प्रायः वहीं समाप्त हो गया और स्वयं दर्शन की पुस्तकों की आलोचना, एकाकी तीर्थाटन, गुहा-निवास और योगी-अन्वेषण में ही दिन व्यतीत होने लगे। वाक्पटुता तथा बोधनशैली इनमें स्वाभाविक थी। प्रायः सभी उपदेशों को श्रद्धापूर्वक सुनते थे और बड़े ही आदर-दृष्टि से देखते थे। धीरे-धीरे इनके सदाचार, वाग्वैदग्ध्य और हृदय-नैर्मल्य की प्रशंसा आस-पास फैल गई। लोग इनसे कथा सुनने के लिये इन्हें घर बुलाते थे। इन्हें अध्यात्म रामायण की पुस्तक अत्यन्त प्यारी थी और उसीकी कथा लोगों को सुनाया करते थे। उपहार रूप में यदि कोई कुछ देता था तो उसे कभी स्वीकार न करते थे और अपनी प्रशंसा से इतना डरते

थे जैसे सर्पिणी से। लोग पं० हरकृष्ण पन्त से कहते थे, आपका लड़का उपहार-रूप में कुछ देने पर स्वीकार नहीं करता। पिता के पूछने पर वे उत्तर देते थे कि आपकी इस विशाल सम्पत्ति से यदि मुझे सन्तोष न हुआ तो अल्पोपहार से मैं कैसे सन्तुष्ट हूँगा। स्वपरभेद तो परीक्षा करने पर भी किसीने इनमें न पाया। सिखलाने पर भी ये अवसर पर सत्य का ही आश्रयण लेते थे। कटुवादिता ने तो इनको मानो स्पर्श ही न किया था। खान-पान में भी इतने कट्टर थे कि माता को छोड़कर कभी किसी के हाँथ का भोजन न करते थे। कारण, इनकी माता का भी स्नान-पूजनादि नियम से होता था। यदि कभी अस्वस्थ हो जाती थीं तो ये स्वयं पाक करते थे।

**दयालुता**

साधु-महात्मा, यात्री, दीन-दुखियों की सेवा तो इनका पैतृक गुण था, पर दयालुता में पिता से भी आगे बढ़े हुए थे। किसी दिन एक व्याई गाय असमय में ही जङ्गल से घर आ रही थी। उसकी आवाज सुनकर बछड़ा भी माँ की तरफ दौड़ा। मार्ग में ही वह अपने बछड़े को पिलाने लगी। ईश्वरीदत्तजी अत्यन्त प्रसन्न थे। किसी ने जाकर माँ से कह दिया। माताने इन्हें भर्त्सना-दी। इसके उत्तर में इन्होंने कहा, यदि तुम मुझे खिलाती या स्नेह करती हो तो इसमें दूसरों को दुखी क्यों होना चाहिये। मुझे दूध न चाहिये, बछड़े को भरपेट पीने दो।

एक दिन घर के आँगन में कुछ अन्न की राशि पड़ी थी। सन्ध्या समय जब पशु जङ्गल से आते हैं उस समय कई जानवर आकर अन्न खाने लगे। घर में कोई न था। ईश्वरीदत्त हटाने की तो बात क्या और भी पशुओं को बुलाकर प्रसन्न चित्त हो खिला रहे थे। लोगों के पूछने पर उत्तर दिया कि यह अन्न इन्हीं के परिश्रम का फल है। यदि हम प्रति दिन इनकी कमाई खा रहे हैं तो एक दिन इन्हें भी भरपेट खाने देना क्या अनुचित होगा। इनकी इच्छा का विघात करना सर्वथा अनुचित है। यहाँ तक कि किसी को भी दुखी देखते थे तो उसके साथ समवेदना प्रकट करते थे और यथा शक्ति उसके कष्ट को दूर करने का उपाय सोचते थे। स्वयं तथा पिता द्वारा उसमें समभागी भी होते थे।

**आश्चर्य की घटना**

ईश्वरीदत्त के मामा पं० अम्बादत्त जोशी भगवती दुर्गा के उपासक थे। वे ईश्वरीदत्त को भी दुर्गापूजन का विधान बतला चुके थे। यों तो प्रति दिन दुर्गा का पूजन करते थे, पर वे किसी-किसी दिन विशेष आयोजना के सहित पूजन करते थे। एक दिन जब ये मन्दिर

का दरवाजा बन्दकर पूजन कर रहे थे, जिसके पहले इन्होंने यह कह दिया था कि पूजन के समय मुझे बुलाना न चाहिये, उसी समय इनके एक अनभिज्ञ मित्र दरवाजे पर धक्का देकर देर तक पुकारते ही रह गये। वाध्य होकर ईश्वरीदत्त को दरवाजा खोल देना पड़ा। उसी समय उन्होंने कहा कि यह अत्यन्त अनुचित काम हो गया, जो पूजन में विघ्न पड़ा। अस्तु, भगवती रक्षक हैं। मित्र तो लौट गये, आप पूजन कर्म समाप्त कर प्रति क्षण चिन्तित रहते थे। चार दिन के अनन्तर यह समाचार मिला कि मित्र महाशय उन्माद रोग से पीड़ित हो गये।

**पत्नी का देहान्त**

जब ईश्वरीदत्त की अवस्था १८ वर्ष की थी, उनकी धर्मपत्नी का देहावसान हो गया। पुत्रवधू की गृहकर्म-दक्षता, सच्छीलता और गुरूजनानुराग से पं० हरकृष्ण पन्त तथा उनकी धर्मपत्नी नितान्त सन्तुष्ट थीं। इस आकस्मिक घटना ने उनके हृदय को वज्राहत-सा कर दिया; पर ईश्वरीदत्त के मन में तनिक भी क्षोभ न आया। कारण, इस अवस्था तक इन पर दाम्पत्यभाव अल्प प्रभाव भी न डाल सका था। माता पिता की अधीरता को देखकर ये कभी भी अधीर न होते थे। इनके मन में यही विचार स्थान पाता था कि जब संसार की सभी वस्तु अस्थायी और चञ्चल हैं और वियोग होना अनिवार्य है तो ऐसी कौन सी वस्तु है जिसके प्रलोभन में पड़कर अनेक चिन्ता-जाल-समाकुल सांसारिक जनों की भाँति कुत्सित जीवन-यापन करूँ। ठीक है कि जिस मन तथा मानसिक प्रकृति को लेकर साधारण मनुष्य जन्म ग्रहण करते हैं उसी मन तथा मानसिक प्रकृति को लेकर महापुरुष जन्म ग्रहण नहीं करते। शारीरिक क्लेश तथा प्रभूत विपत्तियाँ उनके मन पर अल्प भी प्रभाव डालने में असमर्थ रहती हैं। सत्य है कि वृक्ष और पर्वत में भेद ही क्या, यदि वायु को प्रखरता में दोनों ही हिल जाँय। सारांश यह कि पत्नी से तो इनका किसी प्रकार का सम्बन्ध ही न था, पर माता-पिता के खेद से भी ये खिन्न न होकर अपने विचारों पर अविचल रहते थे।

**पूर्ण वैराग्योदय के साधन**

ईश्वरीदत्त सर्वदा इस बात की चिन्ता में रहते थे कि सिद्ध महात्माओं के सत्सङ्ग से अपने जीवन को सार्थक बनाऊँ। पर जिस वस्तु में जिसकी दृढ़ धारणा तथा उत्कण्ठा होती है, सर्वान्तर्यामी ईश्वर उसे कभी-न-कभी उस वस्तु को मिला ही देता है। एक दिन भगवान् भास्कर दिनभर की परिक्रमा से श्रान्त होकर अस्ताचल के

शिखर पर जब विश्राम कर रहे थे, अन्धकार भीत-सा शनैः शनैः जब दिशाओं में पदार्पण कर रहा था, तपोमूर्ति, शान्ताकार एक महात्मा का अतर्कित आगमन हुआ। महात्माजी घूमते २ हरकृष्ण पन्त के दरवाजे के पास आ खड़े हुए। उनके आगमन का समाचार किसी को न मिला। कारण, कोई बाहर उपस्थित न था। थोड़ी देर में ईश्वरीदत्त जब घर से बाहर निकले तो महात्माजी के चरण-रज से अपने को पूत करते हुए उनके कष्ट के लिये क्षमा की प्रार्थना की। स्वामीजी का योगपट (नाम) ब्रह्मानन्द था। देखने में भी वे सचमुच साक्षात् आनन्दस्वरूप ब्रह्म ही से थे। स्वामीजी ईश्वरीदत्त के अनुराग को देखकर आशीर्वाद के अनन्तर संस्कृत भाषा में ही आलाप करने लगे। फिर इन्होंने महात्माजी को सादर समर्पित आसनस्थ कर माता को इनके आगमन की सूचना दी। स्वामीजी के आदेशानुसार बाहर ही उन्हें भिक्षा कराया। फिर बहुत देर तक उन्हीं की सेवा के साथ-साथ उपदेशामृत का आस्वाद करते रहे। आज्ञा पाकर उचित व्यवस्था के अनन्तर स्वयं भी शयनार्थ चले गये।

प्रातः उठकर स्वामीजी के समग्र नित्यकृत्य की व्यवस्था कर स्वयं भी नित्यकृत्य से निवृत्त होकर शास्त्र तथा योग की चर्चा में कुछ समय बिताया। स्वामीजी शास्त्र-ज्ञान में जैसे अभिनिविष्ट थे उसी भाँति योग-प्रक्रिया में भी प्रबुद्ध बुद्धि थे। ईश्वरीदत्त ने मनोनुकूल सारी बातें योगीश्वर में पाकर और अतिशय सन्तुष्ट होकर कुछ काल तक उनसे वहीं रहने का विशेष अनुरोध किया। स्वामीजी की स्वीकृति पाकर अत्यन्त कृतार्थ हुए और बगीचे में जाकर पिताजी से सारा वृत्तान्त कह सुनाया। और साथ ही निवेदन किया कि उनके रहने के लिये कहीं एकान्त में कुटीर की तथा अन्य व्यवस्थायें भी कर दी जायँ; क्योंकि यहाँ उनके निवास से मुझे विद्याभ्यास तथा योगाभ्यास में पूर्ण सहायता मिलेगी। पिताजी तो स्वयं ही इस विषय के पक्षपाती थे। पुत्र के अनुरोध से शीघ्र ही चाय के बगीचे में उत्तम प्रबन्ध कर दिया। अब तो ईश्वरीदत्त की निगूढ़ भावनायें प्रस्फुरित होने लगीं। घर से केवल इतना ही सम्बन्ध रह गया कि स्वामीजी के लिये भिक्षा लाने तथा स्वयं भोजन करने के लिये जाया करते थे। महात्माजी भी इस बालब्रह्मचारी की प्रतिभा पर अत्यन्त मोहित हो चुके थे। उनकी भी उत्कट अभिलाषा थी कि यह शीघ्रातिशीघ्र योगी तथा पूर्ण परिनिष्ठित विद्वान बन जाय।

कतिपय दिवस के अनन्तर ही ईश्वरीदत्त ने घर का भी जाना छोड़ दिया। वहीं बगीचे में भिक्षा बनाकर स्वामीजी की सेवा करते थे और अवशिष्ट अन्न से

अपनी जीवनयात्रा चलाते थे। पिताजी को इस बात से अत्यन्त सन्तोष था कि मेरा पुत्र सर्वथा योगीश्वर की दया से योग्य बन जायगा। एक दिन वे स्वामी जी से पूछ बैठे कि आप के शिष्य की क्या दशा है और इसके भावी लक्षण क्या हैं? स्वामीजी ने उत्तर दिया कि आपका यह पुत्र भारत में सूर्य की भाँति प्रकाशक होगा। आप के कुल का ही नहीं, बल्कि भारत का मण्डन समझा जायगा। महात्माजी के दार्शनिक उपदेश से ईश्वरीदत्त का हृदय परिपूर्ण हो गया। वयोवृद्धि के साथ-साथ ही संसार की असारता के भाव भी बढ़ते जाते थे। अब उनमें विरक्ति की मात्रा अधिकाधिक उन्नति पा रही थी। वे निगूढ़ भाव भी अब उत्तरोत्तर अभिव्यक्त होने लगे।

नदी के प्रवृद्ध प्रवाह में चाहे कितनी भी अवरोधक वस्तुयें उपस्थित हों, पर प्रवाह रुकता नहीं, प्रत्युत अवरोधक को भी समुद्र तक पहुँचा देता है। स्वामी ब्रह्मानन्द के प्रति वहाँ के निवासियों की इतनी उत्कट श्रद्धा तथा स्नेह उत्तरोत्तर प्रवृद्ध हो चुका था कि वे स्वप्न में भी उनसे विरहित होना न चाहते थे। पर एक विरक्त सन्यासी, जो बुद्धिपूर्वक भूर्भुवः स्वः को तिलाञ्जलि दे चुका, भला सासांरिक प्रलोभन उसे वशीभूत करने में कहाँ तक सफलता प्राप्त कर सकते हैं? स्वामी ब्रह्मानन्दजी किसी से सूचित न कर कमण्डलुमात्र सहाय हो कुटीर को शून्य कर अलक्षित हो गये। इस घटना से वहाँ के निवासियों को तो अत्यन्त खेद हुआ ही, पर ईश्वरीदत्त, जिनका योग-साधन तथा अध्ययन अभी पूर्ण लक्ष्य तक न पहुँचा था, वे तो सर्वथा निरवलम्ब हो गये। और इसी चिन्ता में मग्न रहते थे कि किस भाँति मुझे लक्ष्य-सिद्धि के साधन पुनरुपलब्ध हों।

**स्वामी ब्रह्मानन्दजी का पुनर्दर्शन**

अब ईश्वरीदत्त का एक प्रधान कार्य यह भी हो गया कि पर्वत की गुफाओं में, घोर जङ्गलों में और नदियों के किनारे प्रति दिन स्वामी ब्रह्मानन्दजी की खोज करते थे। एक दिन अपने मित्र पं० भवदेव पन्त शर्मा के साथ इसी उद्देश से घर से निकले। घर से थोड़ी दूरी पर एक छोटी नदी बहती है। यह नदी गोमती (गोरघटिया) नाम से प्रसिद्ध है। मानसखण्ड में इस तीर्थ का नाम निर्झरेश्वर महादेव के नाम से विख्यात है। जल की धारा पर्वत के शिखर से, जो १०० गज की उँचाई पर है, गि[illegible] और सवेग सशब्द अधःस्थित तीर्थ (तालाब) में गिरती है। वह ऐसा निर्जन [illegible] कि प्रायः वहाँ कोई रहता नहीं। उसी तालाब के किनारे प्राणायाम-परायण, प्रसन्नचित्त, तपोमूर्ति स्वामी ब्रह्मानन्द के दर्शन से ईश्वरीदत्त के चित्त में

अनिर्वचनीय आनन्द का अतिरेक हुआ। उस समय मानों सर्पको अपने खोये हुए मणि की पुनरुपलब्धि हो गई। चरण-रज से नेत्र तथा हृदय को समलंकृत कर पास में बैठ गये। प्राणायाम के अनन्तर जब स्वामीजी ने नेत्र पटलको खोला तो अपने भावि धर्मोद्धारक शिष्य पर कृपादृष्टि डालते हुए मुसकरा कर कहने लगे—"ईश्वरीदत्त ! अन्वेषणीय वस्तु जिसे ऋषि महर्षि भी ढूँढ़ते हैं वह तो तेरे बाहर-भीतर मध्य में सर्वदा स्थित है; तूं किसे ढूँढ़ता फिरता है !" फिर उन्होंने ईश्वरीदत्त को लेकर गिरती हुई जल-धारा से समाच्छन्न दुरुह पर्वत कटक में स्थित एक गुफा की राह ली। यद्यपि ईश्वरीदत्त को इस बात का विश्वास न था कि कोई भी व्यक्ति इस सीधीं शिला पर चढ़ सकता है; पर महात्माजी के साथ समतल की भाँति अनायास ही उस पर चढ़ गये। पं० भवदेव शर्मा का साहस न पड़ता था, पर स्वामीजी की आज्ञा पाकर वे भी शिलारोह में सुतरां सफल हो गये। तीनों उस विशाल गुफामें प्रविष्ट हो गये। उस गुफा में एक विशाल शिवलिंग और आसपास पूजन सामग्री शङ्ख आदि वस्तु भी सुसज्जित स्थित थी। दर्शन के अनन्तर स्वामीजी ने गुफा के द्वार पर अपना कौपीन लटकाकर उन लोगों को आदेश दिया कि अब तुम लोग यहाँ से चले जाओ फिर प्रातः आ जाना। यह कौपीन इसलिये लटका दिया है कि यदि यह दरवाजे पर रहेगी तो तुम चढ़ सकते हो अन्यथा दुःसाहस न करना। वे दोनों नीचे उतरकर घर आये और किसी प्रकार जागते-जागते रात बिताकर प्रातः कुछ फल और दूध लेकर गुफा की ओर चल पड़े। देखा कि कौपीन दिखाई पड़ रहा है, फिर क्या पूर्ववत् गुफा में प्रविष्ट हो गये और फल, दूध पद्मासन पर प्राणायाम करते हुए योगिराट् को समर्पित कर शान्त बैठ गये। महात्माजी जब प्राणायाम से उपरत हुए तो फल के तीन भाग कर एक-एक भाग उन्हें दिया और तृतीय भाग तथा दूध स्वयं ग्रहण किया। फिर बाहर जाने का आदेश देकर कहा कि इस विषय को किसी के सामने प्रकट न करना। बाहर निकलते ही उस कौपीन तथा महात्मा की वहाँ स्थिति न रह गई। फिर वे दोनों साश्चर्य घर लौट आये और किसी से भी इन बातों को प्रकट न किया। दूसरे दिन रामगंगा के तट से, जहाँ बालेश्वर शङ्कर का मन्दिर है और जो ढनौली से प्रायः १ मील की दूरी पर है, एक आदमी महात्माजी का भेजा हुआ आया और ईश्वरीदत्त को स्वामीजी का आदेश सुनाकर चला गया। आदेश यह था—"संसार पक्षियों का समागम है, इसमें संयोग-विप्रयोग अनिवार्य है। केवल एक ही [illegible] का विप्रयोग कभी भी नहीं होता। वही जीवों का सगा सम्बन्धी है। वह है अखिल

ब्रह्माण्डाधिनायक सर्वदर्शी विभु परमेश्वर। चिन्ता न करना, मेरे हृदय में तुम्हारे लिये स्थान है। समय पर फिर भी स्मरण करूँगा। निर्मोह रहो।"

**द्वितीय विवाह की योजना**

अब ईश्वरीदत्त की अवस्था लगभग २० वर्ष की हो चुकी थी। इस अवस्था में उनके हृदय में तीन विचार अपना पद स्थिर कर चुके थे। प्रथम देवपूजन यागादि, द्वितीय योगाभ्यास और तृतीय संसार-विरक्ति। अवस्था के साथ-साथ ये भी प्रवृद्ध हो रहे थे। पर इस संघर्ष में तृतीय विचार का ही दोनों की अपेक्षा प्राबल्य था। जिस वैराग्यानल को उद्दीप्त करने के लिये ज्ञानसम्पन्न जन अनेक साधनों का आश्रयण करते हैं, विवेकशाली पुरुष यम नियमादि अजेय संग्राम में कटिबद्ध होते हैं, वही वैराग्यानल एक नवयौवनशाली व्यक्ति में सहसा इस प्रकार धधक उठा कि वह संसार तथा सांसारिकता की तरफ से मुख मोड़कर निरीह खड़ा हो गया। हृद्गत अभिप्रायों की व्यक्ति यद्यपि भाषा से होती है, पर आकार भी मनोनीत विषयों के लिये स्वच्छ दर्पण है। मनुष्य अपने अन्तर्हित भावों का कितना भी गोपन क्यों न करे, आकार में कितनी भी कृत्रिमता लाने का प्रयत्न करे, पर विज्ञों को उसका पता लग ही जाता है। यद्यपि ईश्वरीदत्त ने अपने अन्तर्हित भावों को सचेष्ट हो गुप्त रक्खा था, अन्तः करण में हलचल मचाने वाली आकाङ्क्षाओं के विषय में किसी को कुछ भी न ज्ञात होने दिया था, पर मातापिता प्रभृति सभी वयोवृद्ध उनके प्रस्तुत भावों को शनैः शनै समझ गये थे।

अब ईश्वरीदत्त की हृदयस्थली पर सर्वथा सांसारिक सम्बन्ध को विच्छिन्न करने के विषय में विचारों का अनवरत रण होने लगा। जिस विषय को मनुष्य अपना सर्वोत्तम उपेय समझता है और जिसका पुनः पुनः अनुसन्धान करता है। उसके बारे में चाहे कितना भी सावधान रहे फिर भी चित्त के आवेगों के कारण उसे अपने इष्ट मित्रों पर प्रकाशित कर ही देता है। आकार में परिवर्तन देखकर जब कभी उनके मित्रगण पूछ बैठते थे तो वे कहते थे कि मुझे जन्म-मृत्युयन्त्रणा से अत्यन्त भय प्रतीत होता है। जब तक उससे छूटने का उपाय उप[illegible] न होगा, तब तक मेरे चित्त में शान्ति नहीं आ सकती। क्रमशः ये सारी बातें [illegible] कानों तक पहुँची। उन्होंने अपनी धर्मपत्नी से राय लेकर पूर्ववत् इ[illegible] दृढ़ शृङ्खला में बाँधने का निश्चय किया।

संसार में विरक्ति, तितिक्षा, निर्ममता तथा वितृष्णता प्रभृति महोन्नत विचारों को हृदय से निर्मूल करने के लिये विवाह के समान अन्य कोई अस्त्र-शस्त्र नहीं है। इसलिये संसार-बन्धन-बद्ध मनुष्य जब किसी आत्मीय में इन भावों को अङ्कुरित होते देखते हैं तो शीघ्र इसी शस्त्र का प्रयोग करते हैं। इसलिये ईश्वरीदत्त के लिये भी इसी व्यवस्था का समालम्बन करना पड़ा। परन्तु मोहमायावृत प्राणी को यह नहीं सूझता कि निर्व्याज विरक्ति के सामने विवाह अथवा विवाहित जीवन का प्रलोभन किसी भी अंश में सफल नहीं हो सकता। यह शस्त्र चाहे तृण को भले ही काट दे, पर दृढ़ वज्र पर पड़ने पर अवश्य कुण्ठित हो जायगा। अस्तु, पिता ने पुत्र के वैराग्यानल को शान्त करने के लिये प्रथम तो गृह का कार्यभार सौंप दिया, पर पुत्र के सहमत न होने पर अति-शीघ्र विवाह करने का दृढ़ निश्चय किया। यहाँ तक कि फलदान की बातचीत चलने लगी। अब माता-पिता तथा पुत्र में वैमत्य के भाव प्रबल होने लगे। पिताजी जिस कार्य के लिये समुद्यत होते थे उसे अपने जीवन के प्रतिकूल समझकर ईश्वरीदत्त उसका विरोध किया करते थे। इस बात से उन्हें अति खेद होता था कि मुझे पिता के मनोविरुद्ध व्यवहार करना पड़ रहा है। बन्धु-बान्धवों को पिता के पास ले जाकर अनुनय तथा अनुरोध करते थे। उनके अनुरोध का वे भी अनुमोदन करते थे। फलतः पिता ने कतिपय दिवस के लिये फलदान का विचार स्थगित कर दिया। इसी समय पूर्वोक्त महात्माजी का पत्र काशी से आया, जो हरकृष्णपन्त के नाम से था। जिस समय डाकिये ने पत्र दिया ईश्वरीदत्त भी वहीं उपस्थित थे। पिताजी ने पत्र खोलकर देखा। उसमें लिखा था "सद्धर्मपरायण पन्तजी! मैं चाहता हूँ। कि आप अपने बच्चे ईश्वरीदत्त को मेरे पास काशीजी भेज दें। विद्याभ्यास की न्यूनता यहीं शीघ्र पूर्ण हो जायगी। इसके लिये अल्प भी चिन्ता न करना।"

पिता ने पत्र पढ़कर चाहा कि उसे छिपा लें। पर ईश्वरीदत्त ने पत्र देखने के लिये पिता से निवेदन किया। पिता ने पत्र दे दिया। उसे पढ़ते ही उनके शरीर के सभी रोम आनन्द से खिल गये और वे ईश्वर की मन-ही-मन स्तुति करने लगे। एवं भूरि-भूरि धन्यवाद देने लगे। माता-पिता की यह अभिलाषा न थी कि उनका पुत्र, जो हृदय तथा नेत्र का तर्पक था, उनसे अलग हो जाय, पर पुत्र के प्रबल अदृष्ट ने इस विचार का विरोध किया। जो वैराग्याग्नि पहले [illegible] हो जाती थी अब वह निर्धूम होकर चमकने लगी। ईश्वरीदत्त ने [illegible] मार्ग

काशी प्रयाण

को पथिक बनूँगा जिस मार्ग में विवाहादि कण्टक नाम के भी न रह जाँय। इस दृढ़प्रतिज्ञ नवयुवक ने रातको सर्वदा के लिये गृह त्यागकर भूतभावन भगवान् शङ्कर की निर्विघ्न गोद में शाश्वतिक सुख लिप्सा से काशी के लिये प्रयाण कर दिया। हरकृष्ण पन्त के हृदय-मञ्च पर जहाँ भावि विवाहोत्सव के सङ्कल्प से आनन्द की क्रीड़ा होती थी, वही खेद तथा विषाद का चिरकाल के लिये अभिनय होने लगा और घर भी शोक-शाला के रूप में परिणत हो गया।

---

## ॥ श्री स्वामीजी की महिमा ॥

जय स्वामी शांत जयेन्द्र सिद्ध, दर्शन से सब दुख द्वंद टरे।
भीतर बाहर से शुद्ध होय; माया प्रपंच से जीव तरे ॥ टेक ॥
हैं त्यागी ज्ञान सरूप अलख अद्वैत रूपको धारे हैं।
सँन्यासमूर्ति प्रत्यक्ष अहैं, बचनों से जग उद्धारे हैं ॥
ज्यों जलसे जलज भिन्न रहता त्यों जग में रहकर न्यारे हैं।
पहचाना जिसने भीतर से, उसको प्राणाधिक प्यारे हैं ॥
क्या अद्भुत ज्योति-सरूप अहैं, लखते ही सत्संकल्प भरे।
जय स्वामी शांत जयेन्द्र सिद्ध, दर्शन से सब दुख द्वंद टरे ॥ १ ॥
सिद्धों की कृपा बिना पाये, नहि आज तलक विस्तार हुआ।
यदि कोटि यतन पचमरे कोई, उस घर में नहिं पैठार हुआ ॥
कुछ भी दाया होजा जिसपर, वह मालिक का दीदार हुआ।
स्वामी जी जिसपर द्रवित हुए, वह अंधकार से पार हुआ ॥
इनकी इच्छा से सेवक के हों, ऋद्धि सिद्धि भंडार भरे।
जय स्वामी शांत जयेन्द्र सिद्ध, दर्शन से सब दुख द्वंद टरे ॥२॥

# तृतीय परिच्छेद

हम पहले इस बात को बता चुके हैं कि ईश्वरीदत्त विवाह तथा वैवाहिक जीवन की निस्पृहता ही केवल अपने वन्धुवान्धवों से न प्रकट करते थे परन्तु जब जब उनके हृदय पर प्रबल वैराग्य का ताण्डव होने लगता था तो वे उनसे यह भी कह बैठते थे कि मृत्यु की प्रबल यन्त्रणा से मुक्ति पाने की जब तक अनुभूत सरणि मुझे न सूझेगी तब तक मेरे मन में किसी भी उत्तमोत्तम सांसारिक विषय की उपलब्धि से शान्ति तथा सुख की आशा नहीं। इन बातों से प्रायः ग्रामवासी तथा आस-पास के लोगों में यह बात फैल चुकी थी कि कभी-न-कभी ईश्वरीदत्त के माता पिता को इनके वियोग से अवश्य ही दुःखित होना पड़ेगा। उन लोगों का तर्कित दिवस अब आ गया।

**ईश्वरीदत्त की खोज**

प्रातःकाल होते ही हरकृष्ण पन्त ने जब अपने हृदयाह्लादक पुत्र को नौकरों से बुलवाया तो पता लगा कि ईश्वरीदत्त ला पता हैं। उस समय इस आकस्मिक तथा हृद्विदारक घटना को सुनकर माता के हृदय पर ऐसा असह्य आघात पहुँचा कि कुछ क्षण के लिये वह मूर्छित हो गई और दर्शकों को उनकी दशा पर असीम खेद हुआ।

जब माता की मूर्छा निवृत्त हुई तो वह उन्मत्त-सी अपने खोये हुए हृदय को चारों तरफ ढूँढ़ने लगी; पर उसे कहीं भी न देख कर अत्यन्त ऊँचे स्वरसे करुण क्रन्दन करना प्रारम्भ किया। सचमुच वात्सल्य का प्रतिविम्ब स्पष्ट यदि कहीं दिखाई देता है तो निर्मल जननी-हृदय-मुकुर में। आकस्मिक करुण-क्रन्दन का शब्द चारों तरफ गूंज उठा। शीघ्र ही पड़ोस की स्त्रियाँ आ पहुँची। प्रबल सान्त्वना देने पर भी उस शोकाग्नि की अल्प भी शान्ति न हुई, प्रत्युत सान्त्वनाओं ने अग्नि में घृत का काम किया।

पं० हरकृष्ण पन्त बड़े गम्भीर प्रकृति के व्यक्ति थे। यद्यपि किसी भी जनक को अपने भविष्णु पुत्र का विरह, जिसकी सीमा नहीं, किसी प्रकार भी सह्य नहीं हो सकता, पर पारिवारिक जनों की अवर्णनीय दशा देख कर हरकृष्ण पन्त ने सोचा—यदि मैं भी अधैर्य का आज्ञाकारी बन बैठता हूँ तो सारा परि[illegible] [illegible] होकर प्राणत्यागोद्यत हो जायगा। इसलिये हृदयस्थली पर [illegible] के

द्वन्द्वयुद्ध में धैर्य के विजय की सूचना देते हुए उन्होंने कृत्रिम प्रसन्नता के साथ क्रन्दनकारी जनों को समझाया और शीघ्र पता लगाकर बुलाने का वचन दिया।

इस बात को तो सभी जानते थे कि काशी जी से स्वामी ब्रह्मानन्दजी महाराज के पत्र आने के अनन्तर ही गृहशून्यकारिणी यह घटना उपस्थित हुई। पत्र में भी अध्ययनन्यूनता की पूर्णता का ही आदेश था; पर पुत्र के संसारत्यागानुकूल व्यापारों का पुनः पुनः निरीक्षण कर माता-पिता को अल्प भी शान्ति न मिली और वे प्रतिक्षण उसी चिन्ता में मग्न रहते थे; जिसके लिये उन्हें आजीवन अपने चित्त को समर्पण करना पड़ा। पिता के पास सम्पत्ति की न्यूनता न थी और उनके अधिकार में प्रचुर भृत्य भी थे। शीघ्र ही उन्होंने पुत्र को लौटाने के लिये किंकरों को भेजा और स्वयं भी, यह अनुमान कर कि ईश्वरीदत्त स्टेशन की राह पकड़े होंगे, 'हलद्वानी' स्टेशन की तरफ घोड़े से रवाना हुए। आस-पास के लोग भी, जो ईश्वरीदत्त की बचनमाधुरी तथा सद्व्यवहारों से उनके प्रति निरतिशय सद्भाना रखते थे, इस उद्दीप्त विरहाग्नि की ज्वाला से दग्ध हो उद्भ्रान्त-से यथाशक्ति अन्वेषण में सन्नद्ध हो गये। फलतः कोई भी काशी जाने का मार्ग न बचा जहाँ अन्वेषकों की टोलियाँ न पहुँची हों। इससे ईश्वरीदत्त की लोकप्रियता तथा हरकृष्ण पन्त के मान, प्रतिष्ठा, अधिकार तथा ऐश्वर्य का अनुमान हो सकता है।

ईश्वरीदत्त गृहत्याग के समय ही इस बात का अनुमान कर चुके थे कि पिता जी अवश्य प्रत्येक मार्गों में अन्वेषकों को नियुक्त करेंगे, इसलिये उन्होंने प्रसिद्ध मार्गों का आश्रयण न कर एक दुर्गम मार्ग को अपनी यात्रा का अवलम्ब बनाया। एक सम्पत्तिशाली के ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण पर्याप्त सम्पत्ति भी अपने साथ लेकर निकले थे; जिसमें रुपयों के अतिरिक्त सोना चाँदी भी थी। वे घर से दक्षिण आठ कोश पर एक देवी के मन्दिर में पहुँचे, जो पर्वत के पाद में स्थापित था और केवल पुजारी तथा दो-चार वैरागी महात्मा अपनी कुटी बनाये वहाँ रहते थे। इधर भगवान् भास्कर भी अस्त हो रहे थे, मानों [illegible] के करुण क्रन्दन को सुनकर वे भी तमसावृत हो रहे थे। ईश्वरीदत्त ने वहीं पर रात्रियापन करने का विचार किया।

[illegible] कर महात्माओं का दर्शन किया। कुशल प्रश्न के अनन्तर महात्माओं [illegible] आसन दी और फल फूल से स्वागत किया। सादर स्वीकार कर

कथा-वार्ता करते हुए वहीं सुख से रात्रि विताया। प्रातः नित्यकृत्य से निवृत्त हो महात्माओं को कुछ भेंटकर जब वहाँ से चलने को प्रस्तुत हुए उसी समय एक वृद्ध, जो इनके बान्धवों में थे, आ पहुँचे। यद्यपि ईश्वरीदत्त ने चाहा कि इनसे साक्षात्कार न हो, पर वृद्ध ब्राह्मण की दृष्टि पड़ ही गई। ये उन अन्वेषकों में न थे, ये इनके घर छोड़ने के पहले ही किसी कार्य से इधर आये हुए थे। ईश्वरीदत्त को देखकर सन्देहापन्न हो वे पूछने लगे कि इधर अकेले आगमन का क्या कारण है? इश्वरीदत्त असत्य भाषण से अत्यन्त दूर रहते थे, पर "घनाम्बुना राजपथे हि पिच्छिले क्वचिद्बुधैरप्यपथेन गम्यते" वर्षा से जब सड़क पर कीचड़ हो जाता है तो ज्ञानवान् जन भी अमार्ग का आश्रयण करते हैं। अतः ईश्वरीदत्त को भी अब इसी मार्ग का अवलम्बन करना पड़ा। उन्होंने इस समय इस विचारधारा के मध्य अपने चलचित्त को डाल दिया था कि यदि मैं सत्य का समाश्रयण करता हूँ तो ये वृद्ध हमें किसी भी प्रकार नहीं छोड़ सकते; इसलिये ईश्वरीदत्त ने यही उत्तर दिया कि मैं पिता के आदेश से कार्यवश अमुक सम्बन्धी के यहाँ जा रहा हूँ। जैसे मनुष्य कभी-कभी अपने मुख्योद्देश्य में बाधा पाकर, आकस्मिक विपत्ति अथवा प्रमाद के अभिघात के अवसर पर मति का परामर्श न लेकर, विचारशीलता का अनुशीलन न करके, चित्तवृत्ति के हठात् आवेग में असत्य बोल उठता है; वैसे ही उपस्थित काल में ईश्वरीदत्त ने भी किया था। जैसे बुद्धि विवेक से परामर्श न लेकर आलोचना तथा चिन्ता के वशवर्ती होकर किंकर्तव्य विमूढ़ हो यदि कोई असत्य का समाश्रयण कर लेता है तो उस समय वक्ता बहुत दोषी नहीं ठहराया जाता; वर्तमान दशा में इसी भाँति असत्याश्रयण से ईश्वरीदत्त भी दोष-पात्र नहीं समझे जा सकते। इस त्रुटि के कारण यदि कोई समालोचना रूपी काले रंग से ईश्वरीदत्त के शुद्ध चरितपट पर धब्बा लगाना चाहता है तो मैं पुनः पुनः यही कहूँगा कि सदुपेय प्राप्ति तथा सद्धर्म-रक्षण के लिये असत्य, असत्य-कोटि में नहीं समझा जाता। अथवा नवाङ्कुरित तारुण्य में चाञ्चल्यचलित बुद्धि का भी यह परिचायक हो सकता है।

वृद्ध महाशय इनकी बातों का विश्वास कर जब चले गये तो वहाँ के महात्मा, जो रात्रि के आलाप से इनके मनोभाव को पूर्णतः समझ गये थे, ईश्वरीदत्त को समझाने लगे तथा क्रमिक प्रव्रज्या का उपदेश देने लगे। उन लोगों को इस [illegible] सन्देह था कि ऐसा शौन्दर्यशाली सम्पन्न सत्कुल में उत्प[illegible] परिव्राजकता का यथोचित निर्वाह कर सकता है। वे पुनः पुनः [illegible] करने

लगे कि तुम्हें शास्त्रानुसार आश्रमावलम्बी बनना चाहिये। शास्त्र का आदेश है कि "ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्" पुत्रोत्पादन, यज्ञ, श्राद्ध, तर्पणादि से देवर्षिपितृ ऋणों से मुक्त होकर प्रव्रज्या का आश्रयण श्रेयस्कर तथा धर्माविरुद्ध होता है। पर ईश्वरीदत्त इस नियम के अपवाद "यदहःविरजेत् तदहः परिव्रजेत्" को स्वीकारकर अपने सङ्कल्प में अविचल थे। "मैं गार्हस्थ्य जीवन को अपने लिये हितकर नहीं समझता, विवाह-बन्धन में फँसकर जालबद्ध मृग की भाँति परिदेवन पसन्द नहीं करता, किसी भी प्रकार योगाभ्यास तथा वेदान्तसिद्धान्तावगाहन से "अयमात्मा ब्रह्म" का पता लगाकर अविद्यादि पञ्च क्लेशों से मुक्ति प्राप्त करूँगा।" इत्यादि भाव उनके हृदय में इस प्रकार विरुढ़मूल हो गये थे, ये विचार उनके रुधिर-मांस में इस तरह संकीर्ण हो चुके थे कि शोकाकुल जननी का परिदेवन, बन्धु-बान्धवों के प्रगाढ़ स्नेह का तिरस्कार तथा महात्माओं का उपदेश भी उन्हें अवधारित मार्ग से विचलित न कर सके। उस समय मालूम पड़ता था कि संसार की कोई भी प्रबलतम शक्ति प्रतिरोध करने के लिये यदि उनके सामने आकर खड़ी होती तो उसे भी सामर्थ्यहीन बनकर उलटे परावृत्त होना पड़ता। इन वृतान्तों को, ईश्वरीदत्त के संन्यास-ग्रहण के पश्चात् तात्कालिक उपदेशक महात्मा ने ही काशी में स्वामी गोविन्दानन्द महाराज से बतलाया था। प्रपञ्च की क्षणिकता, शरीर की नश्वरता के भाव, प्रायः वार्धक्य; अथवा विपद्ग्रस्त दशा, यद्वा दारिद्र्य अवस्था में ही जागृत होते हैं, ऐसी ही व्याप्ति अधिकतर उपलब्ध होती है। परन्तु सर्वथा सम्पत्ति परिपूर्ण प्रतिष्ठित जन का पुत्र होकर तारुण्यविटपके नवाङ्कुरणदशा में भोग्य, सुसज्जित सुलभ वस्तुओं की संमुखीनता में, विरक्ति के तीव्रतर भाव उद्बुद्ध हों, यह विरले ही जीवों में सुना तथा देखा जाता है। जब महात्माओं ने अपने उपदेश के प्रभाव को कुण्ठित देखा तो अन्वेषकों के आगमन की आशा में ईश्वरीदत्त से वहीं कुछ काल तक रहने का अनुरोध किया।

स्वामीजी कहते थे कि मैंने सोचा कि "यदि मैं हठ करता हूँ तो ये मेरे विचारों के प्रतिकूल काण्ड को उपस्थित कर देंगे; इसलिये सहर्ष उनकी बातों को स्वीकारकर उस रोज वहीं रह गया।" किसी निर्धारित कार्य की प्रतिकूलता की उपस्थिति में मनुष्य चाहे कितना भी मनोभाव का गोपन करे, पर किसी न किसी [illegible] चित्तचाञ्चल्य का परिचय दे ही देता है, किंकर्तव्यविमूढ़ बन जाता है। पर ई[illegible]य न दिया। क्षण भर के लिये भी चित्त में अनुरक्ति को आश्रय [illegible]। अविचाल्य सङ्कल्प से तनिक भी न हटे और सुयोग की

प्रतीक्षा में समय बिताने लगे। महात्माओं का भी चित्त स्थिर हो गया और वे ईश्वरीदत्त के लिये फल मूलादि का उचित प्रबन्ध कर दिये। ईश्वरीदत्त उन्हीं महात्माओं के साथ आलाप तथा योग-साधन की चर्चा में दिन बिताकर रात को भी उन्हीं की देख-रेख में शयन-स्थल में गये। कुछ रात्रि का भाग जब अवशिष्ट था और महात्माओं के उठने का समय अभीतक न हुआ था, उठकर वहाँ से चलते बने। पर बहुत दूरतक उनके मन में यह सन्देह बना रहा कि कहीं महात्माजी भी पीछा न करें। कुछ दूर पहुँचकर ईश्वरीदत्त ने सोचा कि काशीजी पहुँचने में मुझे अवश्य विलम्ब होगा, इसलिये उन्होंने स्वामी ब्रह्मानन्दजी के पास एक पत्र छोड़ दिया कि:—"यदि सौभाग्यलभ्य चरणसरोज के दर्शन में मुझे विलम्ब हो तो भक्तवत्सल अवश्य अनभिलषित भी प्रतिक्षाकर दास को अनुगृहीत करेंगे कारण यह है कि सम्भवत: दास पैदल ही श्रीचरण पर्यन्त यात्रा करें।"

ईश्वरीदत्त जब अकेले ही मार्ग तथा अमार्ग पर ध्यान न देते हुए यात्रा कर रहे थे तो एक यात्रियों का दल उनसे सङ्गत हुआ। कथनानुकथन से जब वे यात्री जिनमें कुछ महात्मा भी थे, इनके भाव को भलीभाँति समझ गये तो इनके नेपथ्य (वेषभूषा) तथा सुखितावेदक रम्य आकार को देखकर वे एकाएक कह उठे कि आप अभी योगसाधन के योग्य नहीं हैं। भला, कहीं इस आकार तथा वेषभूषा को धारण करनेवाला भी योगसाधन कर सकता है ? ये बातें ईश्वरीदत्त के मन में आश्रय पाईं और वे जहाँ कहीं दुखी तथा दयनीयों को दृष्टिगोचर पाते थे, रुपया, सोना, चाँदी उन्हें दे दिया करते थे। बहुमूल्य वस्त्रों को एक-एककर शीतार्त दीनों को समर्पण कर दिया। अन्ततः उनके पास एक कम्बल, कौपीन, कटिवस्त्र तथा जल-भाजन के अतिरिक्त कोई सामान रह न गया।

मैं इसे पहले ही कह चुका हूँ कि स्वामीजी के जीवन-काल ही में मेरे चित्त में चरितोल्लेख के भाव थे। इसलिये जब कभी स्वामीजी के पास बैठता था, इन्हीं विषयों में प्रश्न करता था। यद्यपि स्वामीजी हमारे इन प्रश्नों के उत्तर देने में उदासीन से लक्ष्य होते थे, पर मेरे विशेष अनुरोध से कुछ सङ्केत कर दिया करते थे और मैं उसे सावहित श्रवणकर अपनी संग्रह-पुस्तिका में अङ्कित कर लेता था। पर स्वामीजी की अनिच्छा देखकर मेरा भी साहस न पड़ता था कि क्रमशः सारे वृत्तान्तों को पूछ लेता; इसी लिये कहीं-कहीं के वृत्तान्तों का उच्छेद हो [illegible]। उनके साथ घटना-स्थल पर रहने वाले लोगों का पता उ[illegible] [illegible]श्रम कर अवश्य लगाया, फिर भी असाफल्य ही सामने आया। [illegible]ागे का

वृत्तान्त क्या हुआ और ईश्वरीदत्त किस मार्ग का अवलम्बन कर काशी पधारे तथा किस स्थल पर स्वामी ब्रह्मानन्द के दर्शन से जीवन की समस्या को सुलझी समझे, इस विषय में सर्वथा अनभिज्ञ हो मुझे भग्नमनोरथ होना पड़ा।

इधर पण्डित हरकृष्ण पन्त उनके बन्धु-बान्धव तथा भृत्यगण भलीभाँति अन्वेषण कर चारों तरफ पूछताँछ करने पर भी जब कुछ पता न पा सके तो वे भग्नप्रयत्न हो घर लौट आये। उनके मुखमालिन्य से ही प्रस्तुत कार्य की असफलता अभिव्यक्त हो रही थी। पर पूर्वोक्त वृद्ध ने देवी के स्थान में ईश्वरीदत्त के समागम का वृत्तान्त सुनाया। सुनते ही हरकृष्ण पन्त स्वयं दो एक भृत्यों को लेकर वहाँ पहुँचे; पर स्थानीय महात्माओं से घटित-घटना को सुनकर पुनः रिक्तहस्त घर को परावृत्त हुए। अब वे अपने पारिवारिक जनों से परामर्श लेकर काशी जाने का निश्चय किये। एक सेवक को साथ लेकर काशी के लिये प्रस्थान कर दिये। उस समय उनके मन में यही भाव आता था कि यदि रेल गाड़ी से भी कोई अति शीघ्रगामी वाहन उपलब्ध होता अथवा उन्हीं में कोई अपूर्व शक्ति आ जाती, जिससे वे शीघ्रातिशीघ्र स्वामी ब्रह्मानन्द के पास पहुँच कर पुत्र के मुखचन्द्रावलोकन से अपने हृदयकैरव की प्रफुल्लता का अनुभव करते, पर "यस्येश्वरेण यदलेखि ललाटपट्टे तत्स्यादयोग्यमपि योग्यमपास्य तस्य" बिधाता ने जिसके ललाट में जो कुछ लिख दिया है वह उसके अयोग्य भी क्यों न हो पर योग्य को दूर कर अपना आधिपत्य स्थिर कर लेता हैं, जब यह नियम शतशः अनुभूत है तो इनमें कैसे व्यभिचरित होता। अब वे हलद्वानी स्टेशन पर पहुँचकर बरेली होते हुए तीसरे रोज काशी पहुँचे। स्वामी ब्रह्मानन्द के पास पहुँचने के पूर्व अनेक प्रकार के भाव उनके मन में गमागम कर रहे थे। वे सोचते थे कि वह क्षण अभी सम्मुखस्थ होगा जिसमें सर्वथा शुष्कहृदय, नवजलविन्दु-समान पुत्रमुखावलोकन से आर्द्र हो जायगा। वत्स-विरहित धेनु की भाँति पुत्र-विधुरिता-शोकातुरा जननी इसी क्षण के सन्देश से नव जीवन में प्रवेश करेगी। भाविक्षण का सन्देश ही चन्द्रिकापिपासु चकोर की भाँति दर्शनोत्सुक बन्धु-बन्धवों को प्रफुल्लचित्त बना देगा इत्यादि भूरिभाव से उनका हृदय परिपूर्ण हो रहा था कि समीपस्थ राजघाट के पास किसी स्थान में स्वामी ब्रह्मानन्द योगीश्वर के दर्शन से अपने नेत्र-जन्म का साफल्य पांया। कुशल प्रश्न के अनन्तर ज[illegible] हुए अपने खेद वृतान्त को सुनाया तो समवेदना प्रकट करते [illegible] उत्तर दिया कि मुझे भी ईश्वरीदत्त के बारे में कुछ विदित

नहीं है। स्वामीजी के इस उत्तर से ज्ञात होता है कि पिता के काशी प्रयाण के कुछ दिन के अनन्तर ईश्वरीदत्त ने स्वामीजी के पास पत्र छोड़ा था और स्वयं भी अधिकतर मार्ग पैदल ही चलकर काटा था।

स्वामीजी के इस उत्तर से उस समय हरकृष्ण पन्त की वही दशा हुई जैसे अनेक दिनों का उपोषित व्रती व्रतोद्यापन के दिवसभी पारणा की आशा से रहित कर दिया जाय। अब तक तो उन्हें पारिवारिक जनों को आश्वासन तथा स्वयं भी आश्वस्त होने की आशा थी पर अब किस लक्ष्य को सामने रखकर वे वियोग दुःख वारिधि में सन्तरण करते। अब वे न तो ठहर सकते थे न तो जानेकाही उत्साह रह गया। उनकी दशा दो पर्वतों के मध्यपतित नदी प्रवाह सा हो गया। किंकर्तव्यविमूढ हो गये। कुछ क्षण तक अचेष्ट हो बैठे थे। फिर उनके मन में आया कि पुत्रविहीन घर लौटना मुझे किसी भी भाँति स्वीकृत नहीं है। और इस प्रकार के असह्य दुःख भागी दग्ध शरीर का रखना भी मुझे अभिलषित नहीं। मैं अकेले जाकर शोक विह्वला जननी को किस प्रकार सान्त्वना तथा सन्तोष दूँगा इत्यादि अनेकानेक विचारों का पथिक अपने चलचित्त को बना रहे थे कि स्वामी ब्रह्मानन्दजी ने उनके भाव को समझ कर समझाने का प्रयत्न किया। और आश्वसन दिया कि यदि ईश्वरीदत्त मेरे पास आया तो मैं उसे विद्वान् बना कर आप के पास अवश्य पहुँचा दूँगा। जिस समय हरकृष्ण पन्त काशी के लिये रवाना हुए थे इनकी धर्म पत्नी ने इसी लिये साथ कुशल भृत्य कर दिया था कि असफलता में कहीं अनिष्ट न कर बैठें। भृत्य को बार-बार सावधान कर दिया था कि तुम सर्वदा इनके रक्षण में सचेष्ट रहना। स्वामीजी का आश्वासन तथा भृत्य के अनुनय तथा अनुरोध से हरकृष्ण पन्त को भागीरथी अवगाहन तथा विश्वनाथ जी दर्शन के अनन्तर, स्वामीजी का आदेश पाकर यथागत लौटना पड़ा। फिर तीसरे दिन घर पहुँचे। ईश्वरीदत्त की माता को दुः स्वप्न तथा अशकुनादि दर्शन से जो अशुभागम निश्चित था हरकृष्णपन्त ने अकेले पहुँच कर उसी अमङ्गल को परिपुष्ट कर दिया। पर स्वामीजी के आश्वासन वचन को सुना कर अत्युद्दीप्त शोकानल को क्षणमात्र के लिये मन्दकर दिया। परन्तु अविस्मरणीय सुपुत्र के गुणों की स्मृति आँधी शोकानल को पहले की अपेक्षा [illegible] प्रदीप्त करती गई। कुछ दिनों तक स्वामीजी के वचन [illegible] करने में सामर्थ्य दिखाया अन्त में हताश होकर कुत्सित ज[illegible] घृणा

करने लगी तथा शरीर स्थिति के अनुकूल साधनों से भी मुख मोड़ लिया और ४ वर्ष के अनन्तर कथा शेष हो गई।

**ईश्वरीदत्त का काशी आना तथा स्वामी ब्रह्मानन्द का दर्शन**

हरकृष्णपन्त के लौटनेके दो दिन बाद स्वामी ब्रह्मानंद के पास ईश्वरीदत्त का पत्र आ गया। स्वामीजी कहते थे कि:—"महात्मा दयालु नहीं पर साक्षात् दया के स्वरूप ही होते हैं। यद्यपि योगीश्वर ब्रह्मानन्दजी सच्चे परिव्राजक थे वे नगर की चहल पहल को पसन्द न करते थे। योगाभ्यास के अनुकूल स्थान में ही निवास करते थे पर जब उन्हें मेरा पत्र मिला तो भक्तवत्सलता का परिचय देते हुए वे एक मास तक उसी स्थान में रह कर मेरी प्रतीक्षा करते थे। क्योंकि वह यात्रा मेरी एक मास से अधिक की हुई थी"।

इससे मालूम पड़ता है ईश्वरीदत्त को एक मास नव दस दिन मार्ग में लगे होंगे। फिर स्वामीजी के दर्शन से अपने को कृतार्थ किया।

अपने सुयोग्य शिष्यको पाकर स्वामीजी बहुत ही प्रसन्न हुए और उनके पिता का सन्देश सुनाकर उनके पास पत्र लिख दिया कि आपका पुत्र मेरे पास पहुंच गया है। इस समय इसका विरागभाव चरमकोटि पर पहुंच चुका है। आपका आना तथा फिर लिवा जाना सब व्यर्थ होगा। इसे प्रकृतिस्थ कर आपको फिर सूचित करूँगा। अब मैं दो रोज के बाद इसे साथ लेकर अपनी यात्रा का प्रारम्भ कर दूँगा।" दो दिनों में ईश्वरीदत्त की पाठ्य-पुस्तकों की व्यवस्था कर स्वामीजी ने चाहा कि इनका यहीं किसी विद्वान् के पास अध्ययन का प्रबन्ध कर दूँ पर ईश्वरीदत्त को अध्ययन के साथ योगाभ्यास की भी पिपासा प्रवल थी। दोनों के योग क्षेमयोग्य स्वामीजी को ही निश्चित कर साथ रहने के लिये ही विशेष अनुरोध किया। "भवन्ति भव्येषु हि पक्षपाताः" भविष्णु पर सभी का पक्षपात होता है। इसलिये स्वामीजी भी इनके अनुरोध को निष्फल न किये और साथ ले जाने का निश्चय किये।

स्वामी ब्रह्मानन्दजी के साथ ईश्वरीदत्त की प्रथम यात्रा विन्ध्याचल की तरफ हुई। वे पैदल ही चलते थे क्योंकि स्वामी ब्रह्मानन्द सर्वदा पादयान से ही सन्तुष्ट रहते थे। विन्ध्याचल पहुँच विन्ध्यवासिनी का दर्शन कर पास की पहाड़ी पर [illegible] वहीं कुछ दिन विताये। स्वामीजी का कथन था कुछ दिनों तक वहां [illegible] अध्ययन तथा योगाभ्यास भी करता रहा" इससे ज्ञात होता है

कि विन्ध्याचल में वर्षों तक विताया था। कथा प्रसंग में यह भी बतलाते थे "पूँछने पर बहुत लोगों ने वताया कि यहाँ से कुछ दूरी पर एक योगी ब्रह्मचारी रहते हैं। यह सुन कर मुझे बड़ी ही उत्कण्ठा हुई। क्योंकि क्रियात्मक योगाभ्यास में मैं भी कुछ प्रविष्ट था। अनध्याय के दिन स्वामीजी की आज्ञा पाकर मैं ब्रह्मचारी की खोज में चला निवास स्थान से १० मील की दूरी पर एकान्त में पर्वत के मध्यभूमि पर ब्रह्मचारजी रहते थे। जब मैंने जाकर देखा तो उनका शरीर अस्थिमात्रावशिष्ट था और वे अत्यन्त खिन्न से दिखाई दिये। पहली धारणा के अनुसार मैंने सोचा कि कहाँ योग और कहाँ यह खेद। फिर मैंने ब्रह्मचारी के पास जाकर कुछ योग क्रिया के विषय में बातें करना प्रारम्भ किया। ब्रह्मचारीजी दुःखी होकर अपनी कथा सुनाने लगे। और बतलाये कि एक योगानभिज्ञ व्यक्तिके उपदेश से मैं हठात् योगाभ्यास में प्रवृत्त हो गया धीरे-धीरे मैं संग्रहणी रोग का शिकार बन गया। अब मुझे जो योग पर निरतिय श्रद्धा थी अब वह अश्रद्धा में परिणत हो गई। अब तो मैं केवल स्वास्थ्य लाभ का अभिलाषुक हूँ न कि योगाभ्यास का। ब्रह्मचारी की इन बातों को सुन कर अपने पूर्वजन्मार्जित सुकृत को वहु मान दिया कि मुझे प्रारंभ से ही योग निष्णात गुरु मिल गये। फिर ब्रह्मचारी को अपने ज्ञानानुसार रोग का उपचार बतलाकर स्वामी ब्रह्मानन्द के निवास स्थान से भी परिचित कर लौट आया और सारा वृत्तान्त गुरुजी से कह सुनाया" थोड़े ही दिनों में वह ब्रह्मचारी स्वामीजी के पास आया और उनके निर्दिष्टमार्ग से उपचार तथा अभ्यास कर रोगमुक्त हो गया और स्वामीजी की सेवा में कुछ काल सुख से व्यतीत किया। इसके अनन्तर स्वामीजी ईश्वरीदत्त के साथ, जो ब्रह्मचारी के वेष में रहते थे, नर्मदा के तट पर पहुँचे और उधर ही प्रायः चार वर्ष तक पर्यटन करते रहे। नर्मदा के तट पर किन किन स्थानों को स्वामीजी ने पूत किया इसका पता केवल मेरे ही लिये नहीं किन्तु प्रायः सभी लोगों के लिए अन्धकारावृत है। स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज कहते थे—"स्वामीजी के साथ रहकर मैंने कुछ नव्य न्याय, वैशेषिक साङ्ख्य, मीमांसा की दो-चार पुस्तकों और वेदान्त के प्रमेय ग्रन्थों का यथोचित अध्ययन किया। योग की क्रियाओं में भी मेरी बुद्धि अब भ्रान्त न होती थी। अष्टाङ्ग योगसाधन का क्रम तो समझ चुके थे, पर अभ्यास में परिपुष्टि न आई थी; इसलिये आवश्यक था कि उनकी निरीक्षणता में कुछ और समय विताता, पर ऐसा न हुआ"।

इस समय ईश्वरीदत्त की अवस्था २५ वर्ष से अधिक की [illegible] स्वा.

ब्रह्मानन्द जी को उस वचन की स्मृति सर्वदा आती थी, जो उन्होंने पं० हरकृष्ण पन्त से कहा था कि "आपके पुत्र को शिक्षित होने पर आपके पास स्वयं पहुँचा दूँगा"। वे कभी कभी उपदेशमालाओं में गार्हस्थ्य धर्म की अवश्य कर्तव्यता का भी निवेश कर दिया करते थे, जो ईश्वरीदत्त को सर्वथा अनभिप्रेत था। अब वे स्पष्ट रूप से कहने लगे कि वेदान्त के सिद्धान्त ग्रन्थों का तथा तदङ्गतया अपेक्षित ग्रन्थों का भी अध्ययन हो चुका; अब तुम्हें द्वितीयाश्रम में प्रविष्ट होकर सद्धर्मपूर्वक सांसारिक व्यवहारों को अपनाना चाहिये। स्वामी जी की इन बातों को सुनकर तुरत ईश्वरीदत्त चमत्कृत-से हो गये और अपने उत्तर की निष्फलता की सम्भावना कर अवाक् रह गये। फिर स्वामी जी पर्यटन करते हुए दिल्ली आये और इस आदेश से ईश्वरीदत्त के कानों को प्रतिदिन दग्ध किया करते थे। स्वामी जी यह समझते थे कि इन्हें हमारी बातें अप्रिय प्रतीत होती है, पर थे धुन के पक्के। अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिये तनिक भी सङ्कोच न किया और ईश्वरीदत्त को घर पहुँचाने पर तुल गये। स्वामीजी के अविचल निश्चय को समझकर ईश्वरीदत्त ने सोचा—"अब स्वामी जी के चरण-कमल के दर्शन-सुख का सौभाग्य समाप्त-सा दिखाई पड़ रहा है। क्या करूँ, कहाँ जाँऊ, शान्त सुखी चित्त में न जाने कौन-सी दुष्कृति अशान्ति तथा असुख लाने के लिये सन्नद्ध है" इत्यादि बातों को सोचते हुए वे स्वामीजी की आज्ञा लेकर यमुना-स्नान करने को गये और वहाँ से किनारा पकड़कर मथुरा की यात्रा का लक्ष्य बनाया।

**स्वामी ब्रह्मानन्द से विरह**

यद्यपि ईश्वरीदत्त के चित्त में संसार के प्रति अनुरक्ति किसी भी प्रकार स्थान न पाकर इनकी तरफ स्वप्न मे भी शिर न उठाती थी; पर स्वामी ब्रह्मानन्दजी से जब सर्वदा के लिये वियुक्त होकर चलने लगे तो शनैः शनैः उनके हृदय पर महात्मा के प्रति अनुरक्ति पदार्पण करने लगी। जब कि मार्ग को निष्कण्टक तथा किसी भी निवारक को न देखी तो वह पूर्णतया इनपर अपना अधिकार स्थिर करने लगी। एक विरक्त संन्यासी, जिसने सारे प्रलोभक पदार्थों को लात मारकर तथा सभी एषणाओं का तिरस्कार कर सब से विमुख होकर "तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्" इस पातञ्जलयोगसूत्र को [illegible]ितार्थ कर दिया था, उनका अपने पर अकारण पक्षपात तथा निरतिशय [illegible]के चित्त में स्थिरता न आती थी। यद्यपि प्राणी पूर्वजन्म के संस्कार[illegible] हृदय में प्रवृत्त होता है, पर इनके संस्कार के उद्बोधक तो

स्वामी ब्रह्मानन्दजी ही थे। उनकी वचनमाधुरी तथा सज्जनतोत्पादक व्यवहार की स्मृतपरम्परा का आरोहावरोह चित्त-सोपान पर प्रतिक्षण हो रहा था।

उनका एक चित्त तो स्वामीजी के शरण में पुनः प्राप्त हो क्षमा-प्रार्थनाके लिये उन्हें उत्तेजित करता था, दूसरा, यदि महाराज के शरण में फिर जाते हैं तो सत्यसन्ध महाराज फिर ढनौली पहुँचाये बिना न रुकेंगे; इसलिये इस समय न जाना ही श्रेयस्कर होगा, इन विचारों से सम्बद्ध था। उस समय वे अनुरक्ति तथा विरक्ति दोनों के द्वैराज्य की भूमि बन गये थे। कुछ समय तक तो किंकर्तव्य विमूढ़ हो वहीं भगवती सूर्यतनया के चपल तरङ्गों को सस्नेह देखते हुए बैठ गये, मानों भगवती से कुछ अनुमति की प्रत्याशा में समय बिता रहे थे। उस समय का वृत्तान्त बतलाते हुए स्वामीजी कहते थे कि जब मैं। इस प्रकार के विषय द्वैविध्य में पड़ा था तो उसी समय एक ब्रह्मचारी, जिसके प्रति रोम से तेज का निःसरण प्रत्यक्ष दिखाई देता था, अतर्कितोपनत होकर मुझसे कहने लगे "ईश्वरीदत्त! लो यह फल, इसे खा लो, फिर अपना कर्तव्य निर्धारित करना"। इतने ही शब्द कहकर मुझे उस फल को देकर फिर अलक्ष्य हो गये। मैंने चारों ओर दृष्टिप्रसार किया, पर वे मुझे न दिखाई दिये, मैं प्रबल आश्चर्य में पड़ा और उनके आदेशानुसार उस फल को तुरत खा लिया वैसा स्वादिष्ट फल तो मैंने जीवन में कभी भी न देखा। फल खाते ही मेरे सभी तर्क विलीन हो गये उस समय मालूम पड़ा कि विमर्श के प्रत्येक अवयव छिन्न-भिन्न हों गये। और चित्त में एकाग्रता तथा शान्ति का पुनरागमन हो गया। अब मैं वहाँ से पैदल चलकर परमानन्द भगवान् श्रीवासुदेव के चरण-धूलि से पूत व्रजभूमि में पहुँचा।

जब स्वामी ब्रह्मानन्द ने देखा कि अभीतक स्नानकर ईश्वरीदत्त न लौटे तो उन्होंने स्वयं जाकर देखा पर वहाँ न मिले। फिर वे समझ गये कि पारिवारिक बन्धन से भीत हो वह अवश्य कहीं चला गया। फिर वे उनकी पुस्तकें पारसल द्वारा हरकृष्ण पन्त के पास भेज दिये और पत्र में अपने उद्योग तथा उनके चले जाने का समाचार भी भेज दिया। स्वयं भी न जाने अपूर्व विद्वान् योगीश्वर महात्मा ब्रह्मानन्दजी ने कहाँ यात्रा की। हाँ, स्वामीजी से विदित हुआ कि फिर उन्हें स्वामी ब्रह्मानन्दजी का, जो उनके आदि गुरु थे, दर्शनामृतपान करने का सौभाग्य न आया. [illegible], उनकी वह दिव्यमूर्ति तो स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज के मनोमन्दिर में सर्वदा के लि[illegible] पा चुकी थी। जिनकी चर्चा वे प्रायः प्रत्येक कथाओं में किर[illegible]

# चतुर्थ परिच्छेद

ईश्वरीदत्तजी यमुना के किनारे के मार्ग से वृन्दावन, मथुरा में आकर प्रत्येक आश्रमों में महात्माओं के तथा देवालयों में देवताओं के दर्शन से अपने को पूत समझा। कई स्थानों में विशिष्टाद्वैतवादी लोगों से वेदान्त का विचार भी हुआ, पर वे इसके पूर्वही स्वामी, ब्रह्मानन्द के साथ जो शास्त्रविचार तथा योगाभ्यास के आनन्द का अनुभव कर चुके थे वे चाहते थे कि फिर भी वैसे ही दयामूर्त्ति, विद्वान् तथा योगीश्वर उपलब्ध हों। पर मनोनुकूल आश्रय न पाकर वे गोवर्धन पर्वत पर जाकर परिक्रमा भी किये। योगी और विद्वानों का अनुसन्धान तो वे जहाँ कहीं जाते थे, किया करते थे। गोवर्धन पर्वत पर एक वृद्ध वैष्णव महात्मा भी उन्हें मिले; जिन्होंने बड़े ही आदर से इनका स्वागत किया। महात्मा की साधुता देखकर उनके प्रति ईश्वरीदत्त की श्रद्धा उत्पन्न हुई और वे अपने मनोभाव को उनसे प्रकट कर दिये। महात्माजी ने कहा कि आपको जैसा साधन अभिप्रेत है, नेपाल के आसपास पर्वतों में प्राप्त हो सकता है। क्योंकि मैंने भी इन्हीं साधनों की प्राप्ति के लिये अनेकों विपत्तियाँ झेली हैं। मुझे मिले तो बहुत से लोग, पर उनसे मेरी पिपासा शान्त न हुई। मैंने भी सुना है, पर स्थानविशेष तथा नामविशेष के बतलाने में असमर्थ हूँ। इस बात को सुनते ही ईश्वरीदत्त के चित्त में नेपाल-यात्रा का पुनः पुनः विचार होने लगा। पर्यटन करते हुए कुछ दिन व्रजभूमि में ही व्यतीत किया। एक दिन मथुरा में विश्रामघाट पर स्नान कर सन्ध्योपासन कर रहे थे, उसी समय एक वैश्य जिनका नाम छज्जूराम था वे भी स्नान से निवृत्त हो सन्ध्यापूजन कर रहे थे। छज्जूरामजी का निवास-स्थान सम्भवतः लखनऊ था। जब दोनों का नित्यकृत्य समाप्त हो गया तो सेठजी ईश्वरीदत्त के पास आकर प्रणाम पूर्वक कुछ पूछने लगे। प्रश्नानुप्रश्न से सेठजी ने इनकी विद्वत्ता से अत्यन्त अनुरक्त होकर अपने साथ लखनऊ चलने का अनुरोध किया। उनकी उत्कट श्रद्धा देख ईश्वरीदत्त ने स्वीकार कर लिया और उनके साथ चलने के लिये स्टेशन आये। रेलगाड़ी द्वारा दोनों मथुरा से रवाना हुए।

सेठजी को कुछ संस्कृत का भी अभ्यास था। ईश्वरीदत्त से कभी दर्शन [illegible] सम्बन्धी कभी कर्मकाण्ड सम्बन्धी बातें करते हुए सुख से समय [illegible] सेठजी ने अपने निवासस्थान पर, जो मध्यनगर में था,

ईश्वरीदत्त से पधारने का अनुरोध किया; पर वे नगर में जाने के लिये सहमत न हुए। क्योंकि वे शीघ्रातिशीघ्र नेपाल पहुँचने का विचार स्थिर कर चुके थे। जब सेठजी निराश हो गये और यह भी समझ गये कि ये अयोध्या जाने वाले हैं तो उन्हें अयोध्या का टिकट देकर खिन्न हो उनसे विदा हुए। विशेष अनुरोध करने पर भी अन्य कोई भी वस्तु ग्रहण नहीं किया और अयोध्या आ पहुँचे। वहाँ आकर सरयू स्नानकर प्रसिद्ध स्थानों में जाकर दर्शनादि से निवृत्त होकर सरयू के किनारे ही सङ्गत किसी श्रद्धालु ब्राह्मण के यहाँ भोजन तथा विश्राम कर सरयू पार उतर गये। फिर पैदल ही गोरखपुर की ओर जाने वाले मार्ग का अवलम्बन किया। पादयात्रा करते समय जहाँ भगवान् भास्कर विश्रामार्थ अस्ताचल के उच्च शिखरों का सहारा लेते थे, वे भी किसी पार्श्ववर्ती ग्राम में जाकर रुक जाते थे। अपने प्रवचनों से ग्राम-निवासी जनों को मुग्धकर विशेषानुरोध से भी एक रात से अधिक कहीं न रुकते थे। इसी क्रम से वे गोरखपुर आ पहुँचे और वहाँ के निवासियों से नेपालगामी मार्ग का निश्चय करने लगे। कुछ रोज इस जिले में भी परिभ्रमण कर अपने मुख्य लक्ष्यभूमि की यात्रा प्रारम्भ कर दी।

**नेपाल यात्रा का आरम्भ**

गोरखपुर से चलने पर और भी कुछ यात्री,-जो नेपाल जाने वाले थे, मिले। उन्हीं के साथ-साथ इनका भी प्रयाण हुआ; पर आगे चलने पर इन यात्रियों से इनका मतभेद हो गया। क्योंकि वे लोग सीधे नेपाल जाना चाहते थे। ये तीर्थ, आश्रम तथा महात्माओं का दर्शन करते हुए नेपाल पहुँचना चाहते थे। इसलिये उन यात्रियों का साथ न रह गया। कहाँ इन्हें अकेला होना पड़ा, यह अज्ञात है। पर गोरखपुर से ही नेपाल का मार्ग भिन्न हो जाता है; इसलिये वहीं उन लोगों का साथ छोड़ना पड़ा। गोरखपुर से ६४ मील पर एक छोटा-सा शहर जो नौतनवा नाम से प्रसिद्ध है, पैदल ही वहाँ पहुँचे। फिर वहाँ से २२ मील की दूरी पर बुटोल नाम का नगर है, वहाँ पर पहुँच कर पर्वत-श्रेणियाँ दृष्टिगोचर हुई। पर्वतों के आकाशचुम्बी हरे वृक्षों से आच्छन्न शिखरों का दृश्य देखकर ईश्वरीदत्त का चित्त अत्यन्त प्रफुल्लित हुआ और उनकी आशा पूर्ण-सी दिखाई दी। उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया कि, अवश्य योगी महात्मा इस सुरम्य निर्जन पर्वत की कन्दराओं में निवास करते होंगे। यद्यपि यात्रा करने वाले प्रसिद्ध मार्ग से वहाँ जाते थे; पर वे इस आशा से [illegible] संघर्ष में नहीं रहते, कुछ मार्ग छोड़कर इधर-उधर कन्दराओं [illegible] करते

हुए आगे बढ़े। दो विशाल पर्वतों का उल्लंघन कर एक तृतीय पर्वत दिखाई पड़ा। यद्यपि प्रकृति देवी ने ही उसे अत्यन्त सुसज्जित किया था; पर राजव्यवस्था से लोकोत्तर सौन्दर्यपूर्ण बना दिया गया था। इस सुरम्य पर्वत पर एक विशाल नगर बसा हुआ है। यह ऐसा रमणीय नगर है कि इसकी रमणीयता तथा यहाँ का शुद्ध जल-वायु लोगों को आकृष्ट कर लेता है। दूर-दूर से लोग यहाँ ग्रीष्म ऋतु में आकर मनोरञ्जक दृश्यों से नेत्रतृप्ति तथा शुद्ध जलवायु-सेवन से पूर्ण स्वास्थ्य-लाभ करते हैं। ईश्वरीदत्त लोगों से नगरी की प्रशंसा सुनकर उस नगर की ओर बढ़े और वहाँ पहुँचकर वस्तुतः लोगों के कथन से कहीं अधिक सौन्दर्य देखा। यों तो असाधारण सौन्दर्य से परिपूर्ण अनेक नगर अब भी संसार में हैं, जिसे लोग अमरावती निर्विशेष समझते हैं, पर भोग तथा योग इन दोनों के योग्य स्थल यहीं उपलब्ध होते हैं। इस नगर का नाम 'पालपा' प्रसिद्ध है। यहाँ के निवासी जनों में भी इस प्रकार का धार्मिक भाव भरा है कि जब वे किसी विद्वान् तथा महात्मा को देख पाते हैं तो साक्षात् ईश्वर समझकर सेवा-शुश्रूषा में सर्वदा संलग्न रहते हैं।

जब ईश्वरीदत्त उस नगर में प्रविष्ट हुए तो कई श्रद्धालु जन उनसे मिले। [illegible] स्थानों को दिखाकर उनके रहने तथा भोजनादि का भी उचित प्रबन्ध कर दिये। प्रति दिन लोग आकर प्रवचन श्रवण करते थे। इन सब सुविधाओं के रहते भी ईश्वरीदत्त प्रति दिन पर्वत से नीचे उतरकर योगियों का अनुसन्धान किया करते थे। पर उनके मनोनुकूल कोई योगी उपलब्ध न हुआ। यद्यपि नगर से बाहर दो-चार महात्माओं के कुटीर थे, पर वे योगाभ्यास से रहित थे। ईश्वरीदत्त को विद्या तथा योग की ही लिप्सा थी। कुछ दिन निवास के अनन्तर मनोरथ-सिद्धि का कोई साधन न पाया तो वहाँ के निवासी लोगों की मनःप्रतिकूल यात्रा को आगे बढ़ाया। कुछ ही दूर पर सर्वपापप्रणाशिनी गण्डकी नदी का दर्शन किया। शालग्राम की मूर्तियाँ इसी नदी से आती हैं। इस नदी के चञ्चल तरङ्गों को जो विशाल शिलाओं में टकराकर वेग से नीचे जा रहे थे, देखकर नेत्र के जन्म को सफल समझा। उस नदी को पार कर एक विशाल पर्वत पर पहुँचे। उस पर्वत में घोर जङ्गल भी था। ईश्वरीदत्त प्रचलित मार्ग को छोड़कर बिना मार्ग ही यात्रा कर रहे थे, पर थे [illegible] समीप। जब उस जङ्गलमें आगे बढ़ने का कौतुहल हुआ तो वे मार्ग पर [illegible] बढ़ते गये। कुछ दूर आकर दो तीन भिल्लों के कुटीर

**घोर विपिन में प्रवेश**

दिखाई पड़े। भिल्लों ने इशारे से उन्हें आगे जाने से रोका; पर वे उनके ईशारे पर ध्यान न देकर आगे ही बढ़ते गये। इस यात्रा में ईश्वरीदत्त को जैसे क्लेश सहने पड़े और जैसी विपत्तियों का सामना करना पड़ा, वह वास्तव में बड़ा ही भयावह था। उन्होंने यह भी प्रतिज्ञा कर ली थी कि किसीसे मार्ग न पूँछेगे और चारों तरफ जङ्गल का दृश्य देखकर लौटेंगे। कुछ देर में वे ऐसे स्थान में पहुँचे, जहाँ जनसञ्चार का नाम भी न था। इसी समय उन्हें कुछ क्षुधा का भी प्रभाव मालूम पड़ा। किसी वृक्ष में सुन्दर फल देखकर बिना परीक्षा किये ही दो-चार फल खाकर आगे बढ़े। यद्यपि फल के नाम तथा गुण से वे अपरिचित थे; पर वे थे सुस्वादु और उसका परिणाम भी कुछ अहितकर न मालूम पड़ा। आगे एक अत्यन्त संकीर्ण जंगली जानवरों के मार्ग से जब कुछ और दूर गये तो घने जङ्गल में प्रविष्ट हो गये। इस जङ्गल में उन्हें मनुष्य के पैर का चिन्ह भी कहीं दिखाई न दिया। अब वे सोचने लगे कि अब क्या करना चाहिये। आगे बढ़ें या पीछे लौटें। इसी समय में ईश्वरीदत्त के सामने एक आकस्मिक भीषण विपत्ति आकर उपस्थित हो गई। इस विषय में स्वामीजी कहते हैं :—"एक बहुत ही बिशाल व्याघ्र दहाड़ते हुए मेरी तरफ को दौड़ा और पास आकर खड़ा हो गया। भयावह मुख को फैलाकर वह आक्रमण करना ही चाहता था कि निस्पन्द होकर उसी के तरफ निर्निमेष दृष्टि से देखता हुआ स्थिर हो मैं भी खड़ा हो गया। मेरे पास अन्य कोई भी प्रतिकार का साधन न था।एक छोटी सी छड़ी मेरे पास थी, उसे भी न उठाया। कुछ ही देर में वह व्याघ्र न जाने किस कारण पीछे हट गया और जङ्गल में घुस गया। उसके दहाड़-ने की आवाज सुनकर कुछ दूर पर भिल्लों की कुटियों से मोटी लाठी लेकर तथा शिकारी कुत्तों के साथ रक्षा के लिये भिल्ल दौड़े। भिल्लों ने ईश्वरीदत्त से पीछे लौट जाने के लिये विशेष अनुरोध किया और संकेत द्वारा बतलाया कि सम्भवतः इससे भी गुरुतर विपत्ति का सामना आगे करना पड़े। पर ईश्वरीदत्त अपने निर्धा-रित मार्ग से विचलित होनेवाले न थे। उन्होंने उनसे कहा कि:—"तुम लोग मेरे लिये चिन्ता न करो। मैं सर्वदा सुरक्षित ही रहता हूँ। हाँ, यदि यह निश्चित हो कि आगे कोई महात्मा नहीं रहते तो लौट चलूँगा", अन्त में निश्चय हुआ कि आगे घोर अरण्य के अतिरिक्त जन का नाम नहीं है। इस बात को स[illegible] के लौटे। भिल्लों ने उन्हें एक विशाल लाठी दी, पर वे स्वीकार न[illegible] लोगों

से विश्वम्भर की तरफ संकेत किया। सत्य है, जिसकी रक्षा विश्वम्भर से नहीं हो सकती उसकी रक्षा लाठी से क्या हो सकती है। इसी लिये जगद्रक्षक को अपना रक्षक समझकर लाठी पर उन्हें भरोसा न था। अब वे प्रचलित मार्ग को भूल गये। बिना मार्ग ज्ञान के ही अपनी यात्रा को प्रचलित रक्खा। फिर वे घोर अरण्य में प्रविष्ट हो गये। उनके वस्त्रों की धज्जी धज्जी उड़ गई। शरीर के प्रत्येक अवयवों से रक्त निकल रहा था। इधर बुभुक्षा तथा पिपासा भी अपने प्राबल्य को प्रकट कर रही थी। जङ्गल भी कण्टकाकीर्ण तरुगुल्मों से परिपूर्ण था। अब वहाँ से मुक्ति पाना उनके लिये कठिन हो गया। विपत्तिओं को झेलते हुए जब वे आगे बढ़े तो कुछ दूर पर कुटीर दिखाई पड़े। उसी को अपना लक्ष्य बनाकर वे चले। इस समय सूर्य भगवान् का भी अस्त हो रहा था। जब वे कुटीर से कुछ दूर ही पर थे कि कुछ पहाड़ी लोग उनके पास आ गये और पूछा कि तुम कहाँ से आ रहे हो। सब वृत्तान्त सुनकर वे उन्हें एक महात्मा समझकर अपने घर ले जाने का अनुरोध करने लगे और लिवा भी गये। भोजन के लिये ईश्वरीदत्त ने केवल उनसे दूध माँगा। वे उपस्थित कर दिये। सन्ध्योपासन कर दुग्ध पान कर रात्रि में उसी जगह विश्राम किये। प्रातःकाल उठकर उन्हीं पर्वतीयों की सहायता से फिर गण्डकी नदी के किनारे पहुँच गये। पहले मिली हुई गण्डकी नदी घूमकर वहाँ आई थी। उसी के किनारे-किनारे जाकर मधुवेनी नामके तीर्थ में पहुँचे। वहाँ सभी देवताओं का दर्शन होता है। दर्शन स्नानादि से निवृत्त होकर योगियों के बारे में पूछ-ताछ करने लगे; पर ठीक पता न लगा। दो-एक रोज वहाँ निवासकर फिर आगे को बढ़े।

**मधुवेनी तीर्थ-यात्रा**

**मुक्तिनाथ की यात्रा**

गण्डकी नदी के किनारे ही मुक्तिनाथ का स्थान है, जो मधुवेनी से पैदल ६-७ दिन का मार्ग है। उसकी प्रशंसा प्रत्येक यात्रियों से सुन चुके थे; इसलिये वहाँ पहुँचने की उन्हें उत्कट अभिलाषा थी। मधुवेनी से चलते समय कुछ और भी यात्री उनके साथी हो गये, जो ईश्वरीदत्त के लिये हर प्रकार की सुविधा किया करते थे। एक सप्ताह के अनन्तर वे निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच गये। वस्तुतः उस तीर्थ को देखने से प्रतीत होता है कि साक्षात् कैलाश यही है उस तीर्थ की रम्यता से अत्यन्त मुग्ध होकर ईश्वरीदत्त वहाँ भी कतिपय [illegible] गये; फिर अन्य तीर्थों को अपना लक्ष्य बनाकर वहाँ से भी यात्रा का प्रा[illegible]सी गण्डकी नदी के तट से ४-५ दिन चलकर फिर अन्य

मार्ग से ( काशी पोखरा ) नामके शहर में पहुँचे। जहाँ-जहाँ ये जाते थे, मार्ग में तथा लक्ष्यस्थल पर विद्वान् तथा योगियों का अन्वेषण करते ही जाते थे और पता लगने पर उनसे साक्षात्कार भी किया करते थे ; पर मनोनुकूल साधन इन्हें कहीं न उपलब्ध हुए। उस शहर के पास एक श्वेत गण्डकीनाम की नदी है। उसके किनारे भी साधु-महात्मा भ्रमण करते हैं तथा कुटीर बनाकर रहते भी हैं। ईश्वरीदत्त ने महात्माओं का दर्शन किया तथा वहीं विन्ध्यवासिनी देवी के स्थान में निवास किये। स्थानीय नारायण भगवान् के स्थान में भी निवासकर वहाँ से आगे को बढ़े।

**नेपाल यात्रा**

प्राय: सभी लोग नेपाल के नाम से अपरिचित न होंगे यह अत्यन्त प्राचीनतम नगर तथा तीर्थ-स्थान भी है। पशुपतिनाथजी का सुप्रसिद्ध मंदिर यहीं पर है। काशीपोखरा से चलकर ८-१० दिन में लोग नेपाल शहर पहुँचते हैं। ईश्वरीदत्तने भी इसी मार्ग का समाश्रयण किया और १ पक्ष में नेपाल पहुँचे। अधिक दिन लगने का कारण यह था कि ये चाहते थे कि सन्यास ग्रहण कर लूँ। जिसके लिये स्वामी ब्रह्मानन्द से भी अनुरोध किया था; पर स्वामीजी ने समझा-बुझाकर इन्हें रोक दिया था। पर इनके भाव के परिवर्तन में स्वामीजी सफल न हुए थे। अब उनकी परोक्षता में ये अपने विचारों को समन्वित करने के विचार में भी सर्वदा रहा करते थे। जहाँ कहीं महात्माओं की प्रशंसा सुनते थे, विना साक्षात्कार किये आगे न बढ़ते थे। इसी कारण उन्हें नियत काल से अधिक काल लगा। नेपाल पहुँचने पर प्रसिद्ध स्थानों तथा कन्दराओं का निरीक्षण करते हुए कई एक महात्माओं से भी मिले। पर ये चाहते थे कि मैं सन्यास-दीक्षा उन्हीं से लूँगा जो शास्त्रपारङ्गत तथा तपस्वी संन्यासी हों। यह सामानाधिकरण्य उन्हें मिलता न था; इसलिये भी उन्हें व्यग्रता का अनुभव करना पड़ता था।

**गोसाईं कुण्ड की यात्रा**

नेपाल में कुछ काल व्यतीत कर, वहाँ से उत्तर की ओर अल्प दूरी पर गोसाईं कुण्ड नाम के तीर्थ में पहुँचे। यह तीर्थ केवल तीर्थ नाम से ही नहीं, पर आश्चर्यपूर्ण घटना के कारण भी अत्यन्त विख्यात है। लोगों का कथन है कि यदि सूर्य की किरणें सीधी उस कुण्ड [illegible] हैं तो पर्वत के उत्तरवर्ति शिखर पर चढ़कर कुण्ड के [illegible] शयन करती हुई भगवान् शङ्कर की मूर्ति का दर्शन पाते हैं [illegible] रम्यता

से ईश्वरीदत्त अत्यन्त मुग्ध थे। पर सद्गुरु की अन्वेषण चिन्ता उन्हें कहीं स्थिर न रहने देती थी। अब उनकी नेपाल की यात्रा समाप्त हो चुकी थी। अब उनकी इच्छा पर्वतस्थान छोड़कर अन्य स्थलों में विचरने की हुई। वे पहाड़ से आकर जब दक्षिण भारत की राह पकड़े तो मार्ग में कुछ व्यक्ति कुरुक्षेत्र में रहने वाले महात्माओं की प्रशंसा कर रहे थे। उनके मन में कुरुक्षेत्र पहुँचने की फिर अभिलाषा हुई और उसी को यात्रा का लक्ष्य बनाया।

**कुरुक्षेत्र की यात्रा**

किस साधन का अवलम्बन कर ईश्वरीदत्त कुरुक्षेत्र पहुँचे, इस विषय में प्रायः लोग अनभिज्ञ से हैं। पर वहाँ पहुँचकर पण्डित गरुड़ध्वज के पास ठहरे। पण्डितजी एक प्रकाण्ड वैयाकरण थे। उन्होंने ईश्वरीदत्त का स्वागतकर इनसे शास्त्र विषयक आलाप किया। इनकी बुद्धिप्रखरता से नितान्त तुष्ट हो वे अपने पास रहने का अनुरोध करने लगे। अन्त में अपने पास रख कर व्याकरण अध्यापन करने लगे; पर कुछ ही दिन उनके पास रहकर संन्यास दीक्षा के साधन में तत्पर हो गुरु का अन्वेषण करने लगे। मण्डलेश्वर श्रीस्वामी भागवतानन्दजी का कथन है कि घरसे निकलकर ये प्रथम कुरुक्षेत्र आये और वहीं सिद्धान्त कौमुदी पढ़ना प्रारम्भ किया। पर स्वामीजी के [illegible]इयों से पता चला कि वे पहले काशी आये थे और घर के समीप की पाठशाला में कुछ व्याकरण का अध्ययन कर चुके थे। फिर स्वामी ब्रह्मानन्दजी ने भी कुछ व्याकरण पढ़ाया। इससे मालूम पड़ता है कि नेपाल-यात्रा के अनन्तर कुरुक्षेत्र में पण्डित गरूड़ध्वज से इनका समागम हुआ।

**सद्गुरु की प्राप्ति की चिन्ता**

यद्यपि ईश्वरीदत्त ने संन्यास की उत्सुकता में अनेकों महात्माओं का दर्शन किया; पर किसी न किसी कारण-वश उन सबको वे पूर्वपक्ष में ही डालते गये। सिद्धान्त बुद्धि कहीं भी न आई। उनके मन में आया कि बदरी-नारायण के मार्ग में अनेक सिद्ध महात्मा रहते हैं, ऐसा सुना गया है; इसलिए उस मार्ग का अन्वेषण भी उचित है। सिद्ध महात्मा भी जन संघर्ष से दूर रहना चाहते हैं; अतः सम्भव है कि विभु परमेश्र हमारी अभिलाषाओं को पूर्ण कर दे। यह सोच-व[illegible]रायण के मार्ग का अवलम्बन किये। मार्ग में किसी एक मठ में पहुँचे। व[illegible]र से इनका सत्कारकर अपने पास रहने को कहा। ये दो चार रोज [illegible] अन्त में महन्तजी ने अपनी सारी सम्पत्ति का व्यौरा इन्हें

बतलाकर अपना शिष्यत्व स्वीकार करने को इनसे कहा। ईश्वरीदत्त ने तुरत उत्तर दिया कि मेरे पिता की सम्पत्ति आपके सम्पत्ति से किसी भी अंश में न्यून न थी। जब मैंने उसे तुच्छ समझकर अथवा संसार की सारी सम्पत्ति को अनुपादेय समझकर चिरकाल से इस निर्विकार मार्ग पर चलने का निश्चय किया है, तो फिर सम्पत्ति के प्रलोभ में पड़कर अपने जीवन को निरर्थक न बनाऊँगा। इसके लिये आपसे क्षमाप्रार्थी हूँ। महात्माजी सुनकर लज्जित हो गये। क्योंकि एक अल्प वयस्क ब्रह्मचारी उस वृद्ध महात्मा को उपदेश दे रहा था। फिर वे अपने विचारों के अनुसार अपना कर्तव्य प्रचलित रक्खें। जब ईश्वरीदत्त कर्णप्रयाग पहुँचे तो उस मार्ग को छोड़कर वे मार्ग से दक्षिण की तरफ चले।

जिस समय ईश्वरीदत्त कर्णप्रयाग पहुँचे थे और वहाँ के निवासी महात्माओं से पूछा तो पता लगा कि यहाँ से दक्षिण की ओर कुछ दूरी पर एक विद्वान् तथा योगनिष्ठ सन्यासी रहते हैं। उनके पास जाने पर सम्भवतः आपकी अभिलाषायें पूर्ण हो जाँय। इस बात को सुन इनके मन में सन्यासीजी के दर्शन की उत्सुकता प्रवृद्ध हुई। वे मार्ग का निश्चय न कर दक्षिण की तरफ स्वामीजीके अन्वेषणार्थ चल पड़े।

यद्यपि स्वामीजी का निवास-कुटीर कर्णप्रयाग से समीप ही में था, पर ये मार्ग छोड़ दिये थे; इसलिये इन्हें भयंकर विपत्ति का सामना करना पड़ा। सामने एक पर्वत था। इस पर ये चढ़ गये। कहीं भी मार्ग दिखाई न देता था, पर अपनी यात्रा को इन्होंने स्थगित न किया, आगे ही बढ़ते गये। भगवान् दिनमणि भी इन्हें शीघ्र किसी स्थान के समाश्रयण के लिये शीघ्रता का उपदेश दे रहे थे। पर ये करते ही क्या? जब इन्होंने देखा कि पर्वत की अधित्यका में कहीं जननिवास नही है तो निश्चय किया कि नीचे उतरकर पता लगाना उचित होगा। पर उस दुरारोह पर्वत पर चढ़ तो गये लेकिन उतरना बहुत ही विषम कार्य था। प्रायः सन्ध्या भी समीप मे आ रही थी। ईश्वरीदत्त कठिन कार्य से घबड़ाने वाले न थे। ये जीवन में कठिन से कठिन विपत्तियों का सामना कर उनपर विजय प्राप्त किये थे। उन्होंने नीचे उतरना प्रारम्भ कर दिया।

जिस समय की यह घटना है, प्रायः शीतकाल का प्रारम्भ था। [illegible] जब ग्रीष्म ऋतु में भी अधिक शीत का साम्राज्य रहता है तो [illegible] की अधिकता का होना स्वाभाविक है। ईश्वरीदत्तके पास वस्त्र की [illegible] थी।

जो थे भी वे भी अति सूक्ष्म। पर्वत से उतरते समय उनका शरीर अत्यन्त क्लान्त तथा श्रान्त हो चुका था। भूख तथा प्यास से भी वे अत्यन्त अवसन्न हो चुके थे। नीचे आना भी उनके लिये आवश्यक हो गया था; क्योंकि धीरे-धीरे सूर्य भगवान् भी इन्हें उतरने का समय देते हुए अस्ताचल की तरफ दृष्टिपात कर रहे थे। इसलिये इन्हें शीघ्रता से उतरने का प्रयत्न करना पड़ा। एक स्थल पर उन्हें झाड़ी के सहारे नीचे उतरना पड़ा। उस समय उनके शरीर से रक्त भी निकलने लगा। उसी कपड़े से फाड़कर उन्हें पट्टी भी बनानी पड़ी। जिससे रक्त-प्रवाह का अवरोध हुआ। किसी प्रकार नीचे उतरकर भी उन्हें कहीं मार्ग का चिह्न न मिला। इधर अन्धकार भी अपने भावी साम्राज्य की घोषणा पक्षियों के कलरव-डिण्डिम से कर रहा था। ऐसी दशा में एकाकी खड़े सोच रहे थे कि अब क्या करें। बहुत सोचने-विचारने पर भी जब कोई मार्ग का चिह्न अथवा आस-पास कोई कुटीर दृष्टिगोचर न हुआ तो कुछ आगे बढ़कर एक विशाल अज्ञातनाम वृक्ष के नीचे बैठ गये। इतने में पूर्ण अन्धकार छा गया। फिर वे उसी पेड़ के ऊपर चढ़कर

**घोर विपत्ति का सामना**

रात्रियापन का निश्चय किये। वृक्ष की शाखायें अत्यन्त विशाल तथा स्थूल थी। जिस पर बैठकर किसी प्रकार समय विताया जा सकता था। उस वृक्ष पर वे चढ़ गये और दो स्थूल शाखाओं के बीच बैठ गये। जिस पर वे पीठ का भी सहारा पा सकते थे। इस घटना के बारे में स्वामीजी का कथन है कि :—"नीचे अनेक जङ्गली हिंस्र जन्तु विहरण करते थे। यद्यपि मैं अत्यन्त श्रान्त तथा भूखा प्यासा भी था, पर नींद आने का अवसर न दिया। पर किसी-किसी समय झपकी तो आ ही जाती थी।" किसी प्रकार रात्रियापन कर प्रातःकाल होते ही वे पेड़ पर से उतरे और झरने से पानी लेकर शौच, स्नानादि से निवृत्त होकर सन्ध्योपासन के लिये बैठ गये। उसी समय एक गौराङ्ग, रुद्राक्ष की माला हाथ में घुमाते हुए, जिनकी अवस्था प्राय: ५० वर्ष की प्रतीत होती थी, ईश्वरीदत्त के सामने आकर खड़े हो गये। ईश्वरीदत्त पादोपसंग्रहणपूर्वक उन महात्मा के सामने खड़े होगये। महात्माजी कहने लगे कि यहाँ से पास ही एक बगीचे में सिद्ध महात्मा रहते हैं। तुम उनकी शरण में चले जाओ। तुम्हारी इच्छा के अनुकूल सभी गुण उनमें वर्तमान हैं। अब कहीं [illegible] आवश्यकता नहीं। इतना सन्देश सुनाकर वे महात्मा, ईश्वरीदत्त को मार्ग दि[illegible]। स्वामीजी कहते हैं कि :—"जहाँ मुझे मार्ग का अल्प भी चिह्[illegible]ा था, वही मुझे स्पष्ट मार्ग दिखाई पड़ने लगा" फिर वे उसी

मार्ग से आगे बढ़कर एक बगीचे में पहुँच गये। जिसमें एक कुटीर भी दिखाई पड़ा। ईश्वरीदत्त उस कुटीर में प्रवीष्ट हो गये। वहाँ अत्यन्त वयोवृद्ध साक्षात् तपस्या के प्रतिरूप शान्ताकार समाधिस्थ महात्मा दिखाई पड़े। ईश्वरीदत्त महात्मा जी का दर्शन पाकर, श्रान्ति, बुभुक्षा तथा पिपासा की बाधाओं से सर्वथा मुक्त हो गये और उनके ध्यानोपरति की प्रतीक्षा में बाहर ही बैठ गये। कुछ समय के अनन्तर महात्माजी जब ध्यान से उपरत हुए, ईश्वरीदत्त उनके पास जाकर दण्डवत् प्रणिपात किये। महात्माजी ने प्रेमालाप के अनन्तर इनके वृत्तान्त को सुनकर कुछ मूल-कन्द उन्हें दिया और कहा कि इसे खाकर फिर हमारे पास आना। ईश्वरीदत्त उसी कन्द से बुभुक्षा की शान्ति कर फिर गुरुजी के शरण में पहुँचे। स्वामीजी इनसे पठन-पाठन के बारे में चर्चा करने लगे। इनकी बुद्धिप्रखरता का परिचय पाकर इनके मनोभाव की जिज्ञासा से स्वामीजी इनसे प्रश्न करने लगे।

**स्वामी राजेन्द्रपुरी से प्रश्नानुप्रश्न**

स्वामीजी ने पूछा कि इतनी अल्प अवस्था में गृह त्यागकर ऐसे भयावह घोर अरण्यों में तुम्हें आने की आवश्यकता क्या ? ईश्वरीदत्त—आप ऐसे जीवन्मुक्त महात्माओं की दर्शनाभिलाषा ही मुझे इस कार्य में प्रवृत्त होने के लिये विवश करती है। स्वामीजी-तो कब तक इस विपत्ति की समाप्ति की आशा है ? ईश्वरीदत्त—महाराज के दर्शन होते ही उन विपत्तियों की इति श्री हो गई। स्वामीजी—तो अब आप क्या चाहते हैं ? ईश्वरीदत्त—महाराज अपने क्षुद्र दासों में मेरी भी गणना कर भवबाधा से मुझे बचा लें। इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी अभिलषणीय वस्तु नहीं है। इस प्रकार की उक्ति प्रत्युक्तियों से स्वामीजी ईश्वरीदत्त के पूर्ण वैराग्य से परिचित हो गये; फिर भी पुनः पुनः इन्हें यही उपदेश देने लगे कि अभी तुम्हें कुछ अधिक अध्ययन करना चाहिये और गार्हस्थ्य का यथोचित निर्वाह कर फिर प्रव्रज्या का समाश्रयण करना चाहिये। देखो, कच्चे खरबूजे को तोड़ने में तोड़नेवाले को कष्ट करना पड़ता है। उसके वृन्त से पानी भी निकलने लगता है। खानेवाले भी कुछ स्वाद नहीं पाते और अन्त में उसे हेय समझकर फेंक देते हैं। इसी तरह अपरिपक्व वैराग्य में संन्यास ग्रहण करना अनेक विघ्न-बाधाओं से सङ्कीर्ण रहता है। संन्यास के उपदेशक तथा संन्यासकर्ता एवं उसके संसर्ग में रहने वाले सभी कष्ट पाते हैं। यदि वही खरबूजा पक जाता है तो तोड़नेवाले को भी सौ[illegible] है अल्प भी परिश्रम का अनुभव नहीं होता। खानेवाले भी उ[illegible] प्रशंसा

करते हैं। उत्तम परिपक्व वैराग्ययुक्त की भी यही दशा है। इसलिये मैं अनुमोदन नहीं कर सकता कि ऐसी स्वभावतः औद्धत्य की जननी अवस्था में तुम संन्यास ग्रहण करो।'

**स्वामी राजेन्द्रपुरी का परिचय**

स्वामी राजेन्द्रपुरी जी न्याय वेदान्त के बड़े ही प्रौढ़ विद्वान् थे। योगाभ्यास में भी आप बहुत चढ़े बढ़े थे। ये स्वामी आदित्य गिरि मण्डलेश्वर के प्रधान शिष्यों में थे। इनकी समाधि वहाँ के लोगों में तथा संन्यासि-मण्डल में विख्यात थी। ईश्वरीदत्तजी कर्णप्रयाग में ही इनकी विद्वत्ता तथा तपोनिष्ठा को सुनकर मुग्ध थे। पर अतर्कितागत महात्मा ने भी इस विचार की पूर्ण परिपुष्टि कर दी थी। अब इनका चित्त अन्य गुरु के अन्वेषण से सर्वथा विमुख हो गया था। इन्होंने निश्चय कर लिया था कि यदि संन्यास ग्रहण करूँगा तो इन्ही महात्मा से। अन्यत्र मुझे जाने की आवश्यकता नहीं। पर स्वामीजी के ऐसे निरपेक्ष वचनों को सुनकर इनकी आशा-लता पर मानो तुषारपात-सा हो गया और वे कुछ क्षण तक अवाक् बैठे सोच रहे थे कि अब क्या करूँ।

उस समय ईश्वरीदत्त अपनी अवस्था के २८ वर्ष में प्रविष्ट हो चुके थे। एक नवयौवनशाली व्यक्ति में चित्तवृत्ति की प्रतिकूलता उपस्थित होने पर क्षोभ अथवा चाञ्चल्य का आना स्वभावसिद्ध है, पर जो कठिन-से-कठिन परीक्षाओं को उत्तीर्ण कर चुका है, भला वह परीक्षा काल में किस प्रकार अस्थैर्य का परिचय दे सकता है। ईश्वरीदत्त अपने विचारों पर अविचल थे और गुरुजी के सम्मुख अपनी धृष्टता के लिये क्षमा की प्रार्थना करते हुए सविनय निवेदन करने लगे—"गुरुजी! इस प्रकार के उचित उपदेशवज्रों से मैं कई बार आहत हो चुका हूँ, पर मेरे चित्त का अभेद्य विचारवर्म भिन्न न हुआ। आप योगियों के लिये कोई विषय अप्रत्यक्ष नहीं है। यदि महाराज को निश्चय हो कि यह विचारवर्म छिन्न-भिन्न भी हो सकता है तो सर्वज्ञ महाराज इस वज्र का अवश्य प्रयोग करें, जिसमें मुझे भी अपने चित्त-वृत्ति की पूर्ण परीक्षा मिल जाय"। इसके अनन्तर गुरुजी ने उन्हें वहीं रख लिया और प्रतिदिन के इनके व्यवहार तथा कर्तव्यों से निश्चय कर लिया कि यह सत्य विरक्त है [illegible] संसार का आशातीत कल्याण होगा। फिर वे कई बातों में कई प्र[illegible]क्षा करते गये, जिसमें किसी में भी ईश्वरीदत्त असफल न पाये

गये। स्वामीजी के अनुराग-वृक्ष की जो पत्तियाँ सूखकर गिर पड़ी थी, वृक्ष समूल उत्पाटित हो चुका था, अब उससे ईश्वरीदत्त के सद्विचार-जल-सेक से अङ्कुर निकल आये। जिस प्रकार ईश्वरीदत्त ने सर्वतोभावेन अपने को स्वामीजी के चरणों में समर्पण कर दिया था, उसी प्रकार स्वामीजी का भी चित्त ईश्वरीदत्त के लोकोत्तर गुणों से अत्यन्त आवर्जित हो चुका था। योग की प्रक्रिया तथा शास्त्राभ्यास में ईश्वरीदत्त पहले से ही आगे बढ़े थे; पर स्वामी राजेन्द्रपुरीजी सर्वदा उपदेश देते थे कि किसी भी वस्तु के आदि तथा मध्य के दर्शन से ही कृतकृत्य न होना चाहिये। सर्वदा इसके लिये कटिवद्ध रहना चाहिये कि हम इस वस्तु के चरम सीमा तक अवश्य पहुँचेगे। ऐसा दृढ़सङ्कल्प व्यक्ति कभी-कभी अवश्य चरम लक्ष्य पर पहुँच जाता है। इस लिये तुम्हें शास्त्राध्ययन तथा योगाभ्यास में अभी आगे पदार्पण करना चाहिये। स्वामीजी के पास अन्य महात्मा तथा ब्रह्मचारी भी दर्शनार्थ तथा अध्यायनार्थ अथवा योगाभ्यासार्थ आया करते थे; पर स्वामीजी सब के साथ वैसी बातें न करते थे जैसी ईश्वरीदत्त के साथ। इनके साथ वे उन्हीं बातों पर विशेष जोर दिया करते थे जिससे अपना तथा लोक का उपकार हो। हम इस बात को दावे के साथ कहते हैं कि जिस प्रकार ईश्वरीदत्त को अनेक बाधाओं को पार कर ऐसे असाधारण गुरु की प्राप्ति हुई थी, स्वामी राजेन्द्रपुरीजी को भी इससे प्रथम कभी भी ऐसा सुयोग्य शिष्य न मिला था। अस्तु, ऐसे गुरु तथा शिष्य का समागम असाधारण और अपूर्व था।

**संन्यास-दीक्षा**

एक दिन प्रातःकाल ईश्वरीदत्त गुरुजी के पास जाकर सम्मुखस्थ हो अञ्जलि बाँधकर गुरुजी से प्रार्थना करने लगे—महाराज! मेरी आशालता यद्यपि पल्लवित, पुष्पित तथा प्रवृद्ध हो चुकी है, पर इसमें अभी फल नहीं दिखाई देता है। यद्यपि महाराज मेरे कल्याणार्थ, योगी तथा व्यपगतकाम होते हुए भी दत्तचित्त हैं पर किसी वस्तु में अनुरागातिशय समय की प्रतीक्षा करने में असमर्थ होता है। शिष्य की इस बात से अत्यन्त प्रसन्न होकर स्वामी राजेन्द्रपुरी जी ने कहा कि ईश्वरीदत्त! संन्यास के अनन्तर आदान-प्रदान का कार्य नहीं होता; क्योंकि संन्यास में संसार की सभी वस्तुओं का संन्यास करना पड़ता है; इसलिये प्रेषमन्त्रश्रवण के प्रथम मुझे तुम्हे दक्षिणा देनी पड़ेगी। इस पर ईश्वरीदत्त अत्यन्त प्रसन्न हुए। अपने शिर को गुरुजी के चरणों ... र गुरुजी की अभिलाषा को यथाशक्ति पूर्ण करने की प्रति... स्वामी

राजेन्द्रपुरी ने कहा कि मैं समझता हूँ कि तुम्हारी उत्कट अभिलाषा योगसाधन में है तथा एकान्तवास तुम्हें अत्यन्त प्रिय है ; पर पुण्य भारतभूमि की दुर्दशा तथा धर्मवैकल्प को देखकर कभी-कभी हम विरागियों का भी चित्त खिन्न हो जाता है। इसलिये तुम्हें यही दक्षिणा देनी पड़ेगी कि तुम विशेष अध्ययन तथा योग का अभ्यास करते हुए धर्मप्रधान भारतवर्ष में फिर प्रत्येक जन में धार्मिक भाव को पुनरुज्जीवित कर दो। केवल मुझे तुम से यही दक्षिणा अभिप्रेत है। गुरुजी की आज्ञा को शिरोधार्य कर प्रेषमन्त्र से दीक्षित हुए। गुरूजी ने ईश्वरीदत्त का नामकरण जिसे संन्यासपद्धति में ( योगपट ) कहते हैं, स्वामी जयेन्द्रपुरी रक्खा। उसी समय से वे

**महाराज जयेन्द्रपुरी जी नाम से ख्यात हुए।**

संन्यास-ग्रहण के अनन्तर स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज गुरुजी के समक्ष ही योगाभ्यास की परिपुष्टि भी प्राप्त कर लिये। यह वृत्तान्त वयोवृद्ध विरक्त श्रीस्वामी शुक्रभारती के द्वारा प्राप्त हुआ था। कुछ दिन गुरु-परिचर्या में अपने समय तथा जीवन का साफल्य करते हुए निरत रहते थे; पर उन्हें इस बात की अधिक चिन्ता थी कि गुरुजी के समक्ष प्रतिज्ञात दक्षिणा की पूर्ति करना भी अत्यावश्यक है इसलिये वे गुरुजी के पास निवेदन किये कि मुझे आज्ञाप्रदान से अनुगृहीत करें। यद्यपि गुरुजी चाहते थे कि सुयोग्य शिष्य मेरे पास ही रहकर शास्त्र तथा योग का अभ्यास करता रहे; पर लोक के हित की समीक्षा का भार भी ऐसे ही निस्पृह महात्माओं पर निर्भर है। इसलिये स्वामी राजेन्द्रपुरीजी ने साशीर्वाद स्वामी जयेन्द्रपुरीजी को जाने की अनुमति दी। कुछ दिन रह जाने के कारण वहाँ आने जाने वाले महात्मा तथा कुछ सद्गृहस्थ भी स्वामी जयेन्द्रपुरीजी के गुणों से आवर्जित हो चुके थे। उन लोगों ने स्वामीजी तथा स्वामीजी के गुरू से वहीं रहने का अनुरोध किया; पर अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने की अभिलाषा प्रकट कर और फिर वहाँ आने की प्रतिज्ञा कर स्वामीजी वहाँ से विदा हुए और प्रथम बदरिकाश्रम जाने का विचार प्रकट किये।

**बदरिकाआश्रम की प्रथम यात्रा**

स्वामी जयेन्द्रपुरीजी जब बदरिकाश्रम जाने के लिये प्रस्तुत हुए उस समय अनेक महात्मा, जो उनके उपदेशों से मुग्ध थे, उनके साथ चलने को तयार हुए। [illegible] के साथ सानन्द यात्रा किये। स्वामीजी के वहाँ पहुँचने पर वहाँ [illegible] स्वामीजी का स्वागत कर सब प्रकार का उचित प्रबन्ध कर दिये

स्वामीजी अल्प काल तक रहकर जब वहाँ से चलने लगे तो जो पण्डे पुजारी स्वामीजी तथा उनके सहचरों की उचित सेवा किये थे उनसे स्वामीजी यह कह कर कि आप लोगों को इस सेवा का फल कभी अवश्य मिल जायगा, वहाँ से लौटे। फिर जब कर्णप्रयाग आये तो उन महात्माओं को वहीं रोककर एकाकी भ्रमण करते हुए पञ्जाब की तरफ चले।

पटियाला में निवास

एकाकी पञ्जाब की यात्रा में स्वामीजी किसी वाहन का सहारा लिये अथवा पैदल ही गये यह वृत्तान्त मालूम न हो सका। पर पञ्जाब में पहुँचकर वे पटियाला स्टेट में जा पहुँचे। पटियाला स्टेट में पण्डित शङ्करदत्त बड़े ही प्रसिद्ध विद्वान् थे। सदाचार में भी उनकी अत्यन्त ख्याति थी। पण्डित महात्माओं के वे अनन्य भक्त थे।

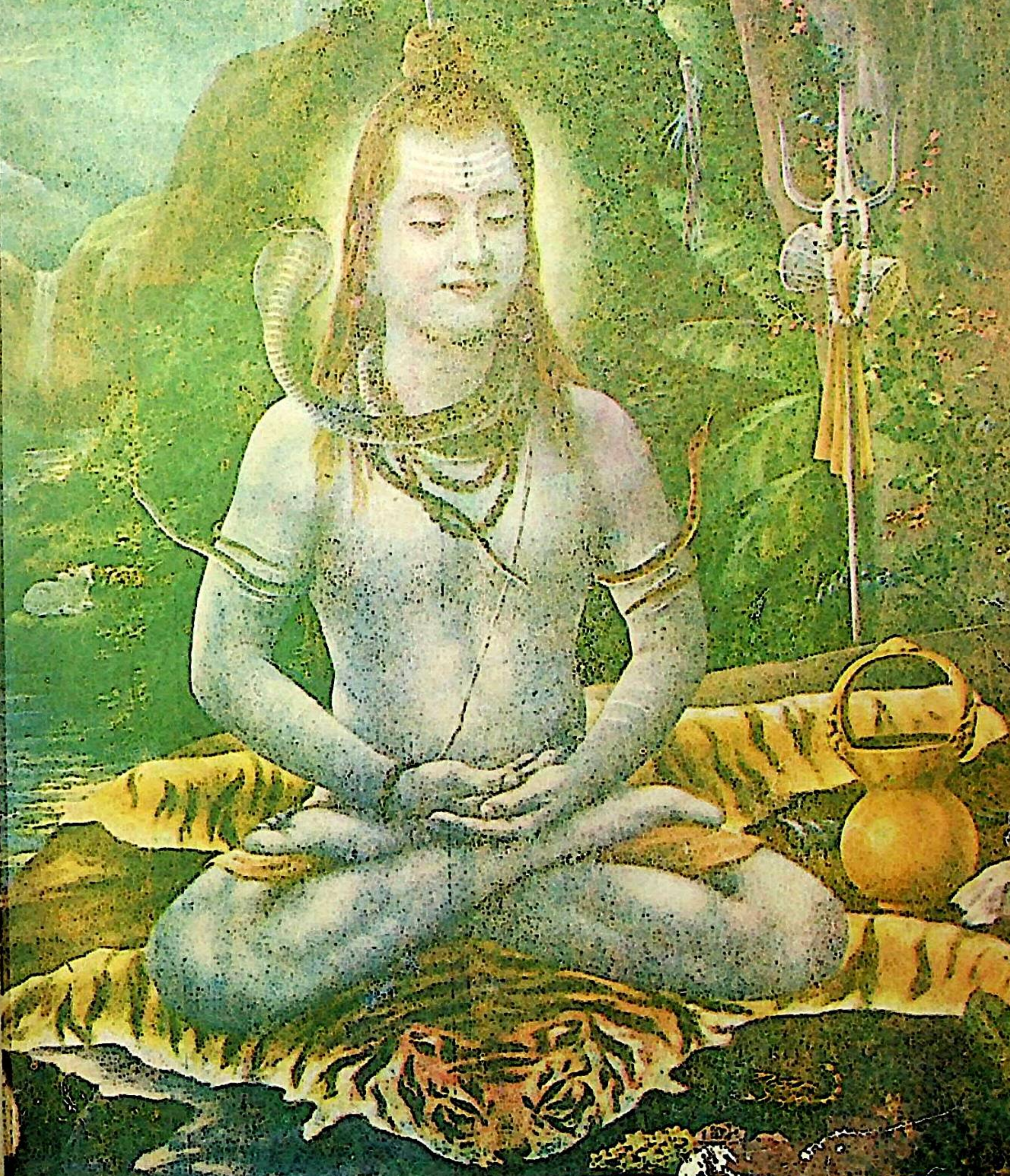
स्वामी जी एक मन्दिर में उतरे थे। दर्शनार्थ पण्डितजी भी वहीं आ गये। स्वामीजी के साथ पण्डित जी शास्त्रचर्चा करने लगे। अपनी कुशाग्रबुद्धिता से स्वामीजी ने पण्डित शङ्करदत्त को अत्यन्त सन्तुष्ट कर लिया। वे इनकी विद्वत्ता से आकृष्ट होकर चाहे कि स्वामीजी अगर हमारे ही यहाँ रहते तो अच्छा होता। यह सोचकर पण्डितजी ने स्वामीजी से सानुनय निवेदन किया। स्वामीजी उनकी प्रार्थना को स्वीकृत कर उनके साथ घर पर गये। आतिथ्य सत्कार स्वीकारकर स्वामीजी ने एकान्तवास के लिये पंडित जी से कहा। पंडित जी ने अपने निवास-स्थान के पास ही एक कुटीर बनवाकर स्वामी के लिये उचित प्रबन्ध कर दिया। स्वामीजी का मुख्य काम वहाँ योगाभ्यास था। उस समय ८ घन्टे तक स्वामीजी की समाधि लगती थी। शाम के समय जब समाधि से उपरत होते थे तो केवल एक पाव दूध से अपने अशन व्यापार की समाप्ति करते थे, उस समय आये हुए सद्गृहस्थों को उपदेश देते थे और विद्वानों से शास्त्र-चर्चा करते थे। धीरे-धीरे स्वामीजी की समाधि तथा विद्वत्ता की प्रसिद्धि चारों तरफ फैल गई। अब अधिक संख्या में जन उपदेश श्रवण के लिये आने लगे। स्वामीजी के समाधि के नियम में बाधा पड़ने लगी। किसी प्रकार तीन चार वर्षों तक इसी क्रम को स्थिर रक्खा। यद्यपि स्वामीजी केवल एक बार और दिन भर में एक पाव ही दूध ग्रहण करते थे, पर उनके उछलते हुए तेज में अल्प भी न्यूनता न मालूम पड़ती थी। प्रत्युत प्रतिदिन उनके शरीर में कान्ति तथा तेजस्वि[illegible] वृद्धि ही अनुभूत होती थी। शरीर तो उनका अवश्य ही क्षीण [illegible] यों

में दृढ़ता, साहस और उत्साह पूर्व की अपेक्षा अत्यन्त अधिक दृष्टिगोचर होने थे। जब उपदेश-श्रोताओं का समुदाय अधिक संख्या में आने लगा तो स्वामीजी उस स्थान को छोड़कर अन्यत्र जाने के लिये सोचने लगे। अपने अनन्य भक्त पं० शङ्करदत्तजी से भी अपने मनोभाव को प्रकट कर दिया। अब यहाँ सन्देह अवतीर्ण होता है कि स्वामी राजेन्द्रपुरीजी से वचनबद्ध होकर भी अपने ध्येय एवं उद्देश्य से ये क्यों भागते थे ? पर साथ-साथ स्वामीजी ने यह भी कहा था कि "योगाभ्यास तथा शास्त्राभ्यास की चरम सीमा देखकर अन्य कार्य में तत्पर होना।" इसलिये यह भी गुरु की आज्ञा का पालन ही था। उसका किसी प्रकार विरोध सिद्ध नहीं हो सकता। यद्यपि पंडित शङ्करदत्त न चाहते थे कि स्वामीजी यहाँ से चले जाँय, पर स्वामीजी की समालोचनात्मक शास्त्राध्ययन में प्रवृत्ति देखकर काशी जाने के लिये उन्होंने भी सहर्ष अनुमोदन किया और काशी जाने के लिये स्वामीजी का उचित प्रबन्धकर स्वयं भी कुछ दूर तक साथ आये। फिर स्वामीजी वहाँ से अकेले काशी के लिये प्रस्थान कर दिये और सकुशल काशी पहुँच गये। स्वामीजी का शङ्करदत्त पण्डित के पास रहकर योगाभ्यास, मण्डलेश्वर स्वामी श्री कृष्णानन्दजी के लेख से भी परिपुष्ट होता है।



यः सांख्ये कपिलः पतञ्जलिरलं, योगे विरक्तो शुकः।
साक्षादद्वयदर्शने शिवतनुस्तर्केषु यो गौतमः॥
शान्तिक्षान्तिदयादिरत्नसहितो, ज्ञानाम्बुधीरक्षता—
...कारणान्निजजनान् श्रीमज्जयेन्द्रो गुरुः॥

# विश्वनाथ


सानन्दमानन्दवने वसन्तमानन्दकन्दं हतपाप
वाराणसीनाथमनाथनाथं श्रीविश्वनाथं शरणं प्रपद्ये ।।

॥ ॐ नमः शिवाय ॥



सानन्द स्टेट के श्री भावनाथ महादेव के साकार मूर्ति का एक दृश्य

## पञ्चम परिच्छेद

❀ ॐ नमः शिवाय ❀

**भक्तहृच्छूलमुच्छेत्तुं धृततीक्ष्णत्रिशूलकः ।**
**कलितामृतकरोत्तंसः शिवः कुर्याच्छिवं सदा ॥**

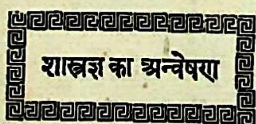
भक्तों के हृदय की पीड़ा को उन्मूलित करने के लिये जिसने तीक्ष्ण त्रिशूल धारण किया है, भक्तों की ताप-शान्ति के लिये जो मस्तक पर सुधाकर को धारण किये हैं ऐसे भगवान् शंकर संसार का सदा कल्याण करें।

### भगवान् श्रीत्रिशूलपाणि



अनादि परिवर्तमान नश्वर इस संसारचक्र की पद्धति से सर्वथा पृथग्भूत अविनश्वर इस काशीपुरी के माहात्म्य से कोई भी आर्य अपरिचित न होंगे। यहाँ संसार की बाधाओं से अभयदान देने के लिये सर्वदा अमृतसत्र बहता रहता है।

जिस सत्र में अर्थियों को निषेध का अनुभव नहीं करना पड़ता। भोग स्वर्गापवर्ग भगवती अन्नपूर्णा यहाँ स्वयं अर्थियों के अर्थसम्पादन में सावहित चित्त रहती हैं। यह भारतवर्ष के सभी संस्कृत विद्या के प्रधान केन्द्रों में सर्वप्रधान विद्याकेन्द्र मानी जाती है। समस्त संसार की रचना, रक्षा तथा प्रलय करनेवाले आशुतोष भगवान् विश्वनाथ की कैलाश से भी अधिक प्रिय यह राजधानी है। ज्ञान तथा विज्ञान की अद्वितीय खान है। भगवान् व्यासजी ने मुक्तकंठ जिसकी प्रशंसा की है, जैसा कि मङ्गलाचरण में दिखाया जा चुका है। पण्डित कवितार्किकाग्रणी श्री श्रीहर्ष ने भी काशी की प्रशंसा करते हुए कहा है कि "काशीपुरी निवसते न वसुन्धरायां तत्रस्थितिर्मखभुजां भवने निवासः। तत्तीर्थमुक्तवपुषामत एवमुक्तिः स्वर्गात् परं पदमुदेतुमुदेतुकीदृक्॥" भगवान् शंकर की नगरी काशीपुरी पृथ्वी पर नहीं है। यहाँ पर रहनेवाले स्वर्गवासी हैं। इसीलिये इस तीर्थ में निवास करनेवाले निर्वाण पद प्राप्त करते हैं। क्योंकि स्वर्ग में शरीरत्याग करनेवालों के लिये मुक्ति के अतिरिक्त स्थान निरतिशय सुख के लिये अन्य कौन हो सकता है! केवल इतना ही नहीं प्रायः सभी ऋषियों ने इसके माहात्म्य को अनिर्वचनीय वतलाया है। ऐसी मङ्गलमयी काशीपुरी में धर्मार्थी हो अथवा विद्यार्थी हो यद्वा मोक्षार्थी हो चाहे सुखार्थी हो, निवास करना किसे अभीष्ट न होगा। भला कौन ऐसा विज्ञ होगा जो स्वर्गीय सुखों की तृष्णा से सुख, धर्म तथा मोक्ष इन तीनों की अवहेलना करेगा। इसी लिये स्वर्ग से भी निस्पृह जन आजीवन काशीनिवास करते हैं। ऐसी दशा में एक विद्वान् तथा योगी महात्मा इस श्रेय से कब वञ्चित रह सकता है। स्वामी जयेन्द्रपुरीजी भी इन्हीं मङ्गल समुदाय के किसी अंश को दृष्टिकोण में रख कर काशी पधारे थे। अग्रिम वृत्तान्त से जिसका स्पष्टीकरण हो जायगा।




काशी पहुँचकर स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज के चित्त में अत्यन्त सन्तोष लाभ हुआ। भूतभावन भगवान् शङ्कर पर उनकी इस प्रकार की आस्था थी कि उनके क्रोड़ में अपने को समर्पण कर ये सब प्रकार से निश्चिन्त हो गये। जिस प्रकार पुत्रवत्सला माता सर्वथा अन्यावलम्बरहित शिशु की सब प्रकार सुख-प्राप्ति की चिन्ता करती है, जो सुख शिशु की आशा से अतीत होता है। इसी प्रकार जगद्रक्षक भक्तवत्सल भगवान् शङ्कर की गोद में सर्वतोभावेन अपने को समर्पण करनेवाला जन, बुद्धि के अगोचर सुख को क्यों नहीं प्राप्त कर सकता! सर्व प्रथम, ये इच्छापुरी की धर्मशाला जो गुदौलिया के पास हौजकटोरा

महल्ले में है—उसी को निवास स्थान निश्चित किये। यह धर्मशाला उस समय स्वामी रामचरण पुरीजी के अधिकार में थी। इसमें महात्मा तथा विद्यार्थी रहा करते थे। इस समय यह पूर्व निर्दिष्ट नाम से प्रसिद्ध स्थान संन्यासि संस्कृत कालेज के अधिकार में है। इस निर्वाध स्थान में स्वामीजी के मनोनुकूल सभी वस्तुएँ थीं। इस स्थान पर प्रायः स्वामीजी के ही साथ आनेवाले महात्मा भी विरक्त विद्यानुरागी तथा योगाभ्यासी थे। जिनका नामधेय स्वामी स्वरूपानन्दजी, स्वामी मङ्गलगिरिजी तथा स्वामी रामानन्दजी था। स्वामी स्वरूपानन्दजी दर्शन के प्रौढ़ विद्वान् थे। कुछ काल के वाद मृत्युञ्जय आश्रम काशी में मण्डलेश्वर स्वामी परमात्मानन्दजी के उत्तराधिकारी मण्डलेश्वर निर्वाचित हुए। स्वामी मङ्गलगिरिजी अब भी लक्ष्मीकुण्ड अपारनाथ टेकरे में निवास करते हुए सत्य वैराग्य के देदीप्यमान उदाहरण हैं। स्वामी रामानन्दजी व्याकरणाचार्य काशीदेवीमठ में साधु-संन्यासी, छात्र तथा विद्वानों को सुविधा प्रदान कर पुष्कल उपकार कर रहे हैं। इन महात्माओं तथा अन्य भी विरक्तों के साथ स्वामीजी सुखमय समय व्यतीत कर रहे थे। पर उनके चित्त में उस लक्ष्य-प्राप्ति की चिन्ता निरन्तर अपना प्रावल्य दिखाती थी, जिस लक्ष्य को लेकर वे पटियाला स्टेट के पण्डित शङ्करदत्त के यहाँ से योगाभ्यास को शिथिल कर काशीजी आये थे। अपने सहवासियों से बार बार प्रसिद्ध पण्डितों की विद्वत्ता तथा अध्यापन-शैली की जिज्ञासा प्रकट किया करते थे।

यद्यपि विश्वनाथ की राजधानी काशीपुरी में कभी भी संस्कृत विद्या के पारङ्गत विद्वानों की कमी न थी, पर वह काल संस्कृत विद्या की उन्नति के लिये स्वर्णमय काल कहा जा सकता है। पण्डिताग्रण्य सर्वतन्त्रस्वतन्त्र श्री शिवकुमार शास्त्री, पण्डितप्रवर श्री गङ्गाधर शास्त्री, निखिल विद्याविद्योतित पण्डित उमापति द्विवेदी ( नकछेदराम शास्त्री ) श्री तात्या शास्त्री दर्शनप्रतिमूर्ति पण्डित-मान्य अच्युतानन्द त्रिपाठी शास्त्री प्रभृति सूरिसमुदाय से काशी अपने नाम को अन्वर्थ कर रही थी। प्रातःस्मरणीय पण्डित शिवकुमार शास्त्री ऐसे विद्वानों को सरस्वती का साक्षात् पुत्र तथा श्री विश्वनाथ का साक्षात् अवतार कहना अत्युक्ति न होगी। कारण इनके समय से संस्कृत विद्या में जो नवीन प्रकार का जीव सञ्चार हुआ, उसके लिये संस्कृत विद्यानुरागी चिरकाल तक आभारी रहेंगे। ऐसी दशा में जब कि प्रत्येक गलियों में संस्कृत विद्या के स्रोत अनवरत प्रवाहित थे तो पठन पाठन की असुविधा की सम्भावना भी नहीं हो सकती; पर एक उत्कट जिज्ञासु के लिये जिन सुविधाओं की आवश्यकता होती

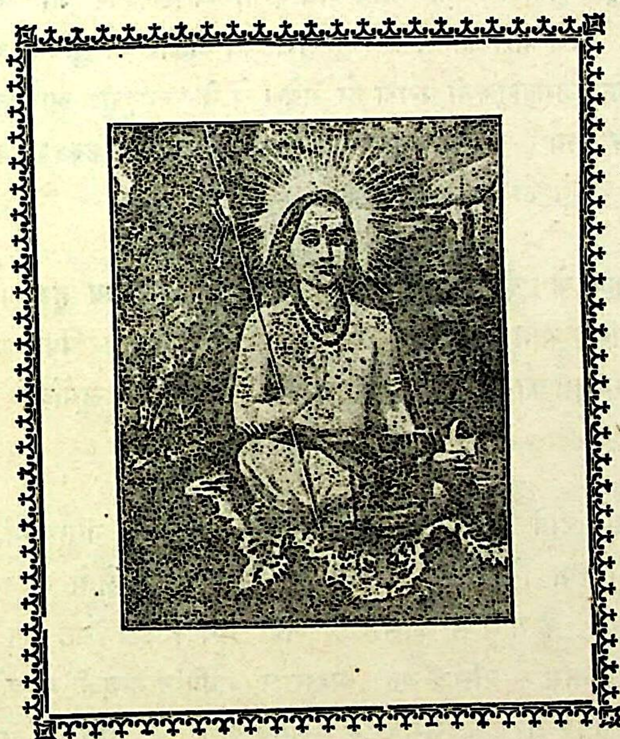
है, स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज को वे सुविधायें प्राप्त न थीं। वे माधुकरी भिक्षा से अपनी जीवन-यात्रा चलाते थे और उसीमें सर्वदा प्रसन्न भी रहते थे। पर देखनेवाले जो उनके पास थे या मिलने आते थे उनकी अलौकिक बुद्धिप्रखरता का प्रत्यक्ष अनुभव कर इस विचार में पड़ जाते थे कि ऐसे भविष्णु व्यक्ति के लिये जीवनोपयोगि सभी वस्तुओं की सुविधा होनी अत्यावश्यक है।

**पं० शिवकुमार शास्त्री का समागम**

किसी दिन स्वामीजी पण्डित-शिरोमणि शिवकुमार शास्त्रीजी के पास पहुँचे। वे दरभंगा नरेश की पाठशाला काशी में अध्यापन कर रहे थे। स्वामीजी उनका नाम तथा ख्याति तो प्रथम से ही सुन चुके थे, पर प्रत्यक्ष उनके अद्भुत पाण्डित्य तथा स्वभाव-सारल्य प्रभृति गुणों को देखकर अत्यन्त मुग्ध हो गये। पण्डितजी पाठ बन्दकर स्वामीजी का स्वागतकर उन्हें उचित आसन पर बिठाकर सविनय आलाप करने लगे। वचन प्रसङ्ग में स्वामीजी ने अपने हृद्गतभावों को पण्डितजी के सामने अभिव्यक्त किया। पण्डितजी स्वयं भी अनुभव कर चुके थे कि एक जिज्ञासु के लिये किसप्रकार की सुविधा होनी चाहिये। इसलिये पण्डितजी ने क्रमशः इस बात का पता लगा लिया कि स्वामीजी सर्वथा असहाय तथा निरपेक्ष व्यक्ति हैं; पर हैं कुशाग्र बुद्धि जिज्ञासु। इनकी जबतक खान-पान तथा रहन-सहन की उचित व्यवस्था न होगी तबतक शीघ्र कार्यसाफल्य होना असम्भव है। इन्हीं सब बातों को सोचते हुए पंडित-जी ने स्वामीजी से कहा कि:—"आप अपरिचित स्थान में हैं तथा प्रायः अपरिचित जनों में आपका सहवास है। न तो यहाँ आपका कोई बन्धु है न मित्र। यद्यपि मैं समझता हूँ कि आप उच्चकोटि के विरक्त महात्मा हैं, पर विद्याभ्यासोपयोगि वस्तुओं की अपेक्षा तो अवश्य करनी पड़ेगी। आप सहायता के लिये किसके सामने हाथ फैलावेंगे? जबतक निवास तथा खानपान का भार कोई नहीं ले लेगा तबतक प्रतिक्षण आपको बाधाओं का सामना करना पड़गा। यदि उचित प्रबन्ध न होगा तो सभी आशाओं पर जिसके सहारे आप चिरकाल तक प्रभूत कष्ट सहते आये हैं, पानी फिर जायगा। ज्ञानामृतपिपासु ज्ञानामृत के प्रवाह के पास क्यों न बैठा हो, पर साधन के बिना वह अपनी प्यास नहीं बुझा सकता। प्रत्येक कार्य में उचित साफल्य पाने के लिये तदनुकूल साधनसामग्री का होना सर्वथा अनिवार्य है। आप यद्यपि विरक्त महात्मा हैं, किसी वस्तु के अभाव में आप खिन्न न होंगे पर भिक्षा से जीविका करते हुए अध्ययन में उचित साफल्य की आशा नहीं।" इतना कहकर पण्डितजी

शान्त बैठ गये। स्वामीजी भी इन बातों को सुनकर कुछ सोचने लगे और शास्त्रीय विचार के प्रसङ्ग में कुछ समय वहीं बिताकर पंडितजी से बिदा हो अपने निवासस्थान पर आये। एक अनुभवी विद्वान्, जिसके असंख्य छात्र विविध प्रान्तों में विद्या-प्रचार कर रहे थे, उसकी बातों को सुनकर अवश्य स्वामीजी कुछ चिन्तित से हो गये। उनके हृदयाकाश पर धीरे-धीरे नैराश्य मेघ की घटा घिर आई। वे गाढ़ विमर्श में पड़ गये। उस दिन इसी चिन्ता में अपना समय बिताया और इसी अवस्था में रात्रि में शयन भी किया।

श्री १००८ पूज्यपाद जगद्गुरु श्रीस्वामी शंकराचार्यजी महाराज.



वक्तारमासाद्य यमेव नित्या सरस्वती स्वार्थसमन्विताभूत्।
निरस्तदुस्तर्ककलङ्कपङ्का नमामि तं शङ्करमर्चिताङ्घ्रिम् ॥

जिन्होंने सरस्वती भगवती में आये हुए दुस्तर्क दोषों को सर्वथा निरस्त कर दिया, जिस वक्ता को पाकर सरस्वती पूर्ण कृतार्थ हो गई और सुरासुर जिसके चरणरज का अपने मुकुट से अपमार्जन करते हैं ऐसे भगवान् श्री शङ्कर को बारबार प्रणाम है।

**स्वप्न में जगद्गुरु शंकराचार्य का दर्शन**

जागरावस्था की अनुभूत वस्तुओं का स्वप्नावस्था में आवर्तन तो हुआ ही करता है; इसलिये स्वप्न में भी इनके सामने वे ही शास्त्रीजी के कथन पुनः पुनः उपस्थित होते थे। उस समय भी खेद की मात्रा की कमी न थी। इसी विषमावस्था में सहसा उनके सामने दण्डधारी, जिनके चारों तरफ तेजस्विता की किरणें छिटक रही थीं, दिव्यमूर्त्ति उपस्थित हुई। स्वप्न मे ही स्वामीजी ने उस दिव्यमूर्ति का अभिवादन कर सादरार्पित आसन पर बिठाया। अनन्तर इस दिव्य पुरुष ने स्वामीजी के ऊपर दयार्द्र दृष्टिपात करते हुए कहा कि:—"तुम्हें इन बातों के लिये चिन्तित न होना चाहिये। प्रातःकाल तुम, महाराज श्री गोविन्दानन्दजी, मण्डलेश्वर जो साक्षात् हमारे ही स्वरूप हैं, उनके पास जाना; वहाँ तुम्हारी सब प्रकार की सुविधा हो जायगी।" इतना कह कर जगद्गुरुजी परोक्ष हो गये। ये थे 'जगद्गुरु साक्षात् शङ्करावतार भगवान् शङ्कराचार्य। स्वामीजी ने इसके उत्तर क्षण में उठकर भगवान् शङ्कर की इस कृपा पर अपने को कृतकृत्य समझा।

स्वामीजी के हृदय में अलौकिक आनन्द का साम्राज्य हुआ। उस समय रात्रि का अवशिष्ट भाग उन्हें कल्प-सा प्रतीत होने लगा। अपने मनोमन्दिर में भगवान् शङ्कराचार्य को उस दिव्यमूर्ति को प्रतिष्ठित कर सूर्योदय की प्रतीक्षा करने लगे।

प्रातःकाल होते ही स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज गंगास्नान, विश्वनाथ अन्नपूर्णा दर्शन तथा नित्यकृत्य से निवृत्त हो 'टेढीनीम मुहल्ले में संन्यासि निवास, जो गोविन्द मठ के नाम से प्रसिद्ध है, वहाँ गये। इस मठ का नाम पहले 'संन्यासाश्रम के नाम से प्रसिद्ध था। महाराज गोविन्दानन्दजी मण्डलेश्वर ने जब इसका नवीकरण किया उस समय से गोविन्दमठ के नाम से इसकी ख्याति हुई। यह एक अत्यन्त प्राचीन सिद्ध पीठ है। इस पर विद्वान् तपस्वी साधुतागुण-सम्पन्न महात्मा ही आचार्य चुने जाते थे। जिनका निर्धारण साधु-समाजकी ओर से होता था। इनका कार्य भी अभ्यागत महात्माओं की सेवा विद्याभ्यास तथा तपस्या की उपयोगि वस्तुओं का सम्पादन था। यह कहना तो सर्वथा असम्भव है कि इस संन्यासाश्रम की स्थापना कब से हुई। पर महाराज शुक्रभारतीजी से यहाँ की परम्परा जो प्राप्त हुई है उसका नीचे उल्लेख किया जा रहा है।

**स्वामीजी का गोविन्दमठ में गमन**

यह पहले बतलाया जा चुका है कि आश्रम किसी व्यक्ति-विशेष की सम्पत्ति नहीं होता। वहाँ का आचार्यत्व स्वसम्प्रदाय के महात्माओं के ऐकमत्य पर निर्भर होता है। यही क्रम इस आश्रम में भी है। इस आश्रम के अधिपति श्री १००८ श्रीजगद्गुरु शङ्कराचार्य के सम्प्रदाय का कोई भी संन्यासी निर्धारित किया जा सकता है। उक्त सम्प्रदाय के संन्यासी दशनामी कहे जाते हैं। पाठकों को इस सम्प्रदाय के मूल ज्ञान के लिये परम्परा का अल्प निर्देश किया जा रहा है।

**शङ्कर सम्प्रदाय के संन्यासियों का मूल**

श्रुति-प्रतिपादित धर्म के प्रचारक, कलि में तीन आचार्य हुए। प्रथम गौडपादाचार्य, उनके शिष्य गोविन्दाचार्य, उनके शिष्य शङ्कराचार्य। शङ्कराचार्य-रूप में अवतीर्ण साक्षात् भगवान् शङ्कर ने देवांशसम्भूत अपने चार शिष्यों के साथ वैदिक धर्म-विहीन जगत् में वेदों का प्रचार किया। उनके शिष्य पद्मपादाचार्य, हस्तामलकाचार्य, त्रोटकाचार्य तथा सुरेश्वराचार्य, ये चार आचार्य थे। पद्मपादाचार्य के वन तथा अरण्य दो शिष्य थे। हस्तामलकाचार्य के सरस्वती, भारती तथा पुरी नाम के योगविद्याविशारद तीन शिष्य थे। श्रीत्रोटकाचार्य के गिरि, पर्वत तथा सागर नाम से प्रसिद्ध तीन शिष्य थे। तथा सुरेश्वराचार्य के दो शिष्य थे, जिनका नाम तीर्थ और आश्रम था। इनमें पद्मपादाचार्य गोवर्धनमठ (जगन्नाथ पुरी) के, हस्तामलकाचार्य शृङ्गेरीमठ (रामेश्वर) के, त्रोटकाचार्य ज्योतिर्मठ (वदरिकाश्रम—जोशीमठ), सुरेश्वराचार्य शारदामठ (द्वारिका) के आचार्य थे। इन आचार्यों के शिष्य गिरि, पुरी भारती आदि भी अपने अपने आचार्यों के मठ के ही संन्यासी कहलाते हैं। इन्हीं पूर्वाचार्यों की परम्परा के संन्यासी इस समय भारतमें अनेक स्थानों में निवास करते हैं, पर वे हैं सभी दशनामी।

**गोविन्दमठ काशी की गुरुपरम्परा**

इसी सम्प्रदाय के संन्यासी इस आश्रम के आचार्य होते आये हैं। इस बात का पता नहीं कि किसके आचार्यत्व में इस आश्रम का उद्घाटन हुआ, पर कुछ परम्परा, जो शुक्रभारती जी महाराज से उपलब्ध है, उसका उल्लेख किया जा रहा है। यह भी सम्भव हो सकता है कि सर्वप्रथम श्री १०८ महाराज रमेश भारतीजी के ही आचार्यत्व में इस आश्रम का उद्घाटन हुआ हो; पर इसमें अभ्रान्त वृत्तान्त का पता न लग सका।

१—श्री १०८ स्वामी रमेश भारतीजी
२—,, ,, ,, विश्वेश्वरानन्द सरस्वतीजी
३—,, ,, ,, हरदेव पुरीजी
४—,, ,, ,, महेशानन्द गिरिजी
५—,, ,, ,, जगन्नाथ गिरिजी
६—,, ,, ,, शिवशङ्कर भारतीजी
७—,, ,, ,, गणेशानन्दजी पर्वत
८—,, ,, ,, आनन्दानन्दजी सागर
९—,, ,, ,, शिवचैतन्यजी सरस्वती
१०—,, ,, ,, आनन्दाश्रमजी
११—,, ,, ,, रामेश्वरानन्दजी पुरी
१२—,, ,, ,, पुष्करदयालजी गिरि
१३—,, ,, ,, हरद्वारजी गिरि
१४—,, ,, ,, ब्रह्मानन्दजी भारती
१५—,, ,, ,, महेन्द्रानन्दजी गिरि
१६—,, ,, ,, देवेन्द्रपुरीजी
१७—,, ,, ,, सूर्यनारायणजी सरस्वती
१८—,, ,, ,, मथुरानन्दजी गिरि
१९—,, ,, ,, पूर्णानन्दजी पुरी
२०—,, ,, ,, चैतन्यानन्दजी सरस्वती
२१—,, ,, ,, आनन्द भारतीजी
२२—,, ,, ,, जीवन्मुक्त शिवानन्दजी गिरि
२३—,, ,, ,, गङ्गेश्वरानन्दजी गिरि
२४—,, ,, ,, रूपनारायणजी पुरी
२५—,, ,, ,, सूरतगिरिजी
२६—,, ,, ,, आदित्य गिरिजी
२७—,, ,, ,, शुकदेव गिरिजी
२८—,, ,, ,, धनीगिरिजी

२९—,, ,, ,, पूज्यपाद गोविन्दानन्द जी महाराज मण्डलेश्वर

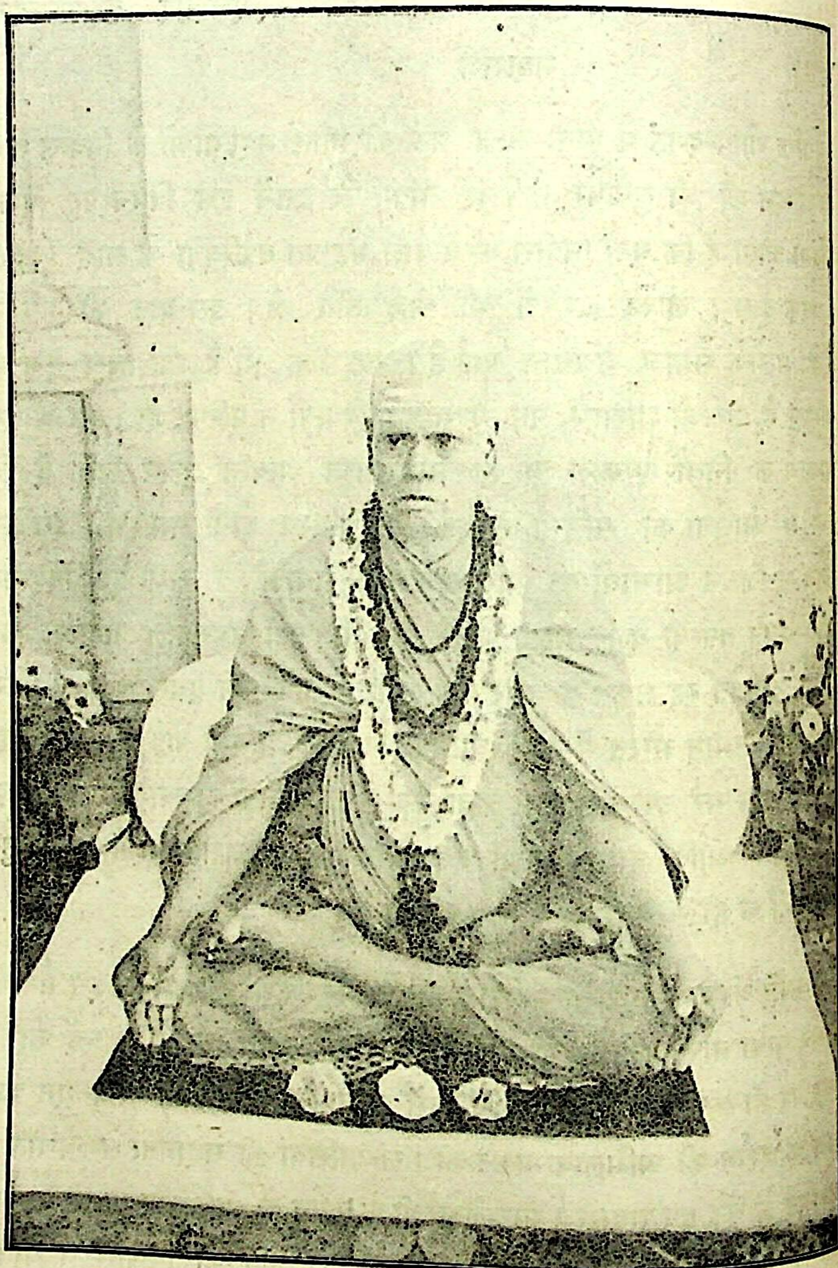
३०—,, ,, ,, पूज्यपाद सर्वतन्त्रस्वतन्त्र जयेन्द्रपुरीजी महाराज महामण्डलेश्वर

३१—,, ,, ,, वर्तमान मण्डलेश्वर पूज्यपाद कृष्णानन्दजी महाराज

पूर्वोक्त गोविन्दमठ में प्रायः अन्य मठों की भाँति महात्माओं के निवास तथा भोजनाच्छादन की ही सुविधा नहीं दी जाती, पर इसमें इस विषय पर विशेष ध्यान दिया जाता है कि यहाँ निवास करने वाले महात्मा तपस्विता के साथ विद्वत्ता तथा उसके द्वारा लोकोपकार में भी अद्वितीय हों। इस बात की प्रसिद्धि भारत के प्रत्येक समाज में स्थान पाई है। यह ठीक भी है कि जिस वृक्ष की जड़ परिपुष्ट है, उसकी शाखाएँ, पत्र, पुष्प, फलादि क्यों न परिपुष्ट हों। इस आश्रम के आचार्य के निर्धारण काल में ही साधुसमाज अत्यन्त सचेष्ट रहता है कि आचार्य में साधुता की सङ्गिनी विद्वत्ता भी अवश्य होनी चाहिये। इसलिये इस स्थान में जितने आचार्यों का परिगणन किया गया है, वे सभी पूर्ण विद्वान् तथा परिनिष्ठित तपस्वी थे। भला ऐसी दशा में यहाँ रहनेवाले महात्मा कब विद्वत्ता से वञ्चित रह सकते थे और क्यों लोक हितैषिता से पृथग्भूत होते। मेरी समझ में तो वर्तमान भारत में जहाँ धार्मिक भावों ने प्रतिष्ठा पाई है, और जहाँ पर कुत्सित भाव भरे उपन्यास तथा तोता मैना की कहानियों को त्यागकर उपनिषद्, गीता, भागवत आदि धार्मिक ग्रन्थों के अभ्यास ने अवकाश पाया है, वहाँ बहुत अंशों में यहाँ के ही संन्यासियों ने हाथ बटाया है।

स्वामी श्री जयेन्द्रपुरीजी महाराज ने जब अलौकिक गुणसम्पन्न इस मठ को दृष्टिगोचर पाया तो अवलोकन मात्र से ही अपने को कृतार्थ समझा। उन्हें आश्रम के द्वार पर ही कुछ संन्यासी मिले, जिनसे आलापकर स्वामी श्री गोविन्दानन्दजी महाराज के दर्शन की अभिलाषा प्रकट की। संन्यासियों की सहायता से वे मठ के एक बरामदे में बैठे हुए महाराज मण्डलेश्वरजी के दर्शन के साथ स्वप्नश्रुत श्री शङ्कराचार्यजी के उपदेशों का स्मरण करने लगे। उन्हें इस बात का विश्वास न था कि मनुष्ययोनि में इस प्रकार के, जिनके रोम-रोम से तपस्विता तथा विद्वत्ता निकल रही हो, जन भी विद्यमान हैं; पर जिसके सद्विचार तथा सद्व्यवहारों की पुष्टि स्वयं भगवान् शङ्कर कर रहे हों, उसे मनुष्य-कोटि में गिनना भी उचित नहीं। ऐसे जन मनुष्यत्वाक्रान्त अपूर्व ईश्वर की असाधारण विभूति कहे जा सकते हैं।

श्री १०८ पूज्यपाद स्वामी श्रीगोविन्दानन्दजी महाराज मण्डलेश्वर



**स्वामी गोविन्दानन्दजी का दर्शन**

श्रीस्वामी गोविन्दानंदजी महाराज गेहुँआ रङ्गके थे। परिमाण में उन्नत थे। शरीर अल्प स्थूल था। भस्म के त्रिपुण्ड से सर्वदा सुसज्जित विस्तीर्ण ललाट था। देखने से मालूम पड़ता था कि

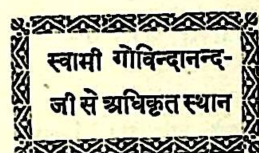
मानो भगवती भागीरथी के तीन प्रवाहों से परिवेष्टित पर्वतराज हिमालय की शिला हो। उनके दाँत अत्यन्त स्वच्छ और शुभ्र वर्ण के थे। आलाप के समय उनसे शुभ्र किरणें निकलती हुई प्रतीत होती थीं। मानो जन्हु ऋषि से निकलता हुआ गङ्गा का प्रवाह दिखाई पड़ रहा हो। सभी पर्वतों से स्थिरता, चारों समुद्रों से गम्भीरता, भगवान् भास्कर से तेजस्विता, कलानिधि चन्द्रमा से शीतलता और गगन से स्वच्छता लाकर मानों आप में कूट-कूटकर भरी गई थीं।

तपस्या का क्याही अवर्णनीय प्रभाव होता है। स्वामी श्रीगोविन्दानन्दजी का शरीर तपाये हुए खरे सुवर्ण की भाँति चमकता रहता था। यद्यपि इनकी मूर्ति अत्यन्त शान्त दिखाई देती थी, पर मैंने भी स्वयं अनुभव किया है कि चमकती हुई बिजली की भाँति दर्शकों के नेत्रों को चकाचौंध में डाल देती थी। ये सर्वदा उदासीन-से दिखाई देते थे, पर जिसने प्रथम इनका दर्शन पाया उसे भय-सा प्रतीत होने लगता था। धार्मिक क्षेत्र में आपका उस समय इतना विशाल प्रभाव था कि इनकी स्थिति से संसार मानो दो सूर्य से युक्त हो गया था। वसुन्धरा की स्थिरता मानों आपकी ही तपस्या पर निर्भर थी। किसी भी दीन दुःखी को जब दृष्टिगोचर पाते थे तो इनका करूणोदधि कल्लोल से परिपूर्ण हो सीमा से अतिरिक्त हो जाता था। जन्म-मरण-क्लेश से भीत जनों के लिये मानों संसार-सागर को पार करने के लिये सेतु-से थे। कोई भी ऐसा जिज्ञासु न था जो आपके पास पहुँचकर भ्रान्ति-शून्य तथा स्थिरचित्त न हो गया हो। संसार में निराश्रय हो भटकती हुई शान्ति देवी के परिपुष्ट मन्दिर थे। चारों तरफ विस्तृत तृष्णालता को उन्मूलन करने के लिये कुठार से थे। शान्ति-वृक्ष के अच्छेद्य मूल थे। सागर में अगाध जल की भाँति इनके सन्तोष का कोई ज्ञानवान् भी पता न लगा सका कि कितने परिमाण में इनमें सन्तोष निवास करता है। धर्म रूप ध्वज के ठहरने के लिये महोन्नत वंश थे। इनके उपदेश को लोग मन्त्रवत् ग्रहण करते थे, जिससे किसी भी प्रस्तुत कार्य में असाफल्य का अनुभव नहीं करते थे। इसलिये सिद्धिमार्ग के उपदेष्टा रूप से लोगों में प्रसिद्ध थे। जिस तरह पर्व के दिन तीर्थ स्थानों में अगणित मनुष्यों का संघट्ट होता है, ठीक इसी प्रकार इनमें सभी विद्याओं का निरन्तर संघट्ट रहा करता था। लोभ-सागर को शुष्क बनाने के लिये प्रलय काल के सूर्य के समान थे। प्रायः विद्वानों के सम्पर्क में अपना अधिक समय यापन करते थे और उनके साथ प्रत्येक शास्त्रों की चर्चा भी किया करते थे, प्रतीत होता था कि ये शास्त्ररत्नों की परीक्षा के लिये कसौटी थे। क्रोध-सर्प ने, संसार में ऐसा कौन होगा जिसमें अपना विष

सञ्चार न किया हो, पर इन स्वामी रूप मन्त्र के सन्मुख वे हतप्रभ हो दूर से ही भाग जाते थे। इन प्रचण्ड सूर्य के समक्ष अज्ञानान्धकार ने कभी अपना स्वरूप भी न दिखाया। सदाचार, सौजन्य प्रभृति लोकोत्कृष्ट गुणों के निवासार्थ ये सुदृढ़ तथा रम्य निजी गृह थे। प्रतिदिन इनकी निरीक्षकता में मङ्गल कार्य होते रहते थे; इसलिये शुभकार्यों के मानो खजाना थे। इन महात्मा रूप अग्नि में मद तथा मोह तृण के समान भस्म हो जाते थे। सर्वदा सन्मार्ग के ही पथिक तथा प्रदर्शक थे। सज्जनता के तो जनक थे। सत्वगुण इनमें निर्विरोध निवास करता था। किसी के भी जगतीतल में शत्रु न थे। यदि इनकी शत्रुता देखी गई तो केवल कलि के प्रभाव से उत्पन्न दोषों के साथ। तपस्या के तो खजाना थे ही। सत्यता के साथ अपनी मित्रता को सर्वदा आदर देते थे। ये इस प्रकार के सुसज्जित क्यारी थे कि सरलता के नये नये अङ्कुर इनमें प्रतिदिन उगते थे। मात्सर्य वन को शीघ्र भस्म करने के लिये प्रचण्ड दावानल थे। पुण्य कार्यों के निर्माणकर्ता थे। सुख-लिप्सा से विमुख रहते थे। क्षणभंगुर शरीर को परोपकार का साधन समझते थे। जिन जीवों का जन्मसिद्ध विरोध है, इन महात्मा के पास यदि वे विरोधी जीव आ जाते थे तो पारस्परिक विरोध को छोड़कर मित्रता का व्यवहार करने लगते थे।

इन महात्मा का केवल महात्माओं की संख्या बढ़ाना ही ध्येय न था, पर इनके व्यापारों से भी यही ज्ञात होता था कि इनकी अभिलाषा सर्वदा इस विषय की रहती थी कि इस आश्रम के महात्मा पूर्ण विद्वत्ता सम्पादन कर देश विदेशों में भ्रमण कर सनातन धर्म का प्रचार करें। इसलिये वे मठ में निवास करनेवाले महात्माओं को स्वयं पढ़ाते थे। और भी महात्माओं को, जो शास्त्रप्रवीण थे, उन्होंने अध्यापन का भार दे दिया था। साधु महात्माओं के लिये भोजन, वस्त्र, पुस्तकादि का प्रबन्ध स्वयं उचित रूप से करते थे। यहाँ तक कि उन्हें उपयोगि किसी भी वस्तु की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती थी। इस मठ में जब कभी जाने का सौभाग्य किसी को प्राप्त होता था तो यहाँ यही दृश्य दिखाई देता था कि कहीं ब्रह्मचारी वेद पाठ करते हैं, कहीं साधु महात्मा वेदान्त-सिद्धान्तों पर विशद विवेचना कर रहे हैं, कहीं व्याकरण, न्याय, मीमांसा की चर्चा हो रही है। कहीं पर योगशास्त्र के आधार पर योगाभ्यास हो रहा है। इसलिये आपके जीवन में जिज्ञासु महात्मा इस प्रसिद्धि को प्रत्यक्षतः अनुभूत कर इन्हीं महात्मा की पादच्छाया में अपने श्रम को दूर करना चाहते थे। मण्डलेश्वरजी कभी भी किसी जिज्ञासु के समक्ष

स्थानाभाव तथा साधन-न्यूनता को उपस्थित न करते थे; पर कभी कभी मण्डलेश्वर जी को अधिक संख्यक महात्माओं के निवास तथा अन्य साधनों की न्यूनता पर स्थानान्तर के लिये विचार भी करना पड़ता था। जब कि उत्तरोत्तर जिज्ञासु महात्माओं की संख्या बढ़ती गई तो स्वामीजी को विवश होकर उनके निवास के लिये स्थानान्तर के स्वायत्तीकरण का उपाय करना पड़ा।


स्वामी गोविन्दानन्द-जी से अधिकृत स्थान

ठीक इसी समय राजराजेश्वरी का मन्दिर, जो ललिताघाट काशी में है, किसी कारणवश वहाँ के अधिकारी महात्मा के अधिकार से पृथक् हो गया था और वह स्थान किसी अनधिकारी के अधिकार में जानेवाला था। महाराज गोविन्दानन्दजी ने इस स्थान को साधु-सम्पत्ति प्रमाणित कर अपने आधीन कर लिया और इस स्थान में साधु महात्मा, पण्डित तथा छात्रों को निवास की सुविधा कर दी। जिस प्रकार गोविन्द मठ-निवासी जनों को सब प्रकार की सुविधा थी, ठीक उसी प्रकार वहाँ के निवासी भी निश्चिन्त हो विद्याभ्यास तथा तपश्चरण मे तत्पर रहते थे।

इस बात को मैं पहले ही बतला चुका हूँ कि स्वामी गोविन्दानन्दजी महाराज स्वयं अध्यापन करते थे; पर छात्र तथा महात्माओं की अधिकता के कारण ही उन्होंने एक पाठशाला भी स्थापित करने की आवश्यकता समझी। परामर्शदाता लोगों ने सिद्ध बाबा अपारनाथ मठ को ही पाठशाला का रूप देने का विचार प्रकट किया। यह स्थान उस समय संन्यासिमण्डल के ही आधीन था। अधिकारियों ने मण्डलेश्वरजी के इस श्रेयस्कर विचार का सहर्ष अनुमोदन किया और विद्यालय के उद्घाटन के लिये मण्डलेश्वरजी से अनुरोध किया कि शीघ्र ही इस विचार को कार्य रूप में परिणत कर दिया जाय। पूज्यपाद कैलाशवासी मण्डलेश्वरजी ने अत्यन्त प्रसन्नता तथा समारोह के साथ सोत्साह सम्वत् १९६३ वैशाख कृष्ण सप्तमी तदनुसार ता० २५ अप्रैल सन् १९०६ ई० में इस विद्यालय को स्थापित किया और काशी के प्रधान विद्वानों की नियुक्ति कर व्याकरण, दर्शन, साहित्य, वेद तथा ज्योतिष का अध्यापन प्रारम्भ करा दिया।

इस स्थान के बारे में परम्परा से यह प्रसिद्धि चली आ रही है कि औरङ्गजेब के शासनकाल में इस स्थान पर एक तपस्वी, योगी तथा त्यागरूप महात्मा बाबा अपारनाथ निवास करते थे। इनकी तपस्या का चमत्कार संसार के प्रायः अंशों में प्रसिद्धि पा चुका था। इनकी तपस्या के प्रभाव से इनके सामने मुगल सम्राट् औरङ्गजेब को भी झुकना पड़ा और उसने सानुनय इनके निवास-स्थान पर विशाल

मठ बनवा दिया तथा इसी स्थान से सम्बद्ध एक दूसरा स्थान जो लक्ष्मीकुण्ड पर वर्तमान है और जो ( टेकरा ) नाम से ख्यात है उसका भी निर्माण औरङ्गजेब के प्रयत्न से ही हुआ था। सिद्धपीठ अपारनाथ के मठ में शङ्करजी का मन्दिर भी है, जिसके सम्मुख अखण्ड-ज्योति-दीप जलता रहता है। पागल कुत्ते से दष्ट जन इस दीपक के तैल-प्रयोग से विष-बाधा से मुक्त हो जाते हैं; इसलिये दूर दूर से लोग इस दीपक का तैल ले जाते हैं। सिद्ध बाबा अपारनाथ की कृपा से अभी तक यह नियम कहीं व्यभिचरित नहीं हुआ।

अब महात्माओं को अध्ययन के लिये पूर्ण सुविधा हो गई, पर जितने महात्मा संन्यासी विद्यालय तथा गोविन्दमठ में अध्ययन करते थे उनके लिये फिर भी स्थान का सङ्कोच पड़ता था, इसलिये मण्डलेश्वरजी ने इस विद्यालय से जिसका प्रथम से ही सम्बन्ध चला आता था, टेकरे को भी छात्रावास के लिये अपने अधिकार में कर लिया और वहाँ निवास करनेवाले अध्ययनशील महात्मा तथा छात्रों के लिये वहीं भोजनादि का भी प्रबन्ध कर दिया। इन तीनों स्थानों में प्रचुर संख्या में विद्यार्थी रहने लगे और सभी के उचित प्रबंध का भार पूर्वोक्त मण्डलेश्वर जी के प्रयत्न पर निर्भर था।

मण्डलेश्वरजी के अपूर्व दर्शन से स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज के रोम रोम प्रसन्नताकी अधिकताके कारण विकसित हो गये; मानो प्रसन्नता उनके शरीर में न समाकर रोम रूपमें बाहर निकल रही थी। सविनय चरणस्पर्शकर मण्डलेश्वर जी के वचनामृत की प्रतीक्षा करते हुए सामने पड़ी हुई चटाई पर बैठ गये। मण्डलेश्वरजी तपस्या के प्रभाव से दृष्टि के सामने आये हुए जनों के मनोभाव से तत्क्षण ही परिचित हो जाते थे। स्वामीजी को देखते ही प्रसन्नतापूर्वक साशीर्वाद कुशल प्रश्न करने लगे। स्वामीजी कहते थे कि:—"जो आशालता प्रायः पं० शिवकुमार शास्त्री के आलाप के अनन्तर शुष्क-सी हो गई थी, फिर स्वप्न में अवलोकित जगद्गुरु के उपदेशामृतसेक से पुनः नवाङ्कुरित हो गई थी, उसी आशालता में मण्डलेश्वरजी की सहानुभूति तथा प्रसन्नतापूर्ण बचनों से पूर्ण घने पल्लव भी आ गये।" उक्तिप्रत्युक्ति से मण्डलेश्वरजी स्वामीजी की विद्वत्ता सद्विचार, अलौकिक प्रतिभा तथा जिज्ञासा से भी परिचित हो गये। यद्यपि मण्डलेश्वरजी के तीनों स्थानों में बहुत से जिज्ञासु महात्मा थे, पर स्वरूप तथा प्रतिभा में ये सबसे अधिक उत्कृष्ट प्रतीत हुए। मण्डलेश्वरजी उस समय स्वामीजी से इतना ही कहकर शान्त हो गये कि आप इच्छापुरी धर्मशाले से अपना सामान लाकर यहीं रहने का विचार स्थिर करें।

इन बातों को सुनकर उनके हृदय-पटल पर मानो सुधासेक-सा हो गया और वे अभिवादन कर वहाँ से उठ दिये। इच्छापुरी धर्मशाला में आकर इस शुभ सन्देश को अपने सहवासियों को सुनाया और इस वृत्तान्त से परिचित कराने के लिये पण्डितराज शिवकुमार शास्त्रीजी के पास भी गये। यह समाचार सुन पण्डितजी ने अत्यन्त हर्ष प्रकट किया और स्वामीजी से यह कहकर बिदा किया, कि "आप अब अवश्य मेरे पास आकर शास्त्राध्ययन करें। मुझे जिस बात की चिन्ता थी, दयालु भक्तवत्सल भगवान् शङ्कर ने आपका सब प्रबन्ध कर दिया। मैं आशा करता हूँ आपके सभी अभिलषित कार्य भी शङ्करजी की कृपा से सर्वथा परिपूर्ण होंगे। मण्डलेश्वरजी इस समय प्रमुख विद्वानों में गण्य हैं। श्रद्धापूर्वक उनसे अध्ययन कीजिये और मैं भी सेवा के लिये सब प्रकार प्रस्तुत हूँ"

सहृदयता-परिपूर्ण इस प्रकार की बातों से स्वामीजी ने भगवान् विश्वनाथ की अपने ऊपर अपरिमित दया समझी और आकर उसी दिन सन्ध्या समय इच्छापुरी की धर्मशाला से स्वामी गोविन्दानन्दजी महाराज की शान्तिप्रद पादच्छाया की शरण ली। मण्डलेश्वरजी ने और महात्माओं की भाँति उनका भी उचित प्रबन्ध कर दिया।

स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज तो स्वामी ब्रह्मानन्दजी से ही बहुत कुछ अध्ययन कर चुके थे और पण्डित गरुड़ध्वज के पास भी व्याकरण का अध्ययन किये थे; पर समय की न्यूनता के कारण उच्चकोटि के ग्रन्थों की विशद विवेचना न कर पाये थे। इसीलिये इस कमी की पूर्णता के लिये आपके गुरु महाराज राजेन्द्रपुरीजी का भी प्रथम यही उपदेश था। अब इस पूर्णता के सुयोग की उपस्थिति देखकर स्वामीजी अपने को कृतार्थ समझने लगे। दो-चार दिनों के अनन्तर मण्डलेश्वरजी ने स्वामीजी को बुलाया और सारी सुविधाओं के विषय में सन्तोषप्रद आलाप कर अध्ययन आरम्भ करने के लिये प्रेरणा की। स्वामीजी तो इसी आज्ञा की प्रतीक्षा कर ही रहे थे। अब वे वेदान्त के उच्चकोटि के ग्रन्थों का अध्ययन स्वामी गोविन्दानन्दजी महाराज से ही प्रारम्भ कर दिये। सर्व प्रथम उन्होंने मण्डलेश्वरजी के पास श्रीश्रीहर्ष-रचित 'खण्डन' का अध्ययन प्रारम्भ किया। मण्डलेश्वरजी साक्षात् दर्शन शास्त्र की प्रतिमूर्ति थे। यों तो आप की बुद्धि सर्वदिग्गामिनी थी। पर वेदान्त के अनुशीलन तथा अध्यापन में ही उनकी अधिक रुचि दिखाई देती थी। उनकी अध्यापनशैली भी निराली थी। वे विद्यार्थियों को बड़ी सावधानी से पढ़ाते थे और उन्हें स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखते थे। जिस प्रकार भविष्य में विद्यार्थियों

का तथा उनके द्वारा लोक का हित हो, उस प्रकार के कार्य करने में सदा यत्नशील रहते थे। जो पाठ प्रथम दिवस पढ़ा देते थे उसे दूसरे दिन पूछ भी लिया करते थे। पर स्वामी जयेन्द्रपुरीजी में उन्होंने यह विशेषता पाई कि जिस समय मण्डलेश्वरजी उनका पाठ समाप्त कर देते थे, उसी समय स्वामीजी पठित विषय को अक्षरशः आनुपूर्वी सुना देते थे। विदित होता था कि इनका चिरकाल से मनन किया हुआ विषय है। इस अप्रतिम प्रतिभा से मण्डलेश्वरजी अत्यन्त प्रभावित हुए और चिरकाल से सोचा हुआ विषय जो उचित साधन न उपलब्ध होने से स्वस्थान में ही विलीन हो जाता था अब वह भी चित्त में स्थान पाने लगा। मण्डलेश्वरजी की प्रथम से ही यह उत्कट अभिलाषा थी कि इस विषमकाल में एक ऐसे सुधारक की आवश्यकता है जो अपने बुद्धिप्रभाव से श्रुतिस्मृति प्रतिबोधित मार्ग से विचलित भारतीयों को उचित मार्ग पर लाकर फिर जगद्गुरु शङ्कराचार्य की भाँति वैदिक मार्ग को निष्कण्टक बना दे। इसीलिये एक विरक्त, निष्काम महात्मा होते हुए भी उन्होंने मठ, पाठशाला तथा छात्रावास के स्थापन में सचेष्टता दिखलाई थी।

स्वामीजी की इस अलौकिक प्रतिभा से मण्डलेश्वरजी का स्नेह उनपर अधिक प्रवृद्ध हो गया; क्योंकि अपने पूर्व विचारों का सिद्धान्त इन्हीं को वे अवधारित कर चुके थे। अब मण्डलेश्वरजी के आश्रम में स्वामी जयेन्द्रपुरीजी साधारण जिज्ञासुओं के समान न थे। इनके साथ मण्डलेश्वरजी का वह व्यवहार न था जैसा कि अन्य विद्यार्थियों के साथ। दूसरे विद्यार्थियों के साथ पाठप्रसङ्ग को छोड़कर दूसरे आलापों से मण्डलेश्वरजी का कोई भी सम्बन्ध न रहता था; परन्तु स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज के साथ पाठप्रसङ्ग के अतिरिक्त विषयों पर भी समालोचनायें चला करती थीं। गुरुदेव के साथ उनके विशेष आलाप हुआ करते थे, पर वे किस विषय के आलाप थे इसका पता किसी को न चलता था। कारण जब कभी आलाप होता था तो एकान्त में ही। उस स्थल पर गुरू तथा शिष्य के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति का प्रवेश सर्वथा निषिद्ध था। फिर भी हम अनुमान कर सकते हैं कि एकान्तवास का कारण तथा आलाप का विषय क्या हो सकता है। सहवास तथा अध्यापन से मण्डलेश्वरजी इस बात से पूर्ण परिचित हो गये थे कि स्वामी जयेन्द्रपुरी जी केवल उच्चकोटि के विद्यार्थी ही नहीं है, पर इन्होंने योगसाधन में भी पुष्कल श्रम किया है और भारत की बिगड़ी हुई धार्मिक दशा को पुनः प्रकृतिस्थ करने के पूर्ण अभिलाषुक हैं। जिस प्रकार रणकुशल वीर समराङ्गण में सिंहगर्जन करने के पूर्व



अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होने के लिये शस्त्रागार में प्रविष्ट होता है, इसी प्रकार स्वामी

जयेन्द्रपुरी जी भारत में स्थिरपद अज्ञान तथा अधर्म के उच्छेद के प्रथम इस शास्त्रागार में सर्वथा सुसज्जित होने के लिये प्रविष्ट हुए हैं, यह मण्डलेश्वरजी की दृढ़ धारणा थी। और इस बात से मण्डलेश्वरजी को अत्यन्त प्रसन्नता थी। जिस वस्तुको वे चिरकाल से ढूढ़ रहे थे, दैवात् वही वस्तु उनके हाथ लग गई। मण्डलेश्वरजी कभी कभी इस चिन्ता से खिन्न हो जाते थे कि सनातन धर्म के प्रचार तथा भारतके अभ्युत्थान कार्य रूप महायज्ञ में अपने कैवल्य के अनन्तर आचार्यपद पर किसे नियुक्तकर वे स्थिरचित्त होंगे। जिस सनातन धर्म की उन्नतिध्वजा का वे स्वयं उद्वहन करते थे, शरीरत्यागानन्तर वे किसे इस भार का उद्वोढ़ा बनावेंगे। उनके न रहने पर चिरकाललालित, प्राणाधिकप्रिय, सुरक्षित धार्मिक क्षेत्र का कौन उत्तराधिकारी होगा। सनातनधर्मावलम्बि जनों का, सुख दुःख की अपेक्षा न कर, कौन नेतृत्व का यथोचित निर्वाह करेगा। यह चिन्ता इन विरक्त महात्मा के हृदय में कभी-कभी अशान्ति पैदा कर दी थी। इसी चिन्ता में पड़कर कभी-कभी पाठ भी बन्द कर दिया करते थे। अब वह अशान्ति शल्य इनके हृदय से स्वामी जयेन्द्रपुरी रूप विशल्यकरिणी महौषधि को पाकर विगलित हो बाहर निकल आया और उनके चित्त में पूर्ण सन्तोष आ गया। उन्हें इस बात का निश्चय हो गया कि सनातन-धर्मप्रचार के उत्तरदायित्व के निर्वाह के लिये यही जिज्ञासु महात्मा विद्यार्थी सर्व प्रकार योग्य है। सत्यासत्य विवेक के लिए मण्डलेश्वरजी ने वेदान्त के गूढ़ रहस्य रूप कुञ्जी स्वामी जयेन्द्रपुरी को देना निश्चित कर लिया और स्वामीजी को अधिक से अधिक समय देकर पढ़ाने लगे। यद्यपि मण्डलेश्वरजी अन्य छात्रों की अपेक्षा इन्हें अधिक समय देते थे, पर उनके ऊपर अध्यापन तथा उपदेशमालाओं के लेख और ग्रन्थनिर्माण का भी विशेष भार था। इसलिये केवल मण्डलेश्वरजी का अध्यापन स्वामीजी की अलौकिक प्रतिभा के लिये पर्याप्त न होता था। जब मण्डलेश्वरजी ने देखा कि इस कुशाग्रबुद्धिशाली के लिये गुरूपदेश केवल निमित्त मात्र है तो अपनी पाठशाला में भी जिसे पहले बतला चुके हैं स्वामीजी को पढ़ने की आज्ञा दे दी।

वस्तुतः स्वामी गोविन्दानन्दजी महाराज का स्वामीजी पर इतना गाढ़ अनुराग था कि वे चाहते थे किस तरह ये शीघ्रातिशीघ्र सर्व विद्याविद्योतित हो धर्मोद्धारक्षेत्र में उतर पड़ें। अन्त में ऐसा ही हुआ भी। ठीक है, महर्षि उसी वस्तु की अभिलाषा करते हुए दिखाई देते हैं जो अभिलाषित वस्तु पहले से ही सिद्ध होती है। कविप्रवर भवभूति ने भी 'उत्तर रामचरित' नाटक में कहा है कि—

"लौकिकानां हि साधूनां वागर्थमनुधावति।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति॥"

युञ्जान योगियों की वाणी निकलने पर अर्थ सिद्धि होती है और युक्तयोगियों की वाणी निकलने के पहले ही अर्थ सिद्धि हो जाती है। मैं तो समझता हूँ कि यदि स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज, मण्डलेश्वर स्वामी गोविन्दानन्दजी की शिक्षा तथा संसर्ग न पाते तो अवश्य इनकी विद्या अधूरी रह जाती। और जिस प्रकार इन्होंने अपनेको भविष्य में भारत के आदर्श धर्मोद्धारकों के पद पर प्रतिष्ठित किया उस पद के अधिकारी होते अथवा एक कमण्डलुधारी परिव्राजक ही बने रहते, इसमें सन्देह रह जाता। यह तो निर्विवाद है कि मण्डलेश्वरजी का स्वामीजी के साथ केवल बाह्योपचारपूर्ण ही सम्बन्ध न था; किन्तु मण्डलेश्वरजी के प्रत्येक कार्य में परामर्शदाता भी येही निश्चित किये जाते थे। इन व्यवहारों से भी यह निःसन्देह है कि गुरु तथा शिष्य का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध था। रक्त का सम्बन्ध न होते हुए भी रक्तसम्बन्ध की अपेक्षा वह सम्बन्ध अत्यन्त निकटतम था। जिस प्रकार आत्मज की प्रकृति में जनक प्रच्छन्न रूप से विद्यमान रहता है, ठीक इसी प्रकार शिष्य की प्रकृति में भी गुरु निगूढ़ भाव से वर्तमान रहता है। इसका मुख्य कारण यह है कि गुरु का आचार-विचार, रहन-सहन तथा उपदेशों का शिष्य पर अधिकाधिक प्रभाव पड़ता है। आचार्यों ने कहा भी है कि:—
"यादृशैः सन्निविशते यादृशांश्चोपसेवते। यादृगिच्छेच्च भवितुं तादृग्भवति पूरुषः॥"
मनुष्य जिस प्रकार के लोगों का सहवास करता है, जैसे मनुष्यों की सेवा करता है और जैसा होना चाहता है वैसा ही हो जाता है। इसीलिये गुरुओं को योग्यता तथा सच्चरित्रताके संरक्षण के लिये सतर्क रहना पड़ता है। अस्तु, गुरु शिष्य का सम्बन्ध पिता पुत्र के सम्बन्ध की भाँति अविच्छेद्य होता है। स्वामी ब्रह्मानन्दजी ने जिस ज्ञानाग्नि की ईश्वरीदत्त रूप अग्न्याधार में स्थापना की थी, स्वामी राजेन्द्र पुरीजी ने संन्यास-ग्रहण के समय जिस सञ्चित अग्नि को अपने उपदेश-इन्धन से जीवित कर रक्खा था, आज वही ज्ञानाग्नि स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज में मण्डलेश्वरजी की शिक्षा तथा संसर्ग एवं प्रबन्ध रूप प्रबल वात को पाकर अब जाज्वल्यमान होने जा रहा है। यह तो मानना ही पड़ेगा कि चिरकाल से स्वामीजी के अन्तःकरणस्थल पर बहते हुए ज्ञान प्रस्रवणों को महाप्रवाह रूप देने का प्रबल साधन मण्डलेश्वरजी का प्रयत्न-मेघ था।

**संन्यासि संस्कृत कालेज**

इस विषय को हम पहले बतला चुके हैं कि मण्डलेश्वरजी का अनुराग विद्याप्रचार द्वारा धर्मोद्धार में अधिक था। इससे यह विषय सहज में ही समझा जा सकता है कि संन्यासि-संस्कृत-पाठशाला के उद्घाटन तथा विशिष्ट विद्वानों की नियुक्ति के मूल में कुछ विशेष लक्ष्य अवश्य था। संस्कृत विद्या के प्रधान केन्द्र काशी नगरी में पाठशालाओं की कमी तो न थी, पर संन्यासी पाठशाला अपने ढङ्ग की निराली पाठशाला थी। इस पाठशाला का यह ध्येय न था कि कुछ दार्शनिक कुछ वैयाकरण और कुछ साहित्यिक तैयार कर पाठशाला की उन्नति का प्रचार करना। पर इस पाठशाला का मुख्य उद्देश्य यह था कि यहाँ से निकले हुए स्नातक सनातन धर्म में आये हुए दोषों का उन्मूलन कर दें तथा सनातन धर्म की ध्वजा को अधिकाधिक उन्नत करें। उसी ध्येय का यह परिणाम है कि आज भी यहाँ से निकले हुए स्नातक, संन्यासी प्रायः प्रत्येक प्रान्तों में भ्रमण कर सनातन धर्म में लगे हुए मालिन्य को दूर कर सर्वदा स्वच्छ बनाने में प्रयत्नशील रहते हैं। जो प्रत्यक्षतः अनुभूत है, जिसके लिये विशेष उदाहरणों की आवश्यकता नहीं और फिर भी अवसर पर उन महात्माओं तथा उन स्नातकों का नामोल्लेखः किया जायगा जो धर्म प्रचार करते थे तथा इस समय भी कर रहे हैं। और उन्हींके प्रचार का फल है कि जहाँ पर लोग अपने प्रिय सनातन धर्म को मिथ्या प्रलोभनों में पड़ कर भूल रहे थे, वे फिर समझ गये कि सब प्रकार की उन्नति के लिये मनुष्य-जीवन के उपयोगी सनातन धर्म ही एक मात्र उपादेय धर्म है।

इस समय संन्यासि-संस्कृत-पाठशाला में, जो संन्यासि-संस्कृत-कालेज के नाम से प्रसिद्ध है, काशी क्या भारत के प्रमुख पण्डित अध्यापन कार्य कर रहे थे। वेदान्त, मीमांसा धर्मशास्त्र का अध्यापनकार्य पण्डिताग्रगण्य श्रीयुत स्वर्गीय अच्युतानन्द त्रिपाठीजी शास्त्री कर रहे थे। ये यद्यपि सर्वतन्त्रस्वतन्त्र थे, पर दर्शनशास्त्र तो अपकी मानों निजी सम्पत्ति थी। इनके पास अध्ययन करने वाले छात्र इनकी अध्ययन-शैली की मुक्तकण्ठ से भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे। न्याय तथा वेदान्त का मत यद्यपि परस्पर कुछ भी सामञ्जस्य नहीं रखता; कारण, एक तो शुद्ध अद्वैत दूसरा शुद्धद्वैत का निरुपण करता है; पर ये पण्डितप्रवर जब न्याय का प्रतिपादन करते थे तो लोगों को गौतम का भ्रम हो जाता था और जिस समय वेदान्त सिद्धान्तों पर विचार करते थे तो श्रोताओं को व्यासका स्मरण हो जाता था। वस्तुतः ये प्रत्येक सिद्धान्तों के अधस्तल तक पहुँचकर उनका यथेष्ट

मनन भी किये थे और उनका स्वरूप यथावत् स्थिर कर लिये थे। तो फिर उन्हें प्रतिपादन काल में सिद्धान्तों के साङ्कर्य का अनुभव कैसे होता ! इनके पाण्डित्य का अनुमान इनके छात्रों से ही हो जाता है। इनके शिष्य भी जब सिद्धान्तों पर विशद विवेचना करने लगते हैं तो साक्षात् तदाकार हो जाते है और वस्तु के स्वरूप का यथार्थानुभव छात्रों को करा देते हैं, उनके प्रतिपादनपटुता से ही गुरु के पाण्डित्यका परिचय हो जाता है। फिर साक्षात् प्रशंसा की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। ये पण्डितराज श्री शिवकुमार शास्त्रीजी के प्रिय शिष्य थे। दूसरे साहित्य तथा व्याकरण के अध्यापक कवि-चक्रवर्ती श्री देवी प्रसाद शुक्लजी थे। उस समय के संस्कृत-साहित्य में ये भारत में अद्वितीय समझे जाते थे। मैंने स्वयं अनुभव कर देखा था कि अध्यापनकाल में ये कभी भी पुस्तक का सहारा न लेते थे और आनुपूर्वी प्रायः साहित्य तथा दर्शनके सभी ग्रन्थ इनकी जिह्वा पर थे। इनकी प्रतिभा तथा वावदूकता का सारा पण्डित-समाज लोहा मानता था। आपने चित्रोपहार नामका खण्डकाव्य रचकर मंण्डलेश्वरश्री गोविन्दानन्दजी महाराजको समर्पित किया था। केवल इसी लघु पुस्तिका के अवलोकन से आपकी प्रगाढ़ साहित्यकला का पूर्ण परिचय मिल जाता है। आपने सिद्धान्त कौमुदी को आशु ग्रहणार्थ पद्य का स्वरूप दे दिया था; पर उनकी अल्पायु के कारण वह अपूर्ण ही रह गई और प्रकाशित न हो सकी, जिसका नाम पाणिनीयप्रकाश है। (वाग्वल्लभ) छन्द का ग्रन्थ, जिसके मूल लेखक आपके पिता श्री दुःखभञ्जन शुक्ल कवि थे, उसकी टीका सरल रूप में आपने की थी। लक्ष्मीनारायण काव्य,चन्द्रशेखर काव्य नामक जीवन-चरित सम्बन्धी दोकाव्य, पुण्यश्लोकोदय ( नल दमयन्ती ) नाटक के रचयिता आप थे। आपने ध्वन्यालोक जो साहित्य का प्रमुख ग्रन्थ है उसकी टीका भी लिखी थी; जिसे आपके गुरुवर माध्वसम्प्रदाचार्य गोस्वामी श्रीदामोदरलालजी महाराजने पूर्ण किया। इसके अतिरिक्त ये हिन्दी में भी विशेष स्थान रखते थे। शारदा-पचीसी (शारदा सम्बन्धी कवितायें) ललितोपहार ( जीवन-चरित ), कवित्व-कानन जिसमें रस, अलङ्कार, रीति, वृत्ति तथा नायकादि भेद संकलित हैं, इन मनोहर विद्वत्प्रिय काव्यों की रचना आपने की थी। तीसरे पण्डित नैयायिक श्री वेचन झा जी थे। ये भी साक्षात् न्याय के स्वरूप ही थे। पाठशाला केवल इन्हीं के पुरस्कार का भार उठा सकती थी; इसलिय और अध्यापक अवैतनिक तथा अस्थायी थे। इन्हीं पण्डितप्रवरोंके पास स्वामीजीने मण्डलेश्वरजीकी आज्ञा से अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। नव्य न्याय, तथा शब्द खण्ड की प्रमुख पुस्तकों का यथावत् तथा शीघ्रही अनुगम कर लिया। कवि-चक्रवर्तीजीके पास

साहित्य के समग्र लक्ष्य तथा लक्षण ग्रन्थों का अध्ययन करने लगे। काव्य-प्रकाश, व्यक्तिविवेक, रसगङ्गाधर प्रभृति ग्रन्थों का केवल अध्ययन ही नहीं, पर विषयों के यथार्थानुभव में भी किसी अभिनिविष्ट साहित्यिक से कम न थे।

पण्डित सम्राट् श्री शिवकुमार शास्त्रीजी की भी इस विद्यालय पर अत्यन्त कृपादृष्टि रहती थी। इस विद्यालय में अध्ययन करने वाले साधुमहात्माओं तथा छात्रों को अत्यन्त अनुराग से पढ़ाते भी थे। इनकी कृपादृष्टि पर कृतकृत्यता प्रकट करती हुई इस विद्यालय की कार्यकारिणी समिति ने तत्सामयिक वार्षिक रिपोर्टों में मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है तथा भूरिभूरि धन्यवादों से इन्हें समलङ्कृत की है। स्वामी जयेन्द्रपुरी जी महाराज पर तो इनका निरतिशय स्नेह था। स्वामीजी ने शास्त्रीजी के पास मीमांसा शास्त्र का अध्ययन किया और उस अध्ययनकार्य को श्लोकवार्तिक, शास्त्रदीपिका तथा शावरभाष्य तक पहुँचाया। ऐसा भी कुछ लोगों का कथन है कि श्रीताँत्या शास्त्री के पास भी आपने व्याकरण का अध्ययन किया था। अस्तु, जो हो यह तो निर्विवाद था कि स्वामीजी ने भाष्यान्त व्याकरण का परिमार्जित स्वरूप समझ लिया था। प्रायः ६-७ वर्ष तक पढ़ने का यही क्रम था। इतने ही दिनों में पूर्वोक्त विषयों में स्वामीजी ने पूर्ण पाण्डित्य प्राप्त कर लिया। स्वामी गोविन्दानन्दनजी महाराज ने शास्त्रों में स्वामीजी को अभ्रान्त देखकर वैदिक साहित्य के अध्ययन की तरफ इनकी चित्तवृत्ति को आवर्जित किया। फिर स्वामीजी ने पण्डितराज श्री शिवकुमार शास्त्रीजी की सहायता से निरुक्त तथा वैदिक साहित्य के अध्ययन में ही पर्याप्त समय लगाया। कारण, इनका मुख्य लक्ष्य तो वैदिक साहित्य ही था, जिसके यथार्थानुभव को सुसम्पादित कर जनों के सामने उसे उपस्थित कर युक्तायुक्त की विवेचना करते। कुछ ही समय में वे वैदिक साहित्य में भी अपना पूर्ण अधिकार स्थापित कर लिये। अब स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज के सामने उस प्रतिज्ञा की पूर्ति का समय आ गया जिसे ये अपने दीक्षा-गुरु स्वामी राजेन्द्रपुरीजी के आदेशानन्तर कर चुके थे।

**अध्यापन कार्य**

पूर्वोक्त प्रकार से जब स्वामी जयेन्द्रपुरीजी ने वैदिक साहित्य तथा तदङ्ग रूप के अपेक्षित शास्त्रों में पूर्ण पाण्डित्य प्राप्त कर लिया तो महाराज गोविन्दानन्दजी मण्डलेश्वर जिस विषय के लिये चिन्तायुक्त रहते थे अब उनकी सारी चिन्तायें विलीन हो गईं और उन्हें आशा

हो गई कि अवश्य ये हमारी अभिलाषा को पूर्ण करेंगे तथा धर्म रक्षण के उत्तरदायित्व को सँभाल कर हम लोगों को विश्राम देंगे। स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज जब कभी अपने भावों का कुछ संकेत करते थे तो मण्डलेश्वरजी समझकर रह जाते थे और उसका कुछ उत्तर न देते थे। इसका कारण यह था कि मण्डलेश्वरजी ने सभी वस्तुओं के अनुभव में ही अपनी दीर्घायु समाप्त की थी। वे समझते थे कि अब तक स्वामी जयेन्द्रपुरीजी का समय अध्ययन में ही बीता है। विद्या की परिपक्वता बिना अध्यापन के नहीं होती। इसलिये यह आवश्यक है कि कुछ काल तक ये परिश्रम से अध्यापन कार्य करें, इससे इनमें विद्या की परिपुष्टि भी आ जायगी और हमारा भी भार कम हो जायगा। इन्हीं सब बातों का निश्चय कर वे किसी दिन बातचीत के प्रसङ्ग में स्वामीजी से कहने लगे। "स्वामी जयेन्द्रपुरी जी! हमारा आशीर्वाद है तथा मुझे विश्वास है कि धर्मोद्धार तथा धर्मप्रचार के सभी कार्यों का निर्वाह तुम्हारे द्वारा हो जायगा। पर हमारा शरीर अब वार्धक्यावस्था में पहुँच रहा है; इसलिये मुझसे पहले की भाँति परिश्रम साध्य नहीं है। इसलिये मैं चाहता हूँ कि कुछ काल के लिये तुम्हें अध्यापन का भार दूँ।" स्वामीजी तो श्रद्धावान् जन थे। उन्होंने गुरु के आदेश का अनुरोध किया और सहर्ष उस भार को अपनाने के लिये "जो आज्ञा हो" कहकर मस्तक नम्र कर दिया और सहर्ष उस भार को स्वीकार कर लिया।

यह पहले बतलाया जा चुका है कि मण्डलेश्वरजी ने स्थान के संकोच से राजराजेश्वरी का मन्दिर जो ललिताघाट पर है उसे आधीन कर लिया था। स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज को वहीं रहकर अध्यापन कार्य के लिये आदेश दिया और एक विद्यालय के उपयोगि साधन भी वहाँ सम्पन्न कर दिये गये। यद्यपि स्वामीजी को यह अभीष्ट न था कि सब प्रकार सौख्यकरी पादच्छाया से अलग रहकर कालक्षेप करूँ; पर अनिवार्य आज्ञा को स्वीकार कर राजराजेश्वरी के मन्दिर में रहने लगे और अध्यापन कार्य भी प्रारम्भ कर दिया।

इस दशा में रह कर स्वामीजी ने अपने समय को तीन भागों में विभक्त कर दिया। १—अध्यापन। २—योगाभ्यास। ३—वैदिक साहित्य का स्वयं अनुशीलन। नित्यकृत्य से अवशिष्ट समय को वे इन्हीं तीनों कार्यों में विभक्त कर देते थे। प्रातःकाल गंगा-स्नान, विश्वनाथ तथा अन्नपूर्णा दर्शन के अनन्तर स्वामी गोविन्दानन्दजी महाराज की सेवा में उपस्थित होते थे।



पूजनादि से निवृत्त होकर पूर्वोक्त मन्दिर में आ जाते थे। फिर अध्यापन

कार्य प्रारम्भ कर देते थे। अध्ययन-काल में जिस प्रकार आपके प्रतिभातिशय से अध्यापकगण चकित हो जाते थे, अध्यापन-काल में भी आपकी प्रतिपादनशैली को देखकर छात्रगण भी उसी भाँति आश्चर्य में पड़ जाते थे। आपकी शास्त्रवोधनशैली एक अद्भुत प्रकार की थी, जिससे छात्रों को पुनः पूछने की आवश्यकता ही न पड़ती थी। संन्यासि-संस्कृत-विद्यालय में अध्ययन काल में ही इनकी प्रतिभा की प्रसिद्धि छात्रों तथा पण्डितों में हो चुकी थी, जिससे अधिक संख्या में छात्र उपस्थित होने लगे। लोगों का कथन है कि स्वामीजी के पास प्रायः ८० विद्यार्थी पाठ पढ़ते थे। अध्यापन में इन्हें इतना अनुराग था कि अपनी भिक्षा का भी इन्हें स्मरण न रहता था। इनकी अध्यापनपटुता को सुनकर मण्डलेश्वरजी अत्यन्त प्रसन्न होते थे।

**स्वामीजी की अस्वस्थ्यता**

हम इस विषय को बतला चुके हैं कि स्वामीजी योगाभ्यास के लिये भी समान समय देते थे। दिन में तो उन्हें अध्ययन अध्यापन से ही समय न मिलता था, पर रात्रि के समय योगाभ्यास में लग जाते थे। उस समय उनका आहार भी केवल दूध, वह भी अल्प मात्रा में, था। निद्रा के लिये भी समय कम मिलता था। इसलिये शरीर अत्यन्त कृश हो गया था। ऐसी दशा देखकर मण्डलेश्वरजी ने आपको आज्ञा दिया कि आप नैनीताल जिले में भुवाली स्थान में चले जाँय, साथ में एक पाचक तथा एक सेवक भी जायगा। स्वामीजी के अधिक अनुरोध से स्वामी वासुदेव गिरि के साथ आप भुवाली चले गये। वहाँ छ मास में पूर्ण स्वास्थ्यलाभ कर फिर काशी लौट आये और पूर्ववत् पठन-पाठन का क्रम प्रारम्भ कर दिया। सं० १९७३ वैशाख मास का यह वृत्तान्त है।

सब प्रकार की सुविधा रहते हुए भी आप केवल भोजन वह भी शरीर धारण-योग्य और निर्वाह-योग्य वस्त्र के अन्य किसी भी वस्तु की आवश्यकता न रखते थे। मण्डलेश्वरजी का जनता पर अधिक प्रभाव था। सभी प्रायः यह चाहते थे कि स्वामी जयेन्द्रपुरीजी को कुछ समर्पण करें, पर स्वामीजी उन्हें गुरुजी के पास ही लौटा देते थे और स्वयं कुछ भी प्रतिग्रह न करते थे। अपराह्न में जब आसन पर बैठते थे तो उस समय भी पाठ चलता था। धीरे-धीरे नगरवासियों में इनकी विद्वत्ता तथा साधुता की प्रसिद्धि हो चुकी थी; इसलिये कुछ सेवक उपदेश श्रवण के लिये भी आ जाया करते थे। क्रमशः उपदेश-श्रोताओं की संख्या बढ़ती गई और स्वामीजी को अपराह्न में अध्यापन के लिये समय कम मिलने लगा। अन्त में उन्हें वाध्य होकर अपराह्न का पाठ स्थगित कर देना पड़ा और सभी पाठों को

पूर्वाह्न में ही समाप्त कर देते थे। रात्रि में योगाभ्यास तथा वैदिक साहित्य की समालोचना किया करते थे। इस तरह उनका कार्यक्रम अब चार भागों में विभक्त हो गया। उपदेश के समय प्रवचन श्रवण करने वालों के द्वारा सुना है कि कभी-कभी ४-५ सौ मनुष्य एकत्र हो जाते थे और स्वामीजी के प्रवचन से जीवन को निर्दिष्ट मार्ग पर चलाकर कृतार्थता का अनुभव करते थे। जनता का स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज पर इतना अनुराग हो गया कि जिस प्रकार आम के फलों को पाकर आम के पुष्प (बौर) को लोग भूल जाते हैं, इसी प्रकार वह मण्डलेश्वरजी की अपेक्षा इन्हीं पर धर्मोद्धार की प्रतीक्षा करने लगी। इस बात से मण्डलेश्वरजी सर्वदा अत्यन्त प्रसन्नचित्त दिखाई देते थे। ठीक भी है, जैसा कि किसी ने कहा है कि: "पुत्रात्पराजयो द्वितीयं पुत्र जन्म"। यदि अपनी अपेक्षा पुत्र अथवा शिष्य अधिक गुणशाली हो जाय तो द्वितीय पुत्रजन्म का सुख होता है। पर स्वामी जयेन्द्रपुरीजी तो सब प्रकार स्वामीजी के गुणों का ही अनुकरण करते थे। चन्द्रिका-पिपासु चकोर जैसे चन्द्रोदय की प्रतीक्षा करते हैं, प्रवचनामृत-पिपासु भक्त-मण्डली भी प्रवचन-काल की प्रतीक्षा में परायण रहती थी। धर्म पर आये हुए उपसर्गों के प्रतीकार में जो धार्मिक जन सर्वदा चिन्तित रहते थे, उपायाभाव से नैराश्यनद के स्रोत में बहे जाते थे, कण्टकाकीर्ण अन्धकाराच्छन्न अटवी में जो मार्ग नहीं पाते थे, अब उनकी चिन्ता विगलित होने लगी। इस विरक्त प्रचण्ड मार्तण्ड के प्रखर उपदेश-किरणों से नैराश्यनद सूखने लगा और अन्धकार विलीन होने लगा, प्रकाश अपना पद स्थिर करने लगा। केवल काशी में ही नहीं किन्तु इस ज्योति का प्रभाव जनश्रुति द्वारा आस-पास जनपदों में भी पड़ने लगा। यह क्रम प्रायः अल्पकाल तक नियमतः चलता रहा। गीष्मावकाश में स्वामीजी गङ्गाजी के किनारे कभी-कभी दो-चार महात्माओं के साथ अकेले 'पैदल यात्रा किया करते थे। फिर चातुर्मास्य के प्रारम्भ में काशी आकर इसी मन्दिर में पूर्ववत् पठन-पाठनक्रम का आरम्भ कर दिया करते थे। इस प्रकार अल्प दिवस में ही इनका शास्त्र तथा वैदिक साहित्य पर पूर्ण अधिकार हो गया। इस विषय को भली भाँति समझकर श्री स्वामी गोविन्दानन्दजी मण्डलेश्वर ने स्वामीजी के, जो प्रति दिन दर्शन के लिये उनके पास जाया करते थे, सम्मुख यह प्रस्ताव उपस्थित किया:—"मेरा शरीर अब जराग्रस्त हो रहा है। धार्मिक क्षेत्र में जिसके लिये जनता आशा लगाये रहती है इस कार्य का निर्वाह मुझ ऐसे वृद्ध से होना कठिन क्या सर्वथा असम्भव-सा है। इसलिये मेरे संकल्पित तथा

धार्मिक जनों के अभिलषित कार्य का भार अब तुम्हारे शिर पर आरूढ़ हो रहा है। जिस भार के उद्वहन में जो क्षमता रखता है उसका निर्वाह भी उसे ही करना उचित प्रतीत होता है। इसलिये काशी के बाहर अन्य प्रान्तों में भी जाकर धर्मोपदेश द्वारा लोकोपकार करो।" स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज ने प्रथम ही यह सङ्कल्प कर लिया था कि चाहे हमारे लक्ष्य में कितनी भी बाधा पड़े, पर गुरुजी की आज्ञा का सर्वतोभावेन यथाशक्ति पालन करूँगा; इसलिये फिर भी अपना शिर नतकर और मण्डलेश्वरजी की आज्ञा को शिरोधार्यकर अपने निवास-स्थान में आये। पाठकों! जरा ध्यान देने की बात यह है कि जिस समय स्वामी श्री गोविन्दानन्द मण्डलेश्वरजी ने अपने मनोनुकूल आज्ञा स्वामीजी को प्रदान की, उस समय स्वामीजी ने केवल शिर झुकाने के अन्य कोई भी शब्द मुख से न निकाला, तनिक भी इतस्ततः न किया। किसी भी प्रकार की आपत्ति उनके समक्ष उपस्थित न की। प्रायः देखा जाता है कि मनःप्रतिकूल वस्तु की उपस्थिति में गुरुजनों से लोग उत्तर देने के लिये समय की प्रार्थना करते हैं, पर स्वामीजी ने उत्तर देने के लिये समय की भी अपेक्षा न की। जब कभी कोई व्यक्ति किसी से क्षुद्र वस्तु की अभ्यर्थना करता है तो दाता अपने चित्त में अनेक प्रकार के विकल्पों का आवर्तनकर पुनः पुनः सोचता है। पर यहाँ गुरुजी शिष्य के जीवन को लेकर अपनी रुचि के अनुसार उससे कार्य-सम्पादन कराना चाहते हैं और शिष्य तुरत ही सोत्साह बिना किसी सङ्कोच के अपने को गुरु के चरणों में समर्पण कर देता है। क्या ही अपूर्व गुरु-भक्ति का आदर्श लोक के सम्मुख उपस्थित किया जा रहा है! किस प्रकार की अनन्यसामान्य उदारता का परिचय दिया जा रहा है? कौन समझ सकता है कि स्वामी जयेन्द्रपुरीजी ने अपने जीवन का लक्ष्य क्या सोचा था! अपने जीवन के हितकर किस मार्ग का समाश्रयण करना चाहते थे! बाल्यावस्था में ही किस लक्ष्य को लेकर उन्होंने सांसारिक व्यवहारों को अपने मुख्योद्देश्य के रोड़े समझ रक्खे थे। न जाने उन्होंने क्या-क्या सोचा होगा! किन विषयों को सामने रखकर योगाभ्यासपरायण हुए थे तथा ज्ञान-सम्पादन के लिये प्रभूत विपत्तियाँ झेली थीं? वह सब "आज्ञा गुरूणामविचारणीया" इस नियम का पालन करते हुए अल्प भी आज्ञावहेलना हितकर न समझा। सम्पूर्ण सोचे हुए विषयों को एक कोने में रखकर गुरु के आदिष्ट मार्ग का ही पथिक होना निश्चय किया। सारे लक्ष्य निष्फल हो गये। उसी क्षण में गुरु के आदेश से उनका जीवन-लक्ष्य सदा के लिये अपने को रूपान्तर में परिणत कर स्थिर हो गया।

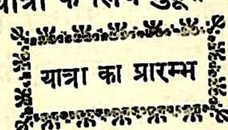
श्री १०८ स्वामी जयेन्द्रपुरी जी महाराज



## कमलहस्त विष्णु तथा भगवान् शंकर द्वारा आशीर्वाद तथा प्रोत्साहन

मण्डलेश्वरजी की आज्ञा को शिरोधार्य कर स्वामी जयेन्द्रपुरीजी ने निश्चय किया कि गुरुजी की आज्ञा का पालन अवश्य कर्तव्य है, पर इस प्रकार के गुरु-कार्य का यथोचित निर्वाह करना मुझ ऐसे साधारण व्यक्तियों के लिये कठिन कार्य है। यह सोचकर वे दूसरे दिन भगवान् शङ्कर के मन्दिर में जाकर पूर्ण निष्ठा से भगवान् का पूजन किये और हरिहरात्मक भगवान् की मूर्ति का ध्यान करते हुए अपने स्थान पर आये। सर्वदा वे इसी विमर्श में रहते थे कि इस भार का निर्वाह बिना ईश्वर की दया के होना असम्भव है। उसी दिन रात्रि के समय जब एकान्त स्थान में समाधिस्थ हो भगवान् हरिहरात्मक शङ्कर का ध्यान कर रहे थे कि इसी समय इनके दोनों भागों में हाथ में कमल लिये हुए भगवान् शङ्कर तथा भगवान् विष्णु मस्तक पर साशीर्वादवचन हाथ रखते हुए अनुभूत हुए। यह शब्द भी उन्हें स्पष्ट सुनाई दिया कि :—"प्रस्तुत कार्य में तुम्हारी गति को कोई भी शक्ति

अवरुद्ध न कर सकेगी ।।" इस आशीर्वादात्मक शब्दानुभव के अनन्तर वे समाधि से उपरत हुए और मनोनीत कार्य के सम्पादन में उनका भय विगलित हो गया यात्रा के लिये मुहूर्त भी निश्चित हो गया ।


यात्रा का प्रारम्भ

सम्वत् १९७४ के प्रायः आश्विन मास में स्वामी जयेन्द्र पुरीजी महाराज के धर्मोद्धारक इस प्रयत्न से पवित्र भारत भूमि सुख से उच्छ्वास लेने लगी । स्वामीजी के पास अध्ययन करनेवाले यद्यपि अनेक महात्मा थे, पर उनमें मुख्य श्री १०८ स्वामी भागवतानन्दजी ध्रुवेश्वर मठ के भूतपूर्व मण्डलेश्वर, श्री १०८ स्वामी रामानन्दजी, स्वामी गोविन्दानन्दजी ( दाक्षिणात्य ), स्वामी महेशानन्दजी ( पञ्जाबी ) आदि कई महात्मा थे, जो ज्ञानार्जन के लिये स्वामीजी से कभी भी पृथक् न होना चाहते थे । इन महात्माओं के साथ स्वामीजी ने अपनी पहली यात्रा प्रारम्भ कर दी । इतस्ततः भ्रमण तथा उपदेश करते हुए ये घण्टा कोठी कनखल में पहुँचे । स्वामीजीके आगमन को सुनकर अनेक महात्मा तथा जिज्ञासु गण वहाँ भी अधिक संख्या में आकर अपनी जिज्ञासा को सफल करते थे । किसी दिन एक जिज्ञासु जिनका शुभनाम कृष्णदास खन्ना था, स्वामीजी को सविनय अभिवादन कर पूछने लगे:—"महाराज । संन्यास से मुक्ति होती है ऐसा मैंने सुना है । मेरी समझ में नहीं आता कि किस वस्तु के संन्यास से मुक्ति होती है ।" स्वामीजी महाराज ने अल्प शब्दों में उनका उत्तर दिया कि :—वासनाओं के त्याग को ही संन्यास कहते हैं और उसी संन्यास से मुक्ति होती है" । फिर और भी जिज्ञासुओं के प्रश्नोत्तर होते रहे, जिसे सुनकर कृष्णदास खन्ना अति सन्तुष्ट हुए और स्वामीजी को अपने प्रान्त में ले जाने का अनुरोध किया । ये महाशय लाहौर के निवासी थे । स्वामीजी महाराज इस भक्त के विशेष अनुरोध से सभी महात्माओं को साथ लेकर लाहौर चले गये । कतिपय दिवस वहाँ धर्मप्रचार कर फिर फिरोजपुर, लुधिआना तथा अम्बाला आदि नगरों में दो-दो चार-चार रोज निवास करते हुए कुरुक्षेत्र पहुँचे । कुरुक्षेत्र में १५-२० रोज भक्तों के अनुरोध से निवास करना पड़ा । स्वामीजी को विदित हुआ कि यहाँ पर छठी भूमिका में पहुँचे हुए एक योगी महात्मा रहते हैं । ये साक्षात् भगवान् दत्तात्रय के अवतार थे । इनका योगपट श्रीस्वामी सदानन्दपुरीजी था । उत्कट श्रद्धा तथा विनय के साथ स्वामीजी ने इन महात्मा का दर्शन किया । कथाप्रसङ्ग से स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज की योग्यता से ये महात्मा परिचित हो गये और इस बात को सुनकर इन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई कि ये स्वामी गोविन्दानन्दजी

महाराज मण्डलेश्वर के शिष्य हैं। फिर स्वामी सदानन्दपुरीजी ने 'जनता की सेवा ही मुख्य संन्यासियों का कर्तव्य हैं इसका उपदेश देकर उन्हें विदा किया।

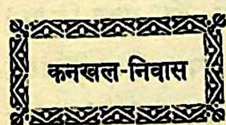
**प्रयाग का कुम्भ**

कई स्थानों में भ्रमण करते हुए स्वामी जी १९७४ सम्वत् में तीर्थराज प्रयाग के कुम्भ पर पहुँचे ? श्रीनिर्वाणी अखाड़ा के आचार्य श्री १०८ मण्डलेश्वर स्वामी गोविन्दानन्द जी महाराज के चरणों पर शिर रखकर अभिवादन किया और गुरुदेव मण्डलेश्वरजी की छावनी में ही आपके निवासार्थ प्रवन्ध हो गया। स्वामीजी जहाँ कहीं रहते थे पठनपाठन का क्रम नियमत: वहीं चलता रहता था। इसी प्रकार मेले में भी क्रम चलता रहा। कुम्भ ऐसे मेले में प्राय: जनता का समागम इसीलिये होता है कि इस अवसर पर अनेक अनुभवी विद्वान् योगी महात्मा अपने सदुपदेशों से जनता में सद्विचार का सञ्चार करते हैं; अत: स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज को भी इस कार्य में पूर्ण भाग लेना पड़ा। जिस समय इनका उपदेश होने लगता था, जनता मूक-सी सावधान होकर इनके उपदेशामृत का पान कर अपूर्व लाभ उठाती थी। किसी दिन कई विशिष्टाद्वैतमतावलम्बी विद्वान् स्वामीजी के पास आकर विचार करने लगे। स्वामीजीने शास्त्र तथा युक्तियों से उन्हें इस प्रकार समझाया कि उसी दिन से शुद्धाद्वैत पर ही उनकी आस्था हो गई और प्रति दिन स्वामीजी के पास आकर प्रवचन श्रवण करने लगे। उपदेश, शङ्का-समाधान तथा अध्यापन में ही दिन का समय व्यतीत हो जाता था। रात्रि के पूर्व भाग में गुरुजी के पास जाकर सेवा तथा आत्म चर्चा से सुखमय समय को व्यतीत करते थे। जहाँ कहीं धार्मिक सभायें होती थी, लोग स्वामीजी को बड़े ही आग्रह से ले जाना चाहते थे। गुरुजी की आज्ञा पाकर स्वामीजी जनता को अपने उपदेशों का अनुयायी वनाकर गुरुजी के पास चले आते थे।




पाञ्चभौतिक शरीर पाकर प्रारब्धका भोग सभी को करना पड़ता है। अमावास्या के दिन बड़े ही समारोह के साथ त्रिवेणी-स्नान का आयोजन हुआ। असंख्य महात्मा तथा सद्गृहस्थ भी साथ ही स्नान के लिये चले। त्रिवेणी में स्नान के अनन्तर पूजनादि में भी अधिक समय व्यतीत हो गया। मण्डलेश्वरजी पर कुछ शीत का प्रभाव पड़ गया, जिससे वे वहाँ से आने के बाद ही ज्वरार्त हो गये। धीरे-धीरे वह कफप्रधान सन्निपात के रूप में परिणत हो गया। मण्डलेश्वरजी ने सोचा कि इस

समय स्वामी जयेन्द्रपुरीजी पर सम्पूर्ण भार देना सुकर होगा, इस बात को सोच कर ज्वरावस्था में ही प्रमुख महात्माओं को बुलाकर सबके सामने अपना प्रस्ताव रख दिया। महात्मावृन्द तो इस विषय की उपस्थिति के लिये प्रथम से ही समुत्सुक था। मण्डलेश्वरजी के इस प्रस्ताव का सभी लोगों ने सहर्ष अनुमोदन किया। अभी तक स्वामी गोविन्दानन्दजी मण्डलेश्वर ने स्वामीजी को साक्षात् आदेश न दिया था, पर कानोंकान ये सारी बातें स्वामीजी के कानों तक पहुँचीं। इस समाचार के सुनते ही स्वामीजी की वह प्राकृतिक विरक्ति जो उपाधि, मान तथा प्रतिष्ठा से सर्वदा विरोध करती आ रही थी, सम्मुख विशाल रूप में उपस्थित हुई। स्वामीजी सोचने लगे कि जब तक गुरुजी मुझे साक्षात् यह भार ग्रहण करने का आदेश न दें, इसके प्रथम ही कोई उपाय कर देना चाहिये। यह सोच कर ये गुरुजी की दशा का स्वयं साक्षात्कार कर निश्चय कर लिये कि गुरुजी का शरीर अवश्य स्वस्थ हो जायगा। इस लिये आदेश के प्रथम ही रात्रि के समय सभी लोगों को छोड़कर केवल एक महात्मा को साथ लेकर वहाँ से जबलपुर चले गये। जबलपुर में उन्होंने किस स्थान को सुशोभित किया, यह अज्ञात है। कारण, महात्मा जो स्वामी जी के साथ थे उन्होंने काशी के पते से पत्र तो दिया, पर अपना पता ठीक न लिखा था; बल्कि किसी के द्वारा पता प्राप्त हो गय था।




इधर मण्डलेश्वरजी के शरीर की दशा क्रमशः शोचनीय होने लगी। यह दशा देखकर सभी लोगों ने ऐक्यमत कर मण्डलेश्वरजी को काशी लाने का विचार किया और यही विचार स्थिर रहा। काशी लाने के अनन्तर जो पता प्राप्त हुआ था उसी पते पर स्वामीजी के पास तुरत आने के लिये तार भेजा गया। पर तार पहुँचने के प्रथम ही वे वहाँ से हरिद्वार के लिये प्रयाण कर चुके थे, इसलिये उन्हें तार न मिला। हरिद्वार पहुँचकर कनखल में महात्मा सूरतगिरि के बँगले के नाम से प्रसिद्ध स्थान में ठहरे। इसके पहले से ही वहाँ के निवासी जन इनकी विद्वत्ता से परिचित थे; इसलिये स्थानीय सभी जिज्ञासु महात्मा तथा विद्यार्थिगण में अपूर्व उत्साह-सा आ गया और सभी स्वामीजी के पास अपनी-अपनी पिपासा को शान्त करने के लिये प्रतिदिन आने लगे। यहाँ तक कि जब यह समाचार आसपास के लोगों तक फैल गया तो हृषीकेश तक के जिज्ञासु स्वामीजी के पास आने लगे। स्वामीजी भी प्रसन्नतापूर्वक न्याय, वेदान्त, व्याकरण आदि विषय को सुचारु रूपसे पढ़ाते थे।

अध्ययन करनेवाले महात्माओं में स्वामी आत्मानन्दजी, स्वामी उत्तमगिरिजी और स्वामी प्रेमपुरीजी उच्चकोटि के जिज्ञासु थे। जिस समय स्वामीजी उक्त स्थान में निवास करते हुए ब्रह्मविद्या का प्रतिपादन किया करते थे, वह स्थान साक्षात् कैलाश ही प्रतीत होता था। ऐसा मालूम पड़ता था कि मानो ब्रह्मविद्याप्रवाह वहीं से निकलकर भक्तजनों के त्रिताप को शान्त करता हुआ मोक्षमार्ग का अधिकारी बना रहा है। इसी काल में हृषीकेश में निवास करनेवाले सर्वशास्त्रनिष्णात स्वामी प्रकाशानन्दपुरीजी महाराज तथा वैयाकरण कैलाश-आश्रम के मण्डलेश्वर स्वामी श्री बिन्द्रानन्दजी महाराज कनखल बँगले पर पधारे। स्वामी प्रकाशानन्दजी महाराज तथा स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज का गीता अध्याय २ श्लोक १६ वें "नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः" पर विचार हुआ तथा उपनिषद् पर भी विचार होता रहा। स्वामी प्रकाशानन्दजी, स्वामीजी से हृषीकेश भी पधारने का अनुरोध कर, अपने स्थान को लौट गये।

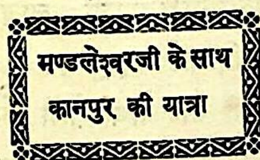
**मण्डलेश्वर गोविन्दानन्दजी का समाचार**

इसी रूप में स्वामीजी कुछ काल तक उक्त स्थान में ही रह गये। कुछ दिनों के अनन्तर काशी के सुप्रसिद्ध रईस गोस्वामी रामपुरीजी का उसी स्थान में आगमन हुआ। स्वामीजी का साक्षात्कारकर वे अत्यन्त पुलकित हुए। स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज ने उनसे सर्वप्रथम गुरूजी के स्वास्थ्य के विषय में ही प्रश्न किया। गोस्वामीजी ने उत्तर दिया कि आपके गुरूजी स्वस्थ तो हो गये, पर आपकी तरफ से उन्हें कुछ खेद भी है; क्योंकि आप रुग्णावस्था में ही उन्हें छोड़कर चले आये तथा बुलाने पर भी न गये। इस वृत्तान्त को सुनकर स्वामीजी के हृदय में गुरूजी के प्रति ऐसा प्रेमभाव उमड़ा कि वे उसे सम्हाल न सके तथा उनका प्रेम आँसू के रूप में शरीर से बाहर निकलने लगा। अब तो उसी क्षण से उनका चित्त गुरूजी के चरणसरोज का ही अनवरत स्मरण करने लगा और वे यही सोचने लगे कि किस प्रकार शीघ्रातिशीघ्र गुरूजी का दर्शन कर अपने अपराधों के लिये क्षमा-प्रार्थना करें। इसी चिन्ताधिक्य से उन्हें ज्वर भी आने लगा। बँगले के महन्त श्री १०८ स्वामी गिरीशानन्दजी महाराज ने जब स्वामीजी की यह दशा देखी तो उन्होंने उसी समय रामकृष्ण-मिशन के डाक्टर को बुलाया तथा कनखल के प्रसिद्ध वैद्यराज पं० यागेश्वरजी को भी बुलवाकर उचित रूप से उपचार कराने लगे। दो ही चार दिनों में ये नीरोग हो गये। पर जिस कारण ये ज्वर से पीड़ित हुए थे वह कारण अभी इनके शरीर में ही था। वह था गुरूजी के चरण-कमल की दिदृक्षा। जब गुरू-

देव की दर्शनेच्छा ने इन्हें स्थिर न रहने दिया तो ये सम्वत् १९७५ आश्विन शुक्ल त्रयोदशी को हरद्वार से काशीपुरी के लिये प्रस्थान कर दिये। दूसरे दिन काशीजी

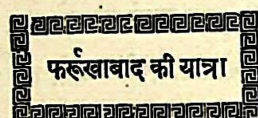

कनखल से काशी-गमन

पहुँचकर प्रथम गुरुदेव के दर्शन के लिये ही गुरुजी के पास आये और भीत-भीत-से गुरुजी को अभिवादनकर अपने अपराधों के लिये पुनः पुनः क्षमा की प्रार्थना करने लगे। महात्माओं की मृदुता तो स्वभावसिद्ध है। स्वामीजी के आने पर मण्डलेश्वरजी में अल्प भी क्षोभ की मात्रा न थी, वे प्रसन्नचित्त थे। स्नेहपूर्वक आशीर्वाद देकर उन्हें पास में बिठाकर कुशलक्षेम पूछा। सत्य है, "औष्ण्यं हि वह्न्यातपसंप्रयोगा-च्छैत्यं हि यत्सा प्रकृतिर्जलस्य" अग्नि तथा धूप के सम्बन्ध से जल में भले ही उष्णता आ जाय पर जल में शीतलता तो स्वाभाविक ही होती है। मण्डलेश्वरजी को प्रसन्न देखकर स्वामीजी सन्तुष्ट हुए और उनकी आज्ञा से दो-चार दिन गोविन्द मठ में ही रहकर फिर राजराजेश्वरी के मन्दिर ललिताघाट पर चले आये तथा पूर्ववत् अध्ययन-अध्यापन का क्रम चलने लगा। उस समय प्रातः वेदान्त का पाठ होता था। अद्वैतसिद्धि गौड़ब्रह्मानन्दी, चित्सुखी, खण्डन, भामती आदि वेदान्त के प्रमुख ग्रन्थों के पढ़नेवाले महात्मा तथा छात्र उपस्थित होते थे। मध्याह्नोत्तर व्याकरण, न्याय, मीमांसा आदि विषयों का अध्यापन करते थे। इसी प्रकार प्रायः ८ मास तक यही क्रम चलता रहा।

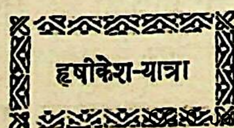

मण्डलेश्वरजी के साथ कानपुर की यात्रा

इस बात को तो बतला ही चुके हैं कि मण्डलेश्वरजी प्रत्येक कार्य में स्वामीजी के ऐकमत्य की अपेक्षा रखते थे। प्रयेक कार्य में इनके सहयोग से उन्हें अत्यन्त संतोष-लाभ भी होता था। एक दिन मण्डलेश्वरजी ने स्वामीजी से कहा कि:—कानपुर से सेठ बाबूलाल केदारनाथजी का साग्रह निमन्त्रण है। कई बार उन्होंने तार तथा चिट्ठियाँ भी भेजीं। अस्वस्थता के कारण तथा अन्य कार्यों की अपेक्षा से जब मैं न जा सका तो उन्होंने अपने मुनीम को साथ ले आने के लिये भेजा। इसलिये इस भक्त के सानुरोध निमन्त्रण को स्वीकारकर मुनीम को लौटा दिया। मेरी अभिलाषा है कि आप भी साथ चलें।" स्वामीजी ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। स्वामीजी के पास अध्ययन करने वाले महात्माओं तथा और भी कुछ संन्यासिओं को साथ लेकर मण्डलेश्वरजी ने कानपुर के लिये प्रस्थान कर दिया। कानपुर में गङ्गाजी का प्रसिद्ध घाट 'भागवतघाट' है, वहीं पर स्वामीजी तथा अन्य महात्माओं के साथ मण्डलेश्वरजी उतरे। नगर के प्रमुख भक्तों में यह समाचार शीघ्र ही फैल गया।

कारण कि नगर के सज्जन प्रायः इसी घाट पर स्नान करते हैं; इसलिये समाचार फैलने में विलम्ब ही क्या होता। पूजा-पाठ, अध्ययन तथा प्रवचन का कार्य काशीजी की भाँति ही यहाँ पर भी होता रहा। मण्डलेश्वरजी अल्प ही दिनों में वहाँ से लौट आने वाले थे, पर वहाँ की श्रद्धालु जनता के अनुरोध से चातुर्मास्य को वहीं बिताना पड़ा। मण्डलेश्वरजी इस अवस्था में काशी छोड़कर कहीं जाना न चाहते थे; इसलिये फिर काशी को लौट आये और स्वामी जी को भ्रमण करते हुए काशीजी आने का आदेश दिया।




मण्डलेश्वरजी के काशी चले जाने के बाद श्रीस्वामीजी ने चार-पाँच अध्ययनशील विद्वान् महात्माओं के साथ फर्रुखाबाद जाने का विचार किया। कानपुरनिवासी भक्तगण यद्यपि विशेष अनुरोध के साथ स्वामीजी को वहीं रखना चाहते थे, पर स्वामीजी फिर आने के लिये वचन देकर वहाँ से फर्रुखाबाद चले आये। वहाँ पर भी गङ्गाजी के पास ही अपना निवासस्थान निश्चित किया। स्वामीजी के आकर्षक उपदेश का समाचार शीघ्र ही सारे नगर में फैल गया। वहाँ भी अधिक संख्या में धार्मिक जनों की भीड़ होने लगी। उपदेश के अतिरिक्त अध्यापन की प्रशंसा सुनकर स्थानीय कुछ विद्यानुरागी अध्ययन के लिये भी स्वामीजी के पास प्रतिदिन आया करते थे। अध्ययन करनेवालों में स्थानीय संस्कृत विद्यालय के प्रधानाध्यापक पण्डित लक्ष्मीनारायणजी, लाला दुर्गाप्रसादजी, लाला बाबूलालजी तथा लाला मुन्नीलाल जी आदि कई महानुभाव थे। इन लोगों की प्रवृत्ति प्रथम से ही वेदान्त में थी, पर स्वामीजी की बोधनशैली को देखकर वस्तुतः उन्हें वेदान्त का रहस्य मालूम पड़ने लगा। लोगों के विशेष आग्रह से कई सार्वजनिक सभायें भी हुईं, जिनमें स्वामीजी के उपदेश का मर्मस्पर्शी प्रभाव पड़ा। वहाँ की धार्मिक जनता पर आगन्तुक दोषों को अल्प भी स्थान न मिलता था। इस प्रकार तीन मास गङ्गा के तट पर ही जनता को श्रेय का भागी बनाते हुए स्वामीजी ने निवास किया। विद्वानों ने एक सभा कर स्वामीजी का स्वागत कर अभिनन्दन किया और स्वामीजी के नाम पर बनाये हुए जयेन्द्राष्टक को सभा में सुनाकर आपके निवास से कृतार्थता तथा कृतज्ञता प्रकट की।




इसके अनन्तर स्वामीजी ने हृषीकेश जाने का विचार प्रकट किया। जब वहाँ के महाजनों ने स्वामीजी के दृढ़ विचार को देखा तो वे चाहे कि स्वामीजी के लिये कुछ पूजा तथा उपहार समर्पण करें। पर

स्वामीजी ने सर्वथा निषेध कर यही उत्तर दिया कि 'ये साथ में रहनेवाले महात्मा विरक्त संन्यासी हैं, इन्हें केवल भिक्षा तथा कटिवस्त्र के किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। हम उपहार लेकर क्या करेंगे।' जब लोगों ने देखा कि स्वामीजी कुछ स्वीकार न करेंगे तो आपस में ऐकमत्य कर १००) मासिक का प्रबन्ध कर एक मुनीब साथ में कर दिया और मुनीब को सावधान कर दिया कि यदि स्वामी जी किसी भी वस्तु की आवश्यकता प्रकट करें तो शीघ्र ही उस कार्य को पूर्ण कर देना, विलम्ब न हो। अब स्वामीजी भक्तजनों के हृदय के साथ-साथ हृषीकेश आये। स्वामीजी की रुचि देखकर मुनीबजी ने एक झाड़ी में एक कुटीर बनवा दिया। स्वामीजी की इच्छा के अनुसार एक भोज ( भण्डारा ) का भी आयोजन हो गया जिसमें महात्माओं का पूजन तथा सत्कार भी यथेष्ट रूप में किया गया। स्वामी प्रकाशानन्दपुरी जी, स्वामी गोविन्दानन्दजी वैयाकरण, वेदान्तवागीश त्यागमूर्ति स्वामी मङ्गलनाथजी, मूलसिंहजी निर्मल, नैयायिक सन्त मानसिंहजी निर्मल इत्यादि प्रसिद्ध महात्मा स्वामीजी के पास रहते थे। बड़े ही समारोह से तथा सोत्साह भोज का आयोजन हुआ जिसमें १००० एक हजार साधु महात्माओं को भिक्षा दी गई। स्वामी रतनगिरिजी के बाड़े में २० महात्माओं के लिये स्वामीजी के नाम से अन्नसत्र भी चलने लगा।

किसी दिन दिल्ली के प्रसिद्ध सेठ आत्मारामजी खेमका, पण्डित जयनारायण जी तथा और भी कई विद्वान् झाड़ी में स्वामीजी के पास आये। ये सज्जन स्वामी जी की विद्वत्ता को अनेक बार सुन चुके थे। ओं नमोनारायणाय के अनन्तर इन लोगों ने वैदिक सृष्टिप्रकरण पर जिज्ञासा प्रकट की। स्वामीजी ने पूर्वापर क्रम को समझाते हुए इस सुचारु रूप से समाधान किया कि ये महानुभाव अत्यन्त प्रसन्न हुए। फिर अनेक प्रकार के शङ्का तथा समाधान होते रहे। इस प्रकार स्वामीजी महाराज जनता की विशेषतः आध्यात्मिक अभ्युन्नति करते हुए पाँच मास तक हृषीकेश में ही निवास किये। फिर कुछ रोज तक स्वामी सूरतगिरिजी महाराज के बँगले कनखल में निवास कर कुछ महात्माओं के साथ वहाँ से प्रस्थान कर दिये।

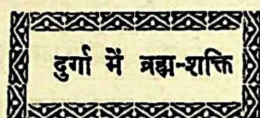
**पुनः फर्रुखाबाद में निवास**

स्वामीजी ने फर्रुखाबाद-निवासियों को बचन दे दिया था कि मैं फिर यहाँ आऊँगा। इसका स्मरण करते हुए वे फर्रुखाबाद पहुँचे। भावुकजन पूर्व से ही स्वामीजी के आगमन के लिये उत्कण्ठित थे। सभी लोगों ने स्वामीजी का निरतिशय स्नेहपूर्वक स्वागत किया और पहले की भाँति फिर भी उपदेश, अध्यापन तथा सार्वजनिक सभायें होने

लगीं। स्वामीजी ने स्थानीय जनता का विशेष अनुरोध तथा धर्माचरण-तत्परता देखकर वहीं चातुर्मास्य करने का विचार निश्चित किया और सम्वत् १९७७ का चातुर्मास्य वहीं किया। दूर-दूर तक जनता में स्वामीजी की धर्मोद्धारकता की प्रसिद्धि हो गई थी। बहुत से भक्तगण अपने-अपने स्थान में जाने के लिये स्वामीजी से अनुरोध करते थे। स्वामी जी भी वहाँ समय-समय पर जाकर धर्मोपदेश द्वारा पुनः वैदिक धर्म की दृढ़ स्थापना कर लौटते थे। इसी समय काशीजी से श्रीमण्डलेश्वरजी का पत्र गया, जिसमें स्वामीजी को काशी लौट आने का सन्देश था। पत्र को पढ़ते ही स्वामीजी की चित्तवृत्ति गुरूजी के चरणों में तदाकार हुई और वे काशी के लिये प्रस्थान कर दिये। काशी पहुँचकर राजराजेश्वरी के मन्दिर में ५ मास तक अध्ययनाध्यापन द्वारा स्वामीजी ने अपना समय सफल किया।

भगवती दुर्गा का ध्यान—

ॐ विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणाम्।
कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम्॥
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखाँश्चापं गुणं तर्जनीम्।
बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे॥




किसी दिन एक सज्जन अष्टभुजी दुर्गा की प्रतिमा, जिसे वे सर्वदा अपने पास रखते थे, स्वामीजी के सम्मुख रखकर कहने लगे कि महाराज! आप आत्मोपासना का उपदेश देते हैं किन्तु एक दूसरे महात्मा ने मुझे दुर्गा देवी को ही भोग, स्वर्ग, अपवर्गदात्री सिद्ध कर उसी की उपासना का उपदेश दिया है। मुझे अब सन्देह हो रहा है कि मैं उचित मार्ग पर हूँ अथवा नहीं? महराज मेरे इस संशय को निवृत्त करें। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि आप उचित मार्ग में हैं। दुर्गा शक्ति है तो ईश्वर शक्तिमान्। शक्ति तथा शक्तिमान् में कुछ अन्तर नहीं होता। माया की उपासना मायोपहित ब्रह्म की उपासना है। स्कन्दपुराण में भी कहा गया है कि **"नाहं सुमुखि मायाया उपास्यत्वं ब्रुवे क्वचित्। मायोपहितचैतन्यमुपास्यत्वेन वर्णितम्॥"** पार्वती जी के प्रश्न पर शङ्करजी उत्तर दे रहे हैं कि:—"देवि! मैंने माया की उपासना कहीं नहीं बतलाया, किन्तु माया की उपासना मायोपहित चैतन्य की उपासना बतलाई गई है।" इस पर वे महाशय अभ्रान्त हुए और महात्मा के सदुपदेश पर उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया।



इसके अनन्तर गुरूजी की आज्ञा लेकर फिर हरिद्वार गये। वहाँ पूर्वोक्त सूरत

गिरिजी के बँगले कनखल में निवास करने लगे। उस समय वहाँ अध्यात्म रामायण की कथा बाँचते थे। फिर पहले की ही भाँति महात्मा तथा सद्गृहस्थ स्वामीजी की कथा सुनने के लिये एकत्र होते थे। वीतराग ज्ञानी महात्माओं के उपदेश में संसार की निःसारता के भाव भी प्रचुरमात्रा में अभिव्यक्त होते हैं। माया के प्रपञ्चों से विमुख होकर मायेश की ओर आकृष्ट हो जाना तो महात्माओं के उपदेश का फल ही है। अनेक गृहस्थ स्वामीजी के प्रवचन से इतने प्रभावित हुए कि संसार को असार समझकर संन्यास के लिये स्वामीजी से विशेष अनुरोध करने लगे। स्वामीजी ने उन्हें अनेक प्रकार के शास्त्र के वचनों द्वारा गृहस्थ की श्रेष्ठता बतलाई। पर वे उस रङ्ग में ऐसे रंग गये थे कि स्वामीजी का उपदेश-जल उसे हटा न सका। अन्त में उन साधनचतुष्टयसम्पन्न अधिकारियों को संन्यास-दीक्षा से दीक्षित किया और ग्रीष्मऋतु भगवती भागीरथी के पुण्य तट पर विताया। फर्रुखाबाद की अत्यन्त प्रभावित जनता कभी भी स्वामीजी से विरहित होना पसन्द न करती थी। वहाँ के निवासी स्वामीजी की स्थिति का सर्वदा पता लगाते रहते थे कि स्वामीजी कहाँ निवास कर रहे हैं। और स्वामीजी के पाद-पराग से नगर को अलङ्कृत करने के लिये पुनः पुनः स्वामीजी के पास लोगों का यातायात होता रहता था। इस अवसर पर भी स्वामीजी को ले जाने के लिये अनुरोध किया। भक्तवत्सल स्वामीजी भी जाने के लिये सहमत हो गये और कुछ महात्माओं के साथ फिर फर्रुखाबाद चले आये। सम्वत् १९७८ के वर्षाकाल को यहीं बिताया वर्षाकाल बीत जाने पर भी वहीं रुके




थे कि एक दिन कई वृद्ध गङ्गा-स्नान करने जा रहे थे। स्वामीजी के पास कई भक्त बैठे हुए थे। वृद्धों के कष्ट को देखकर वे भक्त स्वामीजी से निवेदन करने लगे कि:—महाराज! आजकल गङ्गाजी नगर से बहुत दूरी पर चली जाती हैं, अतः नागरिक वृद्ध भक्तों को अधिक कष्ट का अनुभव करना पड़ता है और वे गङ्गाजी तक पहुँच भी नहीं सकते।" स्वामीजी ने सुनकर उत्तर दिया कि "आप लोग भगवान् शङ्कर का अभिषेक करें। अवश्य आप लोगों की प्रार्थना को स्वीकारकर भगवती भागीरथी समीप आने की कृपा करेंगी।" स्वामीजी के उपदेश को सुनकर स्थानीय सद्गृहस्थ तथा महात्माओं ने शङ्करजी के अभिषेक का आयोजन किया। स्वामीजी जहाँ पर निवास करते थे वहीं एक विशाल शिवालय था। उसी शिवालय में चारों तरफ से दरवाजा बन्दकर भगवान् शङ्कर का अभिषेक होने लगा और अनेक वैदिक वेदपाठ करने लगे। नगर भर में शीघ्र ही यह समाचार फैल गया और बड़ी संख्या में जनसमुदाय ने वहाँ इस आश्चर्यप्रद कर्म

में सहयोग दिया। भगवान् शङ्कर की कृपा से कार्यसिद्धि के पूर्व कुछ शुभ शकुन दिखाई देने लगे। भक्तों की अटल श्रद्धा, सिद्ध महात्मा का वचन और करुणामूर्त्ति शङ्कर की कृपा, जहाँ तीनों सम्बद्ध हैं वहाँ कार्यसिद्धि में असफलता की सम्भावना भी कहाँ हो सकती है। सभी भक्तजन शङ्कर के पूजन के अनन्तर भगवान् का स्मरण करते हुए अपने-अपने घर को गये।

स्वामीजी के साथ कुछ ब्रह्मचारी भी रहते थे, जिनकी देवाराधना में अत्यन्त श्रद्धा थी। स्वामीजी ने सबको आशुतोष भगवान् शङ्कर की आराधना तथा स्मरण की आज्ञा दी। रात्रि में तापनाशिनी भगवती भागीरथी भी अपने पूर्व घाट पर बहने लगीं। यह समाचार पाते ही नागरिकजनों में एक अपूर्व आनन्दातिरेक हुआ। सभी भक्तगण आकर भगवती गङ्गा तथा स्वामीजी की स्तुति करने लगे। ८० वर्ष के वृद्ध भी कहते थे कि:—इस तरह नगर के समीप भगवती का प्रवाह मैंने नहीं देखा था। यह तो महाराज की वाक्सिद्धि तथा तपोबल का प्रभाव है। आप की इस असीम कृपा का, जिसने नगरवासियों को गङ्गा-स्नान तथा दर्शन की पूर्ण सुविधा दी है, किस प्रकार बदला चुकावें। महाराज निस्पृह महात्मा हैं, हम सांसारिओं के आधीन वस्तु ही क्या है, फिर भी आज्ञाप्रदान द्वारा हम सेवकों को महाराज अवश्य कृतार्थ करें।" स्वामीजी नागरिकजनों की उत्कट श्रद्धा देखकर कहने लगे कि यदि आप लोगों की ऐसी ही अभिलाषा है तो आज का सम्पूर्ण नगर का दूध भगवती सुरधुनी को समर्पण कर दें। महाराज की आज्ञा पाते ही फर्रुखाबाद की आस्तिक हिन्दू जनता ने अपने-अपने घरों से दूध लाना प्रारम्भ कर दिया। यहाँ तक कि दुग्धमुख बालकों के लिये भी अवशिष्ट न छोड़ा। जब सारा दूध एकत्र हो गया तो सभी ने अपना-अपना दूध भगवती को समर्पण कर दिया। उस समय गङ्गाजी दुग्धमयी हो गईं। केवल श्रवण का विषय दुग्धसागर चक्षु का भी विषय हो गया। जिस तपस्या के प्रभाव से विश्वामित्रजी ने नये स्वर्ग का निर्माण प्रारम्भ कर दिया था, उसी तपस्या के प्रभाव से कुछ काल के लिये गङ्गाजी में क्षीरसागर का दृश्य उपस्थित होना आश्चर्य का विषय नहीं। नगर के नर-नारियों ने स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज के सम्मुख जयध्वनि से सम्पूर्ण गगनमण्डल को परिपूर्ण कर दिया।

इस प्रकार प्रतिदिन भक्तों के हृदय में नवनवोत्साह लाते हुए श्रीस्वामीजी ने वर्षा के चार मास को वहीं पर बिताया था। उपदेशामृत का पान करते हुए स्थानीय भक्तजनों में कितनी श्रद्धा तथा धर्माराधन की निष्ठा आ गई थी यह अवर्णनीय है।

**फर्रुखाबाद से विदाई**

कार्तिक के बाद जब महाराज ने काशी जाने का विचार प्रकट किया तो भक्तजनों में एक अपूर्व खेद प्रकट होने लगा। वे स्वामीजी की चरण छाया से कभी भी पृथक् होना न चाहते थे। एक दिन नगर के गण्यमान्य प्रतिष्ठाशाली जन आकर स्वामीजी के चारों तरफ अभिवादनकर बैठ गये। सभी लोगों ने महाराज के सम्मुख निम्न-लिखित सामूहिक प्रार्थना उपस्थित की:—"महाराज! यद्यपि आपकी मूर्ति हम सेवकों के मनोमन्दिर में स्थिरप्रतिष्ठ हो चुकी है, आपके सदुपदेश ही हमारे मार्ग के प्रदर्शक तथा प्रत्येक कार्य में नायक हैं; पर (श्रेयसि केन तृप्यते) कल्याण की अधिकता में भी किसे तृप्ति होती है। यह लोकोक्ति हम पर भी चरितार्थ होना चाहती है। अतः हम सेवकों पर विशेष कृपा करते हुए महाराज और भी कुछ दिन निवास करें तो हम लोगों का जीवन सर्वथा सफल हो जाता।" भक्तगण की उत्कण्ठा देखकर स्वामीजी ने सभी को समझाया, "यह पाञ्चभौतिक शरीर है इसका सम्बन्ध किसी से भी स्थिर नहीं रहता, (गतयोभिन्नपथा हि देहिनाम्) कर्मानुसार प्राणियों की गति भिन्न-भिन्न हुआ करती है और जिस वस्तु का सम्बन्ध अविच्छेद्य है, वह हम में तुम में सभी में एक ही है। इसलिये जो कुछ उपदेशों में मैंने आप लोगों के सामने उपस्थित किया है और जिस पर आप लोगों का विश्वास भी है, उसी का मनन करना श्रेयस्कर होगा। शुभ, शान्ति तो इस मनन का आनुषङ्गिक फल है; इसलिये आप मुझे जाने दें, फिर भी कभी अवश्य इस प्रार्थना की पूर्ति होगी।" महाराज के निश्चय को समझ कर भक्त जनता स्वामीजी को स्टेशन तक पहुँचाने आई और स्वामीजी भक्तों की सदाचार-स्मृति के साथ काशीजी आ गये।

**पुनः काशी-आगमन**

काशी के भक्तजन तथा महात्मावृन्द इस बात से पूर्व ही परिचित हो गये थे कि अमुक तिथि को स्वामीजी पधारेंगे। अतः सभी लोगों ने बड़े समारोह के साथ स्टेशन पर ही स्वामीजी का स्वागत किया और बड़े धूमधाम से गोविन्दमठ काशी में लाये। स्वामीजी ने गङ्गा-स्नान के अनन्तर सोपचार गुरूजी की पूजा की और उनके आज्ञानुसार राजराजेश्वरी के मन्दिर में पूर्ववत सभी कार्य सम्पादन करते हुए निवास करने लगे। यों तो स्वामी जी के पास अध्ययन करनेवाले यात्रा के समय स्वामीजी के साथ ही चले जाते थे, पर बहुत से अध्ययनशील किसी असुविधावश साथ न जा सकते थे, और प्रतिदिन

स्वामीजी की आगमन-प्रतीक्षा में ही समय बिताते थे। स्वामीजी के आगमन का समाचार सुनकर अध्ययनार्थ तथा उपदेश-श्रवणार्थ जनों का समुदाय उपस्थित होने लगा और पूर्व की भाँति स्वामीजी महाराज भी सभी के मनोरथ को सफल करने लगे। उस समय स्वामी भागवतानन्दजी, स्वामी गङ्गापुरीजी और स्वामी हरिहरानन्दजी ( हरियानेवाले ) आदि कई महात्मा, डाक्टर वासुदेव शर्मा पेन्सनर ( रावलपिण्डीवाले ) तथा लाला गिरिधर लालजी अग्रवाल ( रिटायर्ड मेरठवाले) आदि कई सद्गृहस्थ जो काशीवास कर रहे थे तथा अनेक छात्र, स्वामीजी महाराज के पास विद्याध्ययन करते थे। निम्नकोटि से लेकर उच्चकोटि के ग्रन्थों के अध्यापन में स्वामीजी की अव्यांहत तथा समान गति की प्रशंसा प्रत्येक जिज्ञासुओं से सुनी जाती थी। इसलिये प्रायः छात्र तथा पण्डितों का गमागम सर्वदा होता रहता था। स्वामीजी के पास अधिकतर इस प्रकार के लोग भी आया करते थे जो कुछ द्रव्य समर्पण कर अपने को कृतार्थ समझते थे। पहले तो स्वामीजी सर्वथा उन्हें निषिद्ध कर देते थे, पर उनके मनःखेद को देखकर गुरूजी के पास, यह कहकर कि मुझे किसी प्रकार की आवश्यकता ही नहीं, मैं इस वस्तु को क्या करूंगा, भेज देते थे। पर बहुत से लोग बिना निवेदन किये ही अन्न-वस्त्र आदि वस्तु वहाँ छोड़ जाते थे। स्वामीजी स्वयं न स्पर्श कर आनेवाले छात्र तथा पण्डितों को ले लेने की आज्ञा दे देते थे। इस तरह अनेक विद्यार्थियों की जीविका भी स्वामीजी के समाश्रयण से चलती थी। सम्वत् १९७९ तक यही क्रम चलता रहा।

मण्डलेश्वरजी अत्यन्त विरक्त योगी महात्मा थे। उनकी मनोवृत्ति यद्यपि जलस्थ-कमल की भाँति प्रवृत्ति मार्ग से पृथक् थी, पर उस सम्बन्ध को भी छोड़ने के लिये सर्वदा विचार किया करते थे। उनमें जो कुछ प्रवृत्ति दिखलाई भी देती थी वह महात्माओं की सेवा तथा छात्रों का पालनपोषण एवं धर्मबाधाओं के निराकरण की दृष्टि से। स्वामी जयेन्द्रपुरी ऐसे सर्वगुणसम्पन्न शिष्य को पाकर अब वे निश्चिन्त तथा निर्भर-से रहने लगे। यद्यपि स्वामीजी प्रतिक्षण उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा तथा पालन किया करते थे, पर मण्डलेश्वरजी को इस बात में सन्देह था कि सम्भवतः ये वीतराग पाठशाला तथा मठ-मन्दिर की व्यवस्था का भार न स्वीकार करें। इसलिये इनके समक्ष इस विषय को उपस्थित करने के लिये कुछ सङ्कोच किया करते थे। अन्य महात्माओं से वे अपने विचार को तो प्रकट कर ही दिया करते थे। मण्डलेश्वरजी का विचार था कि सब भार स्वामी जयेन्द्रपुरीजी पर डालकर पाञ्चभौतिक शरीर से पृथक् हो जायँ। पार्श्ववर्ती लोग यद्यपि मण्डलेश्वरजी के

व्रह्मीभाव के विषय में अपनी किसी भी प्रकार की अनुमति न प्रकट करते थे, प्रत्युत मण्डलेश्वरजी के इस विचार का खण्डन करते थे। क्रमशः मण्डलेश्वरजी के ये विचार स्वामीजी के कानों तक पहुँचे। स्वामीजी भी न चाहते थे कि कभी भी गुरु की आज्ञा की अवहेलना का अवसर आवे; पर प्रवृत्तिमार्ग से सर्वदा दूर ही रहना चाहते थे। इन परस्परविरोधी अपने तथा गुरुजी के विचारों का समन्वय भी होना अत्यन्त विषम कार्य था, इसलिये स्वामीजी ने साक्षात् गुरुजी के आदेश के पूर्व ही निर्दिष्ट मार्ग को ही श्रेयस्कर निर्णीत किया।

**अज्ञात यात्रा**

यह उस समय की घटना का निर्देश किया जा रहा है जिस समय प्रायः सभी महात्मा, छात्र तथा भक्तजनों की कर्ण-कलशी स्वामीजी के उपदेशामृत को यथेष्ट पानकर भी सर्वदा पिपासु दिखाई देती थी। सभी के नेत्र-मृग, संसृति-मरुस्थली में चक्कर खाकर इसी सौजन्यामृतधारा में क्लान्ति तथा श्रान्ति खोकर अपूर्व शान्ति पा रहे थे कि अनभिवाञ्छित एक दिन स्वामीजी ने भक्त जनों की हृदयस्थली पर नवाङ्कुरित मनोरथ को उद्दीप्त वियोगाग्नि से सन्तप्त कर अन्धकारावृत रजनी की निरीक्षणता में भगवती भागीरथी के तट से दक्षिण की राह ली। उनके साथ इस यात्रा में अन्य कोई भी न था।

इधर प्रातःकाल होते ही पूर्ववत् अध्ययनार्थ गलियोंमें छात्रों की तथा दर्शनार्थ भक्तों की कतारें बँधने लगीं, पर मन्दिर पर पहुँचने पर सभी की आशालता के मूल पर कुठाराघात-सा हो जाता था। शीघ्र ही यह दुःखद समाचार सम्पूर्ण नगर में विद्युत की भाँति दौड़ गया। स्वामीजी का इस प्रकार का सभी के साथ व्यवहार होता था जिससे सभी समझते थे कि स्वामीजी की दयादृष्टि मुझ पर ही विशेष रहती है। इसलिये पहले तो किसी को विश्वास ही न होता था कि स्वामीजी हमें छोड़कर चले जायँगे। पर लोगों को यह न सूझता था कि एक निष्काम योगी जो स्वर्ग को भी हेय समझता है उसका सत्य सम्बन्ध किससे है। मायाजाल में बँधे हुए जनों में मोह का आना तो स्वाभाविक है, सारी भक्त जनता उद्भ्रान्त तथा किंकर्तव्य-विमूढ़-सी हो गई। मणिविहीन सर्प की भाँति सभी लोग विकल दिखाई देने लगे।

**भक्तों की व्यग्रता**

इसके पहले भी स्वामीजी ने कई यात्रायें की थीं; पर निश्चित समाचार पा जाने तथा अवधि ज्ञात हो जाने के कारण लोगों में इतनी व्यग्रता न होती थी। अब निरवधि वियोग को वह जनता, जिसके जीवन के वे एकमात्र कर्णधार थे, कैसे सहन कर सकती थी; छात्र, जिनकी जीविका स्वामीजी

के कृपाकटाक्ष पर निर्भर थी, वे अपनी लक्ष्यसिद्धि में सब तरह हताश हो गये। सभी उत्सुक जन इस समय उसी दिव्य मूर्ति का ध्यान करते थे। सभी की रसना महाराज के नाम रूप महामन्त्र के जाप में परायण थीं। अगणित नरनारियाँ कोई महाराज के समाधिस्थान पर, कोई शयनस्थान पर, कोई उपदेश करने के स्थान पर तथा अन्यान्य स्थानों पर जाकर ध्यानपूर्वक प्रकट होने की प्रार्थना करती थीं। उस समय यही अनुभूत होता था कि भक्तगणों में इस अतर्कित विषय को छोड़कर अन्य विषय की चिन्ता ही न रह गई। सभी ग्रहगृहीत-से व्याधिपीड़ित-से स्वत्व को खो बैठे थे। धार्मिक कार्य के कर्णधार महात्मावृन्द तथा शिष्ट विशिष्ट विद्वान् जो भविष्य में धर्मप्रसार के भारक्षम आपको निश्चित कर अपने भार को विभक्त समझते थे अथवा अपने को निर्भर समझते थे तथा निश्चिन्त प्रतीत होते थे, अब उनके विकसित मानस-सरोज में मालिन्य तथा संकोच का साम्राज्य प्रतीत होने लगा। कुछ लोगों के मन में यह भी था कि स्वामीजी सम्भवतः कहीं दर्शनादि के लिये गये हों, पर जब दो रोज तक मन्दिर शून्य ही रह गया तो उनकी भी वही दशा हो गई जैसी की अन्य जनों की।

इधर मण्डलेश्वरजी का वह समय समीप आ रहा था जिसमें वे पाञ्चभौतिक शरीर से पृथक् होना चाहते थे। लोगों की व्यग्रता तथा अपने लक्ष्य की भी त्रुटि सोचकर मण्डलेश्वरजी ने कुछ गम्भीर प्रकृति के महात्माओं को बुलाया और सब लोगों से सुरक्षित स्थानों की रक्षा तथा धर्मोद्धारकता के विषय में परामर्श लेने लगे। सभी लोगों ने मुक्तकण्ठ से यही अनुमति दी कि:—"इन कार्यों के उचित उन्नायक केवल स्वामी जयेन्द्रपुरीजी ही दिखाई देते हैं; पर दौर्भाग्यवश उनका भी कहीं पता नहीं। उनके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं। नागरिक सभी भक्तगण तथा महात्मा भी किंकर्तव्यविमूढ़ हैं। महाराज जो आज्ञा दें हम पालन के लिये सन्नद्ध हैं।" मण्डलेश्वरजी ने सुनकर एक लम्बी साँस ली और उपस्थित महात्माओं को आज्ञा दी कि विमूढ़ होने का समय नहीं है। मेरा निश्चय भी अन्यथा न होगा, इसलिये शीघ्र आप लोग उनके अन्वेषण का प्रयत्न करें। जिस कारण से स्वामी जयेन्द्रपुरीजी ने अज्ञात तथा अनिवेदित यात्रा की है, उसका रहस्य मैं समझता हूँ और उसका प्रतीकार भी करने को सोच रहा हूँ। आप लोग प्रस्तुत कार्य में लग जायँ। इतना सुनकर सभी उपस्थित जन अन्वेषण कार्य का स्वरूप सोचने लगे। उन लोगोंके मन में किसी समय ये भी भाव उठते थे कि अन्वेषण से मिल भी जायँ, पर तितिक्षु महात्मा किसी भी प्रलोभन में नहीं आ सकते। पर

इसका उत्तर भी उसी क्षण स्वामीजी के पूर्वकृत उपदेशों से ही हो जाता था। स्वामीजी उपदेश में कहते थे कि :—"यदि शुद्ध निर्विकार चित्त से अपने को भगवत्समर्पण कर दे तो भगवान् उसे अप्राप्य नहीं होते।" यदि हमलोग सद्भाव से स्वात्मसमर्पण करते हुए महाराज की खोज में लग जायँगे तो पूर्ण विश्वास है कि वह अन्तर्यामि ज्योति अवश्य हम अशरणों को कृपालेश का पात्र बनाने से न चुकेगी। अधिक सम्भव है, सम्भव ही नहीं निश्चय है कि वह सर्वज्ञ करुणामूर्ति यहीं आपके सामने स्वयं आकर दर्शन देगी। सभी लोगों का ऐकमत्य हुआ। कई टोलियाँ महाराज के अन्वेषण के लिये प्रयत्न करने लगीं। जिन-जिन स्थानों में स्वामीजी ने यात्रा की थी वहाँ तार चिट्ठियाँ भेजी जाने लगीं। कुछ व्यक्ति स्वयं जा कर इधर-उधर पता लगाने लगे। असमर्थ स्त्री-पुरुष अन्वेषकों की बाट जोहने लगे।

उधर महराजजी भगवती भागीरथी के किनारे पर स्थित श्रीशूलटङ्केश्वर के मन्दिर में पहुँचे, जो काशी से प्राय: आठ मील की दूरी पर है और अत्यन्त निर्जन स्थान में बना हुआ है। यह ऐसा सिद्धपीठ है कि एक बार दृष्टिगोचर होने पर उद्विग्न भी चित्त नितान्त शान्त हो जाता है। सुरसिन्धु की अमृत लहरी के कणों से सम्पर्क पाकर अत्यन्त सुखस्पर्श वायु संताप को निर्मूल कर रहा था। समीपवर्ती निकुञ्ज भी अपने वातवाहित सुगन्धित मकरन्द से सर्वदा शंकर की आराधना करता था। मयूरों के नृत्य, पिकों के गान और तट में तरङ्गों के बाजे से मानों भगवान् चन्द्रकिरीट की अराधना हो रही थी। ऐसे सुरम्य मनोऽनुकूल प्रदेश को देखकर महाराज का भी निवासार्थ आकर्षण हो गया। प्रातः नित्यकृत्य के अनन्तर वेदान्तचिन्तन में लग गये। मध्याह्नोत्तर बहुत विलम्ब से आप उठे और माधुकरी के लिये दूरस्थित ग्राम की तरफ चले। एक गाँव में पहुँचकर आपने 'भवति भिक्षां देहि' का उच्चारण किया। वहाँ से यह उत्तर मिला कि महाराज! चौका उठ गया। अन्त में एक वृद्धा ने आपको एक बाजरे की रोटी दी। फिर आप उसे ले पूर्वोक्त स्थान पर आ गये और उसी से अपनी बुभुक्षा को शान्त किया। अनन्तर स्वामीजी के मन में यह बात आई कि उदरदरी को परिपूर्ण करने की चिन्ता भी मुख्य लक्ष्य में विपुल बाधा पहुँचाने का साधन है। इसी को परिपूर्ण करने के लिये मरुमृग की भाँति लोग दुराशा से चक्कर खाया करते हैं। अनेक प्रकार की अवहेलनाओं का सामना करते हैं। प्रति पद पर विपत्तियाँ झेलते हैं। फिर भी यह दुरन्तपूर ही बनी रहती है। अतः इसके वश में होना अपना मुख्य लक्ष्य खोना है। मन्त्र तन्त्र से भी यह पिशाचिनी साथ नहीं छोड़ती।

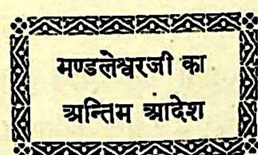
अतः किसी भी प्रकार इसे भी वश में कर लेना ही श्रेयस्कर होगा। यह सोचकर आपने उसी दिन से अनशन व्रत धारण कर लिया।

केवल सुरधुनी के अमृतमय जल तथा वायु के दूसरी वृत्ति न रह गई। पर तपस्या का भी क्याही अकथनीय प्रभाव होता है। स्वामीजी की आकृति में तनिक भी परिवर्तन न हुआ। जिस समय स्वामीजी समाधिस्थ होते थे, हिंसक जन्तु भी उनके पास बैठकर शान्ति पाते थे। पशुपक्षी जो प्रायः साधारण जनों को देखकर भाग जाते हैं, इस तरह महाराज से मिलजुल गये थे कि वे वहीं आपको घेरे बैठे रहते थे। भगवान् शूलटङ्केश्वर का दर्शन करनेवाले लोग इस प्रकार के महात्मा को देखकर अपने को कृतकृत्य समझते थे। दोही दिन में आसपास के लोग स्वामीजी के इस वृत्ति से अपरिचित न रह गये। कहा गया है कि **'यदि सन्ति गुणाः पुंसां विकसन्त्येव ते स्वयम्। नहि कस्तूरिका मोद शपथेन विभाव्यते।'** मनुष्यों के गुण का विकाश स्वयं हो जाता है, कस्तूरी की सुगन्धि के लिये कभी प्रमाण की आवश्यकता नहीं पड़ती। विकसित सौरभपूर्ण पुष्प, चाहे कितने ही एकान्त में क्यों न हो, उसके मधु की गन्ध से ही आकृष्ट हो भ्रमर स्वयं घेर लेते हैं। ईश्वर के उपासक, जो अपने स्वरूप से परिचित हैं, वे ईश्वर रूप हैं, या लौकिक दृष्टि से उन्हें स्वर्गीय समाचार को सुनानेवाले दूत कह सकते हैं। जो हो ऐसे व्यक्ति जिस स्थान को चरणरज से पवित्र करें वहीं तीर्थ है, सर्वोत्कृष्ट सुखशान्ति का साधन है। वे जो कुछ भाषण करते हैं, वही सर्वमान्य शास्त्र है। उनका आचार व्यवहार लोक के लिये आदर्श है। धीरे-धीरे कानोंकान या जनपद में यह समाचार दूर तक फैल गया। अब वहाँ भी भक्तों की पंक्तियाँ दर्शनार्थ प्रतिक्षण डँटी रहती थीं। यद्यपि स्वामीजी ने किसी से विशेष बातें तथा उपदेश आदि भी न किया, पर उनके शान्त आकार से ही उनके मनोभाव बाहर उछलते हुए प्रतीत होते थे। जिधर आप अपनी मधुर दृष्टिपात करते थे, मानों माधुर्य तथा विश्वास टपक पड़ता था। उनके शरीर से निकलते हुए तेज से दर्शकों की दृष्टि प्रथम तो झिप-सी जाती थी। भला ऐसे महापुरुष की सङ्गत से कौन चेतन होगा जो वितृष्ण हो सकता है?

अब तो महाराज को माधुकरी की भी आवश्यकता जाती रही, केवल गंगाजल पर ही जीवन चल रहा था। प्रातःकाल होते ही भक्तजनों की टोलियाँ आ जाती थीं और महाराज का उपदेश प्रारम्भ हो जाता था। अगणित नर-नारियाँ वहाँ भी एकत्र होने लगीं और उस उपदेश का ऐसा लोगों पर प्रभाव पड़ा कि सब के सब मतभेद को तुच्छ समझकर महाराज के कथनानुसार अपने जीवन को

अन्य रूप में परिणत कर दिये। इन महापुरुष के निवास से वहाँ की जनता में इस तरह की अपूर्व शान्ति तथा सत्कर्मपरायणता ने साम्राज्य स्थापित किया कि चिरकाल के लिये सत्ययुग को विश्राम के लिए एक निर्बाध स्थान मिल गया। प्रत्येक जन के मन में यह निश्चय हो गया कि अवश्य साक्षात् ईश्वर, हम लोगों के जो अपने उचित मार्गाश्रयण में भ्रान्त हैं, सन्मार्ग-प्रदर्शन के लिये ही अवतीर्ण हुआ है। अन्यथा साधारण व्यक्तियों में इन सब अलौकिक व्यवहारों का सम्भव कैसे हो सकता है। धीरे-धीरे १५ रोज व्यतीत हो गये, पर महाराज की अपूर्व शक्ति में ह्रास की अपेक्षा उत्तरोत्तर उन्नति ही दीख पड़ती थी। लोग अपने-अपने घर से भिक्षा बनाकर लाते थे और स्वामीजी से विशेष अनुरोध करते थे; पर स्वामीजी उन लोगों से यही उत्तर देते थे कि सभी वस्तु आवश्यकता की पूर्ति के लिये ही उपादेय होती है और जिस वस्तु की जहाँ आवश्यकता ही नहीं है वहाँ उस वस्तु की योजना से प्रत्युत अनिष्ट की भी सम्भावना हो सकती है। मेरी तो यही सेवा है और इसी सेवा से मुझे निरतिशय सन्तोष भी प्राप्त होता है कि आप लोग निर्दिष्ट मार्ग का अवलम्बन कर श्रुति-स्मृतिप्रतिपादित धर्म को अपनाकर उनमें प्रविष्ट चन्द्रमा के कलङ्क की भाँति दोषों का अपवाहन कर दें। यदि आपका धर्म जलता हुआ स्वच्छ दीप है तो आगन्तुक दोषों का संसर्ग कज्जल है। ये स्वच्छ पट पर कालेदाग के समान हैं। इसलिये इसको निर्दोष करने पर ही जन अपने मुख्य लक्ष्य पर पहुँच सकता है।

इसी प्रकार का क्रम श्रीशूलटङ्केश्वर के मन्दिर में समान रूप से चलता रहा।


मण्डलेश्वरजी का अन्तिम आदेश

इधर कई दिन व्यतीत हो जाने पर भी जब किसी भी तरफ से सन्तोषप्रद उत्तर न आया तो हताश होकर अन्वेषकमण्डली ने मण्डलेश्वरजी से पुनः निवेदन की कि अब क्या करना चाहिये। मण्डलेश्वरजी सभी को सान्त्वना देते हुए कहने लगे कि:—आप लोगों की अभिलाषा अवश्य पूर्ण होगी, अल्पकाल की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।" फिर मण्डलेश्वरजी ने एक पत्र लिखा जिसका भाव यह था—"अनन्य गुरुभक्त! आश्रव! स्वामी जयेन्द्रपुरीजी! मैं समझता हूँ कि आप प्रपञ्च से सर्वथा पृथग्भूत रहना चाहते हैं, पर जनता की सेवा भी विराट् की उपासना है। ज्ञानधौत-चित्त व्यक्ति को प्रपञ्च भी अपने वश में नहीं कर सकता। इसमें योगेश्वर श्रीकृष्ण तथा जनक उदाहरणीय हैं। आपकी उत्कट श्रद्धा ही मुझे आज्ञाप्रदान में प्रवृत्त कर रही है। साधुमण्डल चातक की भाँति एकमात्र [illegible] है। इसकी अवहे-

लना उचित नहीं, योग्यता के कारण धर्म का भार भी आप पर ही आरूढ़ है।" इस भाव के पत्र को लिखकर बन्दकर रख लिया। उस समय राजराजेश्वरी मन्दिर की व्यवस्था श्री स्वामी बालानन्दजी महाराज करते थे, जो इस समय गोविन्द-मठ में निवास करते हुए स्थायी तथा आगन्तुक महात्माओं के लिये सर्वथौचित प्रबन्ध करने के कारण भूरि-भूरि धन्यवाद के पात्र हैं। वे श्री स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज के सम्पर्क में अधिक समय बिताते थे तथा स्वामीजी का भी इनपर अधिक अनुराग रहता था। कारण, इनमें समदर्शिता, दयालुता तथा तपस्विता, जो एक महात्मा में आवश्यक हैं, विद्यमान थे। इन सब कारणों से मण्डलेश्वरजी ने इस पत्र को स्वामी बालानन्दजी महाराज को बुलाकर दे दिया और कहा कि जब स्वामी जयेन्द्रपुरीजी मिलें तो उन्हीं को यह पत्र देना।

मण्डलेश्वरजी का वह निश्चित समय आ गया जिसकी सूचना उन्होंने पहले ही दे दी थी। सम्वत् १९८० ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी को मण्डलेश्वरजी ने सभी महात्माओं को बुलाकर अनेक उपदेश तथा संसार की क्षणिकताबोधक वचनों से सभी के चित्त को आनन्द से प्लावित किया। हाय! सभी के देखते ही देखते जगती-तल का प्रकाशक वह प्रभाकर अस्तोन्मुख हो गया और समाधि द्वारा कोशों से पृथक् हो सत्यस्वरूप को प्राप्त हो गया।

**साधुसमाज तथा जनता में अशान्ति**

धर्मवीर गुणज्ञ विद्यावारिधि श्री स्वामी गोविन्दानन्दजी मण्डलेश्वर की इस अकाण्ड घटना पर भारतवर्ष के दशनामी साधुसमाज तथा धार्मिक जनता में एक प्रकार की खलभली-सी मच गई। उस समय भविष्यत् बातों पर ध्यान देने वाले बुद्धिमानों के मुख से यही करुण-क्रन्दन सुनाई देता था कि:—"अब सनातन धर्म की पताका को लेकर निर्भीक कौन समाज के सामने अग्रसर होगा। अशरण धँसती हुई धर्मधुरा को किसके बाहुबल ऊपर को उठावेंगे। अविद्या-सागर में डूबती हुई सन्मार्गनौका का कौन कर्णधार बनेगा। हाय! आज छात्रवृन्द निराश्रित हो किसकी शरण में जायँगे। आज विद्वानों का वह पल्लवित पुष्पित कल्पवृक्ष न जाने किस सौभाग्यशाली स्थान को अलङ्कृत किया होगा। अरे मनोरथफलभक्षक दौर्भाग्य! आज तू प्रसन्न हो जा। हम लोगों के उचितानुचित मार्ग का प्रदर्शक कौन है जिसे सौंपकर मण्डलेश्वरजी! आप अकाल में सिधार गये। किसके शरण में जाँय, क्या करें, इत्यादि इत्यादि।

मण्डलेश्वरजी की इस घटना पर सारा नगर व्यवहारशून्य हो गया। चारों तरफ निःशब्दता छा गई थी। मालूम पड़ता था कि नगर भी चिन्ताकुल हो कुछ सोच रहा था। फिर अगणित नर-नारियों के साथ महात्माओं ने संन्यासपद्धति के अनुसार मण्डलेश्वरजी का और्ध्वदेहिक कार्य समाप्त किया। इतनी विशेष व्यग्रता में स्वामी जयेन्द्रपुरीजी की अनुपस्थिति ने भी पूर्ण सहयोग दिया। इस बात को स्वामीजी भी जानते थे; इसीलिये उन्होंने पहले ही इस धधकती हुई ज्वाला के शान्त्यर्थ गुप्तपत्र दे दिया था। पर वर्तमान विपत्ति का वह तात्कालिक प्रतीकार न था। पर हाँ यह कह सकते हैं कि यदि इस महौषध का प्रयोग जो भविष्य में अपना प्रभाव दिखावेगा, मण्डलेश्वरजी न किये होते तो इस रोग का किसी भी प्रकार शमन न हो सकता।

और्ध्वदेहिक क्रिया के अनन्तर मण्डलेश्वरजी के पार्श्ववर्ती सेवक तथा महात्मावृन्द ने प्रथम ही श्रुतवृत्तान्त को तार पत्र द्वारा तत्तत्स्थानों में सूचित किया और मण्डलेश्वरजी के भक्तों को भी विदित किया।

इस समय प्रयाग निर्वाणी अखाड़े के महन्त (प्रधान सेक्रेटरी) श्री स्वामी बालकपुरीजी महाराज थे। इस समय इनकी विद्वत्ता, दयालुता तथा गुणज्ञता से कोई सहृदय अपरिचित न थे। इन्होंने धार्मिक कार्यों में जिस प्रकार सहयोग दिया है, उससे धार्मिक जन चिरकाल तक ऋणी रहेंगे। श्री स्वामी बलदेवपुरीजी ने इनके बारे में जो एक श्लोक यहाँ लिखा है, वह अक्षरशः सत्य है।

**"विक्रान्तावाञ्जनेयः परदलदलने भार्गवो भीमसेनः, सन्धायां धर्मसूनुर्मितवदनविधौ संयमे शूलपाणिः। दाने दक्षो विवेके सुरगुरु रथवाक्पाटवे याज्ञवल्क्यो। गम्भीरध्वानसिंहस्तरणिरिवपुरी बालकः साधु गोष्ठ्याम्।**

ये महाराज धर्मरक्षा के लिये जहाँ पराक्रम की आवश्यकता पड़ती थी वहाँ हनूमान् की भाँति पराक्रम दिखाते थे। धर्म-विरोधियों के निर्मूलन में भार्गव परशुराम के तुल्य थे। भीमसेन के समान अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करते थे। सत्यभाषण में युधिष्ठिर थे। इन्द्रियनिग्रह में भगवान् शङ्कर थे। दान देने में दक्ष तथा विचार में वृहस्पति के समान थे। वाक्पटुता में याज्ञवल्क्य सरीखे थे। सिंह के समान इनकी गम्भीर ध्वनि थी। महात्माओं की सभा में सूर्य के समान दीप्यमान रहते थे।

निर्वाणी अखाड़े के महन्त (प्रधान सेक्रेटरी)

## श्री स्वामी बालकपुरीजी महाराज

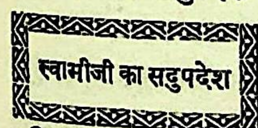


इन महात्मा को मण्डलेश्वरजी की कैवल्यप्राप्ति से असीम खेद हुआ। जिस पर स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज के अज्ञातवास ने और भी सहारा दे दिया था। पर थे बड़े ही गम्भीर प्रकृतिशाली महात्मा। स्वयं थे काशीजी आकर स्वामी

जयेन्द्रपुरीजी के बारे में विचार प्रकट करते हुए अन्वेषण के लिये अधिकाधिक प्रयत्न किये, पर कोई भी समाचार कहीं से न मिला। इधर प्रति दिन कहीं न कहीं शोक-सभायें हुआ करती थी जिसमें उद्विग्न जनता को स्वामी जयेन्द्रपुरीजी की आगमनाशा से ही सान्त्वना दी जाती थी। चारों तरफ से नैराश्यपूर्ण समाचार आने पर भी स्वामी बालकपुरीजी तथा अन्य महात्माओं ने अपना प्रयत्न न छोड़ा और समष्टिभोज के प्रबन्ध के साथ साथ अन्वेषण कार्य भी प्रचलित था।

स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज के अज्ञातवास के १४ दिन व्यतीत हो चुके। प्राय: १२-१३ दिन अनशन व्रत के भी हो चुके थे। शरीर प्रतिदिन कृश होता जा रहा था, पर शक्ति में ह्रास नहीं प्रतीत होता था। प्रति दिन नित्यक्रिया भी अत्यन्त स्फूर्ति के साथ किया करते थे। आसपास के लोगों ने स्वामीजी के वैराग्य, विद्वत्ता तथा तितिक्षा की ख्याति का चारों तरफ जनपद में प्रचार कर दिया था। अब अधिक संख्या में जनसमूह दर्शनार्थ तथा उपदेश-श्रवणार्थ एकत्र होते थे। स्वामीजी प्रति दिन सन्ध्या समय समागत जनता को उपदेश से आनन्दित किया करते थे। प्रतिदिन जन-संख्या अधिकाधिक बढ़ती जाती थी। कुछ भक्त रात्रि के समय भी स्वामीजी की सेवा के लिये रहना चाहते थे, पर यहाँ तो किसी प्रकार की सेवा की आवश्यकता ही न थी। निरोध करने पर भी मन्दिर के आसपास लोग निवास किया ही करते थे।

१५ वें दिन सन्ध्या समय उत्सुक समवेत जनता को उपदेश सुना रहे थे। उस दिन का सदुपदेश निम्नलिखित था।




भगवत्भक्तों !

मन से वाणी एवं शरीरसे पवित्र बनो। पवित्र विचारसे एवं पवित्र आचार से ही मनुष्य पवित्र बनता है।। आचारका मूल विचार है, "जैसा विचार वैसा आचार' यह प्रसिद्ध है। पवित्र विचार ही सफलता की एवं समग्र आपत्तियों के दूर करने की गुप्त कुञ्जी है। बिना पवित्र विचारों के मनुष्य अपनी समुन्नति कदापि नहीं कर सकता। वेद भगवान् में यही तो पाया जाता है।

'तन्मे मन: शिवसंकल्पमस्तु' ( यजुर्वेद )

'स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु' ( श्वेताश्वतर )

साधक मनुष्य उस विश्वेश्वर महा प्रभु से प्रार्थना करता है कि—हे देव ! मेरा मन, सदा पवित्र विचार करनेवाला हो। हे अन्तर्यामी हमको सर्वदा पवित्र

एवं शुभ बुद्धि से युक्त करो, यानी हमारी बुद्धि में पवित्र विचार ही उत्पन्न होते रहें, ऐसी कृपा करो।

और सर्व-श्रेष्ठ गायत्री मन्त्र में भी सर्वजगदुत्पादक सर्वान्तर्यामी महेश्वर परमात्मा से उसके श्रेष्ठ स्वयंज्योति तेज के ध्यान द्वारा हमारी सद्बुद्धि में पवित्र विचारों की प्रेरणा करने के लिये ही प्रार्थना की गई है। सच्चा प्रभु-प्रेमी उपासक, धन, स्त्री, पुत्र, सम्पत्ति एवं ऐश्वर्य के लिये उस परमेश्वर से प्रार्थना नहीं करता, किन्तु पवित्र एवं दृढ़ विचारों के लिये ही प्रार्थना करता है। पवित्र विचार ही दिव्य जीवन है। मलिन विचार ही भीषण मृत्यु है।

गन्दे तुच्छ विचारों के चंगुल में मत फँसे रहो, याद रक्खो! वे काले विषधर सर्प से भी विशेष भयङ्कर हैं। जैसे तुम्हारे शयनगृह में आये हुए काले सर्प को तुम थोड़ी देर तक भी ठहरने देना नहीं चाहते, किन्तु उससे भयभीत होकर प्रयत्नसे उसे तुरत निकाल देते हो। वैसे ही इन दुष्ट-विचारोंको तुम मानस-भवनमें थोड़ी देर तक भी न ठहरने दो, उनसे भय-भीत बने रहो, उनको निकालने के लिये भरपूर प्रयत्न करो।

याद रक्खो! इस संसारमें अकेले ही आये हैं, और अकेले ही जायेंगे, यह ध्रुव-सत्य है। हमारा संग किसीसे भी नहीं, हम असंग हैं, इस असंग भावना-रूपी शस्त्रसे संसार-मूल आसक्ति का छेदन करो। **'असंगशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा'**। (गीता)

संसार परिवर्तन-शील है, प्रत्येक पदार्थ क्षण-क्षणमें बदलता रहता है, कोई आता है, कोई जाता है। पुत्र जन्मा, मर गया, धन मिला चला गया, रोग आया, आरोग्यता गई, इस प्रकार संसारकी सब वस्तु सतत परिवर्तित होती ही रहती हैं। ऐसा देखते हुए भी उनके संयोग-वियोगसे शोक करना, दुःखी होना, मूर्खता नहीं तो और क्या? देखते हुए अंधे बनना ही तो मूर्खता है।

देहकी तुच्छ भावना से ही जीव दुःख पाता है, आत्म-तत्त्वकी उदार भावना से ही महासुखी होता है, जीव मिटकर शिव होता है। देहात्म-भावना ही महापाप है। आत्म-भावना ही महापुण्य है। कहा है—

**देहात्मबुद्धिजं पापं समं गोवधकोटिभिः।**
**ब्रह्माहं बुद्धिजं पुण्यं, न भूतो न भविष्यति॥**



संसारासक्त मनुष्य, सद्गुरुके उपदेशका यथार्थ सदुपयोग नहीं कर सकते,

असलमें वे कभी शान्त एवं सुखी नहीं होने पाते। चाहे कोई कितना ही प्रयत्न क्यों न करे किन्तु संसाराशक्ति दुःख रूप ही है। सम्पूर्ण दुःखोंके निवृत्तिका साधन अनासक्ति-योग है। यही योग विमलानन्दमयी शाश्वतशान्तिप्रदायिनी मातेश्वरी ब्रह्मविद्या की प्राप्ति का प्रधान साधन है।

बड़े ही आश्चर्य की बात है कि—संसार की और सभी बातों में मनुष्य बड़ा सावधान रहता है, बुद्धिमत्ता से काम निकालता है, परन्तु अपने कल्याण के विषय में अन्धा बनता है, असावधान रहता है। यह कोयलों के थैलों पर मुहर लगाकर उनकी रक्षा करना, और अशर्फियों के थैलोंको बाहर खुला डालकर उनसे लापरवाही रखनेसे भी ज्यादा मूर्खता की बात है।

नश्वर पदार्थोंके साथ नश्वर इन्द्रियों के संयोग से सुखी बननेकी आशा बाँधकर सतत परिश्रम करना बड़ी भारी भूल है। भोग-विलासकी सामग्री; एकत्रित करने में ही अपनी समग्र आयु बिता देना, बुद्धिमत्ता नहीं है। क्षणभंगुर पदार्थों से शाश्वतशान्त सुख नहीं मिल सकता। सदैव रहने वाले पदार्थ से ही सदैव रहने वाला सुख प्राप्त हो सकता है। सदैव एकरस रहनेवाला वही केवल एक चैतन्यानन्द महासागर-परमात्मा ही है, और उसीकी एक तरङ्ग आत्मा है, इन दोनों के योग से ही ( मिलाव से ) अखण्ड-विशुद्ध महानन्द प्राप्त होता है, यही वैदिक सिद्धान्त है—

## 'अयमात्मा ब्रह्म'

शङ्का—'ईश्वर' केवल कल्पना मात्र है, अगर ईश्वर होता तो हमको दिखाई देता, या हमारे अनुभव में आता, अतः ईश्वर नहीं है।

समाधान—ईश्वर का अभाव तुमने कैसे निश्चय किया है ? क्या तुम सर्वज्ञ हो ? 'ईश्वर को हमने कहीं भी नहीं पाया, इसलिये उसका अस्तित्व ही नहीं है' ऐसा तो तुम सर्वज्ञ होकर ही कह सकते हो। संसार में ऐसी बहुतसी वस्तुएँ हैं, जिनका ज्ञान बहुतों को नहीं है, पर वे वस्तुएँ विद्यमान हैं, उनके होने में सन्देह नहीं हो सकता, फिर ईश्वर ही के अस्तित्व पर क्यों सन्देह किया जाता है ?

यदि नास्तिकों के कहे अनुसार, नहीं भी हो तो भी ईश्वरको मानने एवं पूजनेवाले आस्तिक लोग ज्यादे टोटे में न रहेंगे। जैसे मनुष्य, और बहुत से निरर्थक काम करता है, वैसे एक यह भी सही। यदि आस्तिकों के विश्वास के अनुसार ईश्वर विद्यमान हुआ तो नास्तिक बड़े भारी टोटे में रहेंगे, वे अपने दुराग्रह का बुरा परिणाम भोगेंगे।

ईश्वर के मिलने की लालसा प्रबल करो। जब यह लालसा बढ़ती जाती है, तब उसको पूर्ण करने के लिये मनुष्य प्रबल प्रयत्न किये बिना चुप नहीं रह सकता।

प्रभु-प्रेमी बनो, एकमात्र उसको ही अपना प्यारा समझो। विश्वास रक्खो, जब तुम उस परम प्रेमास्पद अन्तर्यामी प्रभु से मिलने के लिये एक-पाद आगे रक्खोगे, तब वह कृपानिधि विश्वेश्वर प्रभु तुम्हारी तरफ सहस्रपाद दौड़ आवेगा। हाँ, उससे मिलने की सच्ची निर्मल एवं हार्दिक चाह होनी चाहिये।

प्रभु-प्रेमी उसको पाने के लिये व्याकुल होकर दौड़ता रहता है, संसार की मोह-ममता-जाल से उसका चित्त भागता रहता है। तमाम संसार उसे नीरस जान पड़ता है, वह संसार से मर जाना ही सुखका द्वार समझता है।

कहता है—

**जा मरिबेसे जग डरे, मेरे मन आनन्द।**
**कब मरिहौं कब पायहौं, पूरन परमानन्द॥**

संसार से सर्वथा उपराम होकर प्रभु के सन्मुख होना ही प्रेमी का मरना है।

जबतक ज्ञानयज्ञ में नामरूपात्मक समस्त संसार की आहुति न दी जाय, तबतक यज्ञ-शिष्ट ब्रह्मानन्दामृत के आस्वादन का सौभाग्य कैसे प्राप्त हो।

अपने लक्ष्य (ध्येय) का निश्चय करो, जिसका लक्ष्य स्थिर नहीं होता, वह कटे हुए पतङ्गके समान कभी इधर कभी उधर भागता रहता है। उच्चकोटि का श्रद्धेय भद्र पुरुष तो वही है कि—जिसने अपने उदार स्थिर एवं शुद्ध लक्ष्य का निश्चय कर उसकी ओर चलना प्रारम्भ कर दिया है। इन्द्रियों के विषय, अपना लक्ष्य नहीं है, ये तो शोक-उद्वेग एवं दुःख के ही स्थान हैं। विशुद्ध आनन्द ही परम लक्ष्य है, वह इन्द्रियों के विषयों से परे हैं।

किसी भी उपयोगी कार्य (लक्ष्य) को कठिन समझकर उसे छोड़ देना निर्बलता है। उसे सिद्ध करने में अपनी पूरी शक्ति को व्यय करो। ऐसा कभी मत चाहो कि—हम पुरुषार्थ तो कुछ न करें, और कार्य सिद्ध हो जाय, यह कभी सम्भव नहीं।

मन्त्र जप करो, किन्तु एकाग्रता से। उन्नति (जपसिद्धि) का मुख्य साधन एकाग्रता है। इस विकराल कलि-काल में एकाग्र जप से बढ़कर सफलता की कुञ्जी और कोई है ही नहीं।

## 'जपात्सिद्धिर्न संशयः'

मन्त्रलेखरूप जप भी एकाग्रता का सुगम साधन है।

जीवन में श्रेयस्कर श्री स्वामीजी के इस उपदेश को जब जनता अत्यन्त उत्कण्ठा तथा चित्तैकाग्र्यता से श्रवणपरायण थी उसी समय एक महात्मा वहाँ आ पहुँचे और स्वामीजी को अभिवादन कर वहीं बैठ गये। स्वामीजी के दर्शन से समागत महात्मा के हृदय में इस प्रकार का असीम आनन्द प्रवाहित हो रहा था कि सुरम्य उपदेश को उनके श्रवण न ग्रहण कर सकते थे। वस्तुतः जिस वस्तु का अन्वेषणकार्य प्रबल रूप से हो रहा था, जिसके लिये कितने जन अनाथ-से हो रहे थे। जिसकी प्राप्ति एक अद्भुत महत्व रखती थी, जिसकी तरफ अनेक चित्त उन्मुख थे और असंख्य नेत्र जिसके दर्शनामृतपिपासु थे, उस वस्तु की अतर्कित प्राप्ति से जन को कितना सुख होगा इसका अनुभव वही कर सकता है। महात्माजी उपदेश की प्रतीक्षा करने लगे। ये महात्मा स्वामीजी के पास अध्ययन करने वालों में थे। सूर्यास्त के समय जब उपदेश-कार्य समाप्त हो गया, सभी लोग आनन्द-मग्न हो (हर शिवशङ्कर गौरीशं वन्दे गङ्गाधरमीशम्। रुद्रं पशुपतिमीशानं कलयेकाशीपुरनाथम्) इस पद्य को ऊँचे स्वर से उच्चारण करते हुए जब अपने अपने घर जा रहे थे तो महात्माजी स्वामीजी के पास जाकर दण्डवत् प्रणाम कर सविनय समाचार पूछने लगे और स्वामीजी के कार्य को देखकर अत्यन्त खिन्न हुए। स्वामीजी ने महात्मा से आगमन का कारण पूछा, महात्माजी ने मण्डलेश्वरजी की कैवल्यप्राप्ति तथा स्वामीजी के अन्वेषण प्रकार से परिचित कर दिया। फिर अल्पकाल के अनन्तर ही वे महात्मा इस वृत्तान्त से सभी को अवगत करने के लिये काशीजी आये और समग्र वृत्तान्त संन्यासिमण्डल तथा भक्तसमाज के सम्मुख उपस्थित किया।

महात्माजी ने जिस समय मण्डलेश्वरजी के आकस्मिक ब्रह्मीभाव को सुनाया उस समय स्वामीजी की अवस्था जो हो गई थी उसे सुनकर वह सप्तसती का पद्य स्मृतिपथ में आता है कि (ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हिंसा, वलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।) वह दैवी माया जिसके सम्बन्ध में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने भी कहा है (दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया) त्रिगुणात्मक वह अनिर्वचनीय मेरी माया अनतिक्रमणीय है, ज्ञानाग्नि से जिन्होंने संस्कारों को दग्ध सा कर दिया है उनके भी अन्तःकरण को बलात् मोहजाल में डाल देती है।

स्वामीजी प्रबल वैराग्य से संसार के बन्धनों से सर्वथा मुक्त थे। इस कोटि तक पहुँचना इसीका फलस्वरूप है। पर गुरूजी की इस घटना को सुनते ही सहसा एक प्राकृत जन की भाँति खेद से परिप्लुत से दिखाई दिये। अपने उपदेश में प्रति दिन ( नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः। न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः। अविनाशो वाऽरे अयमात्मा अनुच्छित्ति धर्मा ) इत्यादि आत्मा के अविनाश की प्रतिपादक श्रुतियों को यद्यपि उद्धृत करते थे, पर गुरूजी के वियोग की व्यथा को गुप्त न रख सके और मूक हो कुछ काल तक चिन्तामग्न से दिखाई देते थे। मण्डलेश्वरजी ने यद्यपि प्रथम से ही धर्मप्रचार का भार इन्हें सौंप दिया था, पर उनकी उपस्थिति में ये सर्वथा अपने को भाररहित समझते थे। इस समय इनके मन में अनेक भावनायें भी स्थान बना लीं और सोचने लगे कि उपस्थित काल में हमारा कर्त्तव्य क्या है। अनेक प्रकार के विषयों में ही रात बिता दिया। रात्रि के समाप्ति के साथ साथ काशीजी से कुछ महात्माओं की मण्डली भी वहाँ उपस्थित हो गई और स्वामीजी को देखकर मानो अपनी खोई हुई सम्पत्ति पा ली। समुदाचार के अनन्तर महात्माओं ने स्वामीजी से तत्क्षण ही काशीजी चलने का अनुरोध किया। स्वामीजी भी गुरूजी के स्थान का ही दर्शन हो जाय इसलिये प्रथम ही चलने का विचार निश्चित कर चुके थे। पर महात्माओं के अनुरोध से तत्क्षण ही चलने के लिये प्रस्तुत हो गये और नौका के द्वारा सभी महात्माओं के साथ काशीजी आकर ललिताघाट पर अपने पूर्व निवासस्थान के समीप उतरे।

स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज की प्रतीक्षा तो प्रतिक्षण होती थी, पर जब नागरिक भक्तगण तथा संन्यासिवृन्द ने आगमन का समाचार सुना तो दर्शन के लिये घाट पर विशाल भीड़ लग गई। अभी तक तो लोगों का चित्त मण्डलेश्वरजी पर भी आश्रय पाता था, पर अब तो एकमात्र लक्ष्य स्वामी जयेन्द्रपुरीजी ही अवशिष्ट रह गये थे। मण्डलेश्वरजी के वियोग का खेद यद्यपि धार्मिक जनता के चित्त से विरहित नहीं हो सकता, पर स्वामीजी के दर्शन से वह किसी प्रकार सह्य होने लगा। शनैः शनैः भीड़ बढ़ती जाती थी। चारों ओर ( हर! हर! महादेव! नमः पार्वतीपते! हर! ) के नारे लग रहे थे। साधु समाज तथा सद्गृहस्थों में नवजीवन प्रवेश कर रहा था। दर्शन से अपने को कृतकृत्य समझते हुए लोग अपने अपने घर आय।

स्वामीजी के अनशन व्रत का १५ वाँ दिन चल रहा था, पर मिलनेवाले तथा दर्शनार्थ आये हुए लोगों के सत्कार तथा समुदाचार में किसी प्रकार की

त्रुटि न प्रतीत होती थी। दोपहर के अनन्तर श्रीस्वामी महन्त बालकपुरीजी, श्रीस्वामी गिरीशानन्दजी महाराज, श्रीस्वामी कल्याणानन्दजी तथा श्रीस्वामी बालानन्दजी महाराज अनेक महात्मा तथा छात्रगणों को लेकर स्वामीजी से मिलने के लिये आये। स्वामीजी ने इन महात्माओं से उचित व्यवहार के अनन्तर कष्ट के लिये कृतज्ञता प्रकट की। कुछ समय तक इधर-उधर की बातें होती रहीं। पर स्वामीजी को अत्यन्त कृश देखकर ये महात्मा स्वयं ही इन्हें अधिक आलाप से कष्ट न देना चाहते थे। स्वामी बालकपुरीजी महाराज की बातें साधुसमाज में सर्वमान्य होती थीं। इसलिये सभी महात्माओं ने अनशन व्रत भङ्ग करने के लिये इन्हीं से प्रस्ताव कराया। महन्तजी के कई प्रकार के उदाहरणों से इस व्रत को छोड़ देने के लिये तो स्वामीजी ने वचन दे दिया, पर महन्तजी का दूसरा प्रस्ताव जो सर्वसम्मत मण्डलीशपद-स्वीकृति के बारे में था, जिसकी सूचना बातचीत के प्रसङ्ग में महन्तजी करते जाते थे, उसके लिये स्वामीजी ने निश्चय करने का समय माँगा। सभी लोग अपने अपने स्थान पर चले गये और मण्डलेश्वरजी के षोडशीकृत्य का प्रबन्ध सुचित्त होकर करने लगे।

जिस समय सब लोग स्वामीजी के पास से गये उस समय स्वामी बालानन्दजी महाराज ने जो वहाँ के निवासियों के प्रबन्धक थे, मण्डलेश्वरजी का आदेश-पत्र स्वामीजी के सम्मुख उपस्थित किया। गुरूजी के स्वहस्तलिखित पत्र को देखकर स्वामीजी प्रथम तो अत्यन्त पुलकित हुए, पर जब उन्होंने उस पत्रनिहित आदेश को पढ़ा तो कुछ काल तक घोर विमर्श में पड़ गये। स्वामीजी महाराज ने कभी भी गुरूजी की बातों की उपेक्षा न की थी। सम्भव था कि यदि वे वर्तमान होते तो कुछ अपने हिताहित की समस्या उनके सामने रखते; पर ऐसी दशा में यह भी असम्भव था। इसलिये इनके सामने दो विषय थे, या तो गुरुजी की आज्ञा के तिरस्कारक होते अथवा उनके आदेशानुसार मण्डलीशपद ग्रहण करते। इसी विचार में अपने समय को व्यतीत करने लगे।

महन्त श्री स्वामी बालकपुरीजीकी अनुमति को मानकर स्वामीजी ने इस विशाल व्रत का उन्नीसवें दिन समापनकर पारण किया। साधु-समाज की तरफ से स्वामीजी को शीघ्र स्वस्थ बनाने के लिये बड़ी ही सावधानी थी। स्वामी बालानन्दजी की भी इस बारे में अत्यन्त सचेष्टता थी। जिससे शनैः शनैः स्वामीजी स्वास्थ्यलाभ करने लगे।

**मण्डलेश्वरजी की षोडशी**

मण्डलेश्वरजी के भक्त प्राय: भारत के प्रत्येक भागों में थे, जिनमें अधिक संख्या में सम्पन्न भी थे। जो प्रतिक्षण मण्डलेश्वरजी के दृष्टिपात के अभिलाषुक रहा करते थे, पर मण्डलेश्वरजी ने कभी भी किसी से कुछ न कहा था कि अमुक कार्यमें तुम्हें व्यय करना चाहिये। अत्यन्त अनुरोध करने पर किसी यज्ञादि कार्य में उनके दान का सदुपयोग कर दिया करते थे। अब उन भक्तों को अपनी सम्पत्ति के सदुपयोग करने का सुअवसर प्राप्त हुआ और स्वामीजी की षोडषी सुसम्पादित करने के लिये वे काशीजी आयें। यद्यपि योग-मार्ग से शरीर त्याग करने वाले संन्यासियों के लिये किसी भी कर्म का विधान नहीं है, पर इन सब योजनाओं का एकमात्र हेतु उनके सेवकों की अपरिमित भक्ति थी। षोडशी के दिन नगर में चारों तरफ इस बात की घोषणा हो चुकी थी कि जो कोई भोजन तथा वस्त्र के अभिलाषुक हों उनके लिये उस दिन अनिवारित प्रवेश होगा। यह घोषणा उन साधारण व्यक्तियों के लिये थी, जिनके स्वरूप से कोई परिचित न थे। पर प्रत्येक महात्माओं के स्थान में तथा प्रत्येक पाठशालाओं में विशेष रूप से सादर निमन्त्रण भेजा गया। गोविन्दमठ में उस दिन इतना अन्न तथा वस्त्र का वितरण हुआ मानो यह मठ ही अन्न तथा वस्त्र उत्पन्न करता है। नगर तथा जनपद के कोई भी प्रतिगृही न बचे होंगे जिनका उस दिन स्वागत तथा सत्कार न हुआ हो। जहाँ सुनो वहीं ( मण्डलेश्वरजी की जय ) के नारे लग रहे थे। विशेष आयोजन के साथ विद्वानों की एक सभा भी हुई जिसमें सभी विद्वानों को पूजन तथा सत्कार के साथ विशिष्ट दक्षिणा भी दी गई। यह तो सोलहवें दिवस का काशीजी का वृत्तान्त है। और भी दूसरे-दूसरे स्थानों में जहाँ मण्डलेश्वरजी का साक्षात् तथा परम्परासम्बन्ध था वहाँ भी इसी प्रकार की आयोजना के साथ अन्न-वस्त्र वितरण किया गया। उस समय मालूम पड़ता था कि मण्डलेश्वरजी के अनुयायी सेवकों के पास यदि कुवेर की सम्पत्ति होती तो उसे भी दीनों तथा विशिष्ट जनों को समर्पण करने में वे विचार न करते। इस प्रकार मण्डलेश्वरजी के उपलक्ष्य में कई दिनोंतक दान-पुण्य होता रहा।

इन सब कार्यों की समाप्ति हो जाने पर मण्डलीशपद की शून्यता महात्माओं को तथा सेवकों के लिये असह्य थी। वे इस परामर्श में थे कि शीघ्रातिशीघ्र इस स्थान की पूर्ति हो जाय। विशेष कर स्वामी बालकपुरीजी महाराज को इस विषय की अधिक चिन्ता थी। इसका कारण यह था इस मठ के मण्डलेश्वर निर्वाण पीठ के ही आचार्य होते थे और आचार्य के अभिषेक में निर्वाण पीठ के अधिपति का

ही विशेष हाथ रहता था। इसका उत्तरदायित्व भी अखाड़े के अधिपति पर ही विशेषकर निर्भर था।

**निर्वाणपीठ**

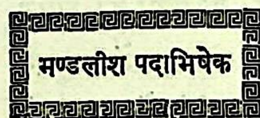
अखाड़ा दशनामी सन्यासियों की वह संस्था है जिसे धर्म पर आनेवाली बाधाओं को दूर करने के लिये जगद्गुरु शङ्कराचार्यजी ने स्थापित किया था। इसका मुख्य उद्देश्य यह है कि शस्त्र से हो अथवा शास्त्र से हो किसी भी प्रकार सनातन धर्म पर आई हुई बाधाओं का शमन करना। इसीलिये इन्हें व्यवहार में भी भाग लेना पड़ता है। व्यवहार में बहुमत अपेक्षणीय है; अतः इसमें आठ अधिकारी ( महन्त ) निर्वाचित होते हैं। उन्हीं के ऐकमत्य पर सभी कार्य सम्पादित होते हैं। जैसे वर्तमान समय में भी निम्नलिखित अधिकारी हैं। श्रीअखाड़ा महानिर्वाणी पंचायतीके श्रीमहन्त दत्तपुरीजी, श्रीमहन्त, यशवन्त गिरिजी, श्रीमहन्त शंकरभारतीजी, श्रीमहन्त रामचन्द्र गिरिजी, श्रीमहन्त ओंकारपुरीजी, श्रीमहन्त गंगागिरिजी, श्रीमहन्त नन्हूपुरीजी, श्रीमहन्त बलदेवगिरिजी, इनके इष्टदेव श्रीकपिलदेव मुनि हैं।

**मण्डलीशपदग्रहण की स्वीकृति**

श्रीस्वामी बालकपुरीजी महाराज ने, श्रीस्वामी रामपुरीजी तथा रामचरणपुरीजी आदि महात्माओं के सहयोग से स्वामी जयेन्द्रपुरीजी के सम्मुख स्पष्टरूप से यह प्रस्ताव रक्खा। मण्डलेश्वरजी के आदेशपत्र पाते ही स्वामीजी ने समझ लिया था कि अनभिप्रेत वस्तु को भी गुरुभक्तों को स्वीकार करना पड़ता है; इसलिये जो हो गुरुजी की आज्ञा सर्वथा शिरोधार्य है, इसमें मुझे किसी प्रकार के मीनमेष करने की आवश्यकता नहीं। उन लोगों के प्रस्ताव पर स्वामीजी ने "जो आप लोगों की आज्ञा होगी, उसका अवश्य पालन करूँगा।" यह कहते हुए शिर झुका लिया। समीपवर्ती जनों को इस बात का विश्वास न था कि स्वामीजी सहसा इस प्रस्ताव को स्वीकृत करेंगे पर प्रारम्भ से ही जो गुरु की बातों को वेद समझते थे, भला गुरु की इस आज्ञा की अवहेलना वे क्यों कर देते। मण्डलेश्वरजी को भी पूर्ण विश्वास था कि श्रद्धावान् जयेन्द्रपुरीजी हमारी बातों को अवश्य आदर देंगे; इसीलिये लोगों को आश्वासन देते हुए कहा था कि मैं भी उपाय सोचूँगा। उसी उपायशाखी का यह फल है कि एक समाधिनिष्ठ विरक्त तपस्वी ने अनभिप्रेत वस्तु को भी सादर अभिप्रेत-सा बना लिया।

गुरु-भक्ति का क्या ही अत्युज्वल उदाहरण है, भला इस बात पर किसे विश्वास था कि स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज, जो पैतक सम्पत्ति को तुच्छ

समझकर सन्यास के लिये घर से निकल आये तथा बदरिकाश्रम के मार्ग में मठ के महन्त के प्रलोभन में न पड़े, स्वामी गोविन्दानन्दजी मण्डलेश्वर के, जिनकी तपस्या ही निखिल वस्तु की साधिका थी, प्रिय शिष्य होते हुए भी माधुकरी भिक्षा तथा कौपीन मात्र वस्त्र से सम्बन्ध रखते थे, कैसे सहसा मण्डलेश्वरपद को स्वीकृत कर लेंगे। इसमें गुरु-भक्ति ही बीज है तथा धार्मिक जनता की सौभाग्य-समृद्धि।


मण्डलीश पदाभिषेक

स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज की स्वीकृति पाने पर सभी लोगों में आनन्द छा गया। स्वामी बालकपुरीजी तथा अन्य महात्मा सम्प्रदाय के नियमानुसार अभिषेक सम्भारसंग्रह में तत्पर हो गये। सभी जगह यह समाचार पहुँच गया। तत्तत्स्थानों से अभिषेक के उपकरण एकत्र होने लगे। सभी सामग्रियाँ उपस्थित हो गईं। सन्यासि-मण्डल के प्रधान पुरुष भी प्रायः भारत के सभी स्थानों से आये थे। काशी के तथा दूर-दूर के विशिष्ट विद्वान भी उपस्थित थे। वैदिक विद्वानों की वेदध्वनि से आकाश प्रत्यक्ष स्वगुणसम्पन्न दिखाई दे रहा था।

जिधर देखो शङ्खध्वनि के साथ उत्सव ही उत्सव दिखाई देता था। मठ, पाठशाला तथा मन्दिर में तोरण तथा वन्दनमालायें लगाई गई थी। राजमार्ग में भी उत्सव की धूम थी। यद्यपि स्वामी जयेन्द्र पुरी जी के मनोनुकूल कोई बातें न थीं; पर गुरू के आदेश को पालन करते हुए कुछ भी आपत्ति उपस्थित न की और जलस्थ पद्मपत्र की भाँति सब कुछ तटस्थ हो देख रहे थे। इस मङ्गलमय समय में कोई भी याचक रिक्तहस्त न जाने पाता था। साधारण भी कोई ऐसा व्यक्ति न रहा होगा जिसका आशातीत स्वागत न हुआ हो। यज्ञ के लहलहाते हुए धूम से मानो दिशायें भी प्रसन्न होकर अपने अलकभङ्गको सुसज्जित कर रही थीं, चारों तरफ प्रसन्नता अपनी चरम सीमा तक पहुँच चुकी थीं। इसी समय एक महात्मा अधर्मोन्मूलन तथा धर्मप्रचार के सम्बन्ध में आचार्य के मुख्य कर्तव्य को सुनाये और सभी विद्वान् तथा साधुमण्डल में इस भार के वहन में स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज को सर्वथा योग्य बतला कर बैठ गये। सहर्ष चारों ओर से ( नमः पार्वतीपते ! हर ! ) के नारे तथा धर्म की जय, अधर्म का नाश हो, देश का अभ्युत्थान हो इत्यादि नारे भी लगने लगे। फिर सर्वमान्य महापुरुषों ने स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज को उच्चासनस्थित कर सतिलक चद्दर ओढ़ाया और उसी समय इनके नाम को ( मण्डलेश्वर ) पद से विभूषित कर दिया।

अब ये श्री १०८ मण्डलेश्वर स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज नाम से ख्यात हुए। इस महोत्सव रूप सौभाग्य को १९८० विक्रमाब्दीय आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा ने ही प्राप्त किया।



इन क्रियाओं की समाप्ति में मण्डलेश्वरजी का पूजन तथा आरती की गई। आरती के समय निम्नलिखित स्तुति पढ़ी गई और यही स्तुति अन्त तक पूजन के समय प्रतिदिन की जाती थी।

## ॐ श्रीपुष्पाञ्जलिः स्तोत्रम् ॐ

॥ ॐ श्रीकाशीविश्वनाथो विजयतेतराम् ॥




नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे ।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः ॥ १ ॥

श्रीनारायणमाविरञ्चि शरणं दैवैः सदा सेवितम् ।
तत्पुत्रं कमलासनं भवकरं ज्ञानैकरूपं विभुम् ॥
पुत्रं तस्य वसिष्ठमात्मनिरतं तस्यापि शक्तिं मुनिं ।
तत्पुत्रं च पराशरं स्मृतिकरं व्यासञ्च तस्माद्भवम् ॥ २ ॥

तत्पुत्रं शुकदेवमाजनुरिदं विश्वं विदन्तं खिलं ।
तच्छिष्यं परमप्रबोधलसितं श्रीगौड़पादाभिधम् ॥
शिष्यं तस्य समर्चनीयचरणं गोविन्दमेतत्परम् ।
द्वैतध्वान्तनितान्तवारणकरं श्रीशङ्करं शङ्करम् ॥ ३ ॥

तच्छिष्यं परमात्मबोधकुशलं श्रीपद्मपादाह्वयम् ।
श्रीहस्तामलकं विचित्रचरितं श्रीतोटकं दैशिकम् ॥
आचार्य्यञ्च सुरेश्वरं बुधसदो विख्यातकीर्तिव्रजम् ।
वन्दे तान् सततं यतीन्द्रमजरं सत्यादिवाक्योदितम् ॥ ४ ॥

एतच्छिष्यपरंपरागतशिवानन्दं महान्तं गुरुम् ।
तच्छिष्यं शिवदं शिवात्मरमणं गंगेशमानन्दिनम् ॥
तच्छिष्यं वरदं सदाभयहरं रूपादिनारायणम् ।
तच्छिष्यं विजितेन्द्रियञ्च सुरतानन्दं चिदानन्दिनम् ॥ ५ ॥

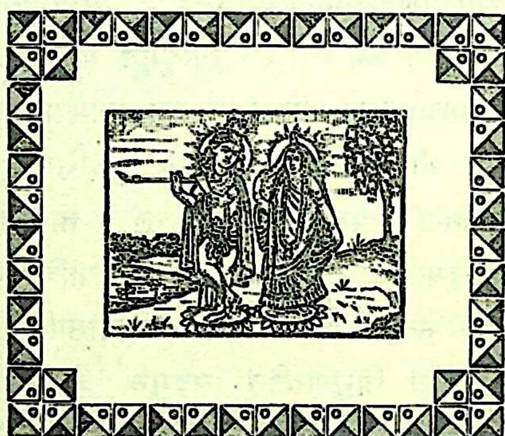
शिष्यं तस्य सुधीसमाश्रितपदाब्जादित्यमानन्दिनम् ।
तच्छिष्यं शुकदेवमात्मरमणं ज्ञानैकनिष्ठापरम् ॥
सानन्दं धनिनं तदङ्घ्रिशरणं शान्तञ्च दान्तं तथा ।

ज्ञानैकासिधरं प्रचण्डमनिशं वन्दामहे सादरम् ॥ ६ ॥

तस्माद्वैदिकधर्मसंस्थितिपरो गोविन्दसंज्ञो गुरुः।
शिष्यस्तस्य चिदेकतत्त्वनिरतः श्रीमज्जयेन्द्रो यतिः॥
ज्ञाने यो हि दिनेशशम्भुसदृशो रक्षाविधौ यो हरिः।
तस्मै वेदविदे नमो नम इदं स्वानन्दचिन्मूर्तये॥ ७॥
विश्वंदर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यं निजान्तर्गतम्।
पश्यन्नात्मनि मायया बहिरिवोद्भूतं यथा निद्रया॥
यः साक्षात्कुरुते प्रबोधसमये स्वात्मानमेवाद्वयम्।
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये॥ ८॥
ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिम्।
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम्॥
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतम्।
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि॥ ९॥
अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः॥ १०॥
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः॥ ११॥
शंकरं शंकराचार्यं केशवं बादरायणम्।
सूत्रभाष्यकृतौवन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः॥ १२॥
ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्तिभेदविभागिने।
व्योमवद्व्याप्तदेहाय दक्षिणामूर्तये नमः॥ १३॥
ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्म्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकम्महिमानः सचन्त यत्रपूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥
ॐ राजाधिराजाय प्रसह्य साहिने। नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे। स मे कामान् कामकामायमह्यम्। कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु। कुबेराय वैश्रवणाय। महाराजाय नमः॥
ॐ विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात् सम्बाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावा भूमि जनयन्देव एकः॥
नानासुगन्धपुष्पैस्तु यथाकालोद्भवैर्मया।
पुष्पाञ्जलिं प्रदत्तं त्वं गृहाण परमेश्वर॥
इति शिवम्।

## षष्ठ परिच्छेद

## श्री राधाकृष्ण की युगल मूर्ति



**स्वजनार्तिप्रणाशार्थं लीलाविग्रहधारिणौ ।**
**मायामायेश्वरौ वन्दे भुक्तिमुक्तिप्रदायकौ ॥**

अपने भक्तों की विपत्ति सर्वथा नष्ट करने के लिये ही जिन्होंने लीलाविग्रह धारण किया है, ऐसे सर्वोत्कृष्ट भोग तथा मोक्ष के देने वाले माया तथा मायेश को प्रणाम है।

इस विषय में सन्देह होना आश्चर्य का विषय नहीं कि इस प्रकार के मान प्रतिष्ठाप्रद पद पर अभिषिक्त होकर मण्डलेश्वर श्री स्वामी जयेन्द्रपुरीजी अपने मुख्य ध्येय से अवश्य विचलित हो गये होंगे और स्थानों की व्यवस्था तथा रक्षण कार्य में ही उनका अधिक समय व्यतीत होता रहा होगा; पर यह सर्वथा निर्मूल है। ( नवाह्यात्मारामं विषय मृगतृष्णा भ्रमयति ) आत्मदर्शी कदापि मृगतृष्णा के वशीभूत नहीं होते। मण्डलेश्वरजी ने प्रत्येक कार्य में तत्तत्स्थानों के लिये समिति की आयोजना कर दी, तथा प्रत्येक स्थानों में पृथक्-पृथक् अधिकारियों की नियुक्ति कर दी जो अपने-अपने स्थानों के आय तथा व्यय की चिन्ता किया करते थे। स्वयं तो केवल साक्षीमात्र ही बने रहते थे। उनकी समाधि भी उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी। अध्ययन, अध्यापन और उपदेश का कार्य पूर्वकाल से वैषम्य न रखता था।

मण्डलेश्वरजी ने अपने लोकोत्कृष्ट तथा लोकप्रिय गुणों से साधु समाज तथा सद्गृहस्थों के चित्त को इस प्रकार आकृष्ट किया कि पूर्व मण्डलेश्वर जी पर लोगों की उत्कण्ठा मन्द पड़ने लगी, जिस प्रकार आम्रवृक्ष के फलों को देखकर बौर में स्पृहा न्यून हो जाती है।

वर्षाऋतु आ जाने के कारण मण्डलेश्वरजी को दोमास तक काशी जी में ही वास करना पड़ा। काशीजी का यह अविकल नियम है कि प्राणोत्क्रमण के पूर्व ही भगवान् शङ्कर ( ओङ्कारमोङ्कारयतीन्दुमौलिः ) इस काशीखण्ड के आधा-पर, प्राणी को क्षणमात्र में ही उसके पुण्यपाप के परिणाम सुख तथा दुःखों को भोगा कर ( ॐ ) ओङ्कार का उपदेश देते हैं। फिर प्राणी इस तारकमन्त्र के उपदेश से ज्ञानसम्पन्न हो मुक्त हो जाता है। हम तो समझते हैं कि स्वामी श्री जयेन्द्र पुरी जी मण्डलेश्वर के निवास से भगवान् शङ्कर का भी भार तथा परिश्रम न्यून हो गया अथवा यह भी कह सकते हैं कि सर्वथा दूर हो गया। क्योंकि यहाँ के निवासी जनों की जीवनावस्था में ही मण्डलेश्वरजी अपने दार्शनिक तत्वा-वेदक उपदेशों से तत्वदर्शी बना देते थे। जो सर्वदा ओंकार का जाप किया करते थे ऐसे जनों को मरणप्राक् क्षण में तारकश्रवण की आवश्यकता ही न पड़ती थी। तारकोपदेश का फल पिष्टपेषण तथा भगवान् शङ्कर को व्यर्थ का परिश्रम ही था। अब यहाँ गङ्गा रूप अमृतसत्र के साथ-साथ अविकलधार ज्ञानामृतसत्र भी वेग से बह रहा था। धन्य है वे प्राणी, जिन्होंने इन दोनों धाराओं में साथ-साथ अव-गाहन किया। प्रतीत होता है कि भक्तवत्सल चन्द्रशेखर भगवान् इन दोनों प्रकार के लाभ से हमारे भक्त वञ्चित न रह जायँ इसीलिये मण्डलेश्वर श्रीस्वामी जयेन्द्र-पुरी महाराज के रूप में अवतीर्ण हुए थे! उचित भी है जब कि क्षुद्रव्रत करनेवाले भी सौभाग्यशालियों की गणना में प्रथमगण्य होते हैं तो जिसने अनादिकाल से सर्वसहन व्रत को धारण किया है ऐसी भगवती सर्वसहा पृथिवी को ऐसे महा पुरुषों की चरणपङ्कजमाला से अलंकृत होना आश्चर्य का विषय नहीं। आश्विन कृष्ण पक्ष तक रुद्राभिषेक, जप, दान, अध्यापन, उपदेश आदि कार्य इसी प्रकार चलते रहे। फिर मण्डलेश्वर जी की अभिलाषा धर्म प्रचार की हुई, इसलिये ये आश्विन शुक्ल पक्ष के अन्तिम सप्ताह में कुछ विद्वान् महात्मा तथा ब्रह्मचारियों के साथ यात्रा का प्रारम्भ कर दिये।

भूतपूर्व मण्डलेश्वरजी के साथ स्वामीजी महाराज ने पहले कानपुर की यात्रा की थी। अतः वहाँ की जनता इनकी विद्वत्ता तथा तपस्विता से पूर्ण परिचित

थी। वे बार-बार स्वामी जयेन्द्रपुरीजी मण्डलेश्वर से पत्रादि द्वारा अधिक अनुरोध किया करते थे। इसलिये मण्डलेश्वरजी ने इस यात्रा में कानपुर ही जाने का निश्चय किया। बीच-बीच में भक्तों के अनुरोध से रुकते-रुकते कानपुर पहुँचे। कानपुर में सेठ बाबूलाल के प्रसिद्ध बगीचे को अनुकूल स्थान समझा। वहीं पर महात्मा तथा छात्रवृन्द के साथ निवास करने लगे।

मण्डलेश्वरजी के वहाँ पहुँचने के प्रथम ही प्रायः लोगों को विदित हो चुका था? सभी लोग मण्डलेश्वरजी की प्रतीक्षा कर ही रहे थे। अब इनके निवासस्थान पर अधिकाधिक संख्या में लोग आने लगे और आपके उपदेशों से लाभ उठाने लगे। मण्डलेश्वरजी का स्वाध्याय अध्यापनादि कार्य सर्वदा की भाँति यहाँ भी चलता रहता था। अध्ययन करने वाले अधिक संख्या में आते थे तथा योगाभ्यास के जिज्ञासु भी मण्डलेश्वरजी के पास बहुत से आया करते थे। जिन्हें मण्डलेश्वरजी योग की भी शिक्षा दिया करते थे। उपदेश तो प्रतिदिन हुआ ही करता था, पर मध्य-मध्य में सार्वजनिक सभायें भी हुआ करती थीं। जिनमें भिन्न-भिन्न विषयों पर मण्डलेश्वरजी के भाषण भी हुआ करते थे। उन भाषणों में से सभी भाषणों का तो उल्लेख नहीं किया जा सकता पर निम्नलिखित भाषण जो उपलब्ध है उसका उल्लेख किया जा रहा है।

भूमिका में मैं बतला चुका हूँ कि मण्डलेश्वरजी ब्रह्मचर्य पर अधिक जोर दिया करते थे। यह कथन इस भाषण से पाठकों के हृदय में अवश्य स्थान पा जायगा।

अगणित नर-नारियाँ सभास्थल में उपस्थित हो महाराज के आगमन की प्रतीक्षा कर रही थीं कि उसी समय महाराज कई महात्माओं के साथ अनेक नागरिक सभ्य जनों के अनुरोध से सभामण्डप में पधारे। स्वामीजी महाराज जहाँ कहीं जाते थे (नमः पार्वती पते! हर!) के नारे तो कई बार लगते थे। स्वागतादि उपचार के अनन्तर मण्डलेश्वरजी को ही सभापति निश्चित कर कुछ महात्माओं के प्रवचन हुए। फिर मण्डलेश्वरजी ने अपने सुधोपम प्रवचन से जनता को कृतार्थ किया।

धर्मप्रेमियों! देश, समाज तथा जाति के हितेच्छुओं!

**मण्डलेश्वरजी का ब्रह्मचर्य पर भाषण**

स्मरण रक्खो! इन्द्रियों के संयम में शान्ति, एवं सुख प्रत्यक्ष है। ब्रह्मचर्य से कई लाभ तत्काल ही प्रत्यक्ष हो जाते हैं, स्मरणशक्ति, धारणाशक्ति, इच्छा शक्ति, शरीर-शक्ति, महा बलवती रहती है। ब्रह्मचर्य-जीवन, विलक्षण सौन्दर्य एवं अद्भुत सौगन्ध से भरा रहता है। ब्रह्मचारी के प्रत्येक रोम-रोम में चमक एवं प्रफुल्लता

नाचती फिरती है, उसको सारा विश्व नन्दनवन के समान नित्य नई प्रसन्नता से पूर्ण प्रतीत होता है। विश्वास रक्खो! इन्द्रिय-संयमी कदापि रोगी नहीं होता—

कहा भी है—

"पथ्याशी व्यायामी स्त्रीषु जितात्मा नरो न रोगी स्यात्"

अर्थात् पथ्य से यानी संयम से भोजन करनेवाला, यथा-सम्भव व्यायाम करनेवाला, एवं स्त्री के विषय में संयमी मनवाला, मनुष्य कदापि रोगी नहीं हो सकता है।

इधर इन इन्द्रिय-दास एवं मनके गुलाम स्वेच्छाचारी मनुष्यों की दुर्दशा प्रत्यक्ष देखो, आकाश पाताल-सा अन्तर है। संयमी मनुष्यों को सदा के लिये अशान्ति, अस्थिरता, अस्वस्थता, दीनता एवं मलिनता अनिवार्य हो जाती है; मन, मस्तिष्क, हृदय, एवं शरीर सड़ जाता है। इन्द्रियोंके असंयमसे होने वाले रोगोंको कौन नहीं जानता? जहाँ-जहाँ असंयम, वहाँ-वहाँ रोग, अशान्ति एवं दुःख, यह अव्यभिचरित व्याप्ति है। संयम विहीन जीवन, शुष्क एवं पशुके समान है।

कुछ लोग कहते हैं कि हमें अपनी इन्द्रियोंका मन-माना उपयोग करनेका पूरा अधिकार है, संयम का बन्धन लगाकर हम अपनी स्वतन्त्रता पर आक्रमण करना नहीं चाहते। परन्तु वे बुद्धि के शत्रु मूर्ख लोग स्वतन्त्रताका अर्थ नहीं जानते। इन्द्रियों का गुलाम क्या स्वतन्त्र हो सकता है? विचार करो! स्वतन्त्र कौन है? जो संयमी है, इन्द्रियाँ जिसकी गुलाम हैं, जो इन्द्रियों का गुलाम नहीं होता है। इन्द्रियों पर जिनका पूर्ण नियन्त्रण है, मन, वाणी, एवं शरीर द्वारा जो विषय-लोलुपता से मुक्त रहता है, वही स्वतन्त्र है।

याद रक्खो! निश्चय करो!! ब्रह्मचर्य ही प्रभुप्रेम एवं आत्म-ज्ञान-प्राप्ति का स्वच्छ राज-मार्ग है। शारीरिक तितिक्षासे ब्रह्मचर्य का श्रीगणेशाय नमः यानी प्रारम्भ होता है। ब्रह्मचारी को अपनी रसना (जिह्वा) पर नियन्त्रण रखना अत्यन्त आवश्यक है। जीवित रहने के लिये भोजन करना चाहिये, रसास्वादके लिये नहीं, कभी-कभी उपवास भी करना चाहिये। नेत्र-चपलता का निरोध भी आवश्यक है, यानी चञ्चलता से एक वस्तु से दूसरी वस्तु पर आखें नहीं नचाना चाहिये। "न नेत्रचपलो यतिः" नेत्रों को पृथ्वी की ओर झुकाकर चलना भी ब्रह्मचर्य का एक अङ्ग है। ब्रह्मचारी को कदापि अश्लील-अपवित्र उत्तेजक बातें नहीं सुननी चाहिये, एवं न पढ़नी चाहिये। किन्तु प्रतिदिन एकाग्रतासे उपनिषत्, गीता, रामायण आदि धर्मशास्त्रों का, एवं वीर आदर्श ब्रह्मचारियों के पवित्र चरित्र चरित्रोंका पठन एवं

श्रवण करना चाहिये, और साथ-साथ ब्रह्मचर्यव्रत की सफलता के लिये उस सर्वान्तर्यामी विश्वेश्वर प्रभुसे हार्दिक प्रार्थना करना भी आवश्यक है।

पूर्ण ब्रह्मचारी बनो। देशका, समाजका; एवं आत्मा का कल्याण ब्रह्मचर्यव्रत में ही है। शुद्ध ब्रह्मचर्य में आचार-विचार की मलिनता कदापि नहीं होती। पूर्ण ब्रह्मचारी स्वप्न में भी बुरे विचार नहीं करता। जब तक बुरे स्वप्न आया करते हैं, स्वप्न में भी विकार प्रबल होता रहता है, तबतक यह मानना चाहिये कि—अभी ब्रह्मचर्य बहुत ही अपूर्ण है।

## ब्रह्मचर्य का साधन।

शरीर में बार-बार दोषदृष्टि करना यह ब्रह्मचर्य का द्वितीय साधन है। जिन शरीरोंके रूप एवं सौंदर्य पर पामर लोग मुग्ध हो रहे हैं, उन शरीरोंका असली स्वरूप तो देखिये। इन शरीरोंमें कौनसी सुन्दर वस्तु है? क्या हड्डी, मांस, मेद, चर्म आदि सुन्दर हैं? कदापि नहीं। चूँकि इन वस्तुओं को यदि कदाचित् बाहर करके देखा जाय, तो घृणाका पार नहीं रहता है, नाक सिकुड़ जाती है, शिर घूमने लगता है। इन मल-मूत्र और हड्डियों के ढाँचों में सिवाय मलिनता के और है ही क्या?

इन शरीरों की मलिनता के विषय में योग-भाष्यकार भगवान् व्यासदेव ने कहा है—

स्थानाद्बीजादुपष्टम्भात्, निःस्यन्दात् निधनादपि।
कायमाधेयशौचत्वात्, पण्डिताः ह्यशुचिं विदुः॥

स्थान, बीज, उपष्टम्भ, निःस्यन्द, निधन, तथा आधेय शौचरूप इन छः हेतुओं से पण्डित लोग इन शरीरों को महामलिन समझते हैं।

इस प्रकार पुरुष स्त्रियों के शरीरों में, और स्त्री पुरुषों के शरीरों में बारबार महामलिनता का अनुसंधान करें।

पतङ्ग की तरह रूप और सौंदर्य की धधकती हुई अग्नि में भस्म हो जाने वाले नर नारियों! तुम क्यों इन झूठी रूप और सौन्दर्य की कल्पनाओं के पीछे पागल होकर ब्रह्मचर्य से भ्रष्ट हो रहे हो?

रक्त और पीव बहनेवाले कोढ़ियों के शरीरों को देखो, नाक मत सिकोड़ो, घृणा क्यों करते हो, मुख क्यों मरोड़ते हो। जिन शरीरों के ऊपर आप लोग पागल हो रहे हो, उनमें भी तो ठीक ऐसा ही माल मसाला भरा है।

शास्त्र में कहा है—

असौ तरलताराक्षी, पीनोत्तुङ्गघनस्तनी।
विवदमानैःकान्तारे, विहगैरद्य भुज्यते॥
विभाति बहिरेवास्याः, पद्मगन्धनिभं वपुः।
अन्तर्मज्जास्थिविण्मूत्र-मेदः कृमिकुलाकुलम्॥
अस्थीनि पित्तमुच्चारः,क्लिन्नान्यन्त्राणिशोणितम्।
पूतिचर्मपिनद्धं सत्, कामिनीत्यभिधीयते॥
मेदोग्रन्थी स्तनौनाम, तौ स्वर्णकलशौ कथम्।
विष्ठादृतौ नितम्बे च, कोऽयं हेमशिलाभ्रमः॥
मूत्रासृग्द्वारमशुचि, छिद्रं क्लेदि जुगुप्सितम्।
तदेव हि रतिस्थान-महो पुंसां विडम्बना॥
वासोविलेपनैर्यानि, लालितानि पुनः पुनः।
तान्यङ्गान्यङ्ग लुण्ठन्ति,क्रव्यादाः सर्वदेहिनाम्॥
मेरुश्रृङ्गतटोल्लासि - गंगाजलरयोपमा।
दृष्टा यस्मिन्मुने! मुक्ताहारस्योल्लासशालिता॥
श्मशान्तेषु दिगन्तेषु, स एव ललनास्तनः।
श्वभिरास्वाद्यते काले, लघुपिण्ड इवान्धसः॥

अहो !! हरिणके समान मनोहर चञ्चल नेत्रवाली, और पीन ऊँचे स्तनवाली जिस सुन्दर स्त्री के रूप लावण्य के ऊपर अनेक मूढ़ पुरुष आसक्त होते थे अब उसी स्त्री का यह मृतक शरीर कितना भयङ्कर मालूम होता है, रूप लावण्य कौन जाने कहाँ चला गया। अब तो इस शरीरको देखने मात्र से घृणा का पार नहीं रहता, नाक सिकुड़ जाती है। जंगल में पड़े हुए इसके शरीर को कलह करते हुए गृद्ध आदि पक्षिगण तोड़कर भक्षण कर रहे हैं। अहा !! इस स्त्री का शरीर केवल मूर्खता से बाहर ही कमलके समान सुन्दर प्रतीत होता था। अब प्रत्यक्ष हो रहा है कि—भीतर सिवाय मज्जा, हड्डी, विष्ठा, मूत्र, मेद और कीड़ों के और है ही क्या? हड्डी, पित्त, कफ, विष्ठा, पीप से भरी हुई आँतडें और खून मांस आदि से भरी हुई गन्दे पतले-से चर्मसे बँधी हुई, देह ही तो कामिनी कहलाती है। अहो !! अफसोस !! महान् घृणास्पद वस्तु के ऊपर मूढ़ जीवों का मोह हो रहा था, सुन्दर बुद्धि हो रही थी, बड़ी ही लज्जा की बात है, धिक्कार है। कुत्सित गंदे मांस मेद विशेष को ही तो स्तन कहते हैं। वे स्वर्णकलश के समान कैसे हो सकते हैं। और

विष्ठा मूत्र से भरे हुए नितम्ब स्वर्ण-शिलाके समान कैसे हो सकते हैं। विषयी पामर मनुष्यों का केवल भ्रममात्र है। इन विषयी पामर मनुष्यों को वञ्चना करनेवाला दुर्गन्धयुक्त महान् अपवित्र घृणास्पद मूत्र और खून का द्वार ही तो रति का स्थान है। शिव ! शिव !! मोह की महिमा अपार है।

सुन्दर वस्त्र और अनेक प्रकारके सुगन्धित द्रव्योंसे सुशोभित किये जानेवाले इन स्त्री आदि सर्व देहधारियों के स्तनादि अङ्गोंको मॉसाहारी जीव नोच-नोचकर खा जाते हैं। मोतियोंकी माला से विभूषित जो स्त्रियों के स्तन गङ्गा की धारा से शोभित मेरु शृङ्ग के तट के समान मूढ़ मनुष्यों को आह्लादक प्रतीत होते थे, उन्हीं स्तनों को कालान्तर में श्मशान-भूमि में वा अन्यत्र कुत्ते आदि छोटे से अन्नके पिण्डकी तरह आस्वादन करते हैं।

इसी प्रकार बार-बार दोषदृष्टि धारण करने से मनुष्य का मन ब्रह्मचर्य व्रत में स्थिर रहता है।

( ३ )

राजसिक, तामसिक पदार्थों के भोजन का त्याग और सात्त्विक भोजन का ग्रहण करना भी ब्रह्मचर्य-रक्षाका उपाय है। भगवान् ने गीता में सात्त्विक राजस एवं तामस भोजन का स्वरूप कहा है—

आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥
कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः॥
यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्॥

(गी० १८-८-९-१०)

आयु, सात्त्विक-शान्त वृत्ति, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति (प्रसन्नता) की वृद्धि करनेवाले रसीले, स्निग्ध, शरीरमें चिरकाल तक रहनेवाले और मनके आनन्ददायक आहार सात्त्विक मनुष्यको प्रिय होते हैं। कटु यानी चरपरे, खट्टे, खारे, अत्युष्ण, तीखे, दाह करनेवाले, तथा दुःख, शोक और रोग उपजानेवाले आहार, राजस मनुष्य को प्रिय होते हैं। कुछ काल रक्खा हुआ यानी ठण्डा, नीरस, दुर्गन्धित, बासी, जूठा, तथा अपवित्र भोजन, तामस पुरुषको रुचता है।

सात्त्विक भोजन से मनुष्य सात्त्विक बनता है, राजस-तामस भोजन से, राजस-तामस बनता है। राजस-तामस मनुष्यको भी अपना आहार सात्त्विक बनाना चाहिये। यदि आहार शुद्ध हो यानी सात्त्विक हो, तो राजस-तामस मनुष्य की वृत्ति भी क्रमशः शुद्ध सात्त्विक हो सकती है।

उपनिषदों में कहा है—

'आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः।'

आहार की शुद्धि होने पर अन्तःकरण की शुद्धि होती है।

"अन्नमयँ सौम्य! मनः"

हे सौम्य! प्रियदर्शन मन, अन्न का विकार है। जब से सात्त्विक आहार हुआ तब से मन भी आप ही आप सात्त्विक बनने लगता है। सात्त्विक मन ही ब्रह्मचर्यव्रत के पालन करने में समर्थ होता है। राजस-तामस मन ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकता। अतः सात्त्विक भोजन भी ब्रह्मचर्य-रक्षा का प्रधान उपाय है। माँस-मद्य का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिये। मादक (नशैली) भाँग, गाँजा, तम्बाकू आदि वस्तु का सेवन न किया जाय। सात्त्विक भोजन भी नियमित समय पर किया जाय।

( ४ )

प्राणायाम भी ब्रह्मचर्य-रक्षा का साधन है। शास्त्रों में कहा है—

'प्राणायामः परं बलम्' 'प्राणायामैर्दहेद्दोषान्'

अर्थात् प्राणायाम परम बल है, प्राणायाम से ही मनुष्य बलवान् बनता है, बलवान् ही काम पर विजय प्राप्त कर सकता है, निर्बल काम-वश होकर ब्रह्मचर्यव्रत से पतित हो जाता है, मानसिक बल काम-विजय का प्रधान कारण है। पवित्रता, एकाग्रता और दृढ़-निश्चय ही मनोबल है। प्राणायाम से अनेक कामादि दोषों का विध्वंस होता है। प्राणायामकी विधि अनुभवी योगी गुरुओं के द्वारा जाननी चाहिये। उनके आदेशानुसार ही प्राणायाम का आरम्भ करना योग्य है, अपने आप ही नाक आदि दबाकर जोरों से श्वास-प्रश्वास को खींच-तान करना महान् हानिकारक है।

( ५ )

एकान्त निवास एवं भूमिशयन भी ब्रह्मचर्य-रक्षा का उपाय है। एकान्त-निवास के लिये भगवान् ने भी कहा है—

"विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि।"

विविक्त यानी एकान्त शुद्ध हवावाले स्थान में रहना, साधारण प्राकृत लोगों के जमाव में नहीं रहना चाहिये। भूमिशयन का भी महत्त्व महान् है। खाट-पलंग आदि के ऊपर शयन करना ब्रह्मचर्य-व्रत का विघातक है। गोबर से लिपी हुई भूमि होनी चाहिये। नीचे गद्दा तकिया आदि विशेष बिछौना नहीं चाहिये। साधक ब्रह्मचारी को भूमिशयन करने में सर्प-बिच्छू आदि का भय नहीं करना चाहिये। जिसके १०१ पाप एक साथ उदय होते हैं, उसको विच्छू सर्प आदि काटते हैं, सबको नहीं।

( ६ )

शीत का सहन करना, शीत प्रधान देश में रहना भी ब्रह्मचर्य-रक्षा का साधन है। ब्रह्मचारी को कमीज, कुरता, आदि नहीं पहनना चाहिये। यथाशक्य शीत सहन करने का अभ्यास करे। तितिक्षा से कामादि दोषों का दमन होता है। तितिक्षा की भी महिमा महान् है। शीतल जल से ही सर्वदा स्नान करे। उष्णजल से कभी भी स्नान नहीं करना चाहिये।

( ७ )

उपनिषद्, भगवद्गीता, भागवत, रामायण, महाभारत आदि सद्ग्रन्थों का नित्य नियम से अर्थज्ञानपूर्वक अध्ययन करना, महापुरुषों और वीर ब्रह्मचारियों के चरित्रों का मनन करना; एवं प्रतिदिन सत्संग करना। शृङ्गारे रसके संस्कृत या हिन्दी के काव्य, नाटक, उपन्यास, आदि ग्रन्थोंको सर्वथा नहीं पढ़ना, उनको एक प्रकार का भयंकर विष समझना चाहिये। नाटक-सिनेमा आदि भी कभी न देखना। यह भी ब्रह्मचर्य-रक्षा का साधन है।

( ८ )

कौपीन या लंगोटा अवश्य रखना चाहिये। किसी भी व्यभिचारी स्त्री-पुरुष की वार्ता न करे न सुने, और ऐसे मनुष्यों के समीप भी न बैठे कि—जो व्यभिचारियों की बात करनेवाले हों; विलासिता सजावट शृङ्गार आदि न करे। "दूसरों को मैं सुन्दर दिखलायी दूँ" ऐसा भाव मन में नहीं आने देना चाहिये। विलायती फैशन के बाल न रक्खे जाँय, पंचकेश रखने में कोई हानि नहीं। दर्पण में मुख न देखा जाय, पान न खाया जाय, उत्तेजक औषधिका सेवन न कियां जाय।

( ९ )

नियम से एकान्त में कुछ व्यायाम करे, प्रतिदिन आसन का भी अभ्यास किया करे। आसनों से अनेक शारीरिक दोषोंका शमन होता है। प्रतिदिन खुली

हवा में यथा-साध्य सवेरे या संध्या के समय पैदल घूमा जाय। मल-मूत्र के वेग को नहीं रोकना चाहिये।

( १० )

प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में उठा जाय। नियम से प्रतिदिन परमात्मा का ध्यान करे, भगवन्नाम का जप करे, श्वास की अनुलोम-प्रतिलोम गति के द्वारा जप करने से या भगवन्नामों को लिखने से भी विशेष एकाग्रता होती है जिससे कामादि दोषों का दमन होता है।

( ११ )

एकादशी-पूर्णिमा-अमावस्या-प्रदोष आदि पर्वों के दिन उपवास किया जाय। उपवास की महिमा अपार है। उपवास के दिन फलाहारी वस्तु भी विशेष नहीं खानी चाहिये।

( १२ )

सबमें ईश्वर भावना करे, आत्म-तत्त्व के साक्षात्कार रूपी अपने प्रधान लक्ष्य को कभी न भूले। संसार को सर्वथा स्वप्न के समान मिथ्या तथा तुच्छ समझे। संसार के पदार्थों में आसक्ति का परित्याग करे।

इत्यादि अनेक साधन ब्रह्मचर्य के हैं।

## ब्रह्मचर्य का फल।

ब्रह्मचर्य के पालन से मनुष्य रोग, शोक, मोह, प्रमाद, अकर्मण्यता, अकाल-मृत्यु, दरिद्रता, चिन्ता, हिंसा, द्वेष, ईर्षा, अशान्ति आदि तमाम दोषों से रहित हो जाता है। तमोगुण एवं रजोगुण के विकार काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर, अभिमान आदि शत्रुओं का पराजय कर आत्मानन्द का अचल स्वराज्य पा लेता है। ब्रह्मचर्य के विमल प्रतापसे ही मनुष्य वीर्यवान्, बलवान्, विद्वान्, तपस्वी, मनस्वी, त्यागी एवं तत्त्वविवेकी होता है। ब्रह्मचर्य में अलौकिक दिव्य अमानुषी शक्ति हैं, जिस शक्ति के सामने संसार को विस्मित होना पड़ता है। देश का अभ्युत्थान एवं स्थायी अभ्युदय ब्रह्मचर्यके प्रचारसे, एवं उसके पालन से ही होगा, अन्यथा नहीं।

सभाकी समाप्ति में भक्तिरसपूर्ण जनता को सधन्यवाद आशीर्वाद देकर मण्डलेश्वरजी फिर अपने स्थान पर चले आये।

किसी दिन एक महाशय मण्डलेश्वरजी के पास आकर विनय पूर्वक पूछने लगे। महाराज! धर्म क्या वस्तु है तथा अधर्म क्या है? भिन्न-भिन्न मार्ग के

उपदेष्टा धर्म का स्वरूप भिन्न-भिन्न बतलाते हैं। कृपया मुझे इसका स्वरूप समझा दीजिये।

मण्डलेश्वरजी ने इस प्रश्न का उत्तर देना प्रारम्भ कर दिया। अनेक श्रोता जो उस समय वहाँ उपस्थित थे, सावधानी से श्रवण करने लगे। मण्डलेश्वरजी ने कहा कि:—"यतोऽभ्युदय निश्रेयस सिद्धिः सधर्मः" जिससे देश, समाज तथा अपना अभ्युदय हो और सच्चिदानन्द स्वरूप परात्पर सुख मोक्ष का साधन हो उसे धर्म कहते हैं। इसी मूल को लेकर पुराण तथा इतिहासों ने विवेचन किया है।

ब्रह्मचर्येण सत्येन तपसा च प्रवर्तते।
दानेन नियमेनापि क्षमा शौचेन वल्लभ॥
अहिंसया सुशान्त्या च अस्तेयेनापि वर्तते।
एतैर्दशभिरङ्गैस्तु धर्ममेव सु सूचयेत्॥ (पद्म पुराण)

ब्रह्मचर्य, सत्य, तपस्या, दान, नियम, क्षमा, शौच, अहिंसा, शान्ति अस्तेय (चोरी न करना) इन दशों अङ्गों से धर्म स्थिति सूचित होती है।

मत्स्यपुराण मे भी धर्म के मूल इस प्रकार बतलाये गये हैं।

अद्रोहश्चाप्यलोभश्च दमो भूतदया तपः।
ब्रह्मचर्यं ततः सत्यमनुक्रोशः क्षमा धृतिः॥
सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतद् दुरासदम्॥
(मत्स्य पुराण)

अद्रोह, (विरोध न करना) अलोभ, दम (वाह्येन्द्रियों का संयम), जीवों पर दया, तप, ब्रह्मचर्य-पालन, सत्य भाषण, कृपा, शान्ति तथा धैर्य ये दश सनातन-धर्म के मूल हैं।

इसी प्रकार सभी पुराणों में तथा महाभारतादि में धर्म के स्वरूप बतलाये गये हैं। भला कौन कह सकता है कि इन धर्मों के आचरण से सामाजिक दैशिक, वैयक्तिक उन्नति नहीं होगी। राष्ट्र की निर्वाध स्थिति में भी किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हो सकता। प्रत्युत इन धर्मों से परिपूर्ण देश तथा समाज में चिरकाल तक सुख एवं शान्ति निर्वाध साम्राज्य स्थापित कर सकती है। चित्तवृत्ति के निरोध के साधनों का भी इन धर्मों में क्या ही संग्रह किया है। फिर लोकोत्तर सुख स्वरूप मोक्ष की प्राप्ति इस साधन से दूरवर्तिनी नहीं हो सकती।



धर्माधर्म विवेक के लिये आचार्यों ने यह भी सरल मार्ग बतला दिया है।

यमार्याः क्रियमाणं हि शसन्स्यागम वोधिभिः।
तं धर्मं यं विनिन्दन्ति तमधर्मं प्रचक्षते॥

शास्त्रवेत्ता जिस वस्तु का आरचण करते हैं तथा आर्य जिस आचरण की प्रशंसा करते हैं उसी को धर्मस्वरूपज्ञ धर्म कहते हैं तथा शास्त्रज्ञ जिस आचरण को हेय दृष्टि से देखते हैं वही अधर्मपदवाच्य है। इत्यादि अनेक वचनों से मण्डलेश्वरजी ने धर्माधर्म के स्वरूप को बतलाया। प्रसन्न हो श्रोतृगण ने साधुवाद से मण्डलेश्वरजी को समलङ्कृत किया।





श्री १०८ स्वामी महानन्दजी महाराज

कार्तिक मास में महाराज जी की सेवा में विरक्त महात्मा ब्रह्मानन्दजी का आगमन हुआ। ये महात्मा मण्डलेश्वर जी से हृषीकेश में मिले थे। मण्डलेश्वर जी के सदुपदेश से इनमें एक नवीन प्रकार के भाव का आवेश हो चुका था। विरक्त तपस्वी होते हुए भी इन्होंने अपना कल्याण मण्डलेश्वर जी के सहवास से ही निश्चित किया। अतः हृषीकेश से कानपुर आकर महाराज के दर्शन से अपने मनोरथ को पूर्ण किया। मण्डलेश्वर जी ने इनकी साधुता से अत्यन्त प्रसन्न हो इन्हें अपनी ही सेवा में रहने के लिये अनुमोदन किया और ये मण्डलेश्वर जी के आज्ञानुसार उनके जीवनपर्यन्त आज्ञापालन करते गये। और अब भी गोविन्दमठ में उन्हीं के चरण-सरोज के ध्यान में अपना समय सफल कर रहे हैं।

इसी समय प्रयागराज के अर्धकुम्भ का पर्व आनेवाला था। मण्डलेश्वर जी भक्तों को उपदेशकाल में कभी-कभी कुम्भपर्व स्नान की महत्ता को भी बतलाते थे। मण्डलेश्वर जी किसी भी भक्त की आर्थिक सेवा स्वीकृत न करते थे। अब भक्तों के सेवा का अवसर मिला और वे मण्डलेश्वर जी से प्रयागराज निवास करने का अनुरोध करने लगे। मण्डलेश्वर जी यद्यपि निस्पृहतापूर्ण बातें करते और कहते थे कि संन्यासियों के लिये विशेष प्रवन्ध की क्या आवश्यकता। पर इसके अतिरिक्त सेवकों को भी सेवा का अवसर कब मिलता। इन सज्जनों में श्री धर्मवीर दानमल, भगीरथ मल आदि महानुभाव थे। उन लोगों ने स्वामी जी के आने के पूर्व ही प्रयागराज में सहस्रों महात्माओं के निवासयोग्य कुटीर का निर्माण कर दिया तथा उतने ही महात्माओं के भोजनाच्छादान योग्य सामग्री से भी स्थान को परिपूर्ण कर दिया।

प्रसङ्गवश कुम्भ के वारे में भी कुछ दिग्दर्शन कराया जा रहा है।

## कुम्भ-निर्णय

अमृतपूर्ण कलश का नाम कुम्भ है, देव और दैत्यों के समुद्रमन्थन करने पर समुद्र से कुम्भ की उत्पत्ति हुई है। कुम्भ प्राप्त करने के लिये देव और दैत्यों में परस्पर कलह पैदा हुआ। जब परस्पर द्वन्दयुद्ध में जिस काल में पृथ्वी के जिन जिन स्थानों में वह कलश गिरा, वह काल कुम्भकाल एवं वह स्थान कुम्भ-स्थान कहलाया। इसी बात को शास्त्र इस प्रकार से वर्णन करता है—

अथातः संप्रवक्ष्यामि, कलशोत्पत्तिमुत्तमाम्।
उत्तरे हिमवत्पार्श्वे, क्षीरोदो नाम सागरः ॥ १ ॥

आरब्धं मन्थने तत्र, देवैर्दानवपूर्वकैः ।
मन्थरं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिम् ॥ २ ॥
मूले कूर्मं तु संस्थाप्य, विष्णोर्बाहुं च मन्दरे ।
एकत्र देवताः सर्वाः बलिमुख्यास्तथैकतः ॥ ३ ॥
मथ्यमाने तदा तस्मिन् क्षीरोदे सागरोत्तमे ।
उत्पन्नगरलं पूर्वं, शम्भुना भक्षितं च तत् ॥ ४ ॥
अथ स्वास्थ्यं गते लोके, प्रकथ्यन्तेऽद्य तानिहि ।
उत्पन्नानि च रत्नानि यानि तत्र महान्ति च ॥ ५ ॥
विमानं पुष्पकं पूर्वमुत्तमं हंसवाहनम् ।
नागऐरावतश्चैव, पादपः पारिजातकः ॥ ६ ॥
वीणावादित्रसंयुक्ता रम्भा नृत्यगुणान्विता ।
मणिरत्नं कौस्तुभाख्यं, बालचन्द्रस्तथैव च ॥ ७ ॥
कुण्डलानि धनुश्चैव, नावः पञ्चशिवास्तदा ।
लक्ष्मीस्वरूपा सुमनाः, सुशीला सुरभिस्तथा ॥ ८ ॥
उच्चैःश्रवाः समुत्पन्नो, लक्ष्मीश्च वरवर्णिनी ।
तथा धन्वन्तरिर्देवो, विश्वकर्मा कलाविदः ॥ ९ ॥
कलशश्च समुद्भूतो, धन्वन्तरिकरोल्लसन् ।
मुखान्तं सुधया पूर्णः, सर्वेषां हि मनोहरः ॥ १० ॥
अजितस्य पदाम्भोज—कृपयैव समुद्गतम् ।
क्षीराब्धिलोडनोद्भूतं, कलशान्तेन्द्ररत्नकम् ॥ ११ ॥
दृष्ट्वा तु तत्क्षणादेव, महाबलपराक्रमः ।
जयन्तोऽमृतमादाय, गतो देवप्रचोदितः ॥ १२ ॥
देवकर्म समालोच्य, तदा दैत्यपुरोधसा ।
नागोल्लासप्रव्यथिता, दैत्याःशुक्रेण सूचिताः ॥ १३ ॥
जग्मुस्ते पृष्ठतो लग्नाः, भीतःसोऽपि पलायितः ।
दिशो दश दिवारात्रं, द्वादशाहं प्रपीडितः ॥ १४ ॥
दैत्यैर्गृहीतस्तद्धस्तात्तेनापि पुनरेव सः ।
अहं पिबेयं पूर्वं तु न त्वं चेति विचुक्रुशुः ॥ १५ ॥
एवं विवदमानेषु काश्यपेषु सुधाग्रहे ।
भगवान् मोहयित्वा ताम् मोहिन्या[illegible]जत सुधाम् ॥ १६ ॥

विवादे काश्यपेयानां यत्र यत्रावनिस्थले।
कलशो न्यपतत्तत्र, कुम्भपर्वतदोच्यते ॥ १७ ॥
गुर्विंद्वर्कस्वपुत्रैश्च कुम्भोऽरक्षि निपातितः।
कलहाक्रान्तचेतोभिर्दैत्यैः शुक्रप्रचोदितैः ॥ १८ ॥
चन्द्रः प्रस्रवणाद्रक्षां, सूर्यो विस्फोटनाद्दधौ।
दैत्येभ्यश्च गुरू रक्षां, सौरिर्देवेन्द्रजाद्भयात् ॥ १९ ॥
सूर्येन्दुगुरुसंयोगस्तद्राशौ, यत्र वत्सरे।
सुधाकुम्भप्लवेभूमौ, कुम्भो भवति नान्यथा ॥ २० ॥
देवानां द्वादशाहोभिर्मार्त्यैर्द्वादशवत्सरैः।
जायन्तेकुम्भपर्वाणि तथा द्वादशसंख्यया ॥ २१ ॥
तत्राघनुत्तयेनॄणां, चत्वारो भुवि भारत।
अष्टौ लोकान्तरे प्रोक्ता, देवैर्गम्या नचेतरैः ॥ २२ ॥
तान्येति यः पुमान् योगे, सोऽमृतत्वाय कल्पते।
देवा नमन्ति तत्रस्थान्, यथा रङ्का धनाधिपान् ॥ २३ ॥

---

जिस समय देव और दैत्यों ने मिलकर समुद्र मथनकर चौदह रत्न प्राप्त किये थे। उन रत्नों में से धन्वन्तरि और अमृत भी रत्न थे। धन्वन्तरि अमृत कुम्भ हाथ में लेकर समुद्र से निकले ही थे कि देवों के संकेत से जयन्त अमृत कलश को छीन कर भाग निकला। दैत्यगुरु शुक्राचार्य के आदेशानुसार दैत्यों ने कलश छीनने के लिये जयन्त का पीछा किया। जयन्त एवं कलश की रक्षा के लिये देव गण भी दौड़ पड़े। सभी ने मध्यमार्ग में ही जयन्त को जा घेरा। अमृत पर अधिकार जमाने के लिये देवों और दैत्यों में बारह दिन तक अविराम युद्ध होता रहा। परस्पर इस मार काट के समय में पृथिवी के चार स्थानों पर कलश गिरा था, उस समय घट से अमृत का प्रस्रवण होने से चन्द्र ने, घट फूटनेसे सूर्य ने, दैत्यों के अधिकार से गुरु ने, एवं देवेन्द्र के भय से शनि ने घट की रक्षा की। कलह शान्त करने के लिये भगवान् ने मोहिनी रूप धारण कर यथाधिकार सबको अमृत बाँट कर पिला दिया। इस प्रकार से देव दैत्य कलह का अन्त हुआ।

अमृत प्राप्ति के लिये देवदैत्यों में बारह दिन तक युद्ध हुआ था। देवों के बारह दिन मनुष्यों के बारह वर्ष के तुल्य होते हैं। कुम्भ भी बारह होते हैं। उनमें से चार कुम्भ पृथिवी पर होते हैं, शेष आठ अन्य लोकों में होते हैं जिन्हे

देव गण ही प्राप्त कर सकते हैं, मनुष्य नहीं। जिस जिस समय में चन्द्रादिकों ने कलश की रक्षा की थी, उस समय की वर्तमान राशियों पर रक्षा करने वाले चन्द्र सूर्यादिक ग्रह जब आते हैं, उस समय कुम्भ का योग होता है अर्थात् यही काल "कुम्भपर्व" कहा जाता है। प्रत्येक कुम्भ के समय का निर्णय शास्त्रों में इस प्रकार से है।

---

❀ श्री ❀

## * कुम्भोत्पत्तिः स्कन्द पुराणे *

प्रथिव्यां कुम्भपर्वस्य चतुर्धाभेद उच्यते।
चतुस्स्थले च पतनात्सुधाकुम्भस्य भूतले॥

समुद्र मंथन से प्राप्त हुआ अमृतकुम्भ भूतल में चारस्थलों पर गिरने से पृथ्वी में कुम्भ के चार भेद कहे हैं।

गङ्गाद्वारे प्रयागे च धारागोदावरीतटे।
कलशाख्यो हि योगोऽयं प्रोच्यते शंकरादिभिः॥ २॥

एक तो गङ्गाद्वार ( हरिद्वार ), दूसरे प्रयाग, तीसरे धारानगरी ( उज्जयिनी ), चौथा गोदावरी तट पर ( नासिक ) में। इसलिये उस योगको शंकरादि देवता कलश ( कुम्भ ) नाम से कहते हैं।

हरिद्वारादितीर्थेषु चतुर्षु च पृथक् पृथक्।
कुम्भपर्वस्य समयो यथा कुम्भमुदीरयेत्॥ ३॥

हरिद्वार ( गंगाद्वार ) आदि चारों तीर्थों में कुम्भ पर्वका समय पृथक् पृथक् कहा है।

मकरेच दिवानाथे वृषगे च बृहस्पतौ।
कुम्भयोगो भवेत्तत्र प्रयागे ह्यतिदुर्लभः॥ ४॥

वृष राशि में बृहस्पति हों और जिस दिन सूर्यनारायण मकर राशि में प्रवेश करते हैं। उस योग को कुम्भयोग कहते हैं। ऐसा योग प्रयाग में अति दुर्लभ है।

माघे वृषगते जीवे मकरे चन्द्रभास्करौ।
अमायाञ्च ततो योगः कुम्भाख्यस्तीर्थनायके॥ ५॥

ऐसा योग जब माघ मास में अमावस्या के दिन बृहस्पति वृष राशि में हों सूर्य तथा चन्द्र मकर राशि में हों। तब कुम्भ नाम का योग सब तीर्थों के नायक प्रयाग राज में होता है।

माघमासे गमिष्यन्ति गंगायमुनसंगमे ।
ब्रह्मविष्णुमहादेवरुद्रादित्यमरुद्गणाः ॥ ६ ॥

ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, रुद्र, आदित्य तथा मरुद्गण माघ मासमें प्रयागराज गंगा यमुनाके संगम पर गमन करते हैं।

प्रयागे माघमासे तु त्र्यहं स्नानस्य यद्भवेत् ।
नाश्वमेधसहस्रेण तत्फलं लभते भुवि ॥ ७ ॥

प्रयाग में माघ मास में तीन समय स्नान करने से जो फल होता है। वह फल पृथ्वी में हजार अश्वमेध यज्ञ करने से भी प्राप्त नहीं होता।

माघमासे रटन्त्यापः किंचिदभ्युदिते रवौ ।
महापातकिनं चापि कं पतन्तं पुनीमहि ॥ ८ ॥

गंगा यमुना का जल प्रयाग में रटन करता हुआ सर्व प्राणियों को कह रहा हैं कि माघ मास में सूर्यनारायण के किंचित् उदय होने पर महा पातकी मनुष्य भी उस जल में गोता लगावे, तो हम उन्हें पवित्र कर दें।

सहस्रं कार्तिके स्नानं माघे स्नानशतानि च ।
वैशाखे नर्मदाकोटिः कुम्भस्नानेन तत्फलम् ॥ ९ ॥

कार्तिक मास में सहस्रवार यदि गंगा स्नान करे और माघ मास में सौ बार तथा वैशाख मास में नर्मदा में करोड़वार स्नान का जो फल होता है। वही फल प्रयाग में कुंभ समय पर स्नान करने से प्राप्त होता है।

( विष्णु पुराणे )

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ।
लक्षं प्रदक्षिणा पृथ्व्याः कुम्भस्नानेन तत्फलम् ॥ १० ॥

हजार अश्वमेध यज्ञ करनेसे, और १०० वाजपेय यज्ञ करनेसे, और पृथ्वी की लाख बार प्रदक्षिणा करनेसे, जो फल मिलता है वहीं फल कुम्भस्नानसे प्राप्त होता हैं।

यावद्भूमण्डलं धत्ते नगा नागाश्च सागराः ।
तावत्तिष्ठति जान्हव्यां श्रीविष्णोश्चरणोदकम् ॥ ११ ॥

यावत् पर्वत, नाग और सागर भूमण्डल को धारण करेंगे तावत् पर्यंत श्री गंगाजी में सब को पवित्र करने वाला श्रीविष्णु का चरणोदक रहेगा।

## * कुम्भस्स्वरूपम् *

कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः ।
मूले तत्र स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणः स्मृतः ॥ १ ॥
कुक्षौ तु सागराः सर्वे सप्तद्वीपावसुन्धरा ।
ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः ॥ २ ॥
॥ अंगैश्च सहिताः सर्वे कलशं तु समाश्रिताः ॥

---

## * कुम्भोत्पत्तिः * तथा प्रार्थना *

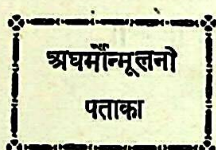
( आन्हिक )

देवदानवसंवादे मथ्यमाने महोदधौ ।
उत्पन्नोऽसि तदा कुम्भ विधृतो विष्णुना स्वयम् ॥
त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे त्वयि स्थिताः ।
त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ॥
शिवः स्वयं त्वमेवाऽसि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः ।
आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवाः सपैतृकाः ।
त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेपि ये तु कामफलप्रदाः ।
( प्रसन्नोभव-वरदोभव ) ॥ इति श्री कलशाय नमः ॥
कुम्भमुद्रां प्रदर्श्य । ॥ कलशस्य अमृताय नमः ॥
दत्ताङ्गुष्टं पुरोङ्गुष्ठे [ वामाङ्गुष्टे ] क्षिप्त्वा हस्तद्वयेनच ॥
सावकाशां [ मध्यशून्यां ] मुष्टिकां च कुर्यात्सा कुम्भमुद्रिका ॥

त्रिवेणी में स्नान करने से पूर्व कलश मुद्रा दिखाकर उसमें अमृत की भावना करके फिर स्नान करे ।

मण्डलेश्वरजी के आने के पूर्व ही अनिवेदित सभी सामग्रियाँ उपस्थित हो गई थीं । महात्माओं के सत्कार तथा निवास का प्रबन्ध ठीक हो गया । मण्डलेश्वरजी के आने के लिये पुनः पुनः पत्र तथा बुलाने के लिये जन जाने लगे । ठीक संक्रान्ति के पूर्व महात्मा तथा छात्रों के साथ मण्डलेश्वरजी का शुभागमन प्रयाग राज के अर्धकुम्भ के अवसर पर हुआ । आने की सूचना पाकर महात्माओं

तथा सेवकों में बड़ा ही उत्साह भर आया। वे बड़े ही उत्साहित हो मण्डलेश्वरजी की अगवानी किये और समारोह के सहित मण्डप में लाये। महाराज के आगमन से मानो तीर्थराज स्वयं सदेह समुपस्थित हो गये। धार्मिक कार्यों में उसी समय मानो सजीवता आ गई।


अधर्मोन्मूलनो पताका

तात्कालिक धार्मिक क्षेत्रमें मण्डलेश्वरजी का नाम सर्वप्रथम उल्लेखनीय था। जिस स्थान को मण्डलेश्वर जी अपने पाद-पराग से विभूषित करते थे पाखण्डावलम्बि जन त्रस्त-से हो जाते थे। कुम्भ ऐसे अवसर पर कई लाख की भीड़ तो होती ही है। जिसमें अनेक जन धर्म के नाम से भोलीभाली जनता में अधर्म के भाव भरने का प्रयत्न करते हैं तथा आंशिक सफलता भी पाते हैं। मण्डलेश्वरजी ने ऐसे अवसर पर स्वयं अधर्मोन्मूलनी पताका का उद्वहन किया और दृढ़ता के साथ अधर्मोन्मूलन के लिये सन्नद्ध हो गये। सभी साधु-समाजने मण्डलेश्वरजी का सहयोग दिया और वे मध्य मेले में पताका को निखात कर दिये।

अपना पेट भरना तो शूकर, कुत्ता, गृद्ध, तथा काक के लिये ही प्रसिद्ध है। सभी जीवों में आत्मीयता का ज्ञान करना यही मनुष्यत्व है। साधारण जन से लेकर राजाधिराज तक अपनी सत्ता राष्ट्र की सत्ता समझें, कारण ये सभी एकही वृक्ष के फल हैं। एक ही सरित के जल हैं, यही प्रत्येक जनता को समझना चाहिये। जबतक देश में ये भाव लोगोंके चित्त में स्थिरपद न हो जायँगे तब तक धर्म की ध्वजा का उन्नत होना सर्वथा असम्भव है। जब से लोभोत्पादक क्षणिक सुखकारी वस्तुओं के प्रलोभन में पड़कर लोगों ने अपने दिव्य अनुकरणीय धर्म को छोड़ कर अधर्म को ही धर्म मान लिया तभी से देश में असुख अशान्ति अनेक प्रकार के आधि-व्याधियों ने अपना सम्राज्य स्थापित कर लिया। ठीक है, सूर्य के अस्त होने पर अन्धकार के अतिरिक्त और कौन प्रतिष्ठा पा सकता है। जितने समाज, जितनी संस्थायें तथा जितने मनुष्य दिखाई देते हैं सभी धर्म के नाम पर अपना अपना राग अलापते हैं। केवल अबोध जनता को धर्म का स्वांग दिखाया जाता है। असफलता ही से धार्मिक कृत्यों के औचित्य का पता लग जाता है। इन्हीं सब वैषम्यों को देखकर मण्डलेश्वरजी जी तोड़ परिश्रम के साथ अधर्मविरोध करने तथा सत्य धर्म-स्वरूप का परिचय जनता में देने लगे। जिस प्रकार धार्मिक भावनायें मनोमन्दिर में स्थान पावें ऐसे प्रयत्न में लग गये।



तीर्थराज प्रयाग के कुम्भ में महामण्डलेश्वर महाराज जी के सामने असली बब्बर शेर तथा स्वामी कृष्णानन्द जी शेरवाले, श्री स्वामी परमानन्द जी, श्री स्वामी महेश्वरानन्द जी आदि महात्मा विराजमान हैं।

मण्डलेश्वरजी सुपरीक्षित विद्वान् तथा महात्माओं के द्वारा जनता में सत्य-धर्म स्वरूप का प्रचार करने लगे तथा स्वयं अपने निवास स्थान के पास एक विशाल पण्डाल की भी आयोजना करवा दी। जहाँ पर प्रतिदिन पण्डितों तथा महात्माओं के प्रवचन होते रहते थे। कई स्थानों में यज्ञशालायें भी बनी थीं जिनमें प्रातः सायं वैदिकों के मन्त्रोच्चारण तथा स्वाहाकार से गगन गूँज उठता था। यों तो हजारों महात्माओं की प्रतिदिन भिक्षा निवास-स्थान ही पर होती थी, पर कोई भी ऐसा जन न बचा होगा जो भोजन तथा वस्त्र की अभिलाषा से आकर पूर्णमनोरथ न हुआ हो। सूर्योदय से सूर्यास्त तक दान-धारा अविहत गति से प्रवाहित रहती थी। मण्डलेश्वरजी यद्यपि मान-प्रतिष्ठा से दूर बचना चाहते थे, पर जहाँ देखो, धर्मानु-यायियों, दीनवर्ग, पण्डितमण्डली, साधु-समाज में, जयध्वनि सुनाई देती थी। उस समय सत्य-युग का सत्य अवतार दृष्टि-गोचर होता था। मेले में स्थान-स्थान पर धर्म प्रचारक शाखायें भी स्थापित थीं; अतः प्रायः कोई भी यात्री मण्डलेश्वरजी के सदुपदेश तथा मन्तव्यों से वञ्चित न रह गया।

**जाति-भेद पर प्रश्न**

एक दिन जब कि महाराज सभा में बैठे हुए वर्णाश्रम का स्वरूप उपस्थित गृहस्थों को सुना रहे थे उसी समय एक महाशय जो देखने में शिक्षित प्रतीत होते थे, मण्डलेश्वरजी से पूछने लगे—"महाराज! जब कि ईश्वर ने सभी मनुष्यों की आकृति समान रूप से बनाई है तो भिन्न-भिन्न जातियाँ तथा विवाहादि सम्बन्ध में विचार की सङ्कीर्णता कैसी?" मण्डलेश्वरजी ने पूछा कि आप वेद मानते हैं या नहीं? उत्तर मिला कि "अवश्य"। फिर मण्डलेश्वरजी ने उन महाशय को सावधान कर उत्तर देना प्रारम्भ किया।

**वेद का निर्णय**

प्रथम वेद ने आर्यों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र चार ही जातियाँ बतलाईं। जो कि (ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्) इत्यादि मन्त्रों से अभिव्यक्त है। अनन्तर यजुर्वेद के तीसवें अध्याय में आर्यों के भेद की भरमार कर दी है जिसकी गणना निम्नलिखित प्रकार से है। अतिकुष्टाय मागधम्। ३०।५। नृत्ताय सूतं गीताय शैलूषं मेधायै रथकारं धैर्याय तक्षणम्।३०।६। तपसे कौलालं मायायै कर्मारं रूपाय मणिकारम्। ३०।७। नदीभ्यः पौञ्जिष्ठ मृचीकाभ्यो नैषादं पिशाचेभ्यो विदलकारीम्। ३०।८। अर्मेभ्यो हस्तियं पुष्ट्यै गोपालं वीर्यायाविपालं कीलालाय सुराकारम्। ३०।११। मेधाय वासः पल्पूली प्रकामाय रजयित्रीम्। ३०।१२। साध्येभ्यश्चर्मम्नम्। ३०।१५। सरोभ्यो धैवर मुपस्था-

वराभ्यो दाशमवाराय कैवर्तं स्वनेभ्यः पर्णकं गुहाभ्यः किरातम् । ३०।१६ । वर्णाय हिरण्यकारम् । ३०।१७। वायवेचाण्डालमन्तरिक्षाय वंशनर्तिनम् । ३०।२१ ।

इन जातियों के मूल के सम्बन्ध में धर्मशास्त्र अपना निर्णय देता है कि:—

ब्राह्मण्यां वैश्यसंसर्गाज्जातो मागध उच्यते ।
वन्दित्वं ब्राह्मणानाञ्च क्षत्रियाणां विशेषतः ॥
प्रशंसावृत्तिको जीवेद्वैश्यप्रेष्यकरस्तथा ॥

औशनस स्मृति

वैश्यके संसर्ग से ब्राह्मणी से उत्पन्न सन्तान को मागध कहते हैं ब्राह्मण तथा विशेषकर क्षत्रियों का वन्दित्व ही इनका प्रधान कार्य हैं ? इनकी जीविका प्रशंसा करना तथा वैश्यों की सेवा है ।

क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः

मनु० अ० १० श्लोक ११

क्षत्रिय से विप्रकन्या में उत्पन्न सन्तान सूत कही जाती है ।

ब्राह्मण्यां क्षत्रियाच्चौर्याद्रथकारः प्रजायते ।
वृत्तञ्च शूद्रवत्तस्य द्विजत्वं प्रतिषिध्यते ॥ ५ ॥

औशनस

गुप्तव्यभिचार से क्षत्रिय से ब्राह्मणी में जो सन्तान उत्पन्न होती है उसे रथकार कहते हैं। उसकी जीविका शूद्र की भाँति होती है और वह द्विज नहीं नहीं कही जा सकती ।

वैश्यायां विप्रतश्चौर्यात् कुम्भकारः स उच्यते । ३२

औशनस

वैश्य कन्या में ब्राह्मण से उत्पन्न सन्तति कुम्भकार कही जाती है ।

नृपायामेव तस्यैव जातो यश्चर्मकारकः ॥ ४ ॥

औशनस

क्षत्रिय की कन्या में सूत से उत्पन्न चमार कहा जाता है ।

ब्राह्मण्यां शूद्रसंसर्गाज्जातश्चाण्डाल उच्यते ॥ ८ ॥

औशनस

शूद्र से ब्राह्मणी में उत्पन्न चाण्डाल होता है ।

इसी प्रकार प्रत्येक संकर जातियों के मूल को धर्मशास्त्रों ने बतलाया है। भिन्न-भिन्न जातियों के सम्बन्ध से जो सन्तान उत्पन्न होती है वह संतान माता

तथा पिता की जाति से भिन्न जाति हो जाती है, जो धर्म शास्त्रों के प्रमाण से स्पष्ट है। यह नवीन जाति वर्णचतुष्टय से पृथग्भूत हो जाती है। इसी को धर्मशास्त्रों ने वर्णसंकर नाम से बतलाया है। इन जातियों की जिस देशमें अधिकता हो जाती है उस देश तथा वहाँ की प्रजाओं की जो दशा होती है उसके संबंध में मनुजी लिखते हैं—

यत्र त्वेते परिध्वंसाज्जायन्ते वर्णदूषकाः।
राष्ट्रिकैः सह तद्राष्ट्रं क्षिप्रमेव विनश्यति॥

मनु० अ० १० श्लोक ६१

जिस देश में इस प्रकार के वर्णसंकर अधिक उत्पन्न होने लगते हैं वह देश जनता के साथ-साथ शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। प्रकृतिका यह नियम है कि संङ्कीर्ण वस्तु चिरकाल तक स्थिर नहीं रह सकती। जैसे कलमी वृक्ष के बीज से फिर वृक्ष नहीं होता। खच्चर के संतान नहीं होते। इसी दुष्परिणाम को अनुभव में लाकर विदेशियों में भी किसी किसी ने अपने देश में नियम चला दिया कि हमारे यहाँ दूसरे देशवासी का विवाह संबन्ध नहीं हो सकता। जिन दोषों का अनुभव में लाने के अनंतर लोग परित्याग करते हैं उन दोषों को तथा उनके परिणाम को तपोबल से भलीभाँति समझ कर हमारे प्राचीनतम महर्षियों ने पूर्व ही हेयता तथा उपादेयता का मार्ग दिखा दिया है। वर्तमान समय में भी धार्मिक जन ऐसे व्यवहारों से घृणा करते हैं; अतः देश नाशक तथा घृणित इन विचारों को कभी भी मन में न आने देना चाहिये। वेदशास्त्र निर्णीत मार्ग के पथिक ही राष्ट्र, समाज, परिवार तथा स्वकीय कल्याण के पारदर्शी हो सकते हैं।

मण्डलेश्वरजी के इस कल्याणकारी उपदेश से उपस्थित जनता प्रसन्नता की ताली बजाने लगी और प्रश्नकर्ता महाशय भी मण्डलेश्वरजी की स्थिति से देश को धन्यवाद देते हुए विनीत भाव से प्रणाम कर चले गये।

इस प्रकार १ मास तक मण्डलेश्वरजी का दान, यज्ञ तथा धर्मोपदेश प्रचलित रहा। प्रायः सभी स्थानीय जनता तथा यात्रियों पर मण्डलेश्वरजी के उपदेश की पूर्ण छाया पड़ी। कितने ही जो अनुपादेय विचार को ही धर्म समझ बैठे थे, अपने विचारों को तिलाञ्जलि देकर मण्डलेश्वरजी के निर्दिष्ट मार्ग के पथिक बनकर कल्याणभागी बने। ठीक है, लोकोपकार के अतिरिक्त ऐसे वितृष्ण महात्माओं की प्रवृत्ति का हेतु ही क्या हो सकता है।

**काशी-आगमन**

कुम्भ मेले की समाप्ति होनेपर मण्डलेश्वरजी काशीजी पधारे। कुम्भ मेले में जो महात्मा एकत्र थे उनमें से अधिक संख्या में काशीजी आये और शेष यात्रा के लिये वहीं से बाहर चले गये।

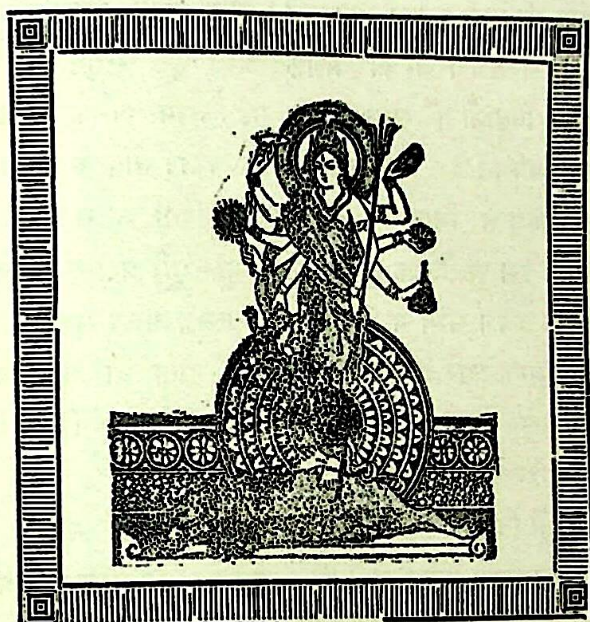
तापत्रयसन्तप्तजनों के लिये मण्डलेश्वरजी के सदुपदेश अमृतधारा-से थे। अतः अनेक सद्गृहस्थ भी यही चाहते थे कि मण्डलेश्वरजी की पादच्छाया में विश्रामकर अलौकिक सुख के भागी बनें। इसलिये इनके साथ-साथ इसी प्रलोभन से काशीजी आकर अनेक सद्गृहस्थ भी लाभ उठा रहे थे।

**पञ्चक्रोशी-यात्रा**

फाल्गुन का महीना था इस समय काशी में पञ्चक्रोशी की यात्रा का प्रारम्भ था। अधिकाधिक सङ्ख्या में दूर-दूर की धार्मिक जनता पञ्चक्रोशी यात्रा के लिये आई थी। यद्यपि मण्डलेश्वजी जिस स्थान पर निवास करते थे वह स्थान स्थानीय जनता से ही जो उपदेश सुनने आते थे, पूर्ण हो जाता था और कभी-कभी तो श्रोताओं के लिये स्थान की न्यूनता भी पड़ जाती थी। फिर भी निर्वाणी अखाड़ा के महात्माओं, स्थानीय जनता तथा आगन्तुक धार्मिक जनों के अनुरोध से मण्डलेश्वरजी ने पञ्चक्रोशी यात्रा में धर्मप्रचार का विचार स्थिर किया। मण्डलेश्वरजी की भक्त सुलुम्बर स्टेट ( राजपूताना ) की रानी आनन्द कुअँर बा साहेबा ने इस शुभ कार्य में अधिक सहयोग दिया। ५–७ सौ व्यक्तियों के लिये यात्रा का समग्र साधन सम्पादित हो गया। यात्रा का प्रारम्भ हो गया।

मण्डलेश्वरजी की यात्रा का समाचार जहाँ तक पहुँचा प्रायः सभी लोग ( एका क्रिया द्व्यर्थकरी प्रसिद्धा ) को चरितार्थ करने के लिये साथ हो जाते थे। इस तरह साधु महात्मा धनीमानी गृहस्थों की यह यात्रा दर्शनीय थी। मण्डलेश्वरजी को यद्यपि कोई कार्य न देखना पड़ता था पर जिस आशा से लोग पादच्छाया का आश्रयण लेते थे, उपदेश द्वारा उसी की पूर्ति से उन्हें अवकाश न मिलता था। विश्राम-स्थान पर श्रद्धालुजन घेर लिया करते थे और मण्डलेश्वरजी का वह प्रवचनामृत प्रवाहित हो चलता था। साथ रहनेवाले धनीमानी लोगों से दीन-दुखियों को अन्न तथा वस्त्र दिला दिया करते थे। इस प्रकार इनकी यात्रा के साथ मानों दान मान भी प्रसन्नतापूर्ण यात्रा कर रहा था। पण्डे, पुजारी तथा समीपवर्ती जनों से सुना जाता था कि इसके पूर्व इस प्रकार की यात्रा हम लोगों ने अपने जीवन में न देखी थी। वस्तुतः अलौकिक कार्य के सम्पादयिता कौपीनधारी तपस्वी महात्माओं के अतिरिक्त और कौन हो सकता है।

## महिषमर्दिनी भगवती श्री दुर्गा महारानी



**देवी का साक्षात् दर्शन**

जिस समय द्वितीय दिवस भीमचण्डी में निवास हुआ उस दिन सन्ध्या समय विशाल सभा हुई। मण्डलेश्वरजी उपस्थित जनता को भगवती की महिमा बतलाते हुए तन्मनस्क हो गये थे। जनता भी अवाक् तथा निश्चेष्ट हो आदिशक्ति स्वरूप बन रही थी। सभा समाप्ति के अनन्तर नित्यकर्म से निवृत्त हो मण्डलेश्वरजी भगवती के मन्दिर में गये। पुजारियों ने दर्शकगण को रोककर केवल मण्डलेश्वरजी का मन्दिर में प्रवेश कराया। ज्यों ही मण्डलेश्वरजी माला पहना रहे थे कि साक्षात् भगवती ने सम्मुखस्थ हो माला को स्वीकार कर लिया तथा तपोवृद्धयात्मक आशीर्वाद से अलंकृत कर दृगगोचर हो गई।

इसके अनन्तर रामेश्वर, शिवपुर तथा कपिलधारा निवास तथा धर्मप्रचार करते हुए भी विश्वनाथ अन्नपूर्णा का दर्शन कर गोविन्दमठ में आ गये।

इस प्रकार धूमधाम से सानन्द पञ्चक्रोशी की यात्रा समाप्त कर मण्डलेश्वरजी काशी पधारे और गोविन्दमठ में विद्वन्मण्डली तथा महात्माओं के साथ आ पहुँचे।

मण्डलेश्वरजी ने मठ में आकर समष्टि भोज की आयोजना की। इनकी अभिलाषा प्रकट होते ही शीघ्र समग्र व्यवस्था हो गई। यों तो अस्सीवरुणा के बीच ही महात्माओं को निमन्त्रण भेजा गया पर भोज के दिवस अगणित जन दिखाई

दिये। पर मण्डलेश्वरजी की आज्ञा थी कि जो जन भोजन तथा वस्त्र की अभिलाषा से यहाँ आवें कोई भी असत्कृत न जाने पावें। अतः सभी आगन्तुक सत्कृत हुए और जयघोष से मण्डलेश्वरजी को अलंकृत करते हुए सन्तुष्ट हो वहाँ से जाते थे। इसके अनन्तर विद्वानों की सभा भी की गई जिसमें अनेक शास्त्रों के समालोचक विद्वान् उपस्थित थे। मण्डलेश्वरजी में दयार्द्र भाव के साथ-साथ गुणग्राहिता भी यथेष्ट रूप से स्थान पाई थी। अतः पण्डितों का सत्कार इन्होंने स्वयं अपने हाथों किया। इस अलौकिक गुणज्ञता की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए विद्वान् वहाँ से विदा हुए। केवल सभा में ही नहीं पर सत्सङ्गजनित सुख के लोभ से भी प्रति दिन विद्वद्वर्ग मण्डलेश्वरजी के पास उपस्थित होता था और मण्डलेश्वरजी अपने नियमानुसार सेवकों द्वारा उनका वस्त्रादि प्रदान से यथोचित सत्कार करते थे। इसी प्रकार की इनकी दिनचर्या थी।

गोविन्दमठ में निवास करते हुए भी राजराजेश्वरी के मन्दिर ललिताघाट पर उन्हें अधिक अनुकूलता प्रतीत होती थी। कारण, यह मन्दिर अत्यन्त प्राचीन था और यहाँ महात्माओं के लिये सभी प्रकार की अनुकूलता थी। इस मन्दिर को सम्वत् १७२५ में तात्कालिक टीकमगढ़ के नरेश ने बनवाया था। ये श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी सिद्धगिरिजी महाराज की तपस्या से आवर्जित होकर उन्हीं के निवासार्थ इस मठ का निर्माण किये थे। इन्हीं योगिराज के आशीर्वाद से टीकमगढ़ नरेश को सन्तति भी, उत्पन्न हुई थी। उसी समय योगिराज ने इस मठ में राजराजेश्वरी देवी की स्थापना भी की थी। और आशीर्वाद भी दे गये थे कि जो कोई सद्भक्ति से इस देवी की उपासना करेगा अवश्य कृतकृत्य होगा।

॥ श्रीदेव्यै नमः ॥

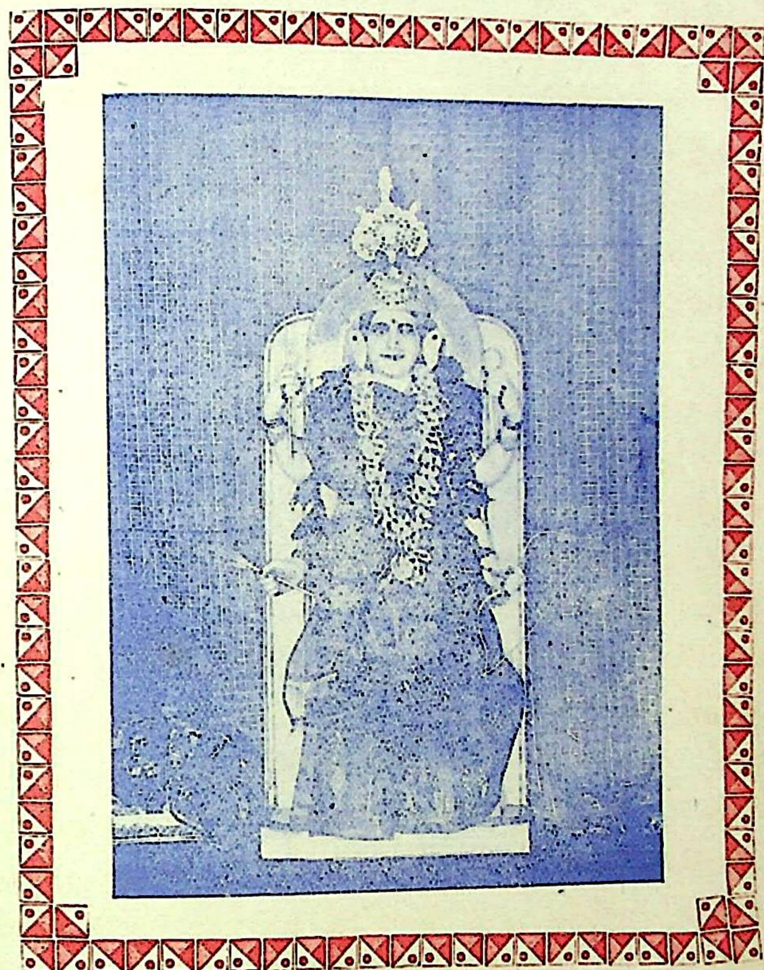
*** कलौ चण्डीविनायकौ ***

( श्रीराजराजेश्वरी देवी—ललिताघाट, बाबा सिद्धगिरिजीका मठ; काशी )

## * अष्टकं प्रारभ्यते *

ॐ कल्याणप्रदपादपङ्कजयुगां संसारसारायिताम्।
सानन्दामतिमञ्जुलामलविभां धर्मार्थकामप्रदाम्॥
दिव्यां दिव्यवराम्बराभरणभृत्सर्वाङ्गसंशोभिताम्।
वन्दे तां जगदम्बिकां भगवतीं श्रीराजराजेश्वरीम्॥ १॥

सिद्धपीठ श्री राजराजेश्वरी देवी, ललिता घाट मंदिर, काशी



ॐ कल्याणप्रदपादपङ्कजयुगां संसारसारायिताम् ।
सानन्दामतिमञ्जुलामलविभां धर्मार्थकामप्रदाम् ॥
दिव्यां दिव्यवराम्बराभरणभृत्सर्वाङ्गसंशोभिताम् ।
वन्दे तां जगदम्बिकां भगवतीं श्रीराजराजेश्वरीम् ॥

इस स्थान में सिद्ध विद्वान् महात्मा ही निवास करते आये हैं । वर्तमान में भी विरक्त त्यागशील विद्वान् पूज्य श्री १०८ स्वामी शंकरभारती जी आदि महात्मा निवास कर रहे हैं ।

चञ्चच्चारुमरीचिमण्डलमुखीमाखण्डलाधीश्वरीम् ।
सेवासंस्कृतमानसैः सुरवरैराधितां शोभिताम् ॥
दारिद्रौघविनाशिनीं करुणया युक्तां विमुक्तां पराम् ।
वन्दे तां जगदम्बिकां भगवतीं श्रीराजराजेश्वरीम् ॥ २ ॥

या साक्षात्प्रकृतिः परा गुणमयी संसारनिर्वाणकृत् ।
या विद्या भवबंधहृन्नियमतः सम्प्रार्थ्यते योगिभिः ॥
या चिच्छक्तिरुदाहृता विरहिता संसर्गदोषैरहम् ।
वन्दे तां जगदम्बिकां भगवतीं श्रीराजराजेश्वरीम् ॥ ३ ॥

यामानन्दमयीं दयालुहृदयां दिव्योदयां भव्यदाम् ।
भ्राजच्छारदपूर्णचन्द्रसुषमां सौन्दर्यसारोज्वलाम् ॥
लीलालालितभक्तपालनपटुं स्वच्छन्दमन्दस्मिताम् ।
वन्दे तां जगदम्बिकां भगवतीं श्रीराजराजेश्वरीम् ॥ ४ ॥

यामप्राप्य निवर्तते खलु मनो वाणी च सर्वेन्द्रियैः ।
यां लब्ध्वा परयोगिनो भवभयं नो यान्ति मुक्तिं गताः ॥
वेधोविष्णुमहेश्वरादिविबुधैः संसेव्यमानां मुदा ।
वन्दे तां जगदम्बिकां भगवतीं श्रीराजराजेश्वरीम् ॥ ५ ॥

वाग्विद्येति सरस्वतीति विदिता या लभ्यते पण्डितैः ।
माहात्म्यं न विदुः परं सुरगणा यस्याः समस्तं स्तुतम् ॥
कर्पूरद्युतिमिन्दुसुन्दरमुखीमानन्दसान्द्रान्तराम् ।
वन्दे तां जगदम्बिकां भगवतीं श्रीराजराजेशरीम् ॥ ६ ॥

या भक्तान् परिपाति यां च मुनयो ध्यायन्ति नित्यं यया ।
युद्धे दैत्यगणा हताः किल बलिं यस्यै ददत्यर्चकाः ॥
यस्याः प्रादुरभूज्जगन्महदहो तेजोस्ति यस्या परं ।
यस्यां सर्वमिदं वसत्यवतु मां सा राजराजेश्वरी ॥ ७ ॥

भावाढ्या भवभञ्जिनी भविकदा भालप्रभाभासुरा ।
भक्तानां भवभारभेदिविभवाऽभीर्भाग्यसौभाग्यभूः ॥
भूषाभूषितभव्यभागभुजयुगा भर्गस्तुता भार्गवी ।
भायाद् भूरिविभूतिभृद् भगवती श्रीराजराजेश्वरी ॥ ८ ॥

ॐ तत्सत् श्रीजगदम्बार्पणमस्तु ।

मण्डलेश्वरजी को इस सिद्ध स्थान तथा मनोरथपूरिका भगवती पर बड़ी ही आस्था थी। अतः वे प्रतिदिन इस स्थान तथा भगवती के दर्शनार्थ जाया करते थे और कुछ समय तक वहीं भजन तथा पूजन में समय व्यतीय करते थे। एक दिन मण्डलेश्वरजी ने इन भगवती का बड़ी धूमधाम से शृङ्गार कराया और इसके उपलक्ष में अनेक दीनःदुखियों को दान दिलाया। उत्सव में प्रायः सभी महात्मा पण्डित मण्डली तथा छात्रवर्ग सम्मिलित थे। इस प्रकार दान, मान, उत्सव, सभा तथा उपदेशादिकार्य में अपने अमूल्य समय का सदुपयोग करते हुए मण्डलेश्वरजी चैत्र कृष्ण तक काशी में सुदिवस करते रहे। और बाहर से भक्तों की पुनः पुनः प्रार्थनायें शुभागमन के लिये हुआ करतीं थीं। जब कि लोगों की उत्कट श्रद्धा तथा भक्ति से वशीभूत हुए तो महात्माओं के साथ मण्डलेश्वरजी ने पूर्वी स्थानों की यात्रा का विचार किया।

**गया की यात्रा**

इस बात को हम पहले ही बतला चुके हैं कि मण्डलेश्वरजी जब कभी यात्रा के लिये प्रस्तुत होते थे तो अनेक जिज्ञासु तथा मुमुक्षु महात्मा तथा श्रद्धालु सद्गृहस्थ भी साथ हो जाते थे इस यात्रा में भी यही वृत्तान्त था। एक विशाल समुदाय के साथ मण्डलेश्वरजी गया तीर्थ के लिये प्रस्थानकर दिये। यात्रा के समय प्रवास के उपयोगी कोई भी सामग्री न रहती थी। अधिक अनुरोध करने पर भी केवल कौपीन तथा कमण्डलुमात्र साधन लेकर निकलते, पर जहाँ कहीं पहुँचते थे सभी प्रकार की सामग्रियाँ पहले से ही उपस्थित रहती थीं। यह केवल तपस्या का ही प्रभाव कहा जा सकता है।

मण्डलेश्वरजी गया पहुँचकर किसी धर्मशाले में ठहरना चाहते थे पर जब नगर वासियों तथा तीर्थ पुरोहितों को यह समाचार ज्ञात हुआ तो वे अपने अपने स्थान में मण्डलेश्वरजी को ले जाने का विशेष अनुरोध करने लगे। पर मण्डलेश्वरजी तीर्थ पुरोहित के सुविधापूर्ण स्थान में ही निवास करने का विचार स्थिर किया।

गया चारों तरफ पर्वतमाला से घिरी हुई है अतः किसी समय पर्वत के शिखर पर किसी समय प्रसिद्ध स्थानों में महात्मा भ्रमण करते थे। मण्डलेश्वरजी का समय-समय पर धर्म प्रचार का कार्य भी प्रचलित था। इस प्रकार विष्णुपद मन्दिर, ब्रह्म योनि पर्वत, रामशिला, प्रेतशिला, रामगया, गयाशिर सूर्यकुण्ड आदि तीर्थ स्थानों में भ्रमण तथा उपदेश कार्य से तीन चार दिन व्यतीत कर बुद्ध गया के लिये प्रस्थित हुए।

बुद्ध गया

यह स्थान पहले बौद्धों के अधिकार में था। जगद्गुरु शङ्कराचार्य के दिग्विजय के अनन्तर दशनामी संन्यासियों के अधिकार में हो गया। मण्डलेश्वरजी का आगमन सुनकर इस स्थान के अधिकारी कृष्णदयालु गिरिजी महाराज ने बड़ी प्रसन्नता तथा उत्साह के साथ प्रत्युद्गमन किया और अपने स्थान में मण्डलेश्वरजी को सानुरोध ठहराया। महन्तजी की संस्कृत पाठशाला तथा विशाल अन्नसत्र आदि सद्विचारसूचक सत्कर्मों को देखकर मण्डलेश्वरजी नितान्त सन्तुष्ट हुए तथा महन्तजी की भूरि भूरि प्रशंसा की। जगन्नाथ मन्दिर तथा बौद्ध संन्यासियों की रमणीय गुहाओं का दर्शन कर ४-५ दिन के अनन्तर वहाँ से वैद्यनाथ धाम को प्रस्थान किया। महन्तजी मण्डलेश्वरजी की और भी कुछ दिवस स्थिति चाहते थे, पर मण्डलेश्वरजी के सम्मुख अधिक कार्य था, अतः वे विशेष अनुरोध से भी रुक न सके।

वैद्यनाथ धाम

बुद्ध गया से प्रस्थान कर मण्डलेश्वरजी समाज के सहित वैद्यनाथ धाम पहुँचे। यहाँ पर सर हरीराम गोयनका की बिशाल धर्मशाला है जिसमें यात्रियों को सब प्रकार की सुविधा दी जाती है। यहाँ विशाल तथा रमणीय शिवालय है। शिवजी वैद्यनाथ तथा रावणेश्वर इन दोनों नामों से प्रसिद्ध हैं। ये द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग के अन्तर्गत हैं। शिवपुराण में इनका दर्शन मोक्षप्रद बतलाया गया है।

मण्डलेश्वरजी दूसरे दिन मण्डली के साथ भगवान् शङ्कर तथा जगदम्बा का पूजन कर रुद्राभिषेक करवाये तथा मण्डली के शिव-स्तोत्र के उच्चारण से आकाश गूँज उठा। मण्डलेश्वरजी की श्रद्धासहित पूजनपद्धति लोगों में सहसा श्रद्धातिरेक उत्पन्न कर देती थी। इस प्रकार और भी देवालयों में यात्रा करते हुए निवास-स्थान पर आये। स्थानीय गुरुकुल तथा संस्कृत पाठशाले के अधिकारी भी मण्डलेश्वरजी को अपनी संस्था में ले गये। वहाँ स्वामीजी का प्रवचन भी हुआ। उस समय ब्रह्मचारी वालानन्दजी वहाँ धार्मिक क्षेत्र में सर्वाग्रसर थे। स्थानीय गुरुकुल ब्रह्मचर्याश्रम के संस्थापक आप ही थे। आपने महात्माओं की सेवा में अधिक अनुरक्ति दिखलाई। मण्डलेश्वरजी इनकी अधिक प्रशंसा किया करते थे।

ललुआ

जिस समय मण्डलेश्वरजी तीर्थ-यात्रा तथा धर्म-प्रचार का कार्य कर रहे थे उस समय ललुआ में ईसाइयों की मिशन भी प्रचार कर रही थी। अतः धार्मिक हिन्दू जनता ने वैद्यनाथ धाम में ही

मण्डलेश्वरजी से विशेष अनुरोध किया कि इस सम्बन्ध से ललुआ में महाराज का कुछ काल तक निवास जनता के लिये अत्यन्त हितकर होगा। मण्डलेश्वरजी ने लोगों के अनुरोध को स्वीकार कर वैद्यनाथ धाम से ललुआ को प्रस्थान किया।

ललुआ पहुँचकर मण्डलेश्वजी नगर के समीप एक बगीचे में ठहरे। धार्मिक जनता मिशनरी के प्रचारप्रावल्य में इसकी प्रतीक्षा ही कर रही थी कि कोई धार्मिक हिन्दू नेता इस अवसर पर आये। पर तात्कालिक सर्वाग्रगण्य मण्डलेश्वरजी के अतर्कित शुभागमन से स्थानीय धार्मिक जन फूले न समाये। और विशेष आयोजन के साथ महाराज का लोगों ने स्वागत किया तथा बड़े समारोह से जुलूस निकला। स्थान स्थान पर प्रतिदिन सार्वजनिक सभायें होने लगीं। मण्डलेश्वरजी के प्रवचन का इतना जनता पर प्रभाव पड़ा कि मिशन के प्रचारक सर्वथा हताश-से हो गये और शनैः शनैः अपना प्रचार-कार्य स्थगित करने लगे।

किसी दिन ईसाइयों के चक्कर में पड़े हुए, अबुद्धिपूर्वक व्यवहार को सभ्यता की कोटि में डालनेवाले कुछ जन सभा समाप्ति में मण्डलेश्वरजी से प्रश्न करने लगे। उस दिन के प्रवचन का विषय वर्णाश्रम था।

**प्रश्नोत्तर**

वे पूछने लगे महाराज ! जब कि ईश्वर का नाम स्मरण सभी पापों को नष्ट कर देता है तो हीन जाति प्रापक पाप भी नष्ट हो जाते हैं। ऐसी दशा में ईश्वर-भक्त चाहे जन्मना न भी हो पर उस समय उच्च जाति का हो सकता है। आपके शास्त्र भी इसमें प्रमाण हैं।

अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोक नाम यत्।
संकीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथानलः ॥

भाग० स्कं० ६ अ० २

अज्ञान अथवा ज्ञान से जो ईश्वर के नाम को स्मृतिपथ पर लाता है उसके समग्र पाप अग्नि में काष्ठ की भाँति भस्म हो जाते हैं।

मण्डलेश्वरजी ने उत्तर दिया कि शास्त्रों ने ईश्वर भक्ति से पाप का दूरीकरण बतलाया है, न कि जाति परिवर्तन। (जीवोब्रह्मैव नापरः) जीव ब्रह्म एक ही है जिन कारणों को लेकर जीव संज्ञा होती है उन्ही को पाप कहते हैं।

कर्म रूप पाप तीन प्रकार के होते हैं। (१) सञ्चित कर्म जो पूर्व जन्म में किये गये हैं और जो भोगने के लिये शेष हैं। (२) प्रारब्ध सञ्चित कर्मों में से

जिन कर्मों के आधार पर शरीर का पालन तथा भोग होता है उसे प्रारब्ध कर्म कहते हैं। (३) क्रियमाण, इस प्राप्त शरीर से जो शुभाशुभ कर्म किया जाता है उसे क्रियमाण कर्म कहते हैं। ईश्वर स्मरण तथा सर्वतोभावेन अपने को ईश्वर में समर्पण करनेवाले जन का सञ्चित तथा क्रियमाण कर्म का क्षय तो हो जाता है, पर प्रारब्ध-कर्म का क्षय ( भोगादेव क्षयः ) के नियम से भोग से ही होता है। भगवत्चिन्तन से पुनः शरीर प्राप्त होने के साधन न होने से मोक्ष हो जाय पर प्रारब्ध कर्म का नाश ईश्वर चिन्तन से नहीं होता। इस विषय पर योग शास्त्र निर्णय देता है कि— ( सतिमूले तद्विपाकोजात्यायुर्भोगाः ) योग दर्शन पाद २ सूत्र १३।

प्रारब्ध-कर्म की विद्यमानता में उसके फल जाति, आयु तथा भोग नहीं बदल सकते। जाति तो प्रारब्ध कर्म का फल है। अतः वह जाति तो प्रारब्ध-कर्म के क्षय होने पर अर्थात् शरीर परिवर्तन में ही बदलेगी।

भेदाभेदौ सपदि गलितौ पुण्यपापे विशीर्णे।
माया मोहौ क्षयमधिगतौ नष्ट सन्देह वृत्तेः॥
शव्दातीतं त्रिगुणरहितं प्राप्ततत्वावबोधम्।
निस्त्रैगुण्ये पथिविचरतः को विधिःको निषेधः॥

जीव तथा ब्रह्म की भिन्नता है अथवा अभेद, ये विकल्प जिसके नष्ट हो गये हैं, जिसके पुण्य पाप रूप कर्म विगलित हो गये हैं, जो माया मोह से रहित हैं, जिनकी सन्देहवृत्तियाँ नाममात्रावशेष रह गईं हैं, शव्दातीत, त्रिगुणरहित तत्व ज्ञान को पाकर जो जीवनमुक्त हो चुके हैं उनके लिये संसार में किसी प्रकार का विधि अथवा निषेध नहीं है।

इससे सिद्ध होता है कि सञ्चित तथा क्रियमाण कर्म के क्षय होने पर भी प्रारब्ध कर्म भोगार्थ शरीर रखना पड़ता है। ईश्वर-चिन्तन से प्रारब्ध कर्म का नाश कभी नहीं होता। भक्तराज प्रह्लाद की उत्कट भक्ति से भगवान् ने नृसिंह रूप धारण किया। हिरण्यकशिपु के देहावसान के अनन्तर प्रह्लाद ने भगवान् की स्तुति की। उस समय प्रह्लाद ने भगवान् से कहा कि—

मा मां प्रलोभयोत्पत्त्या सक्तं कामेषु तैर्वरैः।
तत्संङ्गभीतो निर्विण्णो मुमुक्षुस्त्वामुपाश्रितः॥

प्रारब्ध कर्मों के अनुसार उत्पन्न होकर विषय भोगों में अनुरक्त मुझे वरदान का प्रलोभन न दीजिये। कामासक्ति से भीत होकर दुःखी हो मोक्ष की अभिलाषा से आपकी शरण में आता हूँ।

भगवान् नृसिंह ने उत्तर दिया कि अभी तुम किस प्रकार मुक्त हो सकते हो। तुम्हारे प्रारब्ध कर्म अभी समाप्त नहीं हुए हैं। अतः प्रारब्ध कर्म की अवशिष्टता में मुक्ति कैसे हो सकती है। तुम्हें इसके लिये यह काम करना होगा कि—

भोगेन पुण्यं कुशलेन पापं कलेवरं कालजवेन हित्वा।
कीर्तिं विशुद्धां परलोकगीतां विताय मामेष्यसि मुक्तबन्धः॥
स्क० ७ अ० १० श्लो० १३

सुखानुभव से पवित्र कर्मों का तथा पुण्याचरण से पापों का क्षय करो। परलोक में प्रशंसनीय कीर्ति का विस्तार करो फिर काल क्रम से शरीर त्यागकर वन्धनरहित हो मुझमें मिल जाओगे।

इससे सिद्ध हो गया कि सञ्चित क्रियमाण कर्मों का ही ईश्वरानुराग से नाश हो सकता है। प्रारब्ध कर्म का नाश भोग बिना नहीं। जाति का सम्बन्ध प्रारब्ध से है अतः प्रारब्ध की सत्ता में जाति परिवर्तन असम्भव है। जितने भी ईश्वरानुरागी हुए हैं सभी की मुक्ति प्रारब्ध भोग के अनन्तर ही हुई है। जीवन्मुक्तों को भी प्रारब्ध कर्म फल भोगने ही पड़े हैं। फिर यह बात कैसे मानी जाय कि ईश्वरोपासना से प्रारब्ध कर्म का नाश हो सकता है और जाति बदल सकती है।

इन उत्तरों को सुनकर मोहान्धकूप में पड़े हुए उन महाशय के नेत्रपटल खुले और जब तक मण्डलेश्वरजी ललुआ में निवास किये प्रति दिन प्रवचन श्रवण करने के लिये आया करते थे और अपने इष्ट-मित्रों को भी प्रोत्साहित करते थे। इस प्रकार अगणितजनों को मण्डलेश्वरजी ने ईसाई होने से बचाया और उन्हें सन्ध्या, पूजन तथा अग्नि होत्र की उपादेयता सिद्धकर सनातनधर्म का अनुगामी बनाया। इन्हीं कार्यों से मण्डलेश्वरजी को ललुआ में दो मास निवास करना पड़ा। जब सुधार ऊँची कोटि तक पहुँच गया तो मण्डलेश्वरजी ने वहाँ से प्रस्थान करने का विचार किया। वहाँ के निवासी मण्डलेश्वरजी से कभी भी पृथक् होना न चाहते थे, पर मण्डलेश्वरजी ने उन लोगों को समझा-बुझाकर कलकत्ता की तरफ जाने का विचार स्थिर किया। विदा होते समय सभी लोगों के नेत्र से अश्रुधारा निकलने लगी; पर मण्डलेश्वरजी उचित तथा तात्कालिक उपदेश से सभी को सान्त्वना देकर कलकत्ता चले गये।

**कलकत्ता**

हवड़ा स्टेशन पहुँचते ही मण्डलेश्वरजी की अगवानी के लिये एक विशाल जुलूस तथा सवारियों के साथ लोग प्रथम से ही आये थे, गाने-बाजे के साथ मण्डलेश्वरजी माहेश्वरी भवन में ठहराये गये। सेठ साधुराम

तुलारामजी के प्रवन्ध से वहाँ सारी व्यवस्था सुचारु रूप से हो गई। महात्माओं के लिये भी सब प्रकार का उचित प्रबन्ध कर दिया गया।

मण्डलेश्वरजी के आगमन का समाचार शीघ्र ही सारे नगर में फैल गया, धार्मिक धनीमानी, प्रतिष्ठित जन मण्डलेश्वरजी से मिलने आने लगे। उस समय आषाढ़ मास की समाप्ति थी। दो मास वहाँ रहना अनिवार्य था। इसलिये दो मास के लिये कार्यक्रम भी बन गया। यों तो प्रति दिन शाम को माहेश्वरी भवन में ही सदुपदेश होता था पर किसी-किसी दिन विशेष रूप से निमन्त्रित हो स्थानीय संस्थाओं में भी प्रवचन के लिये जाया करते थे। एक दिन मण्डलेश्वरजी की अभिलाषा कालीजी के दर्शन तथा पूजन की हुई। यह स्थान इक्कावन सिद्धपीठों में एक सिद्ध पीठ है। यहाँ भगवती काली की दिव्य मूर्ति है। यह मूर्ति चतुर्भुजी तथा कृष्णवर्णा त्रिनेत्रयुता है। जिह्वा बाहर निकली हुई है। एक हाथ में तलवार दूसरे में मधुकैटभका मस्तक तथा दो हाथों से भक्तों को अभयदान देती हैं। गले में नरमुण्ड की माला है। देवाधिदेव भगवान् भूतनाथ के वक्षःस्थल पर अपना चरण रक्खे हुए हैं।

**कालीघाट की यात्रा**

जिस दिन मण्डलेश्वरजी ने वहाँ जाने का विचार किया स्थानीय धनीमानी लोगों ने विशेष रूप से जुलूस निकाला जिसमें अगणित नर-नारियाँ ( नमः पार्वती पते ! हर ! ) आदि नारे लगाती हुई सम्मिलित थीं। मार्ग में ज्यों-ज्यों जुलूस आगे बढ़ता था जन समारोह भी प्रवृद्ध होता जा रहा था। इस प्रकार सोत्साह सभक्ति जनता, मण्डलेश्वरजी के साथ कालीघाट पहुँची। प्रथम तो मण्डलेश्वरजी ने सविधि भगवती का दर्शन तथा पूजन किया और पण्डे पुजारियों को यथेष्ट दान दिलाया। फिर बाहर निकले मन्दिर के बाहर अगणित भिक्षुक बैठे रहते हैं। मण्डलेश्वरजी ने अपने सन्मुख सभी को दान दिलवाया। मन्दिर के ठीक सामने एक सभामण्डप बना हुआ है। जिसमें प्रथम से ही प्रबन्ध हो चुका था। लोग मण्डलेश्वरजी को वहाँ लाये और सभापति के आसन को आपने अलंकृत किया। उस समय सहवासी महात्माओं के धर्मोपदेशपूर्ण व्याख्यान हुए। अन्त में सभापति का भाषण हुआ। जिसका विषय आत्म-विचार था। सभा मण्डप परिपूर्ण था। दूर-दूर तक के श्रोतृगण उपदेश श्रवणार्थ बैठे थे। इतने विशाल जन समुदाय में, जहाँ तिल छोड़ने पर भी नीचे नहीं आ सकता था शब्द का लेश भी सुनाई न देता था, चन्द्रिका-पिपासु चकार की भाँति सभी जन मण्डलेश्वरजी के मुखारविन्द को देख रहे थे। मण्डलेश्वरजी ने

प्रथम तो कुछ वेद के मन्त्रों का उच्चारण किया। फिर नर-नारियों को संबोधित कर अपनी सदुक्ति का प्रारम्भ किया। जो निम्नलिखित प्रकार की है।

श्रीमंत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्य-अद्वैतब्रह्मविद्यामार्तण्ड-ब्रह्मनिष्ठ-महामण्डलेश्वर

## पूज्यपाद स्वामी श्री जयेन्द्रपुरीजो महाराजके आत्मविचारोपदेश

यह शरीर मट्टीका पुतला है, आखीर में मट्टी में ही मिल जायगा। अतएव यह शरीर आत्मा नहीं है। आत्मा व्यापक अजर अमर सच्चिदानन्द स्वरूप है। जीवको भ्रान्ति होती है कि 'मैं एक छोटे से देश में बैठा हूँ' वस्तुतः यह बात नहीं है, समग्र देशकाल आदि पदार्थ आप के स्वरूप में ही स्थित हैं। आप सबके आधार हैं, और आप का आधार कोई नहीं है, वस्तुतः निराधार हैं।

पृथ्वी जल तेज सूर्य चन्द्र प्रभृति समस्त संसार का अन्तर्यामी शुद्ध असङ्ग ब्रह्म ही आपका स्वरूप है। देहको ही अपना स्वरूप मानने वाला मनुष्य महान् पापी है। जिसने अपने आत्मा को छोटा एवं तुच्छ समझा है, वह पतित से भी पतित है। जैसे समस्त पृथ्वी के अधीश्वर सम्राट् को एक छोटासा सिपाही समझने वाला व कहनेवाला मनुष्य महान् दण्ड का भागी होता है। वैसे ही जो शङ्कर विष्णु का एवं समग्र संसार का मूल अधिष्ठान ब्रह्मस्वरूप आत्मा है, उसको एक छोटासा समझना महान् पाप एवं अन्याय है।

निश्चय करो कि—जहाँ छोटा बड़ा भाव है, जहाँ तेरी मेरी मैं तू भावना है, एवं जहाँ स्वामी सेवक भाव है, उवासक भाव है; वहाँ कभी भी रागद्वेषादिकों का अभाव नहीं हो सकता है। रागद्वेष ही मन की चञ्चलता में हेतु हैं। मनकी चञ्चलता ही दुःख है। मनकी एकाग्रता में ही सुख है। मलिन मन के आधीन होना ही परतन्त्रता है। मनका विजय ही विश्व का विजय है। ऐश्वर्य में कभी भी अणुमात्र आनन्द नहीं।

पूर्ण विश्वास करो कि—मेरी आत्मा एक ही शरीर में नहीं है, किन्तु सम्पूर्ण शरीरों में मेरी ही आत्मा साक्षीरूप से विद्यमान है। जो कुछ संसार में दिखाई व सुनाई दे रहा है, वह मेरी ही सत्ता—स्फूर्ति को लेकर हो रहा है। शास्त्रों में कहा है कि—

दृश्यते श्रूयते वापि, यत्किञ्च सचराचरम्।
अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं, व्याप्य नारायणः स्थितः॥

'तत्त्वमसि' 'अहंब्रह्मास्मि' 'अहमात्मागुडा केश! सर्वभूताशयस्थितः' इत्यादि श्रुतिस्मृतियों से नारायण ही सर्व की आत्मा है।

ध्यान दो—उदार चरित पुरुष का एक ही शरीर होता है। भगवान् श्रीकृष्ण गीता में पद—पद पर इसी ही बात को कहते हैं कि—'मैं सर्व की आत्मा हूँ' 'मैं सर्वरूप हूँ' मैं एक देशी छोटा सा नहीं हूँ' 'सब कुछ वासुदेव ही है' यही पवित्र ज्ञान है ऐसे ज्ञानवाले महात्मा का मिलना अत्यन्त दुर्लभ है'। भगवान् सर्वात्मा होने से पूज्य है। जीव पूज्य नहीं है क्योंकि वह छोटा बना है। एक ही शरीर में अपने को बद्ध, एवं शरीर के गुण दोष से अपने को गुणी दोषी समझता है। ब्रह्मवेत्ता विश्वके प्राणों को अपना ही प्राण समझता है, एवं विश्वकी संपत्ति विपत्ति को अपनी ही संपत्ति विपत्ति समझता है, अतएव वह महात्मा है, ईश्वर की तरह पूज्य है।

जो संसार के यावत् सुख एवं दुःख को अपना ही समझता है, वही पूर्ण निस्पृह है; चूँकि समग्र सुख उसको सर्वदा प्राप्त ही है, प्राप्त वस्तु में स्पृहा नहीं होती हैं। एवं यह महात्मा कदाचित् भी किसी को दुःख नहीं दे सकता; क्योंकि अपने को कोई भी दुःख देना नहीं चाहता। सर्वकी आत्मा को अपनी ही आत्मा समझनेवाला अद्वैतवादी ही पूर्ण अहिंसावादी एवं सर्वथा निस्पृह हो सकता है। भेददर्शी तथा द्वैतवादी कभी भी निस्पृह एवं अहिंसक नहीं हो सकता। भगवान् मनु उपदेश कर रहे हैं—

सर्वमात्मनि संपश्येत्, सच्चासच्च समाहितः।
सर्वं ह्यात्मनि संपश्यन्नाधर्मे कुरुते मतिम्॥
(म० स्मृ० १२—११८)

वेदान्तशास्त्र ही सबको मुख्य स्वराज्य देने वाला है। सर्वात्मा अद्वितीय ब्रह्मके साक्षात्कार के विना असली स्वराज्य प्राप्त नहीं हो सकता। कैवल्य मोक्ष ही सच्चा स्वराज्य है। लौकिक स्वराज्य क्षणिक है। अपने कुल सहित अठारह अक्षौहिणी सेना का युधिष्ठिर ने नाश कर दिया, सारे भारत को आहत बना दिया, तथापि युधिष्टर ३६ वर्ष पर्यन्त ही स्वराज्य भोगने पाया। और इन्द्र-ब्रह्मा-शङ्कर-विष्णु आदि के ऐश्वर्य मिलने पर भी सच्चा स्वराज्य नहीं हो सकता है। ब्रह्मा विष्णु शंकर के शरीर भी नष्ट हो जाते हैं। अविनाशी ब्रह्मस्वरूप का साक्षात्कार ही सत्य स्वराज्य है। भगवान् मनु कहते हैं कि—

सर्वभूतेषु चात्मानं, सर्वभूतानि चात्मनि।
संपश्यन्नात्मयाजी वै, स्वराज्यमधिगच्छति॥
(म० स्मृ० १२-९१)

मनुष्य को अपनी भावनाओं के अनुसार ही फल मिलता है। यह जीव अपनी शुद्ध एवं महान् उदार भावनाओं से महान् उदार एवं पवित्र होता है। और मलिन एवं संकुचित तुच्छ भावनाओं से अशुद्ध पापी एवं तुच्छ हो जाता है। हम अपने को 'मैं हिन्दुस्थानी हूँ' 'मैं गुजराती हूँ' 'मेरी अमुक जाति है' मैं अमुक का पुत्र हूँ इत्यादि क्यों मानते हैं ? इसमें कारण केवल यही है—हमारे माता-पिता आदि ने छोटी अवस्थासे ही ये भावनायें हमारे में ठूँस ठूँस कर भर दी हैं। अतएव हम इन भावनाओं के परवश होकर हाड़माँस तथा रूप अपने समझते हैं। यदि छोटी उमर से ही हमको शिक्षा मिलती कि—"तू देह नहीं है, इन्द्रिय आदि नहीं है, किन्तु साक्षात् सच्चिदानन्द ब्रह्म स्वरूप ही तू है" तो हमको 'मैं सच्चिदानन्द ब्रह्मस्वरूप ही हूँ' यही भावना दृढ़ हो जाती। जैसे मदालसा ने अपने बेटों को सिखाया था कि—

शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि,
संसारमायापरिवर्जितोऽसि।
संसारस्वप्नं त्यज मोहनिद्रां,
मदालसावाक्यमुवाच पुत्रम्॥

इत्यादि

इस शरीर में हमको 'मैं मनुष्य हूँ' ऐसा मनुष्यभाव केवल अभ्यास के बल से ही दृढ़ हो रहा है, जन्म से ही मनुष्यभावका टीका हमारे में नहीं लगा है। मनुष्यभाव की तरह यदि हम सर्वात्मभाव का अभ्यास करें, तो सर्वात्मभाव भी हमारा दृढ़ हो सकता है। तात्पर्य यह है कि—जैसा हमारा आत्मभाव व्यष्टि एक शरीर में हो रहा है, वैसा ही यदि हमारा आत्मभाव समष्टि में हो जाय तो, हम साक्षात् नर के नारायण हो सकते हैं।

अन्तर्मुख वृत्ति से जिस आनन्द का अनुभव होता है, वह आनन्द बाहर के विषयों से कभी भी नहीं मिल सकता है। अतएव सुषुप्ति आदि अवस्था में जाने के लिये सर्व प्राणियोंकी स्वाभाविक इच्छा बनी रहती है। जिस सुषुप्ति के अन्तर्मुख आनन्दके लिये यह पुरुष समग्र स्त्री पुत्र धन शरीर आदि प्रपञ्चका परित्याग कर देता है। अतः इससे यह बात सिद्ध होती है कि "बहिर्मुख वृत्ति ही दुःख है, और अन्तर्मुख वृत्ति में ही सुख है" शब्दादि विषय भोग काल में भी आनन्द का अनुभव केवल एकाग्र एवं अन्तर्मुख वृत्ति से ही होता है। यदि शब्दादि भोग काल में भी वृत्ति चञ्चल एवं बहिर्मुख हो तो कभी भी आनन्द का अनुभव नहीं हो सकता है।

दो इन्द्रिय बड़ी जबरदस्त बलवान् एवं दुश्मन हैं, एक जिह्वा और दूसरा उपस्थ। चूँकि इन दो में दो दो शक्ति हैं; और अन्य इन्द्रिय में एक एक शक्ति है। जिह्वा के विना रसास्वाद एवं शब्दोच्चारण नहीं हो सकता। और उपस्थ में एक मूत्र त्याग की शक्ति है, एवं एक विषयानन्द की शक्ति है। इन दो इन्द्रियों को जिसने अपने बश में किया है, वही पुरुष है एवं महात्मा है; इन दो इन्द्रियों को अपने बश में कर लेने से मनुष्य का कल्याण हो जाता है।

मुमुक्षु को चाहिये कि—वह प्राणवृत्ति से ही संतुष्ट होवे। "जो कुछ उदर पूर्ति के लिये मिल जाय उसमें ही संतुष्ट हो जाना यह प्राण की वृत्ति है"। इन्द्रिय-वृत्ति का अनुसरण न करे, "मधुर रस आदि में आसक्ति करना" यह इन्द्रियवृत्ति है। इस जिह्वा रांड़ को अनादि काल से कितने कितने विविध रस खिलाये हैं, परन्तु यह जिह्वा अब तक तृप्त नहीं हुई। तमाम संसार के भोग विलास भी यदि एक मनुष्य को मिल जाँय, तोभी वह मनुष्य कभी भी संतुष्ट नहीं हो सकता। अतएव विष्णुपुराण में कहा है—

यत्पृथिव्यां व्रीहियवं, हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
एकस्यापि न पर्याप्तं, तस्मात् तृष्णां परित्यजेत्॥
(४-१०-२४)

मनुस्मृति में भी कहा है—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मैव, भूय एवाभिवर्धते॥
(२-९४)

❀ ❀ ❀

जो कुछ कल्याण का श्रीगणेशाय नमः होता है वह केवल इन्द्रियनिग्रह से ही होता है। भोगों की लालसा चित्त को चञ्चल कर देती है, चञ्चल चित्त कल्याण-मार्ग का अधिकारी नहीं होता; अतः मुमुक्षु को चाहिये कि अभ्यास, वैराग्य आदि साधनों से भोग-लालसा का सर्वथा सर्वदा दमन करे। भोग-लालसा की वृद्धि न होने दे। भोग-लालसा के बढ़ाने वाले नीचों का सङ्ग, मलिन उपन्यास काव्य नाटक आदिकों का पठन श्रवण, स्त्री आदि के चित्रों का अवलोकन, आदि का अति शीघ्र परित्याग करे। भोग विलासों के न मिलने से जो दुःख प्रतीत होता है, उसको सहन कर ले।

सभा विसर्जन के समय स्थानीय महाजनों ने अत्यन्त कृतज्ञता प्रकट की तथा समारोह के साथ साथ मण्डलेश्वरजी को माहेश्वरी भवन में लाये।

**दक्षिणेश्वर-यात्रा**

कुछ महात्माओं के अनुरोध से दक्षिणेश्वर मन्दिर की भी मण्डलेश्वरजी ने यात्रा की। यह स्थान अत्यन्त रमणीय है तथा यह मन्दिर अत्यन्त सुविशाल और रम्य है। परमहंस श्रीरामकृष्णदेव यहीं रहा करते थे। मण्डलेश्वरजी ने वहाँ भी विधिविधान से पूजन किया तथा प्रवचन भी किया। उसी दिन वहाँ से अपने निवास-स्थान पर चले आये।

जब तक मण्डलेश्वरजी अपने पादपङ्कज-पराग से उस नगर को अलंकृत करते रहे तथा उपदेशामृत पिपासु जनता को अपने प्रवचनामृत को पिलाते रहे उस समय तक स्थानीय जनता में एक नये प्रकार का धार्मिक उत्साह सा आ गया था। सभी लोग प्रायः इसी आनन्द में उन्मत्त से हो रहे थे। अब प्रति दिन कालेज विज्ञानशाला तथा अन्यान्य प्रसिद्ध संस्थाओं से मण्डलेश्वरजी को विशेषानुरोध के साथ आमन्त्रण आता था और वहाँ धर्मोपदेश हुआ करते थे। इस प्रकार वर्षाकाल के दो मास यापनकर मण्डलेश्वरजी ने फिर अपनी यात्रा को आगे बढ़ाना चाहा। यद्यपि मण्डलेश्वरजी का यह विचार स्थानीय जनताको अभिलषित न था, पर अपने लक्ष के अनुसार मण्डलेश्वरजी ने अपने कार्यक्रम को स्थिर रक्खा।

**तारकेश्वर की यात्रा**

चतुर्मास की समाप्ति होने पर मण्डलेश्वरजी ने तारकेश्वर जाना निश्चित किया। यह स्थान हुगली जिले में है। शिवजी का सुविशाल तथा रम्य मन्दिर है। यह स्थान अत्यन्त स्वास्थ्यप्रद है। शिवपुराण में इनका विशेष रूपसे वर्णन तथा महात्म्य है। मण्डलेश्वरजी महात्माओं के साथ तारकेश्वर के लिये चल दिये। लोग सवारियों के साथ पहुँचाने के लिये आये। सभी महात्मा तथा मण्डलेश्वरजी मोटरकार से प्रस्थान किये।

**ब्रह्मचर्य का प्रभाव**

प्रायः मण्डलेश्वरजी की सवारी जब २० मील तक पहुँच चुकी थी कि वहाँ पर कुछ मनुष्य इकट्ठा हुए दिखाई पड़े। ड्राइवर ने मोटर रोक दी। मालूम पड़ा कि एक बैलगाड़ी, जिसके बैल अत्यन्त पुष्ट थे हाँकनेवाले की असावधानी से सड़क से बाहर नीचे चली गई। गाड़ी पर आवश्यकता से अधिक लोहा लदा था। नीचे गढ़ा कीचड़से भरा था। गाड़ीकी पहिया कीचड़ में धँस गई थी। सञ्चालक बैलों को मुक्तकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो विलाप कर रहा था। जब मण्डलेश्वरजी ने यह समाचार सुना तो उन्होंने सहायता के

लिए लोगों से संकेत किया। पर लोग तो शक्ति का यथावत् प्रयोग कर परास्त हो चुके थे। सञ्चालक मण्डलेश्वर जी की मोटर के सामने लेटकर करुण क्रन्दन करने लगा। यद्यपि लोग उसे हटाने तथा फटकारने का प्रयत्न करने लगे पर मण्डलेश्वर जी ने सभी को ऐसा कहने से रोका। स्वयं उतरकर सञ्चालक से बैलों को जोतने की आज्ञा दी। बैल जुत गये। फिर मण्डलेश्वर जी ने बैलों पर हाथ फेर कर चुमकारा और स्वयं गाड़ी के पीछे से आगे को धकेला। प्रायः साठ मन लोहे से लदी कीचड़ में फँसी गाड़ी अनायास ही सड़क पर आ गई। लोगों को इस घटना से आश्चर्य हुआ, पर ब्रह्मचर्य के समीप इन कार्यों में दुष्करता ही क्या। सञ्चालक धन्यवाद देते चला गया। मण्डलेश्वर जी भी मोटरकार पर सवार हो चल दिये।

तारकेश्वर पहुँचकर मण्डलेश्वर जी यहाँ के मठाधीश के स्थान में ठहरे मठाधीश ने मण्डलेश्वरजी का अत्यन्त अनुराग से स्वागत तथा सत्कार किया। मण्डलेश्वर जी ने श्री तारकेश्वर के मन्दिर में रुद्राभिषेक करवाया और प्रतिदिन उपदेश कार्य भी प्रचलित था।

यहाँ हरिकीर्तन की प्रथा प्रबल रूप से है। प्रायः जनता भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र की उपासना में निरत रहती है। मण्डलेश्वर जी का शुभागम सुनकर लोग प्रवचन श्रवण के लिये आया करते थे। मण्डलेश्वर जी किसी भी प्रवचन तथा वार्ता के अन्त में ओंकार का उच्चारण किया करते थे। जनता में मण्डलेश्वर जी के प्रति अत्यन्त श्रद्धा थी। इनके उपदेशों को वे वेदवाणी समझते थे। एक दिन किसी भक्त ने मण्डलेश्वर जी से प्रश्न किया कि हम लोग तो आनन्दकन्द भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र का कीर्तन करते हैं और आप ओंकार का उच्चारण करते हैं तो क्या हम लोग भी ओंकार ही का उच्चारण किया करें। मण्डलेश्वर जी ने उत्तर देना प्रारम्भ किया।

**भगवान् श्री कृष्ण तथा ॐ कार की अभिन्नता**

भगवत्प्रेमियों! ओंकार तथा श्री कृष्ण नाम में किसी प्रकार का अन्तर नहीं है। दोनों ही शब्द पर्याय वाचक हैं और दोनों ही ब्रह्म के प्रतिवादक हैं। भगवान् श्री कृष्णचन्द्र ने गीता में ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्" इस पद्य से स्वयं दोनों शब्दों को एकार्थ का वाचक बतलाया है। तथा—

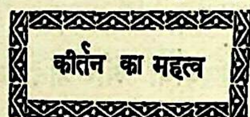
ओं तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा। भ० गी० अ० १७।२३

ॐ, तत् और सत् ये तीनों नाम ब्रह्मवाचक हैं। ब्रह्म का ही प्रतीक रूप ॐकार है। प्रजापति ने इन तीनों नामों के साथ ही ब्राह्मण, वेद और यज्ञों का निर्माण किया है।

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञ दान तपः क्रियाः।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम्॥

गीता १०-२४

इसीलिये वेदज्ञ, यज्ञ, दान, तप आदि क्रियाओं को ॐकारोच्चारण पूर्वक किया करते हैं। जिससे क्रियायें निर्दोष तथा विघ्नरहित होती हैं। जिस प्रकार परमात्मा के ॐकारादि नामों में अलौकिक शक्ति है उसी प्रकार की शक्ति परमात्मा के सभी नामों में है। अतः आप लोग उचित मार्ग में हैं और कलि में भगवन्नाम कीर्तन से कल्याण प्राप्ति का अन्य सुगम उपाय नहीं है।




यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना।
तत्फलं लभते सम्यक् कलौ केशव कीर्तनात्॥

( भा० मा० अ० १-६७ )

कलियुग में तप योग समाधि से वह फल नहीं प्राप्त हो सकता जो फल भगवान्नाम—कीर्तन से प्राप्त हो सकता है।

चान्द्रायण शतैः पापं पाराकाणां सहस्रशैः।
यन्नापयाति तद्याति कृष्ण कृष्णेति कीर्तनात्॥

( स्क० पु० खं० २ अ० १५-५ )

सैकड़ों चान्द्रायण तथा हजारों पराकादि व्रतों से जो पाप नष्ट नहीं होते वे श्री कृष्ण के नामोच्चारण से नष्ट हो जाते हैं।

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥
अहोरात्रं हरेर्नाम कीर्तयन्ति च ये नराः।
कुर्वन्ति हरि पूजां वा न कलिबधिते हि तान्॥

वृ० ना० पु० पू० खं० अ० ४१-११५-९३

भगवान् कहते हैं कि हरि का नामही मेरा जीवन है। कलि में इसके अतिरिक्त अन्य उपाय नहीं।

जो लोग हरि का नामकीर्तन तथा पूजन करते हैं उनके समीप कलियुग नहीं आता।

हरे! केशव! गोविन्द! वासुदेव ! जगन्मय।
इतीरयन्ति ये नित्यं नहि तान् वाधते कलिः॥ (७।१००)

हे हरे! हे केशव! हे गोविन्द! हे वासुदेव! हे जगन्मय! इस प्रकार जो प्रति दिन उच्चारण करते हैं उन्हें कलि से भय नहीं होता।

संकीर्त्य मानोभगवाननन्तः श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम्।
प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेषं यथा तमोऽर्कोऽभ्रमिवाति वातः॥
(भा० स्क० १२ अ० १२-४७)

भगवन् के कीर्तन तथा उनके प्रभावों के सुनने वालों के अन्तःकरण में प्रविष्ट होकर भगवान् उसके समग्र दुःखों को किस प्रकार नष्ट कर देते हैं जैसे सूर्य अन्धकार को तथा प्रचन्ड वात मेघ को।

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्॥
भा० १२-३-५१

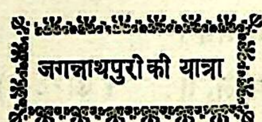
दोषागार कलि में यह एक विशेष गुण है कि श्रीकृष्ण नामकीर्तन से प्राणी वन्धनमुक्त हो जाता है।

जब तक मनुष्य विषयजाल में फँसा रहता है उससे चित्त को निकालने का उपाय नहीं सोचता तब तक वस्तुतः सुख शान्ति की आशा कहाँ। विषयों से चित्त को दूर करने का सरल उपाय भगवन्नाम-कीर्तन है। जप सङ्कीर्तन ध्यानादि से भगवान् का हृदय में प्रत्यक्ष अनुभव होने लगता है, जब भगवान् का हृदय में प्रत्यक्ष अनुभव हुआ फिर वे धन्यतम, सर्वथा पूत तथा कृतकृत्य हो जाते हैं।

इस प्रकार मण्डलेश्वरजी ने कृष्ण को ॐकाराकार बतलाकर तथा कीर्तन की महत्ता को दिखलाकर अपने उपदेश को समाप्त किया।

**भुवनेश्वर की यात्रा**

इस प्रकार मण्डलेश्वरजी ने उपदेश, कीर्तन आदि से प्रायः १५ दिन तक तारकेश्वर में बिताया। फिर वे कलकत्ता लौटकर चले आये, पर यहाँ न रुककर गङ्गासागर चले गये। फिर वहाँ से लौटकर कलकत्ता गये और शीघ्र ही जगन्नाथपुरी की यात्रा का विचार कर दिया। मण्डलेश्वरजी के साथ कलकत्ता के कई धनीमानी जनों ने भी यात्रा की। कलकत्ता से चलने पर मार्ग में भुवनेश्वर भी दर्शनीय स्थान है; अतः भुवनेश्वर होते हुए तथा अनुरोधवश मार्ग में भी रुकते हुए जगन्नाथपुरी पहुँचे।




जगन्नाथपुरी पहुँचने के पूर्व ही दूर से ही भगवान् के मन्दिर पर लगे हुए नील चक्र का दर्शन होने लगता है— उसके दर्शन से एक अपूर्व श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है। जगन्नाथजी के मन्दिर की पूर्व दिशा में समुद्र की ओर श्री गनपतिराय खेमका की धर्मशाला है। साथ में रहने वाले सेवकों ने प्रथम से ही मण्डलेश्वरजी का निवास-स्थान वहीं निश्चित किया था। सभी लोग जाकर उसी धर्मशाले में उतरे।

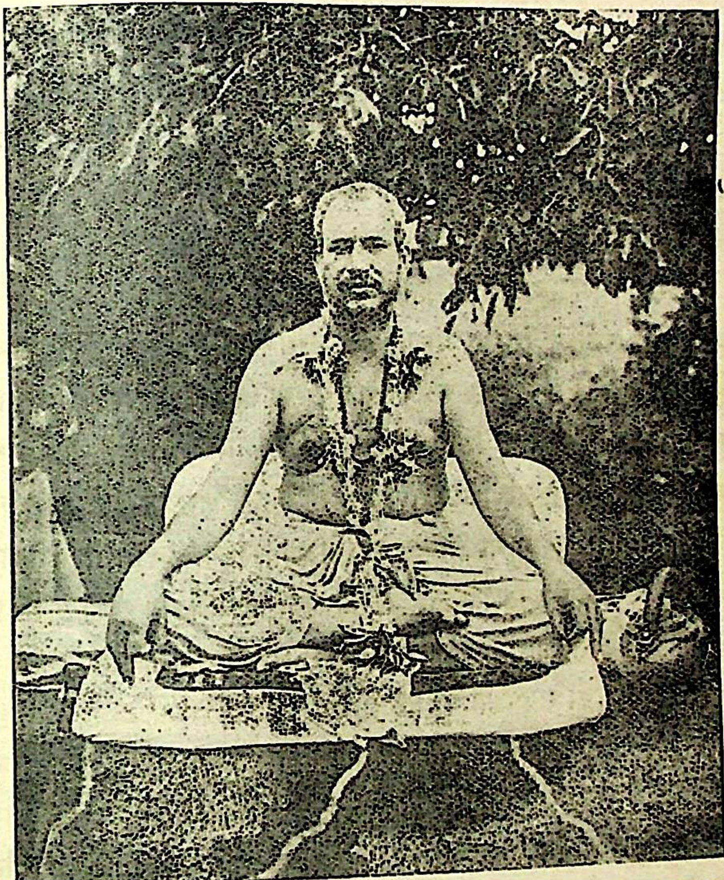
उस दिन प्रायः सन्ध्या हो चली थी। अतः दूसरे दिन नित्यकर्म से निवृत्त हो सभी महात्माओं तथा साथ आये हुए सद्गृहस्थों के साथ मण्डलेश्वरजी दर्शनार्थ चले। पूर्व के सिंहद्वार से होकर गरुड़स्तम्भ का पूजन करते हुए भगवान् के समीप पहुँचे। भगवान् की मूर्ति अत्यन्त विशाल है पर यहाँ के नियमानुसार न तो कोई भगवान् का स्पर्श ही कर सकता, न तो पुष्पादि से पूजन ही कर सकता पर मण्डलेश्वरजी के पहुँचने पर तीर्थ पुजारियों को इस नियम का अपवाद करना पड़ा और अत्यन्त प्रसन्नता के साथ मण्डलेश्वरजी को स्वयं पूजनादि करने के लिये सब प्रकार की सुविधा कर दिये। मण्डलेश्वरजी पूजनादि से निवृत होकर पार्श्ववर्ती लोगों से पुजारियों को प्रभूत दक्षिणा दिलावाये और मन्दिर में अन्य देवताओं के दर्शन पूजादि भी करके फिर अपने निवासस्थान पर चले आये।

जगद्गुरु शङ्कराचार्य ने भारतवर्ष के आध्यात्मिक शासन के लिये चारों दिशाओं में जो चार मठ स्थापित किये हैं उनमें जगन्नाथपुरी में गोवर्धनमठ नाम से प्रसिद्ध मठ है। इसका निर्माण समुद्रतट पर है और यह एक विशाल भव्य भवन है। मण्डलेश्वरजी का आगमन सुनकर समादर के साथ वहाँ के अधिकारियों ने मण्डलेश्वरजी को बुलाया और अत्यन्त स्नेह से स्वागत तथा सत्कार किया।

प्रत्येक स्थानों की भाँति मण्डलेश्वरजी का प्रवचन यहाँ भी प्रति दिन हुआ करता था। अधिकाधिक संख्या में यहाँ भी धार्मिक श्रद्धालु जनता एकत्र होने लगी। कीर्तन उपदेश तथा विशेष सभायें यहाँ भी पूर्णरूप से स्थान पाने लगीं।

सर्दी का समय था, शैत्य का प्राबल्य प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था। पर मण्डलेश्वरजी उस समय समय की समता कर रहे थे। ज्यों-ज्यों समय उष्णता से रहित होता जाता था मण्डलेश्वरजी भी वस्त्र से रहित होते जा रहे थे। इस भयानक शीत काल में भी केवल कटिवस्त्र के उनके पास अन्य आस्तरण तथा आच्छादन के लिये वस्त्र न था। पर वे सर्वदा प्रसन्न रहते थे और इससे उन्हें अत्यन्त सन्तोष तथा सुख था।

## श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य पूज्यपाद श्री १०८ स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज महामण्डलेश्वर



**योग का प्रभाव**

आग्रायण का महीना था, शीत का प्रावल्य हो रहा था। जल वृष्टि ने और भी शीत को हस्तावलम्ब दिया। समुद्र के तट पर तो वात का प्रावल्प रहता ही है पर वर्षा के कारण और अधिक वायु वह रहा था। सभी लोग अपने अपने घर में अँगेठियाँ जलाकर अग्नि देव का समाश्रय ले रहे थे। घर से बातर निकलने से वायु, वर्षा तथा प्रबल शीतता सब को रोक रही थी। पर मण्डलेश्वर जी की मधुर वाणी तथा सदुपदेश लोगों को घर में स्थिर भी न रहने देते थे। अन्त में शीत प्रावल्प तथा सदुपदेश के द्वन्द युद्ध में सदुपदेश की विजय प्राप्ति की सूचना देते हुए प्रत्येक घरों से ऐसे विषय

काल में भी मण्डलेश्वरजी के दर्शनार्थ तथा उपदेश श्रवणार्थ निकले और प्रति दिन की भाँति उस दिवस भी श्रोताओं की न्यूनता न थी। सभी भक्त उपदेश स्थान में आये और मण्डलेश्वरजी के सदुपदेश से अपने परिश्रम को सफल समझे।

उस समय कोई भी ऐसा जन न था जिसके पास कम्बल या रुईदार कपड़े अथवा शीतत्राणक्षमसाधन न हो। केवल एक मण्डलेश्वरजी ही प्रसन्नचित्त और विना वस्त्र के बैठे हुए थे। यह देखकर किसी ने कहा कि महाराज! इतने साधन रहते हुए भी जब हम लोग शीताधिक्य से दुःखी हो रहे हैं तो आप कैसे केवल कटिवस्त्र पर अपना समय प्रसन्नता पूर्वक काट रहे हैं? मण्डलेश्वरजी ने उत्तर दिया कि प्राणिमात्र के लिये यह शीतक्षमता सरल बात है।

पर इसके लिये कुछ योग प्रक्रिया की आवश्यकता पड़ती है। इतना कहकर मण्डलेश्वरजी ने अपने श्वास को रोका, फिर किसी आभ्यन्तर क्रिया की समाप्ति में लोगों से आलाप करने लगे। उस समय दिखाई पड़ा कि मण्डलेश्वरजी के शरीर से चारो तरफ पसीना ही पसीना निकल पड़ा। दर्शक जन आश्चर्य में पड़ गये, पर मण्डलेश्वरजी के लिये तो यह क्रिया साधारण थी। उस समय मण्डलेश्वरजी केवल १ वार भिक्षा करते थे, उसमें भी पौष्टिक पदार्थों का सर्वथा निषेध था। इस तरह पुरी में निवास करते हुए मण्डलेश्वरजी जगन्नाथ पुरी को वस्तुतः सार्थक कर दिया। मालूम पड़ता था कि साक्षात् रुपान्तर धारणकर साक्षात् जगन्नाथजी ही अपनी पुरी में आगत भक्तों को सदुपदेश कर रहे हों।

पुरी में निवास करते हुए मण्डलेश्वरजी कभी-कभी बाहर भी निकल जाते थे और आसपास के तीर्थों में जाकर दर्शन पूजनादि किया करते थे। चक्रतीर्थ, साक्षी गोपाल और कोणार्क आदि स्थानों में भी मण्डलेश्वरजी का गमन हुआ और तीर्थ पुजारियों को यहाँ तक दानमानादि से सन्तुष्ट किया कि वे अधिक दिन तक इसे उदाहरण रूप में रखते थे।

जगन्नाथपुरी के महत्व को तो प्रायः सभी भारतीय कुछ न कुछ जानते ही हैं, पर शास्त्रों में यह पुरुषोत्तम क्षेत्र नाम से प्रसिद्ध है। यह नीलगिरि पर बसा हुआ है। इनके दर्शनार्थ देवगण भी आया करते हैं। वहाँ के यात्रियों की पुण्य वृद्धि तथा सद्यः पापक्षय हो जाता है।

भक्तों की श्रद्धा तथा मनोनुकूल स्थान देखकर मण्डलेश्वरजी ने कतिपय दिवस तक निवास करके फिर अपनी यात्रा को आगे बढ़ाने का विचार किया।

# सप्तम परिच्छेद



मदनुक्रोश लेशेन क्लेशायान्ति लयं क्षणात्।
शंकरोतु सभक्तानां शङ्करः सपरिच्छदः॥

**चिदम्बर की यात्रा**

जिसके कृपालेश से समग्र क्लेश क्षण भर में नष्ट हो जाते हैं, अपने परिवार के सहित वे जगद्रक्षक भगवान् शङ्कर भक्तों का कल्याण करें।

मण्डलेश्वरजी जगन्नाथपुरी से अपनी यात्रा का प्रारम्भ कर मध्य के तीर्थों का दर्शन करते हुए मद्रास पहुँचे। तीन-चार दिन ही मद्रास में निवास कर चिदम्बर आये। यहाँ पर धर्मशाला में ठहरे। यहाँ पर नटराज तथा अन्नपूर्णा की स्फटिकमयी तथा सुवर्णमयी मूर्तियाँ हैं। तीसरी मूर्ति नीलमणिनिर्मित है। मन्दिर भी अत्यन्त रमणीय है। यहाँ का पूजन विधान भी अत्यन्त मनोरञ्जक होता है। वैदिक ब्राह्मण प्रायः रुद्राष्टाध्यायी का पाठ किया करते हैं। सर्वदा वेद-ध्वनि से गूँजता रहता है। महर्षि पतञ्जलि की यह तपोभूमि है। स्कन्द पुराण में सेतुबन्ध-माहात्म्य में इसका विशेष महत्व बतलाया गया है। ऐसे पुण्यक्षेत्र को देखकर मण्डलेश्वरजी अत्यन्त आह्लादित हुए। यात्रा में प्रत्येक शिव मन्दिरों में रुद्राभिषेक तथा पूजन किया करते थे। यहाँ पर भी पूर्ण विधान के साथ पूजन अभिषेकादि कार्य हुए। मण्डलेश्वरजी का प्रवचन भी हुआ। फिर मदुरा होते हुए मण्डलेश्वरजी श्रीरामेश्वर के लिये प्रस्थान किये।

**रामेश्वर यात्रा**

रामेश्वर पहुँचकर मण्डलेश्वरजी रायबहादुर भगवानदास बागला की धर्मशाला में रहने का निश्चय किये। पूर्वोक्त धर्मशाले में सब प्रकार की सुविधा रहती है, अतः महात्माओं को भी वहीं निवास

करना मनोनुकूल समझ पड़ा। दूसरे दिन मण्डलेश्वरजी सभी महात्माओं के साथ मन्दिर में गये। यद्यपि यहाँ भी भगवान् शङ्कर का पूजन पुजारी स्वयं करते हैं, पर मण्डलेश्वरजी के लिये यह प्रतिबन्ध न लगाया गया। मण्डलेश्वरजी ने स्वयं पूजन करके अपनी उपस्थिति में ही रुद्राभिषेक कराया और शङ्कर-सेवकों को प्रचुर दक्षिणा तथा वस्त्रदान दिलाया।

**अज्ञात घटना**

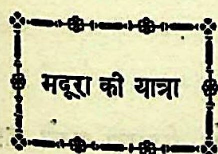
एक दिन मण्डलेश्वरजी मन्दिर के पूर्व समुद्र घाट पर जिसका नाम अग्नितीर्थ है, सभी महात्मा तथा कुछ भक्तों के साथ स्नान करने के लिये गये। यह वही स्थान है जहाँ पर लङ्का से लौटते समय भगवान् श्रीरामचन्द्र का पुष्पक विमान उतरा था। सभी महात्मा तथा गृहस्थ जब स्नान करके निकल आये उस समय मण्डलेश्वरजी तीर्थ में उतरे। लोगों ने यह तो देखा कि मण्डलेश्वरजी जल में उतर रहे हैं, पर अवगाहन करके फिर मण्डलेश्वरजी न दिखाई दिये। दो मिनट के अनन्तर महात्माओं तथा साथ आये हुए सद्गृहस्थों में अत्यन्त अशान्ति ने स्थान कर लिया। कुछ ही देर में वह अशान्ति पराकाष्ठा पर पहुँच गई। सभी लोगों में हाहाकार मच गया। कानोंकान ये बातें दूर तक पहुँच गईं। बड़ी ही भीड़ एकत्र हो गई। लोगों के ध्यान में यकायक यही बात आई कि कोई जलचर ने मण्डलेश्वरजी पर आक्रमण कर दिया। तटस्थित सभी लोग किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गये। कुछ लोगों का विचार हुआ कि जालादि द्वारा जल में अन्वेषण किया जाय। इन सब वृत्तान्तों में प्रायः १ घण्टा समय व्यतीत हो गया। सभी सेवकजन मणिविहीन सर्प की दशा का अनुभव कर रहे थे। हाय! हाय! की ध्वनि से आकाश गूँज उठा था। किसी को भी फिर मण्डलेश्वरजी की प्राप्ति की आशा अब शेष न रह गई। जब अन्वेषण के सभी उपकरण उपस्थित हुए उसी क्षण में मण्डलेश्वरजी जल के ऊपर दिखाई दिये। उनको देखने से प्रतीत होता था कि वे मानो तीर्थ में अवगाहन कर ऊपर आये हों। मण्डलेश्वरजी इस विषय पर पहले ध्यान न दिये थे कि इस सम्बन्ध में यहाँ तक क्रियाकलाप स्थान पा जायगा। वे भीड़ देखकर पूछने लगे कि इतनी भीड़ यहाँ कैसे उपस्थित हो गई। पर मण्डलेश्वरजी को स्वस्थ तट पर आये हुए देखकर लोगों में इतना हर्ष का अतिरेक था कि लोग स्पष्ट शब्दों में कुछ उत्तर भी न दे सके। कुछ देर के अनन्तर जब मण्डलेश्वरजी से लोग पूछने लगे तो उन्होंने घण्टों जलनिमग्न रहने का कुछ कारण न बतलाकर लोगों को शान्त किया और पुनः-पुनः पूछने पर भी उस सम्बन्ध

में कुछ सन्तोषप्रद उत्तर न दिये। इसलिये लोग अन्त तक इस घटना के मूल कारण के ज्ञान से वञ्चित ही रह गये। घण्टों जल में निमग्न रहना तो एक योगनिष्ठ तथा प्राणायामपरायण महात्मा के लिये असम्भव नहीं, पर किस कारण से ऐसा करने का मण्डलेश्वरजी ने विचार किया यह न तो उन्होंने बतलाया और न किसी की बुद्धि में ही यह बात आ सकी। अतएव अब तक वह कारण अज्ञात ही है।

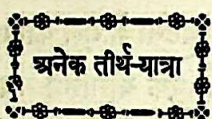
अग्नितीर्थ में स्नान करने के पूर्व ही मण्डलेश्वरजी वहाँ अन्न की विशालराशि रखवा दिये थे। प्रश्नोत्तर उन्होंने पर्याप्त अन्न का दान दिया।

श्री रामेश्वर रहते हुए मण्डलेश्वर जी ने प्रत्येक तीर्थों जैसे धनुष्कोटि तीर्थ, कोटितीर्थ, शिवतीर्थ, लक्ष्मीतीर्थ तथा शुक्रतीर्थ आदि में भ्रमण तथा स्नान किया और दानमानादि से तीर्थ-पुरोहितों को अत्यन्त सन्तुष्ट किया। जितने दिन तक मण्डलेश्वर जी ने वहाँ निवास किया मानों सत्ययुग का वहाँ अवतार हो गया था। मण्डलेश्वर जी के वहाँ से चले जाने पर स्थानीय जन प्रतिक्षण उनके पुनरागमन के लिये लालायित रहते थे और पुनर्दर्शन की प्रतीक्षा किया करते थे।

श्री रामेश्वर से प्रस्थान कर मण्डलेश्वर जी कील मदूरा स्थान में पहुँचे। वहाँ भी लोगों के अनुरोध से १०-१२ दिन निवास करना पड़ा। मण्डलेश्वर जी जिस मार्ग से चलते थे, दूरवर्ती गम्य स्थान पर प्रथम से ही समाचार पहुँचा रहता था। कहीं-कहीं तो लोग अनुमानतः मण्डलेश्वर जी के लिये स्थानादि की व्यवस्था कर प्रतीक्षा करते थे, पर मण्डलेश्वरजी को भक्तों के विशेष अनुरोध से अन्य मार्ग का समाश्रयण करना पड़ता था।


मदूरा की यात्रा

मदूरा में मण्डलेश्वर जी श्री स्वामी अद्वैतानन्द जी के मठ में ठहरे थे। लोकप्रसिद्ध मीनाक्षी देवी की विधिवत् पूजा भी कराई। यहाँ की यात्रा में मण्डलेश्वर जी ने देखा कि यद्यपि देवनागरी तथा संस्कृत भाषाभाषी लोग मिलते तो अवश्य थे, पर अधिकांश तद्देश्यभाषा की ही भाषण में आवश्यकता प्रतीत होती थी। मण्डलेश्वरजी ने इस असुविधा से तथा अपने पूर्वविचारों के आधार पर मौनावलम्बन करना निश्चय कर लिया। साथ में रहने वाले महात्मा ही अब विशेष रूप से उपदेश तथा प्रचार का कार्य करने लगे। अवाक् हो मण्डलेश्वरजी तीर्थ-यात्रा तथा पूजन आदि कृत्य तो कर लिया करते थे। केवल प्रवचन नहीं करते थे।



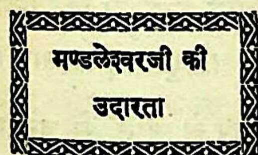

वहाँ निवास करते हुए समीपवर्ती तीर्थों में भी मण्डलेश्वरजी जाया करते थे। मदूरा से तोताद्रि जाकर वैष्णव सम्प्रदायाचार्य श्री रामानुजाचार्य के मठ में मण्डलेश्वरजी के आगमन से उत्सव मनाया गया। लोगों ने मौन त्याग के लिये अत्यन्य अनुरोध किया, पर मण्डलेश्वरजी ने मौन का त्याग न किया। विष्णुदेव के पूजनानन्तर समुद्रतट पर वर्तमान भगवती कन्या कुमारी के दर्शन पूजन कर जनार्दन आये। यहाँ की धूप संसार में प्रसिद्ध है। जनार्दन के समीप पर्वत पर स्वामी आत्मानन्दजी का सुरम्य स्थान है। इस स्थान की रम्यता देखकर मण्डलेश्वरजी कतिपय दिवस यहाँ भी निवास किये। फिर पद्मनाभ का दर्शन करते हुए दक्षिण काशी जो टन काशी नाम से तद्देशवासियों में प्रसिद्ध है वहाँ पहुँचे। भगवती ताम्रपर्णी में स्नानकर पूजनादि से निवृत्त हो त्रिचनापल्ली को पधारे। यहाँ पर अनन्तशयन भमवान् की अपूर्व रम्यता दृष्टिगोचर होती है। समीप में भगवती कावेरी अपने रम्य लहरों से प्रदेश को पवित्र किया करती हैं। इन स्थानों में परिभ्रमण करते हुए सभी महात्माओं के सहित मण्डलेश्वरजी पुनः मदूरा से प्रस्थानकर श्रीरङ्ग नामक स्थान पर भगवान् की मूर्ति का पूजन कर शिव काञ्ची तथा विष्णु काञ्ची होते हुए पक्षी तीर्थ स्थान में आ गये। यहीं पर मण्डलेश्वरजी को अपना मौनव्रत छोड़ना पड़ा। इसका कारण यह था कि अनेक भक्त, जिन्होंने मण्डलेश्वरजी के उपदेशामृतका पान कर लिया, पुनः पुनः उपदेशदान के लिये मण्डलेश्वरजी से प्रार्थना किया करते थे। फिर सहचर महात्माओं ने भी व्रत-निरोध के लिये अत्यन्त आग्रह किया। अतः मण्डलेश्वरजी अपने मौनव्रत का परित्याग कर फिर प्रचारकार्य में तत्पर हो गये। और अब प्रतिदिन उपदेश तथा कथायें भी होने लगीं।




चङ्गलपेट स्टेशन पर लोगों ने मण्डलेश्वरजी से निवास करने का अत्यन्त आग्रह किया; अतः एक दिन सभा के निमित्त मण्डलेश्वरजी वहाँ भी रुक गये। यहाँ से चलकर मण्डलेश्वरजी त्रियतिवालाजी को प्रस्थान किये। यहाँ शेष रूप वैंकटेश पर्वत पर भगवान् चतुर्भुज की रम्य मूर्ति है। दर्शनार्थ सर्वदा सहस्रों की भीड़ रहती है। श्री १०८ श्री देवनायकाचार्य महाराज ने मण्डलेश्वरजीका अत्यन्त स्वागत सत्कार किया। यहाँ पर तीन दिन तक निवासकर मण्डलेश्वरजी वेल्लूर नगर चले गये।

**वेल्लूर बेंगलूर की यात्रा**

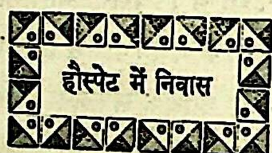
मण्डलेश्वरजी यहाँ पर धर्मशाला में ठहरे। उपदेश श्रवण के लिये तो यहाँ भी जनता प्रचुर संख्या में उपस्थित होती थी, पर देवनागरी तथा संस्कृत भाषा के वेत्ता बहुत ही न्यून थे। यहाँ पर एक दाक्षिणात्य विरक्त महात्मा शङ्करानन्द रहते थे, जो मण्डलेश्वरजी की यात्रा के विषय में सुन चुके थे और प्रतिदिन प्रतीक्षा करते थे। महाराज का आगमन सुनकर अपने भक्तों के साथ महाराज के दर्शनार्थ आये। और उस समय से महाराज ही के साथ रहने लगे। ये विद्वान् तथा धर्मप्रचारक महात्मा थे। उस प्रान्त में इनका नाम अत्यन्त विख्यात था। अब मण्डलेश्वरजी को प्रवचन में बड़ी ही सुविधा हुई। जब कभी दाक्षिणात्य श्रोताओं की अधिकता हो जाती थी उस समय मण्डलेश्वरजी की उक्तियों का श्रीस्वामी शङ्करानन्दजी अनुवाद कर जनता को सुना देते थे। वेल्लूर तथा वेंगलूर में ये स्वामी महाराज गीता-धर्म-प्रचारिणी संस्था को भी जन्म दिये थे; अतः उन-उन स्थानों में भी मण्डलेश्वरजी के प्रवचन हुआ करते थे। दूसरे महात्मा नारायणगिरिजी थे। ये दाक्षिणात्य विरक्त थे। मण्डलेश्वरजी के धर्मप्रचार में इनका भी विशाल सहयोग था। अब दक्षिण प्रदेश में मण्डलेश्वरजी अधिक सफलता पाने लगे। वेल्लूर तथा वेंगलूर होते हुए मण्डलेश्वरजी श्रीरंगपट्टन आये। यहाँ दो दिन निवासकर मैसूर नगर आ पहुँचे। आस-पास के गाँवों में भी मण्डलेश्वरजी ने धर्मप्रचार किया।



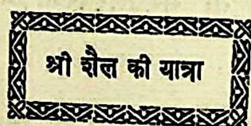

यहाँ पर एक दिन जब मंडलेश्वरजी का प्रवचन हो रहा था उसी समय एक वृद्ध ब्राह्मण अपनी दो लड़कियों तथा एक पुत्र के साथ उपदेश सुनने के लिये आये। मंडलेश्वरजी की उदारता तथा दयालुता से ये सर्वथा परिचित थे। जब प्रवचन की समाप्ति हो गई मण्डलेश्वरजी अपने सायंकालिक कृत्य के लिये सभास्थल से उठे। उस समय सभी श्रोता प्रणामपूर्वक अपने अपने घर चले गये, पर वे वृद्ध ब्राह्मण वहीं बैठे रह गये। महात्माओं के पूछने पर उत्तर मिला कि मैं मंडलेश्वरजी से कुछ कहना चाहता हूँ। लोगों ने जाकर मंडलेश्वरजी से इस वृत्तान्त को सुनाया। मंडलेश्वरजी ने शीघ्र ही ब्राह्मण को अपने पास बुलाकर पूछा कि कहिये क्या वक्तव्य है? दैन्यपूर्ण दृष्टि करता हुआ विप्र कहने लगा—"महाराज! मैं अत्यन्त दीन ब्राह्मण हूँ। मेरे पास भोजनमात्र के लिये भी कुछ साधन नहीं है। और आपके सम्मुख उपस्थित पाणिग्रहणयोग्य दो लड़कियाँ तथा यह उपनयनयोग्य पुत्र हो

गया है। लड़कियाँ ज्येष्ठ तथा पुत्र कनिष्ठ है। इसी चिन्ता में मैं दिन रात पड़ा रहता हूँ कि किस प्रकार मैं अपने धर्म की रक्षा करूँ। किसी प्रकार की गति न देखकर कभी-कभी तो आत्महत्या का विचार होने लगता है। इस कलि में महाराज मेरे धर्मरक्षण के योग्य कोई उपाय बतलावें" इतना कहकर वह अपनी लड़कियों तथा पुत्र के साथ महाराज के चरणों पर गिर पड़ा। मंडलेश्वरजी ने उसे उठाकर कहा कि आप इस समय जाइये। यह नित्यकृत्य का समय है, आप कल मध्यान्ह में आइयेगा। उस समय ब्राह्मण चला गया।

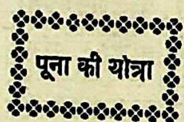
दूसरे दिन निर्दिष्ट समय पर वह मण्डलेश्वर जी के पास पहुँचा। मण्डलेश्वर जी ने उससे कन्याओं के पाणिग्रहण संस्कार के लिये आदेश दिया और व्यय का अनुमान पूछा। उपनयन तथा पाणिग्रहण कार्य में जितना व्यय उसने बतलाया मण्डलेश्वर जी ने अपने सेवकों के द्वारा उतना धन उसे दिला दिया। नगरवासियों ने इस पारमार्थिक कार्य के लिये मण्डलेश्वर जी को भूरि-भूरि धन्यवाद दिया।


हौस्पेट में निवास

श्रीरङ्गपट्टन तथा बल्लारी होते हुए मण्डलेश्वर जी हौस्पेट नगर आये। यहाँ पर शम्भूनाथ ब्रह्मचारी जी ने महात्माओं का पूर्ण सम्मान किया। ८-१० दिन तक धर्म-प्रचार के अनन्तर मण्डलेश्वर जी करणौज स्टेशन होते हुए श्री शैल पर आये।


श्री शैल की यात्रा

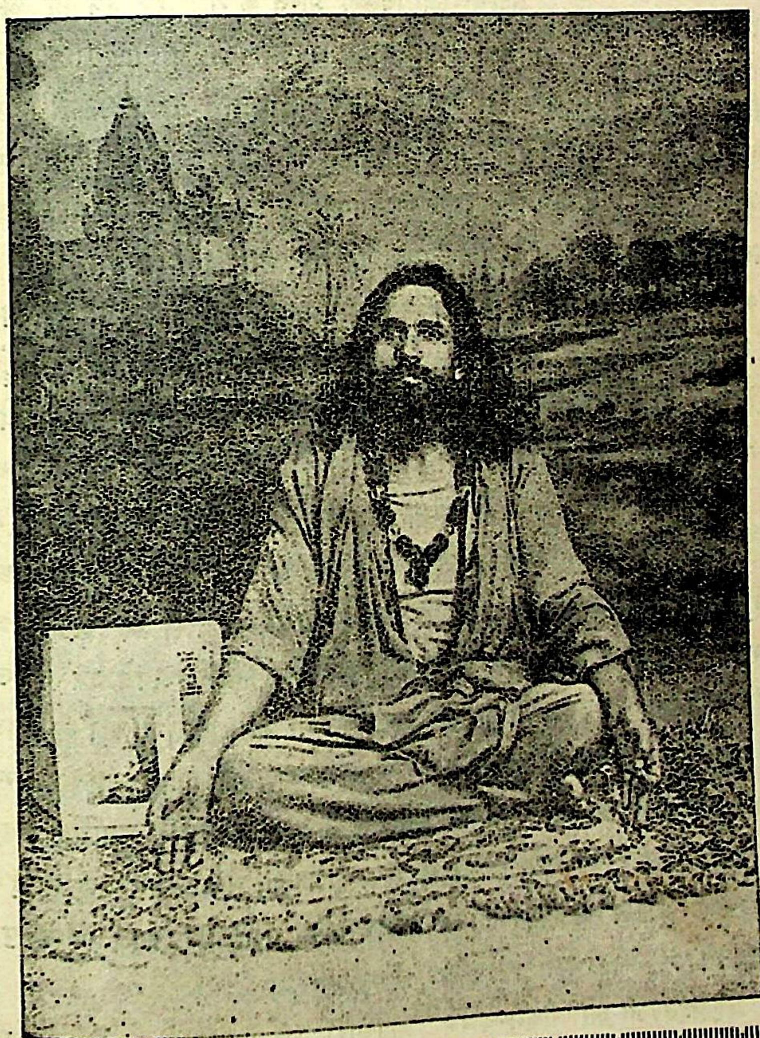
यहाँ पर मल्लिकार्जुन महादेव जो ज्योतिर्लिङ्ग कहे जाते हैं उनका विधिवत् पूजन तथा अभिषेक करके दो दिन वहीं निवास किये। फिर वहाँ से गदक, शोलापुर तथा पण्डलपुर होते हुए पूना आये।


पूना की यात्रा

मण्डलेश्वर जी जिन-जिन स्थानों में गये आप के जाने से जनता पर अत्यन्त प्रभाव पड़ा। कहीं-कहीं पर तो आपने धर्म-प्रचारणी सभा भी स्थापित कर दी थी और उसका निरीक्षण-कार्यभार स्थानीय धार्मिकों पर ही डाल देते थे। मण्डलेश्वर जी को इन यात्राओं में इस बात का विशेष अनुभव हुआ कि भारत में तो कभी न कभी कोई धार्मिक आते ही रहते हैं, पर विदेशों में तथा टापुओं में जो भारतीय हैं जिन पर पाश्चात्य सभ्यता का अधिक प्रभाव पड़ चुका है, वे किस प्रकार अपने परम्परीण धर्म को समझेंगे तथा अपनाने का प्रयत्न करेंगे। इसके लिये मण्डलेश्वर जी सचिन्त रहते थे, पर भारत में भी धर्मध्वज को फहराने वाले उस समय ये एक ही थे। इसलिये उपाय की चिन्ता कभी-कभी किया करते थे। पर उचित साधन न मिलने से आपको भी वैराग्य का आश्रयण करना

पड़ता था। पर ठीक है कि सन्मार्ग पर पादारोहण करने वाले जन का परमेश्वर सहायक तथा पथप्रदर्शक हुआ करता है। जिस समय मंडलेश्वरजी की विदेश में भी भारतीयों को स्वधर्मज्ञ बनाने की उत्कट अभिलाषा थी उसी समय अतर्कित एक नववयस्क, विरक्त, जटालङ्कृत तथा नैष्ठिक ब्रह्मचारी तीर्थ-यात्रा करते हुए पूना में आये।

ॐ नमः शिवाय बैंक के प्रचारक नैष्ठिक ब्रह्मचारी
श्री धर्मदत्त शर्माजी



**ब्रह्मचारी धर्मदत्त का समागम**

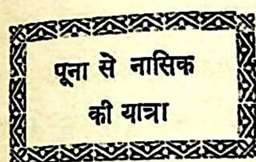
ये ब्रह्मचारीजी भी धर्म-प्रचार का कार्य करते थे और चाहते थे कि विद्वान् तपस्वी तथा धर्म-प्रचारक किसी महात्मा के सहवास में रहकर धर्म-प्रचार करें। मंडलेश्वरजी के धर्मप्रचार कार्य से ये परिचित थे, पर अभी तक साक्षात्कार न कर पाये थे। सोमनाथ के मन्दिर में मंडलेश्वरजी का निवास सुनकर ये मन्दिर में आये और मंडलेश्वरजी के शुभ दर्शन से अपने मनोनीत विषयों को सफल-सा समझने लगे। मैं तो समझता हूँ कि मंडलेश्वरजी का और इनका प्रथम समागम पवन तथा अग्नि का समागम था।

**ब्रह्मचारी धर्मदत्तजी का परिचय**

ये ब्रह्मचारीजी दिल्ली प्रान्त के थे। १२ वर्ष की अवस्था में आपके पितामह ने आपको ऋषिकुल हरिद्वार में अध्ययन के लिये भेजा। पितामह उच्चकुल के सुसम्पन्न ब्राह्मण थे। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा उर्दू फारसी की थी। इस भाषा में ये पर्याप्त ज्ञान सम्पादन कर चुके थे। ऋषिकुल के अधिकारी इनके सदाचार तथा बुद्धिपटुता से अत्यन्त सन्तुष्ट रहते थे। इन्होंने व्याकरण, वेद तथा अन्य विषयों में भी ज्ञान प्राप्त कर धर्मप्रचार का विचार किया। उसी समय दुष्कालपीड़ित दीनों की सेवा के लिये अधिकारियों ने इन्हें गङ्गोत्तरी तथा यमुनोत्तरी इसलिये भेजा कि ये उर्दू तथा फारसी भलीभाँति जानते थे। वहीं सांसारिक जनों की दशा देखकर इन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया। अब ये गङ्गोत्तरी से जल लेकर रामेश्वरपूजन का निश्चय कर लिये। जब ऋषिकुल आये उसी समय आपके पितामह आकर इन्हें घर ले गये। बहुत प्रलोभन देने पर भी इनकी विरक्ति को दूर न कर सके। फिर ये मथुरा आकर एक गुजराती ब्रह्मचारी के साथ पैदल उज्जैन आये। वहाँ से ये अकेले होकर इन्दौर आये। एक जमीनदार ने इनकी साधुता से आकृष्ट हो अपने घर ले जाकर कुछ दिन सत्संङ्ग कर इनकी आर्थिक सहायता भी की। फिर ये वहाँ से शाजापुर आये। इनके आशीर्वाद तथा अनुष्ठान से सेठ नाथूमल को, जो सन्तति से सर्वथा हताश हो चुके थे, एक पुत्र हुआ। नाथूमल ने यात्रा के लिये आर्थिक सहायता देकर किसी प्रकार विदा किया। फिर ये भूपाल, काशी, गया, रामेश्वर आदि तीर्थों में होते हुए पूना में मंडलेश्वरजी से मिले और धर्मप्रचार कार्य में यथेष्ट हाथ बटाने लगे।

मंडलेश्वरजी का जीवन-चरित ब्रह्मचारी धर्मदत्तजी के चरित से सर्वथा अनुस्यूत है, इसलिये हरएक कार्य में इनका उद्योग तथा उत्साह था। अतः इनके

कार्यों से ही पाठक इनकी साधुता, परोपकारिता, दयालुता, तथा धार्मिकता से परिचित हो जायँगे।




पूना में ८-१० दिन निवास के अनन्तर मंडलेश्वरजी नासिक आये। यहाँ पर आपने नैनी वाई की धर्मशाला में रहना निश्चित किया। यहाँ पर भी प्रवचन आदि से प्रति दिन जनों में धार्मिक भाव भरते थे। पञ्चवटी में भी आपका उपदेश हुआ। भगतजी आदि महाजनों ने अपनी धार्मिकता का पूर्ण परिचय दिया। ब्रह्मचारी धर्मदत्तजी ने वैदिक ब्राह्मणों को बुलाकर वसन्त-पूजन तथा यात्रा से अवशिष्ट धन से महात्माओं का भोज करवाया। उस समय से ब्रह्मचारीजी पूर्ण त्यागी बन बैठे।

**नासिक से वर्धा**

नासिकनिवासी भक्तजनों के अनुरोध से मण्डलेश्वरजी १ मास निवास कर फिर वर्धा चले आये। वर्धा में सेवा समिति तथा राधाकृष्ण के मन्दिर में निवास करते हुए १५ दिन रह गये। मण्डलेश्वरजी सन्ध्योपासन गायत्री जाप की महत्ता तो प्रथम ही बतला देते थे। पुनःवेद शास्त्रबोधित अन्य धर्मों का भी उपदेश देते थे।

**वर्धा से खराङ्गणा**

वर्धा से मण्डलेश्वरजी खराङ्गणा आये। उस समय चातुर्मास का समय आ गया। सेठ कन्हैयालालजी ने उत्कट श्रद्धासे मण्डलेश्वरजी को अपने बगीचे में ठहराया। यहाँ पर नथमलजी, विट्ठलजी, भीमराजजी तथा धापू माई ने अपनी विशाल श्रद्धा तथा उदारता का परिचय दिया। मण्डलेश्वरजी ने तीन मास निवास कर बच्चे-बच्चे में धार्मिक भाव भर दिया जिससे वहाँ के निवासी चिरकाल तक कृतज्ञ रहेंगे।

**खराङ्गणा से आर्वी**

जिस समय मण्डलेश्वरजी खराङ्गणा में निवास कर रहे थे उस समय आर्वी से अनेक भक्त वहाँ आते थे। जिनके विशेष अनुरोध को स्वीकार कर मण्डलेश्वर जी ने आर्वी जाने का वचन भी दे दिया था। जब कि आर्वी से अनेक वार आमन्त्रण आने लगे जिससे वहाँ के सज्जनों की उत्कट अभिलाषा प्रतीत होती थी, तो मंडलेश्वरजी ने महात्माओं के साथ आर्वी को चले गये। धर्मशाला में आपने निवास करना निश्चित किया। कतिपय दिवस प्रवचन तथा सत्कृत्यों से सफल करते हुए आप धावन्तरी चले गये।




धावन्तरी आकर मण्डलेश्वर जी महन्त श्री स्वामी एतवार गिरि जी के स्थान में उतरे। महन्त जी ने सभक्ति सभी वस्तुओं की सुविधा कर दी। यहाँ पर भगवान् नागनाथ महादेव का अति प्रसिद्ध मन्दिर है। मण्डलेश्वरजी ने अन्य स्थानों की भाँति यहाँ भी अभिषेक तथा पूजन करवाया और १ सप्ताह निवास कर श्रद्धालु जनों के चित्ताह्लाद के साथ सिन्दूरजना चले गये सिन्दूरजना में केवल दो दिन निवास कर बलगाँव पहुँचे।




बलगाँव में मण्डलेश्वर जी के पहुँचने पर वहाँ के लोगों ने उत्कट श्रद्धा दिखलाई। वहाँ पर कई पण्डित मानी जन भी उपस्थित हुए जो भिन्न-भिन्न विषय के प्रौढ़ ज्ञाता थे। पर हम पूर्व ही इस विषयको बतला चुके हैं कि मण्डलेश्वर जी साक्षात् सभी शास्त्रों की समष्टि थे। एक एक कर सभी को निरस्त तथा युक्तियों से अवाक् कर दिया। इस विषय की प्रसिद्धि शनैः शनैः कर्णपरम्परा से सम्पूर्ण नगर में हो गई। अधिकाधिक सङ्ख्या में लोग आने लगे। इसी कारण से मण्डलेश्वर जी को प्रायः पक्ष भर उसी स्थान पर रहना पड़ा। जब कि आबाल वृद्ध सभी मण्डलेश्वर जी के उपदेशों को मन्त्र की भाँति जिह्वाग्रपर कर लिये तो मण्डलेश्वर जी ने अमरावती जाने का निश्चय किया।




जिस समय मण्डली के सहित मण्डलेश्वर जी अमरावती जाने के लिये प्रस्थान किये बलगाँव के अनेक भक्त साथ हो लिये। मण्डलेश्वर जी के संयोग वियोग की अनिवार्यता के उपदेश से भी लोग न रुके और अमरावती तक आये। अमरावती आकर मण्डलेश्वर जी ने नारायण दास के जूना बैंक में निवास करने का निश्चय किया। स्थानीय जनता ने मण्डलेश्वर जी के सदुपदेश से अलौकिक लाभ उठाया। लोगों की धर्मानुरक्ति देखकर प्रायः १ मास तक मण्डली यहीं पर रह गई। फिर मण्डलेश्वर जी ओंकारेश्वर जी के दर्शनार्थ चल दिये।




ओंकार जी पहुँच कर मण्डलेश्वर जी निर्वाण मठ अखाड़े में ठहरे। विधि विधान से ओंकारेश्वर का पूजन कराया। मण्डलेश्वरजी के १०—१५ दिन के निवास ही में प्रायः अपने श्रौत स्मार्त मार्ग को भूले हुए जन अपने कर्तव्य-ज्ञान में समर्थ हो गये। प्रत्येक स्थानों में मण्डलेश्वर जी तभी तक अपना निवास आवश्यक समझते थे जब तक कि जनता अपने सनातन धर्म का

यथावत् परिज्ञान तथा अवलम्बन न कर लेती थी। अतः इस कार्य में सर्वथा पूर्णता देखकर मण्डलेश्वरजी ने इन्दौर की ओर अपनी यात्रा को बढ़ाया।

इन्दौर

इन्दौर पहुँचने पर बहुत से प्रतिष्ठित नागरिकों ने अपने अपने मन्दिर तथा बगीचों में निवास करने के लिये मंडलेश्वरजी से अनुरोध किया। पर नगर के सर्वाग्रगण्य सर्राफ सेठ यमुनादास जुहारमल की श्रद्धा भक्ति से मंडली के महात्मा परिचित थे। इधर सेठ जी भी अपनी वाटिका मे ठहरने के लिये अनुरोध करने लगे। मंडलेश्वर जी ने मंडली के सहित सेठजी के वगीचे में प्रायः सवामास तक निवास किया। वहाँ भी विशाल सभायें तथा प्रवचन प्रतिदिन चलते रहते थे।

उज्जैन

इन्दौर से मण्डलेश्वरजी उज्जैन आये। यहाँ पर खेमराज श्रीकृष्णदासजी की धर्मशाला में उतरे। दश बारह दिन निवास करने के अनन्तर ही आपके प्रवचनों को सुनने के लिये अगणित जन आने लगे। एक दिन मण्डलेश्वरजी ने बड़े समारोह के साथ महाकालेश्वर भगवान् के मन्दिर में जाकर रुद्राभिषेक तथा पूजन किया। प्रत्येक स्थानों में अर्थियों को दान देना तो इनका स्वाभाविक गुण था। यद्यपि ये, विरक्त महात्मा थे पर इनकी अभिलाषा जबतक अभिव्यक्त न होती थी उसके पूर्व ही सेवकगण कार्य को पूर्ण कर दिया करते थे।

किसी दिन मण्डलेश्वरजी कमण्डलुमात्र सहाय हो नगर से बाहर भगवती शिप्रा के तट से होते हुए कुछ दूर निकल गये। प्रायः जब चार मील गये होंगे कि उसी समय मार्ग में एक प्राचीन कूप दिखाई पड़ा और उसके तटपर एक मनुष्य बैठा हुआ दिखाई दिया। एकान्त निर्जन स्थल में उस मनुष्य को देखकर मण्डलेश्वरजी उसके पास पहुँच गये। जाकर जब उसे देखा तो वह नत मुख हो नेत्रों से अश्रुधारा गिरा रहा था। मण्डलेश्वरजी ने उससे दुःख तथा अश्रुपात का कारण पूछा। प्रथम तो अपार दुःखोदधि में निमग्न उस व्यक्ति ने मानो सुना ही नहीं फिर जब शिर उठाकर देखा तो मण्डलेश्वरजी को अवलम्ब-सा पाकर दण्डवत्प्रणाम किया। वह मनुष्य गलित कुष्ठ से पीडित था। अनेक उपचार करने पर भी जब रोग ने पीछा न छोड़ा तो उसने शरीर से सर्वथा विरक्त हो आत्महत्या करने के लिये नगर से बाहर एकान्त में आकर उस जीर्ण-शीर्ण कूप में गिर जाने का निश्चय किया।

उसकी यह दशा देखकर मण्डलेश्वरजी ने उससे परिवार सम्बन्धी बातें की। ज्ञात हुआ कि निरवलम्ब असमर्थ परिवार का वही एकमात्र कर्णधार था।

इन सब वृत्तान्तों को सुनकर मण्डलेश्वरजीके करुणासागर में प्रचुर कल्लोल उठने लगे। वे उस निर्विण्ण व्यक्ति को सान्त्वना देकर अपने पास ली हुई विभूति (भस्म) निकाले और उस सर्वाङ्ग में रोगाक्रान्त जनको देकर प्रतिदिन उसे शरीर में लगाने को कहा। आदित्यहृदय के पाठ करने का आदेश कर भगवती शिप्रा में स्नानादि कर सूर्यास्त के अनन्तर निवासस्थान पर आये। महात्मा की इस विभूति (भस्म) को अमूल्य विभूति-सा पाकर वह निर्वेदपूर्ण व्यक्ति भी वहाँ से चला गया। ज्ञात हुआ कि वह उसी प्रान्त का था। क्योंकि जब उज्जैन का कुम्भ पड़ा सुरूप और अत्यन्त स्वस्थ हो मण्डलेश्वरजी के दर्शनार्थ आया और अपना परिचय दिया। उस समय उपस्थित जन अत्यन्त विस्मित हुए।

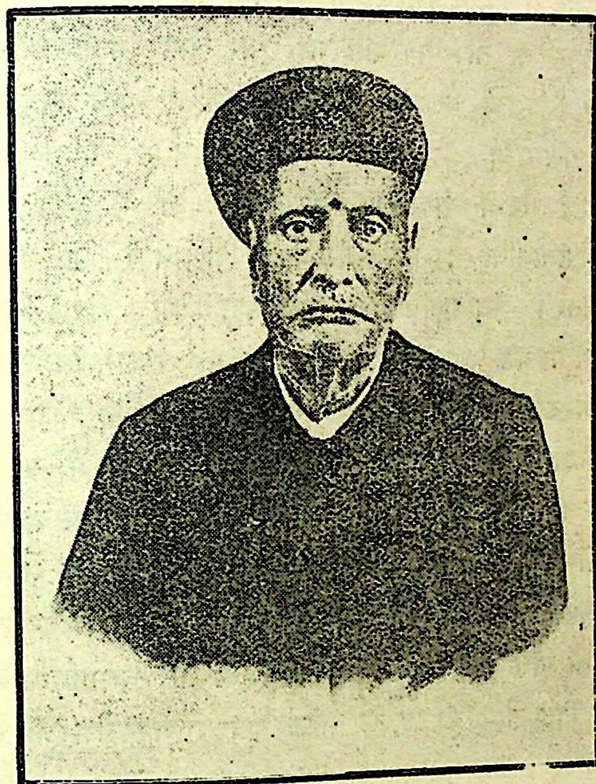
**रतलाम**

इस प्रकार भगवान् महाकालेश्वर के पूजन तथा पुण्यसलिला भगवती शिप्रा में मनोरम अवगाहन, धर्मप्रचार, प्रचीन स्मारक वस्तुओं के दर्शन से आनन्दमय समय व्यतीत करते हुए मण्डलेश्वरजी १ मास निवास किये। 'फिर वहाँ से रतलाम-निवासी जनता के विशेष आग्रह से रतलाम चले गये। वहाँ जाकर गोशाला की धर्मशाला में ठहरे। सभाओं में दो-तीन दिन उपदेश भी हुए। जनता साक्षात् भागवान् शङ्कर समझकर प्रत्यक्षर उपदेश को अत्यन्त सावधानी से सुनती थी। १० दिन रहकर मण्डलेश्वरजी डाकोर आये। डाकोर आकर भाठिया धर्मशाला में ५ दिन निवास कर अहमदाबाद जाने को प्रस्तुत हुए।

**डाकोर से अहमदाबाद**

अहमदाबाद एक विशाल नगर है इसलिये कुछ व्यक्ति तो मण्डलेश्वरजी के स्वरूप तथा धर्म-प्रचार कार्य से परिचित थे। पर विशेष व्यक्ति से जिनका अनुचरण अधिकांश जनता करती है, पूर्ण परिचित न थे। परचित केवल वे ही जन थे जो किसी कार्यवश, यात्रा में मण्डलेश्वरजी के प्रवचन में उपस्थित थे। अथवा कर्णपरम्परा से आपके धर्मप्रचार को सुन चुके थे। ऐसे लोग मण्डलेश्वरजी का शुभागमन अहमदाबाद में सुनकर निवासयोग्य स्थान की सूचना देने लगे। पर इतने विशाल नगर में जहाँ पर विशिष्ट कोई भी महानुभाव परिचित न थे प्रचार अत्यन्त दुरूह था। इसलिये मंडलेश्वरजी चाहते थे कि किसी मान्य पुरुष की सहायता से ही यह कार्य सुगम होगा; अतः मान्य, उदार, श्रद्धालु व्यक्ति का पता लगाने लगे।

## साधु-हितैषी धर्मनिष्ठ श्रीमान् सेठ मोतीलालजी



उस समय नगर में वयोवृद्ध, धर्ममूर्ति, विचारशील श्रीमोतीलालजी की धार्मिक क्षेत्र में अत्यन्त प्रसिद्धि थी। सेठ मोतीलालजी सब प्रकार सुसम्पन्न थे। धार्मिक भाव तो इनका जन्मसिद्ध गुण था। जिसका प्रभाव उन्हीं तक नहीं पर पुत्र पौत्रों में भी प्रतिविम्बित हो गया है। इन बातों के होतेहुए भी सेठजी किसी कार्य के करने में उतावलापन न दिखलाते थे। अविवेक को अवसर न देते थे। उनके जितने काम होते थे वे अनेक बार उनकी परीक्षा कर विवेक की सहायता से करते थे। इसीका परिणाम यह था कि आपने किसी प्रारब्ध कार्य में असफलता का अनुभव न किया और अपने जीवन तक धार्मिक, सामाजिक तथा नैतिक कार्य में सदासनस्थ हो हाथ बँटाते थे। ऐसे महानुभाव की इस प्रकार की प्रकृति सुनकर मण्डलेश्वरजी अत्यन्त

प्रसन्न हुए। इसका कारण यह था कि सेठजी जिस वस्तु की परीक्षा करते थे मण्डलेश्वरजी इस परीक्षा में अनेक बार पारङ्गत पाये गये थे और मण्डलेश्वरजी समीक्षकारिता से अत्यन्त तुष्ट भी रहते थे। ठीक यही घटना मंडलेश्वरजी के समक्ष उपस्थित भी हुई। मण्डलेश्वरजी ने निश्चय कर लियाकि अहमदावाद में यदि निवास करूँगा तो साबरमती नदी पार सेठ मोतीलालजी के बगीचे में ही करूँगा। इसका निश्चय कर मण्डलेश्वरजी ने स्वामी रामचैतन्य पुरीजी को सेठजी के पास भेजा। सेठजी ने केवल तीन दिन के लिये ही अतिथि-सत्कार की स्वीकृति दी। सेठजी परीक्षयकारिता में जितने आगे बढ़े हुए थे मण्डलेश्वरजी सहनशीलता, दृढ़ता तथा साहस में किसी प्रकार पीछे न थे। स्वीकार कर सेठजी के बगीचे में उतरे। कुछ परिचित भक्त तथा महात्माओं के द्वारा मण्डलेश्वरजी ने प्रचारकार्य तथा प्रवचन आदि कार्यों में अधिक उत्साह से काम लिया। तीन दिन के अनन्तर जब मण्डलेश्वरजो ने वहाँ से नियमानुसार जाने का विचार प्रकट किया गुणानुरागी श्रद्धालुशिरोमणि सेठजी जिन्होंने तीन ही दिन में मण्डलेश्वरजी की अलौकिक विद्वत्ता, तितिक्षा, लोकहितैषिता का पूर्ण परिचय पा लिया था, कुछ दिन तक अपने बगीचे में ही रुकने का अनुरोध करने लगे। साथ ही साथ सेठ हिम्मत भाई, कन्हैयालालजी, सेठ नृसिंह भाई, सेठ रमललालजी, सेठ रतनलालजी अपनी अपूर्व श्रद्धा तथा भक्ति का गोपन न कर सके। अपनी स्वाभाविक श्रद्धा का पूर्ण परिचय दिये। आप लोगों की उत्कट भक्ति देखकर मण्डलेश्वरजी दस दिन तक उसी बगीचे में रहे। जिन सेठ मोतीलालजी ने केवल तीन दिन के ही लिये निवास स्थान के सहित सब कुछ प्रबन्ध किया था अब वे सर्वदा के लिये अपने बगीचे में ही निवास करने के लिये मण्डलेश्वरजी से आग्रह करने लगे। पर मण्डलेश्वरजी पुनरागमन के लिये बचन देकर वहाँ से प्रस्थान कर दिये।

**धराङ्गदा स्टेट होते हुए द्वारकाजी**

अहमदाबाद से प्रस्थान कर मण्डलेश्वरजी मण्डली के साथ धराङ्गदा स्टेट आये। यहाँ धर्मशाला में रुककर उन्होंने एक पक्ष तक धर्मप्रचार किया। फिर सबलोग वहाँ से द्वारकाजी पहुँचे। गोमती द्वारका में बीकानेर स्टेट के मंदिर में निवास किया। द्वारकाजी में दर्शन पूजन आदि कृत्य कर प्रति दिन प्रवचन के लिये बैठ जाते थे। एक दिन कुछ भक्त जन एकत्र हुए। उनमें कुछ उच्छृङ्खल स्वभाव के भी जन विद्यमान थे जो पद-पद पर प्रत्येक विचारों की दुःसमालोचना करते थे। प्रवचन की समाप्ति में वे मण्डलेश्वरजी से प्रश्न कर बैठे कि महाराज! मुझ संसारियों से आप से भेद क्या ? जब कि हम भी संग्रह

परायण हैं और आप भी। मण्डलेश्वरी ने उत्तर दिया कि आपने प्रश्न तो उचित किया पर आपका और हमारा संग्रह समान नहीं है। विचार करने पर आपका महान् अन्तर प्रतीत होगा। यदि आप उस अन्तर को सुनना चाहते हैं और वस्तुतः उसका स्वरूप देखना चाहते हैं तो आगामी दिवस अपने इष्ट मित्र महानुभावों के साथ आकर इसका उत्तर सुनियेगा। समयाभाव के कारण मैं इस समय उत्तर नहीं दे सकता। यह कह कर मण्डलेश्वरजी उठ गये। प्रश्नकर्ता महाशय भी चले गये।

**सर्वस्व त्याग**

पूछने वाले निश्चय कर चुके थे कि मंडलेश्वरजी अवश्य कल निरुत्तर हो लज्जित हो जायँगे। अतः वे और भी कुछ लोगों को साथ लेकर प्रातः मंडलेश्वरजी के पास आये। मंडलेश्वरजी ने सभी को सत्कार पूर्वक आसन दिलवाया। जब वे पूर्व प्रस्तावित बातों पर कुछ विकाश डालना चाहते थे कि मंडलेश्वरजी ने उन्हें रोक दिया और अपने पार्श्ववर्ती महात्माओं तथा ब्रह्मचारियों को बुलाकर अर्थी ब्राह्मण तथा भिक्षुकों को बुलाने का आदेश दिया। थोड़ी देर में अधिकाधिक संख्या में ब्राह्मण तथा याचक उपस्थित होने लगे। मंडलेश्वरजी ने सहचर सभी महात्माओं को सर्वस्व दान देने का आदेश किया। सभी महात्माओं ने जो कुछ सम्पत्ति थी प्रत्येक प्रार्थियों को समर्पण कर दिया। अब मंडलेश्वरजी तथा महात्माओं के पास वस्त्र तथा कमंडलु को छोड़कर अन्य कुछ भी अवशिष्ट न रह गया। पर याचकों की पंक्ति अभी बँधी ही चली आती थी। मंडलेश्वरजी ने उन महानुभावों से जो प्रत्यक्ष क्रियाकलाप देख रहे थे, अवशिष्ट याचकों के सत्कार का संकेत किया। पर उन मोहमायावद्‌ध क्षुद्र प्राणियों में इस विषय का सञ्चार कहाँ। मंडलेश्वरजी ने जब सबकी मुट्ठी बँधी देखी तो ब्रह्मचारी धर्मदत्तजी को बुलाकर पूछा कि क्या अब कुछ भी सामान नहीं है ? उत्तर मिला कि एक भक्त पूजन के लिये कुछ मिष्टान्न रख गया है वह भी परिमाण में प्रायः १ सेर होगा। इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी वस्तु नहीं है। मंडलेश्वरजी मिष्टान्न को मँगवाकर उपस्थित याचकों को देने लगे। जितने याचक आते गये सबको प्रसाद मिला, अन्त में मीठा ज्यों का त्यों बना रहा। इस आश्चर्यपूर्ण घटना को देखकर वे समालोचक स्वयं लज्जित हो गये और उन्हें निश्चय हो गया कि महात्माओं का संग्रह लोकोपकार के लिये होता है और जो लोकोपकार के लिये संग्रह करते हैं वस्तुतः वे ही महात्मा हैं। भोगार्थ संग्रही हम लोग जघन्य हैं। इस घटना की सूचना धीरे-धीरे बहुत दूर तक पहुँची। इस न्यूनता की पूर्ति के लिये लोगों ने बहुत आग्रह किया पर मंडलेश्वरजी ने स्वीकार न किया। केवल

भिक्षा मात्र तो अवश्य स्वीकार कर लेते थे। ठीक है "दुष्करं किं महात्मनाम्"। इस सर्वस्वत्याग के प्रथम भी मंडलेश्वरजी ने तीर्थ के पुरोहित तथा अन्य ब्राह्मणों को बुला कर समष्टि भोज किया था और दक्षिणा भी दी थी। इस प्रकार अब इनके पास यात्रा में अत्यन्त उपयोगी सम्पत्ति कुछ भी न रह गई थी।

**बेट द्वारका**

इस प्रकार गोमतीस्नान तथा द्वारकाधीश का पूजन तथा विशाल दान आदि सत्कृत्यों में अपने समय को सफल करते हुए मंडलेश्वरजी नौका द्वारा बेट द्वारका गये। वहाँ धर्मशाला में ठहरे। दूसरे दिवस जब मंडली के महात्मा द्वारकाधीश के दर्शन के लिये गये तो पंडों ने उन्हें दरवाजे पर ही रोक दिया। इसका कारण यह था कि यहाँ नियमानुसार प्रत्येक यात्री को एक रुपया एक आना कर देना पड़ता था। पर बहुत आन्दोलन के कारण यह नियम हटा लिया गया। उसी नियम के आधार पर पंडों ने कर माँगा। उन्हें यह भी विदित था कि ये महात्मा उसी मंडली के हैं जिसके मंडलेश्वरजी ने द्वारका में विशाल दान दिया है। जब वे समझाने पर भी किसी प्रकार न माने तो महात्मा लोग धर्मशाले में चले आये और मंडलेश्वरजी से सारा वृत्तान्त कह सुनाये। इस वृत्तान्त को सुन कर वीतराग सहिष्णु मंडलेश्वरजी को अल्प भी क्षोभ न आया। वे महात्माओं को समझाने लगे कि आप स्वयं ब्रह्म है, आत्म चिन्तन ही महात्माओं का सर्वोत्तम कर्तव्य है; पर लोगों को शुभमार्ग में प्रवृत होने के लिये ही प्रवृत्तिमार्ग का आश्रयण करना पड़ता है। यदि दर्शन में पंडों को कष्ट है तो आप लोगों को भी आग्रह करने की आवश्यकता नहीं।

दो दिन के अनन्तर मंडलेश्वरजी के नाम तथा शुभकृत्य से परिचित होकर पंडों के अग्रगण्य मंडलेश्वरजी के पास आये और अपने अपराध के लिये क्षमा-प्रार्थना करने लगे। यद्यपि मंडलेश्वरजी इन लोगों के व्यवहार से विरक्त हो चुके थे पर पंडों ने भी प्रतिज्ञा कर ली थी कि बिना दर्शन किये मंडलेश्वरजी को यहाँ से जाने भी न देंगे। मंडलेश्वरजी का वचन पाने के लिये धर्मशाला ही में कुछ देर तक बैठे रह गये। जब मंडलेश्वरजी ने पंडों में खेद तथा पश्चात्ताप की मात्रा अधिक देखी तो उन्होंने दर्शन करना स्वीकार कर लिया। पंडे अपने स्थान को चले गये।

दर्शन का समय ब्राह्म मूहूर्त निश्चित हुआ। रात्रि के समय मंडलेश्वरजी ने ब्रह्मचारी श्री धर्मदत्तजी को जो पूजन का ही कार्य किया करते थे, बुलाया और पूजन सामग्री एकत्र करने के लिये आदेश दिया। पर कुछ अक्षत कुंकुम के अतिरिक्त उनके

पास भी क्या था ! सर्वत्यागप्रवाह में ये भी सन्तरण कर चुके थे। इसके अनन्तर स्वामी शङ्करानन्दजी भारती, जो मैसूर में मिले थे, बुलाये गये। मंडली के आय-व्यय के निरीक्षण कार्य का भार आप ही पर था। उनके पास भी कुछ न निकला। सभी लोग शयनार्थ चले गये। ब्राह्ममुहूर्त में स्वामी शङ्करानन्द भारतीजी मंडलेश्वर-जी के पास एक गिनी रखकर कहने लगे कि मुझे अपने बिस्तरे पर सोकर उठते समय मिली है, इससे भगवान् का पूजन किया जाय। इधर ब्रह्मचारी श्री धर्मदत्तजी भी नारियल वस्त्र आदि सामग्री लेकर आये। यह सामग्री भी किस प्रयत्न से मिली वे ही जानते होंगे। अस्तु मंडली के सहित मंडलेश्वरजी मन्दिर में गये। पंडों ने सत्कारसहित स्वागत किया। फिर ब्रह्मचारीजी ने सविधि पूजन कराया। दक्षिणा में वही गिनी दी गई। पूजन के समय मालूम पड़ता था कि साक्षात् सगण शङ्करजी ही पूजन कर रहे हों। पूजन के अनन्तर सभी लोग निवासस्थान में आये। दो दिन रहकर फिर मंडलेश्वरजी ने प्रस्थान का विचार किया।

**माण्डवी गमन**

विचारकाल ही में मंडलेश्वरजी के पास मांडवीनिवासी श्री स्वामी ऋद्धिगिरि जी का समाचार आया। पहले भी ये कई बार मंडलेश्वरजी से पत्रादि द्वारा प्रार्थना कर चुके थे इसलिये यह सुअवसर देखकर आपने फिर निमन्त्रण भेजा। मंडलेश्वरजी ने स्वीकार कर नौका द्वारा मांडवी के लिये प्रस्थान कर दिया। प्राय: दश घंटे में बेट द्वारका से मांडवी नौका पहुँची। स्वामी ऋद्धिगिरि जी प्रथम से ही घाट पर सवरी तथा जुलूस का प्रबन्ध कर चुके थे। अतः बड़े ही समारोह के साथ मंडलेश्वर जी को अपनी ब्रह्मपुरी में ले गये। स्वामी महन्त ऋद्धिगिरिजी ने मंडलेश्वर जी के प्रति बड़ी उत्कट श्रद्धा प्रकट की तथा स्वामी सुखात्मानन्द ने भी पूर्ण सेवा सत्कार किया। महन्त स्वामी ऋद्धिगिरि जी इस विषय से परिचित हो गये थे कि मंडलेश्वर जी ने द्वारका में सब कुछ दान कर दिया है। अब मंडली के कर्मचारियों से पूछ कर प्रत्येक वस्तु की पूर्ति में सचेष्ट हो गये। सम्पूर्ण सामग्री पूर्व की भाँति फिर भी पूर्ण हो गई। महन्त जी की श्रद्धा के कारण १ पक्ष रहकर फिर मंडलेश्वर जी जामनगर चले गये।

**जामनगर**

जामनगर जाकर मंडलेश्वर जी काशी विश्वनाथ के मन्दिर में मंडली सहित ठहरे। जामनगर में एक विरक्त प्रभावशाली मुंडिया बाबा रहते थे। मंडलेश्वर जी के शुभागमन से इन्होंने अत्यन्त हर्ष प्रकट किया।

और सब प्रकार की सुविधा के लिये प्रयत्न शील हो गये। जामनगर एक प्रसिद्ध स्टेट है। पर प्रासादवासियोंसे मंडलेश्वरजी का परिचय न था। पर राजमाता प्रभृति लोग थे बड़े ही भक्त। मंडलेश्वर जी के चले आने पर उनके गुणों पर अनुरक्त हो ये लोग पुनः दर्शन चाहते थे और "नमः शिवाय" के प्रचार में तथा ओंकारेश्वर की स्थापना में भी सद्धर्मपरायणा, श्रद्धामयी गङ्गा स्वरूप श्रीमती प्रताप कुँवर वा साहब अमर विलास पैलेस ने पूर्ण तत्परता दिखलाई थी। जब कि मण्डलेश्वरजी ब्रह्मपुरी में प्रवचन तथा धर्म-प्रचार करते थे उस समय राजकर्मचारी प्रवचन में सम्मिलित होते थे। चित्ताकर्षक उपदेशों से मुग्ध हो वे सर्वदा प्रशंसा किया करते थे। सद्धर्म परायणता के कारण इस सदुपदेश का प्रभाव कर्णाकर्णिकया राजमाता पर भी पड़ा। वयो वृद्धा धर्ममूर्ति राजमाता ने विचार स्थिर किया कि ऐसे महानुभाव योगीश्वर के सदुपदेश तथा दर्शन से अपने जीवन को सफल बनाऊँ। इसकी चर्चा प्रायः अन्तः पुरवासियों में चला करती थी। पर राजमाता को इस बात का विश्वास न था कि मण्डलेश्वरजी इतने ही अल्पकाल में यहाँ से अन्यत्र चले जायँगे। अतः वे सुस्थिर हो आज कल का विकल्प किया करती थीं। इनकी विकल्पावस्था ही में अपने कार्य को परिपूर्ण समझकर महाराज मण्डलेश्वरजी अपनी यात्रा को आगे बढ़ाने का विचार किये। कुल १८ दिन निवास कर पुनः मंडलेश्वरजी अहमदाबाद आये।

मण्डलेश्वरजी के चले आने के बाद राजमाता को खेद हुआ। फिर उन्होंने वर्तमान मण्डलेश्वरजी महाराज कृष्णानन्दजी को जो सन्यासश्रम के अधिष्ठाता थे साग्रह बुलाकर चित्तखेद तथा अपनी अभिलाषा को प्रकट किया। और नमः शिवाय मन्त्र कोष में सवा दो करोड़ मन्त्र अपने प्रधान राज कर्म चारियों से लिखवाकर भेजा था। जिस समय शिवपुर में ओंकारेश्वर शंकर की स्थापना हुई थी उस समय आपने अपने लिखित मन्त्रों के पूजन के लिये द्रव्य की भी सहायता की थी। आपकी प्रजाओं में भी पूर्ण धर्मानुराग है। आपके यहाँ भगवती दुर्गा की पूजा सर्वदा हुआ करती-है।

**अहमदाबाद में चातुर्मास**

अहमदाबाद में पहुँचकर मण्डलेश्वरजी मोतीलाल हीराभाई के बँगले पर ठहरे। जो साबरमती नदी में एलिसब्रिज के पास है। सेठजी के प्रबन्ध से वहाँ सब प्रकार की सुविधा हो गई। इस समय वर्षाकाल समीपवर्ती था, अतः वर्षा ऋतु में वहाँ रहना अनिवार्य था।

## भक्त-शिरोमणि श्री बालाभाई ब्रजवल्लभ दासजी



[ सेठ बालाभाई ब्रजवल्लभदास जो सेठ मोतीलाल जी के सम्बन्धी थे। ]

प्रतिदिन प्रवचन में आते थे। आपकी महात्माओं में उत्कट श्रद्धा थी। अतः अधिक सेवा में तत्पर रहा करते थे।

अहमदाबाद में संन्यासाश्रम की स्थापना धर्मपरायण भक्तवर्य सेठजी के ही पुरुषार्थ तथा अदम्योत्साह का फल है। केवल आपही नहीं पर आपकी सन्तति में भी आपके समग्र गुण पूर्णतः सङ्क्रान्त हैं। आपके चिरञ्जीवी सुपुत्र श्री भोगीलालजी, श्री ठाकुरलालजी, तथा श्री रमणलालजी ने भी संन्यासाश्रम में मनोहर मन्दिर का निर्माण कर शिवपञ्चायतन, काशी विश्वनाथ, लक्ष्मीनारायण भगवान्, गणेशजी, भुवनेश्वरी देवी तथा हनुमानजी आदि देवताओं की प्रतिष्ठा करवाकर अपने परम्परीण गुण का परिचय दिया।

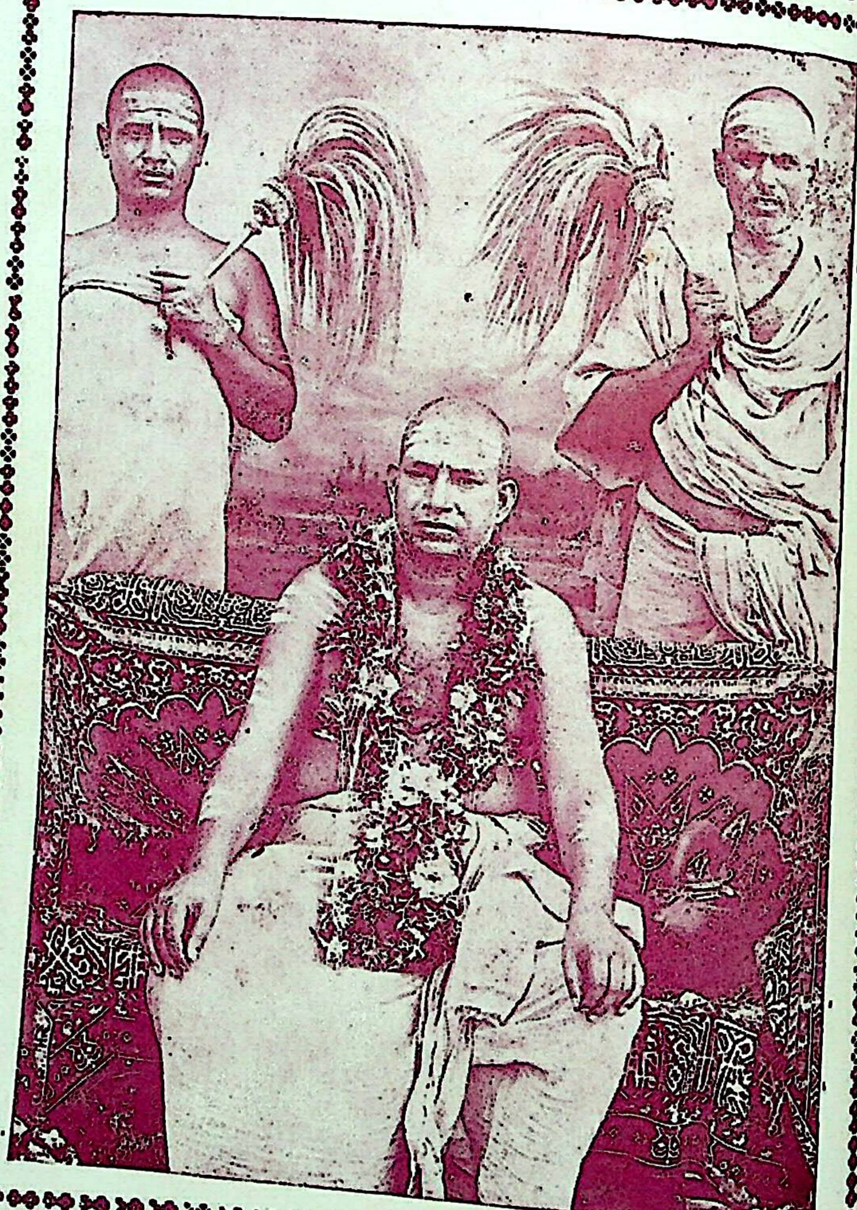
## सानंद स्टेट में श्री मण्डलेश्वरजी का स्वागत

विद्वन्मण्डलमण्डितोऽतिथिगणैः संवीक्षितः सादरम्।
दुर्गार्चा परता प्रसारित सदास्तिक्यातिरेकः सदा ॥
राज्यं सप्रकृतिं पितेव सुधिया साणन्दमालोकयन्।
जीयाद्राजकुमारको निरवधि श्री रुद्रादत्ताभिधः ॥१॥

जिस समय मण्डलेश्वरजी का अहमदाबाद में धर्म प्रचारार्थ प्रौढ़ प्रवचन का प्रभाव पड़ रहा था उस समय धर्ममूर्ति साक्षात् भगवती स्वरूपा सानन्द स्टेट की राजमाताजी भी कथा श्रवण से अपने समय का सदुपयोग कर रही थीं। आपके चित्त में चिरकाल से किसी सर्वगुणसम्पन्न महात्मा को श्रेयस्कर गुरु निर्वाचित करने का विचार चल रहा था। कतिपय दिवस कथा में सम्मिलित होने पर ही आपकी मण्डलेश्वरजी पर अनन्य श्रद्धा हुई। अपने मनोनीत विषय को मण्डलेश्वरजी के समक्ष उपस्थित कर अपने स्टेट को पवित्र करने का अनुरोध भी किया। साक्षात् श्रद्धा की मूर्ति श्रीमती राजमाता के अनुरोध को स्वीकारकर मण्डलेश्वरजी भक्त-प्रियता का संरक्षण करते हुए स्टेट में गये। मण्डलेश्वरजी सानन्द स्टेट में पहुँचकर केवल वयोवृद्धा राजमाता ही में नहीं परन्तु सभी पारिवारिक सदस्यों में असीम सद्भावना का अनुभव किये। आबाल वृद्ध सभी राजपरिवार मण्डलेश्वरजी के शुभागमन से आनन्दसागर में गोता लगा रहे थे। राजपरिवार की लोकोत्तर



श्रुतिः कण्ठे यस्याविरतमवभासं वितनुते, समानं त्रय्येन्द्रैः सुरगुरुसमं सौम्यविदुषाम्।
मुनीन्द्रैः संसेव्यं भवजलधि तारे तरणिभम्, जयेन्द्रं वन्दन्तां यतिपतिमतन्द्रं बुधगुरुम्॥



सानन्द स्टेट राजकुटुम्ब में गुरुदीक्षा लेने के अनन्तर आरती पुष्पांजलि के समय का चित्र।

धर्मनिष्ठा, सद्विचार तथा प्रजानुराग देखकर मण्डलेश्वरजी ने भूरिभूरि प्रशंसा की। मण्डलेश्वरजी ८–१० दिवस तक स्टेट में ही रह गये। राजमाता, श्रीयुत सद्धर्म प्रतिपालक महाराज यशवन्तसिंहजी, राजकुमार धर्मरूप श्री रुद्रकुमारजी ( दादा साहब ) तथा साक्षात् दुर्गा तीन राजकन्याओं ने मन्त्र ग्रहण भी किया ; उस समय दरबार के सभी प्रमुख व्यक्ति भी उपस्थित थे। धूमधाम से आरती पुष्पाञ्जलि तथा पूजन भी हुआ। उस समय प्रतीत होता था कि भक्ति, श्रद्धा, ऋद्धि, सिद्धि, विवेक और धर्म साक्षात् मानो भगवान् शङ्कर की सेवा कर रहे हों। इस प्रकार समय का सदुपयोग कर महाराजजी राजपरिवार की धर्मनिष्ठा से सन्तुष्ट हो वापस आये।

## संन्यासाश्रम के दाता भक्त-शिरोमणि श्रीयुत छोटेलाल हीराचन्दजी अहमदाबाद

वालाभाई व्रजवल्लभदासजी तथा श्रीमान् सेठ मोतीलालजी तथा अन्य भक्तवर्ग ने इस बात का निश्चय कर लिया था कि महात्माओं के निवासार्थ तथा स्थानीय जनता के हितार्थ नगर में सन्यासाश्रम अत्यन्त आवश्यक है तथा उसके उपयोगि साधन भी निश्चित कर लिया था। इस समय में इस अपूर्व धर्मकार्य में सर्वप्रथम भागग्रहिता का सौभाग्य प्राप्त करने के लिये श्रीमान् भक्तराज श्री छोटेलाल हीराचन्द्रजी ने अकेले ही इस कार्य की पूर्ति की श्रद्धा दिखलाई। आपने सावरमती गङ्गा के तट पर विशाल संन्यासाश्रम बनवाकर शिवार्पण किया साथ-साथ स्थान की व्यवस्था तथा संरक्षकता का भार स्वयं स्वीकार किया। जो स्वरूप इस समय भी स्थिर है। आपके सुपुत्र डायाभाई में भी समग्र यही गुण हैं। परोपकार तथा साधुसेवा में ये भी पिता के ही समधुर्य हैं।

## विप्रवंशावतंस धर्मनिष्ठ यज्ञप्रेमी श्रीमान् वीरुभाई डायाभाईजो मेहता

अहमदाबाद के निवासी सज्जनों मे श्रीयुत वीरूभाई भी उल्लेखनीय व्यक्ति हैं। आप नागर ब्राह्मण हैं। आपकी आस्तिकता का परिचय आपके शुभकृत्यों से ही विख्यात है। मण्डलेश्वरजी ने जहाँ कहीं यज्ञ कार्य की प्रस्तावना की आपने उसके सम्पादन में सहर्ष तथा सोत्साह तत्परता दिखलाई। हरिद्वार तथा प्रयाग में कुम्भ के अवसर पर महारुद्रयज्ञ तथा समष्टि भण्डारा का सम्पादन आपने ही किया। काशीजी में भी जब कि शिवपुर में ओंकारेश्वर द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग की स्थापना हुई उस समय आपने अपूर्व श्रद्धा का परिचय दिया। काशी के प्रतिष्ठित विद्वानों की सभा में आपने दानशीलता का भी परिचय दिया। उस कार्यसम्पादनपटुता तथा श्रद्धा की प्रशंसा आज भी काशी की विद्वन्मण्डली मुक्तकण्ठ से किया करती है। और भगवान् शङ्कर से प्रार्थना करती है कि श्रीवीरूभाई डायाभाई ऐसे धर्मप्राण व्यक्तियों की भारत में प्रचुरता हो।

## विप्रवर्य धर्मनिष्ठ गुरुभक्त छविलभाई बलवन्तराय जी भट्ट

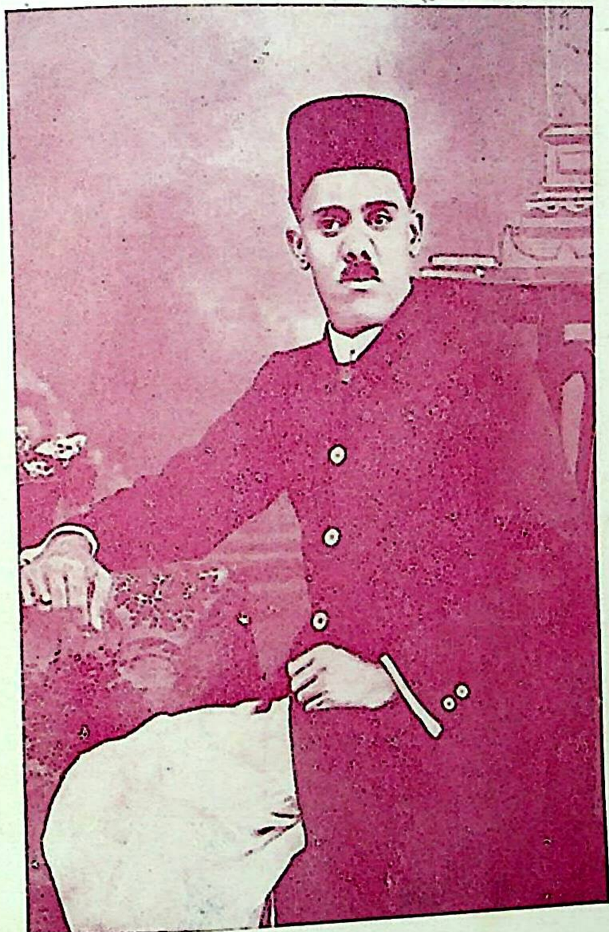
( आर्या )

गुरुदेवभक्तिनिरतः श्रीयुद्बलवन्तरायतनुजातः ।



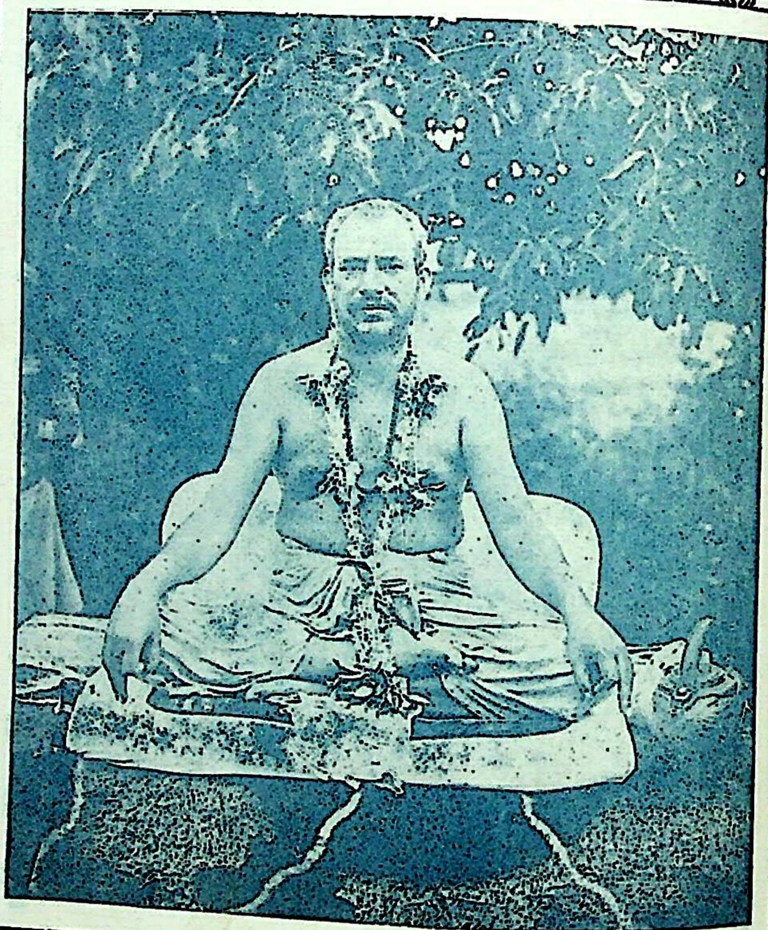
सत्कर्मपूतचित्तो जीयाच्चिरं छविलभाई ॥ १

विप्रवर्य्य



धर्मपरायण गुरुभक्त श्री छविलभाई वलवन्त राय भट्ट इनामदार
आपने गुरु महाराज के अनेक धार्मिक कार्यों में
सेवा का अलभ्य लाभ लिया है।

❀ श्री सद्गुरवे नमः ❀



सं० १९९६ में उत्तर काशी से काशीजी आने पर छविलभाई जी की प्रेरणा से अहमदाबाद में चातुर्मास करने के अनन्तर का चित्र।

( स्रग्धरा )

विद्वत्ताविचत्तकीर्तिर्मुखजवरकुले दीप्तरत्नायितोऽसौ
श्रौतस्मार्तैः सुकृत्यैः समुदितमहिमा दीनदैन्यापनोदी।
सत्कारैः सज्जनानां जनित जनमनो हर्षवर्षं प्रकर्षः
गुर्वीशाराधसिद्धो जयति 'छविलभाई' शुभैः पुत्रपौत्रैः॥

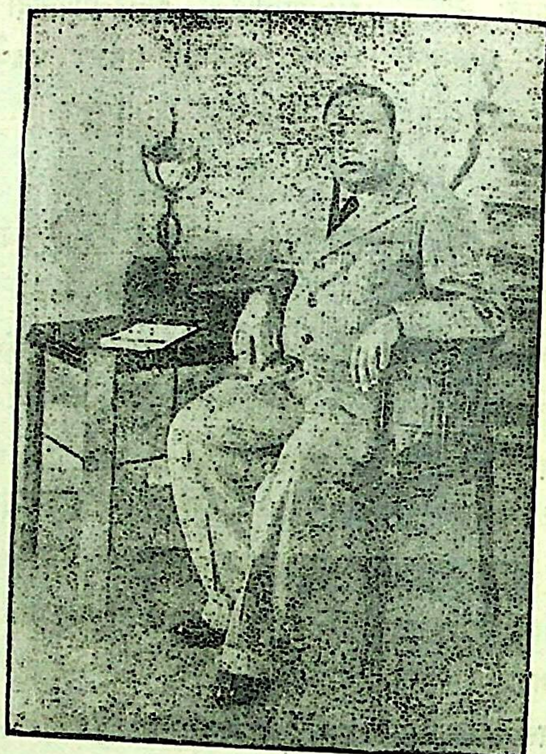
( आर्या गीति )

स्यातां सुखिनौ चम्पकलालो धर्माग्रणीः प्रवीणश्च।
मार्कण्डेयमहेन्द्रकुमारौ कल्याणभागिनौ च स्ताम्॥

यों तो अनेक भक्तों के निवासस्थान को महाराज मण्डलेश्वरजी ने निज चरणपराग से पवित्र किया था पर छविलभाई बलवन्तराय भट्ट की सद्धर्मपरायणता से मण्डलेश्वरजी अत्यन्त सन्तुष्ट रहते थे। मैंने भी इस बात का अनुभव किया है कि कथाप्रसङ्ग में विशेषकर धर्मपरायण ब्राह्मणों की चर्चा में मण्डलेश्वरजी श्रीछबिलभाई की प्रशंसा अवश्य किया करते थे। इसका कारण यह था कि अपने बच्चों के यज्ञोपवीत ( उपनयन ) संस्कार के समय आपने मण्डलेश्वरजी को अपने शुभकृत्य के सुसम्पादन के लिये सानुराग बुलाया था। मण्डलेश्वरजी आपकी सत्कर्मप्रियता, दानशीलता स्वाभाविक गुरुजनानुराग तथा उदारता से अत्यन्त सन्तुष्ट हो गये थे। मण्डलेश्वरजी तो आपके उपास्यदेव ही थे, पर अन्य भी साधु महात्माओं को आप साक्षात् देवता ही समझते हैं। आपके गुजराती लेख से ही आपके सद्विचार तथा विद्वत्ता की झलक मिल जाती है।

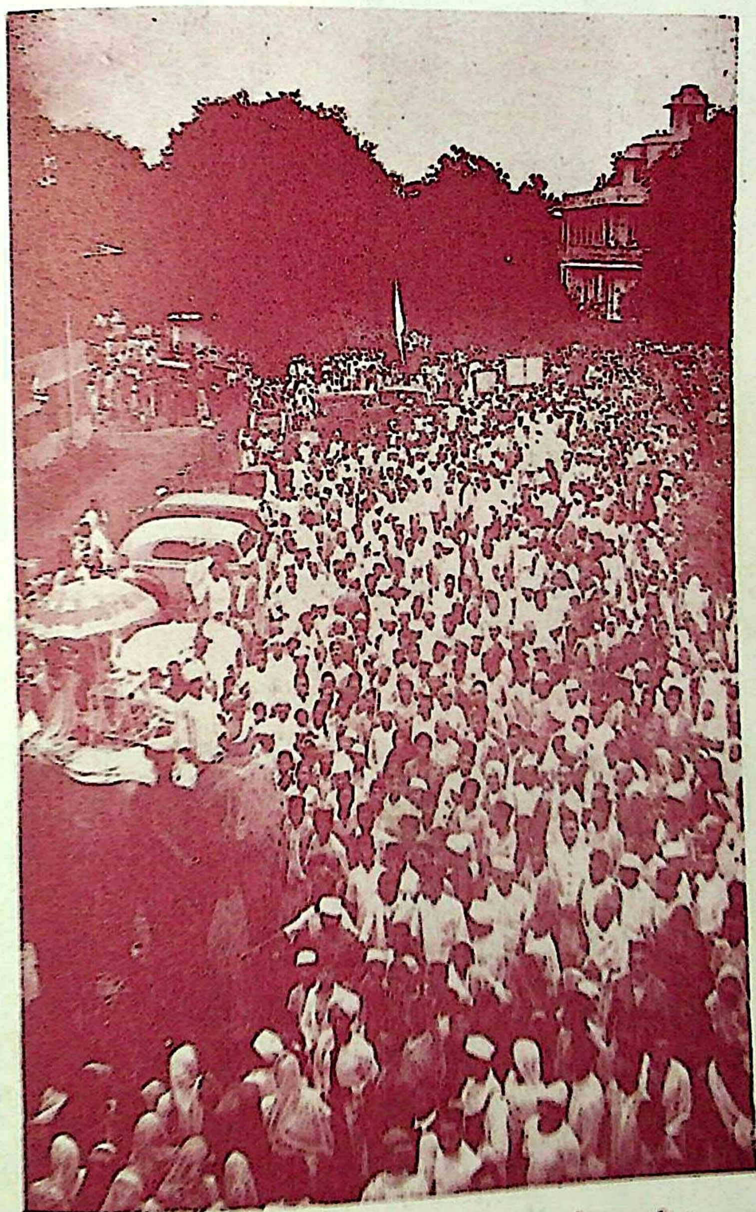
**परम गुरुभक्त धार्मिक शिरोमणि परोपकार परायण साधु सेवी पटेल जीवनलाल आशारामजी सरसपुर** ने अपनी अनुपम श्रद्धा से महात्माओं को वश में कर लिया था। मण्डलेश्वरजी के साथ मण्डली में रहनेवाले महात्मा प्रसङ्गवश आपकी श्रद्धाभक्ति को प्रत्येक स्थलों में उदाहरण रूप में रखते हैं। पर्जन्य यज्ञ कार्य में आपका विशेष अनुराग था। और इस कार्य में अधिक से अधिक व्यय से भी मुख न मोड़ते थे। मण्डलेश्वरजी आपकी प्रशंसा स्वयं किया करते थे। मण्डलेश्वरजी की आज्ञा से आपने बड़े उत्साह तथा समारोह के साथ पर्जन्य याग का भी सविधि सम्पादन किया था।

# श्रीमङ्गलदास हरगोविन्ददास जी पटेल, सरसपुर



भक्तों में श्रीयुत सदाचारप्राण धर्मवरिष्ठ श्रीमङ्गलदास हरगोविन्ददास जी भी अद्भुत धर्मनिष्ठा से लोगों को चकित कर देते हैं। आपका यह स्वाभाविक गुण है कि किसी भी अतिथि अभ्यागत को विमुख नहीं करते। गुणग्राहिता तो आपके प्रति रोम में सनी है। विचार तथा परोपकार में आप सर्वप्रथम स्थान पाते हैं। सन्यासाश्रम में आपने कथा हाल, भरुँचमें श्री जयेन्द्र-आश्रम तथा गोविन्दमठ काशी में स्थायी अन्नसत्र, सन्यासि संस्कृत कालेज काशी में छात्रों के निवासार्थ दस कमरों को बनवा कर शिवार्पण किया है। विद्यालय में आपने ५१ स्थायी भोजन तिथि भी लिखवाई है। ऐसे उदारतापूर्ण महानुभावों का ही जीवन तथा धन असार संसार में सफल है।

इन भक्तों के सहवास में मण्डलेश्वरजी अपने गणों से युक्त कैलासवासी भगवान् शङ्कर से प्रतीत होते थे। ये तो प्रमुख धार्मिकों का नामोल्लेख किया गया है इनके अतिरिक्त और भी अनेक सज्जन, जिन्होंने पद-पदपर धार्मिकता का परिचय

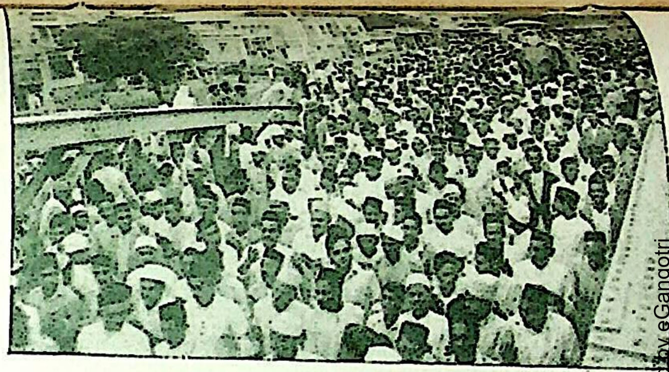


पूर्णाहुति के पश्चात् यज्ञभगवान की अपूर्व सवारी।

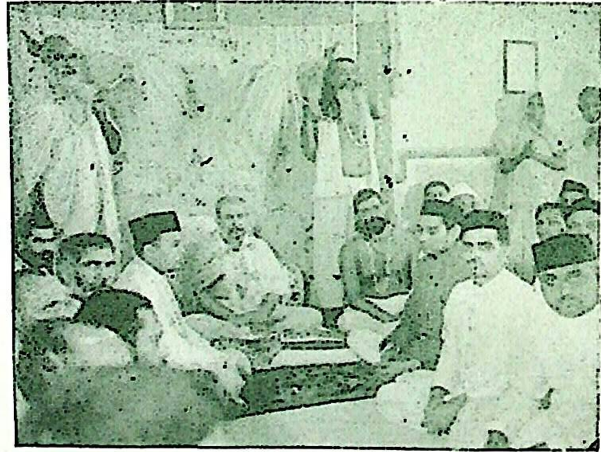
યજ્ઞની પૂર્ણાહુતિ પછી યજ્ઞભગવાનની અપૂર્વ સવારી





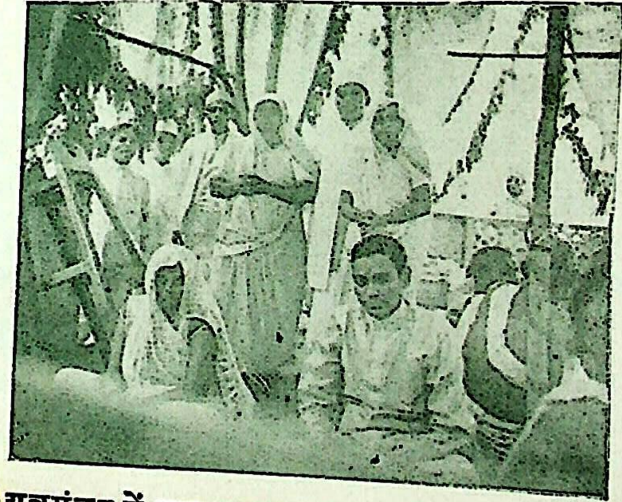


यज्ञ के दर्शनार्थ भाविक जनसमाज का अपूर्व उत्साह।  યજ્ઞના દર્શનને અર્થે ભાવિક જનસમાજનો અપૂર્વ ઉત્સાહ



पूज्यपाद श्री. महाराजजी के सहित आचार्य व कार्यकर्ताओं की भक्तमंडली।





यज्ञमंडप में सहकुटुम्ब

दिया, प्रवचन में सम्मिलित होते थे और अलभ्य लाभ के भागी बनकर प्रशंसापूर्ण जीवन का अनुभव करते थे। मण्डलेश्वरजी को इन सज्जनों पर अधिक ममता थी। इसी का फलस्वरूप संन्यासाश्रम का निर्माण तथा महाविद्यालय है। मैं तो कहूँगा कि वे प्राणी धन्यवादार्ह हैं जो विद्युत्स्फुरण की भाँति क्षणभंगुर पदार्थों को तुच्छ समझकर निर्मल चिरकालस्थायी कीर्ति का सञ्चय करते हुए इस लोक के साथ परलोक को भी स्वेच्छाभोग्य बना लेते हैं।

बँगले में प्रवचन प्रतिदिन होता था जिससे अनेक गुणग्राही मण्डलेश्वरजी के उपदेश के पक्षपाती हो गये।

**नमः शिवाय वैंक का शिलारोपण**

हम इस बात को पहले बतला चुके हैं कि मंडलेश्वरजी दूर-दूर देशों में भी धर्मप्रचार का विचार स्थिर कर चुके थे और कभी-कभी ब्रह्मचारी धर्मदत्तजी के समक्ष भी यह प्रस्ताव रखते थे। ब्रह्मचारीजी अनुपम उत्साहशाली थे। अधिक दिन रहने का अवसर पाकर ब्रह्मचारीजी इसे कार्यान्वित करने का विचार करने लगे। इन्हें पूर्व प्रस्तावित विषय का ही प्रसार करना उचित समझ पड़ा। वह प्रस्ताव निम्नलिखित प्रकार का था।

एक वार काशीजी में मंडलेश्वरजी के समक्ष स्वामी नर्मदागिरिजी ने "ॐ नमः शिवाय" वैंक खोलने का विचार प्रकट किया था। मंडलेश्वरजी ने इस कार्य में अधिक परिश्रम तथा तत्परता की आवश्यकता समझकर रोक दिया, पर स्वामी नर्मदागिरिजी ने सानुरोध कार्य को प्रचलित किया।

पर कुछ ही आगे चलकर कार्य स्थगित हो गया। ब्रह्मचारीजी के मन में इसी कार्य को आगे बढ़ाने का विचार हुआ। मण्डलेश्वरजी के समक्ष प्रस्ताव करने पर वे सहमत न होते थे; क्योंकि स्वामी नर्मदागिरिजी की असफलता का अनुभव वे कर चुके थे। पर ब्रह्मचारी जी भी अपने विचार के पक्के थे। दूसरे दिन धर्मवीर विक्रम मिल के मालिक सेठ रमणलालजी के पास पहुँच कर अपने विचार को प्रकट किया। सुनते ही सेठ रमणलालजी के विकसित मुख ने ही इस कार्य में पूर्ण सहानुभूति प्रकट कर दिया। आपने सब प्रकार सहयोग देने को स्वीकार किया तथा उसी समय अपने बच्चों को बुलाकर मन्त्र लिखने का आदेश दिया। "आत्मावै जायते पुत्रः" के नियम से सन्तान में पिता का गुण आना स्वाभाविक है। सुनते ही बच्चे मन्त्र लिखना प्रारम्भ कर दिये और लाखों मन्त्र लिखकर शीघ्र ही समर्पण कर दिये। ब्रह्मचारीजी के साथ श्रीसेठ रमणलालजी मन्त्र लेकर

मण्डलेश्वरजी के पास गये और समर्पण कर आगे कार्य को बढ़ाने की आज्ञा ली। मण्डलेश्वरजी सेठजी की विशेष श्रद्धा देखकर सहमत हो गये और अधिक संख्या में मन्त्र लिखने का आदेश किया। आज्ञा पाकर सेठजी ने कागज, स्याही तथा अन्य साधनों का प्रबन्ध कर दिया। अन्य सज्जनवर्ग भी यथाशक्ति साधन-सम्पादन तथा मन्त्रलेख में सहयोग देने लगे। ब्रह्मचारीजी भी तन्मनस्क होकर इसी कार्य की पूर्णता में तत्पर रहने लगे। अब क्या था, धीरे-धीरे लेख आने लगे और लोग मन्त्रलेख की महत्तासे परिचित होने लगे। इस प्रकार "नमः शिवाय" बैंक की नीव पड़ने में प्रथम श्रेय के भागी अहमदाबाद नगर तथा वहाँ के नागरिक हैं। इस पुण्यमय विशाल कार्यमें स्वामी महादेवानन्दजीनेभी अपने उदार तत्परता तथा महोत्साह का परिचय दिया। शांता बहन और मोहनलालजीने भी इस कार्यमें सहयोग दिया।

नड़ीयाद

इसी कार्य में मण्डलेश्वरजी ने सम्वत् १९८३ के वर्षा काल को इन्हीं भक्तशिरोमणियों के सम्पर्क में बिताया। गीता उपनिषद् पाठ तथा मन्त्रलेख की महत्ता से प्रायः सभी नागरिकों को परिचित कर आश्विन शुक्ल विजया दशमी को नड़ीयाद चले गये। यहाँ सन्तरामजी के मन्दिर में दो दिन निवास कर बड़ोदा को प्रस्थान कर दिया।

बड़ोदा

बड़ोदा स्टेशन पहुँचते ही सरकार बहादुर बड़ोदा की सहायता से सभी महात्मा हाथी के साथ मण्डलेश्वरजी की अगवानी के लिये उपस्थित थे। बड़े ही धूमधाम से हाथी द्वारा लोग खण्डेराव महानिर्वाणी अखाड़ा तक लाये और यहीं पर मण्डलेश्वरजी को ठहराया। महन्त मोहनगिरिजी तथा स्वामी काशीपुरीजी आदि महात्माओं ने उचित सेवा की। स्थानीय भक्तों का भाव भी अत्यन्त सराहनीय था। यहाँ प्रवचन का स्थान अत्यन्त विशाल था जिसमें रात्रि के समय प्रकाश का भी उचित प्रवन्ध था। इस प्रकार धर्मधारा को नगर में प्रवाहित कर मण्डलेश्वरजी कार्तिक कृष्ण नवमी को 'आनन्द' चल दिये।

आनन्द

आनन्द नगर से एक मील की दूरी पर यागनाथ शङ्कर का मन्दिर है। यह अत्यन्त रमणीय स्थान है। नागरिक जन सोत्साह जुलूस के साथ मण्डलेश्वरजी को मन्दिर में ले गये। केवल दो दिन निवास कर मण्डलेश्वरजी वहाँ से जाने का विचार प्रकट करने लगे। वर्तमान महन्त शंकरपुरी जी ने सानुरोध मण्डलेश्वरजी को दो दिन और रक्खा। इन विज्ञ विद्वान् महात्मा की श्रद्धाभक्ति से मंडलेश्वरजी अत्यन्त तुष्ट हो पेटलाद नगर चले आये।




यहाँ के प्रसिद्ध साधु-ब्राह्मणसेवी भक्तशिरोमणि सेठ रमणलाल जी मंडलेश्वरजी का स्वागत करने के लिये आनन्द आये थे। ये महानुभाव अहमदाबाद में भी प्रवचन में सम्मिलित होते थे। पेटलाद में आपकी कीर्ति अनिवारित भ्रमण करती है। पेटलाद आकर स्टेशन के समीप अत्यन्त रमणीय सुविशाल सेनेटरियम बँगले ( बगीचे ) में निवास निश्चित हुआ। मण्डलेश्वरजी का आगमन सुन दूर-दूर से जनता कथाश्रवण के लिये आती थी। मण्डली के भिक्षादि की व्यवस्था श्रीमान् सेठ रमणलालजी के ही ओर से होती थी। किसी प्रकार की भी असुविधा न होने पाती थी।

सेठ जी तथा अन्य भक्तों के प्रबन्ध से एक दिन सार्वजनिक सभा की आयोजना हुई। सभा-स्थान देशावर वाड़ी ( धर्म-शाला ) नियत हुआ। हजारों की संख्या में श्रोता उपस्थित थे। वेदान्त विषय का प्रवचन था। मण्डलेश्वरजी के प्रति वाक्योच्चारण पर प्रसन्नतासूचक करतल ध्वनि तथा जयकार उठता था। इतने जन-समूह में एकाग्रता का पूर्ण साम्राज्य दिखाई देता था। जनता पर अत्यंत अधिक प्रभाव पड़ा। फिर दूसरे दिन बँगले पर ही प्रवचन हुआ। इसी शुभ अवसर पर दीपमालिका का भी महोत्सव आया। दो ढाई सौ बत्तियों से श्री ओंकारेश्वर शङ्कर के सविधि पूजन के अनन्तर विशाल आरती की गई। जिसमें अधिक संख्या में नागरिक उपस्थित थे। इन क्रियाओं से समग्र नगर में धार्मिक भाव को उच्च कोटि पर पहुँचाते हुए महाराज मण्डलेश्वरजी चित्तौरगढ़ आये।

**चित्तौरगढ़**

यह भारतीयों के वीरता की स्मारक भूमि है। जिस प्रकार यहाँ प्रत्येक परमाणुओं में वीर रस का सञ्चार है, भक्ति रस के प्रवाह को भी कमी नहीं है। पहले भी श्री १०८ महाराज गोविन्दानन्दजी मण्डलेश्वरजी तथा स्वामी रामचैतन्यपुरी जी आदि मण्डली के साथ पधारे थे। यहाँकी जनता की भक्ति के विषय में वे जो कुछ बतलाते थे वर्तमान मण्डलेश्वरजी ने कहीं अधिक कोटि की भक्ति लोगों मे देखा।

प्रथम तो माननीय गोद्विजपालक सेठ लालचन्दजी ने अपने इष्ट मित्रों के साथ स्टेशन पर ही मण्डलेश्वरजीका स्वागत किया। निवास तथा कथा का स्थान नदी के तट पर बंगले पर निश्चित हुआ। प्रतिदिन वेदान्त-प्रवचन से जन अलभ्य लाभ प्राप्त करते थे। महन्त माधवगिरिजी महाराज तथा अन्य भक्त जनों ने भी उत्कट श्रद्धा का परिचय दिया। सेठ लालचन्दजी की सेवा तथा भक्ति तो अवर्णनीय थी। इस प्रकार

अपनी दिनचर्या करते हुए मण्डलेश्वरजी अजमेर आये। अजमेर आने का सम्पूर्ण व्यय तथा प्रवन्ध भक्तराज सेठ उदयलालजी ने किया था।

अजमेर पुष्कर

अजमेर में दौलत बाग के समीप स्वामी वसंतानंद के मठ में स्वागत स्वीकार कर मंडलेश्वरजी पुष्कर क्षेत्र गये। मार्ग में निर्झर-प्रवाह से अलंकृत पर्वतशिखर चित्त को मुग्ध कर लेते हैं। सन्ध्या समय पहुँचकर भगवान् ब्रह्माजी के स्थान में ठहरने का प्रबन्ध किया गया। ब्रह्मदेव की मूर्ति केवल पुष्कर क्षेत्र ही में है। रम्य सरोवर के पश्चिम तटपर सङ्गमरमर से बनाया गया है। सरोवर के पूर्व गायत्री उत्तर में सावित्री तथा दक्षिण में पातालेश्वर का मंदिर है। मन्दिर के अधिकारी श्री १०८ महंत विभूतिपुरीजी ने प्रेमपूर्ण समग्र व्यवस्था की। मण्डलेश्वरजी के साथ तो प्रायः ४० महात्मा रहते थे पर प्रत्येक भिक्षा में १५०–२०० सौ जन हो जाते थे। रामनाम के अढ़तिया अजमेर-निवासी पुलिस-पदाधिकारी पं० प्यारेलाल, बीकानेरनिवासी आशाबाईजी, तथा ब्रह्मानंदजी के शिष्य पुष्करदासजी ने भी उत्सव के सहित वस्त्रादि से महात्माओं की सेवा की। और पाठ योग्य पुस्तकें जैसे गीता आदि भी महात्माओं को दी गईं। वहाँ से फिर अजमेर आकर पं० रामप्रसाद गौड़ तथा स्वामी वसंतानंदजी का भोजन वस्त्र आदि सत्कार स्वीकारकर उदयपुर चले आये। स्वामी वसंतानंदजी तथा भक्त श्री रामचन्द्रजी ने अजमेर से यात्रा का सुचारु प्रवंध कर दिया था।

उदयपुर

मंडली के सहित जब मंडलेश्वरजी उदयपुर स्टेशन पर पहुँचे वहाँ ठाकुर जगन्नाथ सिंह मगरा हाकिम के द्वारा मोटरकार आदि का उचित प्रबन्ध था। श्रीमान् पन्नालालजी के बगीचे में निवासस्थान निश्चित हुआ। दूसरे दिन स्वामी नवलगिरिजी के स्थान धूनी को प्रस्थान किया। ४२ मील सवारी से आकर निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचे। यह स्थान अत्यन्त रम्य तथा महात्माओं के लिये सर्वथा अनुकूल है। पहुँचते ही सुलुम्बरनिवासी केशर बाई ने उत्कट श्रद्धा दिखाई। दूसरे दिवस सभी महात्माओं का भोजन, वस्त्र तथा भेंट से सत्कार किया। इसके अनन्तर मण्डलेश्वरजी सुलुम्बर स्टेट आये। यहाँ की बड़ी रानी आनंद कुँअर बा साहिबा अत्यन्त सत्सङ्गशील धार्मिक भाव परिपूर्ण हैं। आप बड़े उत्साह तथा समारोह के साथ जुलूस चारों तरफ घुमवाकर ठाकुरजी के मन्दिर में लाईं। स्तोत्र पाठ तथा आशीर्वादात्मक पद्यों से महात्माओं ने आकाश को स्वगुणसम्पन्न कर दिया। माहेश्वरी पञ्चायत तथा श्रीमान् सेठ प्रेमचंदजी ने भी सादर आमन्त्रित कर

उत्कट प्रेमसहित पूजनादि किया। इस समय साथ में प्राय: ५० महात्मा थे। सेठ पन्नालालजी भी इस शुभावसर को चरितार्थ किये। आपने भी यथाशक्ति भेंट पूजा की। अनेक नागरिक नर-नारियों की उपस्थिति में श्रीमती रानी साहिबा ने भी बड़े समारोह के साथ आरती पूजन किया। तथा भोजन वस्त्रादि से महात्माओं की सेवा किया। यहाँ पर वैश्यवर्य सेठ भण्डारीजी तथा गोवर्धनदासजी, श्रीमान् शोभाचंद देवीलाल कनठालिया, श्रीमान् ठाकुर रघुनाथसिंहजी, भक्त यशराज सोनी आदि महानुभावों ने यथोचित सत्कार द्वारा अपनी अपूर्व धार्मिकता का परिचय दिया। माननीय गोद्विजपालक श्रीमान् राय अनारसिंहजी ने भी अपनी धर्मवीरता तथा दानवीरता का परिचय दिया। यहाँ पर मंडलेश्वरजी मनोनिग्रह, सतीत्वपालन तथा ब्रह्मचर्यादि पर प्रवचन करते थे। सभी भक्तों के स्वागत को स्वीकार कर मंडलेश्वरजी पुनः धूनी आये। आते समय पं० भँवरलाल तथा श्रीअम्बाजी ने गद्गद कंठ से पुनरागमन की प्रार्थना की। मोती भारती तथा श्रीमान् ठाकुर लक्ष्मणसिंहजी ने सभी महात्माओं की उचित सेवा की। इन्हीं सेवकों में नाथूराम सोनी जो अत्यंत दीन थे मंडलेश्वरजी के पास आकर भिक्षा के लिये प्रार्थना किये। मंडलेश्वरजी ने धन्यवादसहित आपकी प्रार्थना को स्वीकार किया। शोभापुरी (अवधूता) ने भी सविधि पूजन कर सभी महात्माओं को भोजन कराकर भेंट भी किया। योगनिष्ठ तपोमूर्ति स्वामी नवलगिरिजी ने सर्व वस्तुसंपादन से उत्कट श्रद्धा का विशेष परिचय दिया। इन क्रियाओं के अनंतर महाराज मंडलेश्वरजी ने मोटरकार द्वारा जय समुद्र में आकर लोगों के जीवन को सार्थक बनाया।

**जय समुद्र**

यह स्थान प्राचीन तथा पर्वत मालाओं से घिरा हुआ है। श्रीराणा साहब का यह मुख्य आखेट-स्थान है। अतः उस अवसर पर आखेटोपयोगि साधन भी वहाँ चारों तरफ उपस्थित थे। मंडलेश्वरजी का शुभागमन सुनकर श्रीयुत राजकुमार महोदय अपने सहचरों के साथ दर्शनार्थ पधारे। मण्डलेश्वरजी की सदुक्तियों से प्रेमापन्न हो लौटकर सारा वृत्तांत राणा के सम्मुख उपस्थित किये। महाराज राणा उदयपुर की दानवीरता, धर्मप्राणता, तथा शूरता से कोई भी व्यक्ति अपरिचित न होंगे। आपका परिवार अपने प्राचीन धर्म के संरक्षण में अद्वितीय है। प्राचीन क्षत्रियत्व की झलक आप ही के दरवार में दृग्गोचर होती है। मण्डली के सभी लोगों का भोजनादि प्रबन्ध आपही की ओर से था। पौष कृष्ण

अमावास्या का क्षत्रिय-कुल-दिवाकर दानवीर राजाधिराज महाराज फतेहसिंहजी महोदय अपने अनेक जागीरदारों के साथ मण्डलेश्वरजी के दर्शनार्थ सन्ध्या समय पधारे। राणा साहब की वृत्ति से मण्डलेश्वरजी तथा मण्डलेश्वरजी के दर्शन से श्री राणा साहबजी परस्पर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए।

इन सब बातों के होते हुए भी महाराज राणा साहब की जीवहिंसा से मण्डलेश्वरजी के चित्त में अवश्य कुछ असन्तोष था। प्राय: घंटों तक आपस में धार्मिक चर्चा हुई। जब अन्त में महाराज राणा साहब ने कहा कि महाराज! मुझे किसी प्रकार की सेवाज्ञा से अनुगृहीत करें तो मण्डलेश्वरजी को अवसर मिला और राणा साहब से कहने लगे "सूर्यकुलदीपक! आपकी उत्कट धर्मनिष्ठा से मुझे अत्यन्त सन्तोष है। आपकी ओर से सारी सुविधा है ही। हम महात्माओं को अन्य सेवा की अपेक्षा ही क्या। फिर भी दानवीर आपसे भिक्षा तो अवश्य मागूँगा। वह भिक्षा इस प्रकार की है। आपकी सत्कुलोत्पत्ति तथा विशाल अधिकार श्रीमान् के सर्वोत्तम प्रारब्ध का अनुमायक है। क्रियमाण कर्म भी श्रीमान् के सर्वोच्च हैं। पर उसके साथ जीवहिंसा का अनुराग उस स्वच्छ क्रियमाण कर्म में काले दाग के समान है। यदि यही जीवहिंसानुराग अन्त तक स्थिर रहेगा तो "यं यं भावं स्मरन्वापि त्यजत्यन्ते कलेवरम्, तं तमाप्नोति कौन्तेय! सदा तद्भावभावित:"। यह परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्र की उक्ति चरितार्थ होगी। अत: इस वृद्धावस्था में अपने सच्चे सम्बन्धी ईश्वर का, जो मुक्तिपर्यन्त आपका साथी है, चिन्तन कीजिये। बाह्य विषयों में जीवन का दुरुपयोग करना ज्ञानियों का कर्तव्य नहीं है। सारे संसार में चिरकाल से आपकी यश पताका फहरा रही है। परलोक में भी इसी प्रकार पताका-स्फुरण होना चाहिये। केवल मुझे यही भिक्षा देने की कृपा कीजिये।

राणा साहब—"महाराज! प्रथम से ही इस विषय से मैं परावृत्त होने की अभिलाषा किया करता था। पर आज आपके सदुपदेशों ने सन्दीपन का कार्य कर दिया। आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।"

इन सब बातों के अनन्तर राणा साहब ने और कुछ दिन रहने का अनुरोध किया। पर अनेक कार्यों के कारण महाराज ने वहाँ से जाने का ही निश्चय किया। जब कि राणा साहब अपने निवासस्थान पर थे ब्रह्मचारी धर्मदत्तजी ने माङ्गलिक द्रव्य से थाली को सजाकर राणा साहब का धन्यवाद दिया तथा आशीर्वादात्मक वेदमन्त्रों के उच्चारण के साथ-साथ माला पहनाई

और लिखित आशीर्वादात्मक पत्र दिया। मण्डलेश्वरजी से दी हुई रुद्राक्ष-माला से भी आपके कण्ठ को सुसज्जित किया। विद्वद्वर्य स्वामी शङ्करानन्दजी ने भी प्रशंसक पद्य सुनाया।

दूसरे दिन अत्यन्त कृतार्थता प्रकट करते हुए राणा साहब ने अपने खजानची द्वारा ब्रह्मचारी धर्मदत्तजी के लिये ५०) रुपया तथा मण्डली के महात्माओं की सेवा में ६००) रुपया भेजकर और भी दीन-दुःखियों को दान दिलवाया। और मण्डलेश्वरजी के लिये उचित सत्कार तथा प्रयाण का साधन भेजकर पुनर्दर्शनार्थ अनुरोध किया। ठाकुर जगन्नाथ सिंह तथा मगरा हाकिम लालचन्दजी ने भी उचित सेवा की। फिर उदयपुर से चलकर महाराज अजमेर आये। स्वामी वसन्तानन्दजी की सेवा को स्वीकारकर पौष शुक्ल चतुर्थी को हरिद्वार पहुँचे।

**हरिद्वार**

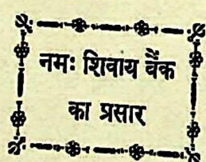
हरिद्वार में प्रथम से ही स्थानीय जनों को आपका आगमन ज्ञात था। अतः बड़े ही धूमधाम से लोग मण्डलेश्वरजी को स्वामी सूरतगिरि जी के बँगले पर लाये। वस्तुतः यह स्थान अत्यन्त रमणीय तथा एकान्तवासी महात्माओं के मनोनुकूल है। इसीलिये सर्वदा यहाँ पर कोई न कोई विरक्त तथा विद्वान् आया ही करते हैं। यहाँ पर प्रायः मण्डलेश्वरजी के आने पर अस्सी महात्मा निवास करने लगे। मण्डलेश्वरजी ने सभी महात्माओं के लिये निजी प्रबन्ध किया और किसी को किसी भी प्रकार की असुविधा न होने पाती थी। ब्रह्मचारी धर्मदत्तजी भी अपने नमः शिवाय बैंक के कार्य के अनन्तर सम्पूर्ण समय महात्माओं की ही सेवा में लगाते थे।

महाराज बालानन्दजी तथा स्वामी वसन्तानन्दजी आदि महात्मा भी उस समय उपस्थित हो भोजन वस्त्रादि से महात्माओं की सेवा में तत्परता दिखलाते थे। प्रतिदिन भजन, पूजन, अध्ययन, अध्यापन तथा प्रवचन से अपने समय का सदुपयोग करते हुए मण्डलेश्वरजी ने निवास किया। फिर वैशाख मास में कुम्भ का पर्व आ गया। ज्यों-ज्यों कुम्भ का पर्व समीप आता था साधु महात्मा भी अधिक संख्या में मण्डलेश्वरजी के पास आया करते थे, पर सभी आगन्तुकों के सत्कार में किसी प्रकार का वैषम्य न दिखाई देता था।

**हरिद्वार का कुम्भ**

महाराज मण्डलेश्वरजी के कुछ काल तक एक ही स्थान पर रह जाने के कारण सारी भक्तमण्डली इस बात से परिचित हो चुकी थी कि महाराज अवश्य कुम्भपर्व के अवसर पर हरिद्वार रहेंगे। अतः सभी

लोग अपने वित्त तथा श्रद्धा के अनुकूल सेवा करने की अभिलाषा प्रकट करते थे। इस बात को तो मैं पुनः पुनः लिख चुका हूँ कि मण्डलेश्वरजी सर्वदा निस्पृहता का ही अवलम्बन किया करते थे, पर साधु महात्मा तथा अतिथि जो आपके पास रहते थे तथा आया जाया करते थे उनकी सब प्रकार की सुविधा के लिये विशेष ध्यान रखते थे। अतः साधु महात्मा तथा भक्तगणों के रहने योग्य तथा भिक्षादि प्रबन्ध के लिये विशाल स्थान की आवश्यकता थी। मण्डलेश्वरजी का संकेत पाते ही भक्तगणों ने सहर्ष स्थानादि का प्रबन्ध कर दिया तथा अन्नसत्र भी प्रचलित हो गया। यों तो प्रथम से ही अन्नसत्र की व्यवस्था थी, पर इस अवसर पर सभी का अनिवारित प्रवेश होने के कारण सत्र को भी विशाल रूप दे दिया गया था। एक विशाल पण्डाल, जहाँ वैदुषीपूर्ण महात्मा तथा विद्वानों के प्रति दिन भाषण होते थे, पूज्यपाद श्रीमण्डलेश्वरजी का भी प्रति दिन प्रवचन होता रहता था। प्रवचन काल में अनेक सहस्र नर-नारियों का समुदाय एकत्र होता था। और सभी शान्तिपूर्वक उपदेश-श्रवण से अपनी कृतार्थता प्रकट करते हुए अपने जीवन को धन्य समझते थे। स्थान-स्थान पर यज्ञशालायें भी निर्मित थीं जहाँ प्रति दिन विशिष्ट वैदिक मन्त्रोच्चारण से शान्ति-साम्राज्य स्थापित कर रहे थे। मण्डलेश्वरजी की आज्ञा से कोई भी अतिथि अभ्यागत असत्कृत न जाने पाता था। मण्डलेश्वरजी के पास निजी कोई भी सम्पत्ति न थी, पर विशाल दानपरम्परा तथा यज्ञानुष्ठानादि कार्य आपके केवल तपोबल का फल था।


नमः शिवाय बैंक का प्रसार

अहमदाबाद में श्रीब्रह्मचारी धर्मदत्तजी के प्रयत्न से जिस बैंक की स्थापना हुई थी इस पर्व के अवसर पर उसका विशाल रूप दिखाई पड़ने लगा। ब्रह्मचारीजी अपने नित्यकर्म के अनन्तर अपना सारा समय इसी के प्रचार में दिया करते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि अमेरिका, अफ्रीका, लङ्का, ब्रह्मा, आदि देशों से भी धार्मिक जनों के लिखित मंत्र आने लगे। मण्डलेश्वरजी मंत्रलेख की महत्ता का उपदेश तो करते थे, पर कार्य की दुरूहता से आगे न बढ़े थे। इस समय इसके प्रचार की प्रगति देखकर आपको भी पूर्ण आशा हो गई कि अवश्य यह कार्य पारदर्शिता का अनुभव करेगा। अब आप इस पुण्यप्रद कार्य में पूर्ण मनोयोग देने लगे। इसका कारण यह भी उपस्थित हुआ कि अनेक भक्तों की इसी मंत्रलेखजनित पुण्य से मनःकामनायें भी पूर्ण हुईं। और वे ही भक्त मण्डलेश्वरजी को मनोयोग देने के लिये विशेष अनुरोध भी करने लग गये थे।

अब मण्डलेश्वरजी की भी मनोवृत्ति इस कार्य की पूर्णता की ओर अग्रसर हुई और भावि मण्डलेश्वर अपने शिष्यों के साथ इसका प्रचार करने लगे। यहाँ तक कि नमःशिवाय बैंक का झण्डा समग्र कुम्भ मेले में फहराने लगा और सभी प्रमुख महात्मा इस भव्य कार्य में स्वयं सहयोग देने लगे और स्वयं पताकोद्वहन करने लगे। प्रति दिन यह पारलौकिक शुभप्रद कार्य उन्नति करता गया। साथ-साथ लोगों की अभिलाषायें भी पूर्ण होती जाती थीं। ब्रह्मचारी धर्मदत्तजी के अदम्योत्साह वृक्ष की शाखायें सघन तथा हरीभरी दिखाई देने लगीं।

पेरिस, जर्मनी, इङ्गलैण्ड, आदि देशों से भी प्रचुर सङ्ख्या में लेख आने लगे। इस समय अरबों से अधिक संख्या में लेख उपस्थित हो गये। उस समय मन्त्रों का विराट् पूजन हुआ।




अहमदावाद निवासी धर्मवीर विप्रकुल दीपक वीरुभाई डायाभाई ने पूर्ण श्रद्धा के साथ महारुद्र याग करवा कर विशाल समष्टि भोज भी कराया। यज्ञान्त में मण्डलेश्वर जी की प्रेरणा से भगवान् शङ्कर का सहस्रघटाभिषेक भी हुआ।




इस अवसर पर ब्रह्मचारीधर्मदत्त जी महाराज,

एवं यः कुरुते मर्त्यः कोटिदीपप्रदीपनम्।
नरोवाप्यथवा नारी सोऽश्नुते पदमव्ययम्॥

इस स्कन्द पुराण के आधार पर गङ्गाजी की आरती करने का भी उपदेश किया करते थे। फल स्वरूप प्रायः अनेक नगरों से घृताभिषिक्त बत्तियों के पारसल आने लगे। और हर की पैड़ी पर ःढ़करोड़ बत्तियां जलाई गई। वह भी कार्य अभूतपूर्व था।

ब्रह्मकुण्ड हरकी पैड़ी पर शिवरात्रिसे चैत्र की पूर्णिमासी तक काशीस्थ ॐ नमः शिवाय बैंक (मन्त्र कोष) की तरफ से जगत् कल्याणार्थ श्रीगंगाजी की सायंकाल को प्रतिदिन तीन चार लाख फूलबत्ती तथा लम्बी बत्ती मिलाकर आरती की जाती थी। इस अपूर्व आरती को देखने के लिये ब्रह्मकुण्ड पर एक घण्टा पहले ही जनता की अपार भीड़ लग जाती थी—आरती के लिये बड़े बड़े दो दीपस्तम्भ तथा १०८ बत्ती की एक विशाल जर्मन सिलवर की आरती तथा जलमें छूटनेवाली छोटी छोटी पांच नौकायें जिसमें बत्तियां रख जलाकर रस्सा बांध कर जलमें छोड़ी जाती थीं, हजारों पड़ियां (दोने) में भी बत्तियां रखकर जलमें प्रवाहित की जाती थीं—

वेदपाठ, जप, पूजन, घंटानादध्वनि तथा जलाने वाले प्रबन्धक २३ आदमी रखे गये थे। गंगासभा के स्वयंसेवक तथा महानन्द मिशन के स्वयंसेवकों ने भी प्रतिदिन आरती के समय उपस्थित होकर भीड़ हटाकर सेवा का अच्छा लाभ उठाया था। ऐसी अद्वितीय विराट् आरती हरिद्वार में कभी नहीं हुई थी। प्रथम ॐ नमः शिवाय बैंकके कार्यकर्ताओं का एक करोड़ बत्तियां एकत्रित करने का विचार हुआ था। लेकिन श्रीगंगाजीकी प्रेरणा व महात्माओंके अशीर्वाद से करीब डेढ़ करोड़ से अधिक संख्या में अर्थात् करीब ४०० डब्बा घी की भीगी हुई बत्तियां एकत्रित हुई थीं। चैत्र की पूर्णमासी के बाद कुछ बची हुई बत्तियां हरकी पैड़ी, दक्षेश्वर श्रवणनाथ की हवेली, पतितपावनेश्वर आदि मन्दिरों में बांट दी गई थीं।

**संन्यासि संस्कृत कालेज का वार्षिकोत्सव**

इसी कुम्भ के अवसर पर काशीस्थ संन्यासि संस्कृत कालेज का वार्षिकोत्सव भी मनाया गया। यों तो कालेज के संरक्षक मण्डलेश्वर जी ही थे, पर आपने उस समय तीनहजार रुपये की सहायता की। और भी अनेक धार्मिकजनों ने इस शुभ कार्य में भाग लिया।

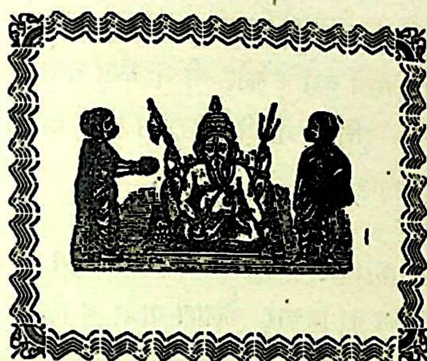
स्थानीय ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम का वार्षिकोत्सव भी मण्डलेश्वर जी के ही सभापतित्व में हुआ। जिसमें आपका प्रभावशाली व्याख्यान भी हुआ। मण्डलेश्वर जी ने कई वार समष्टि भण्डारा भी करवाया कुल समष्टि में बीस हजार साधु-महात्मा तथा ब्राह्मण सम्मिलित हुए थे।

यद्यपि कुम्भ ऐसे शुभावसर पर अनेक सम्पत्तिशाली जन आते हैं पर मण्डलेश्वर जी के सत्कृत्यकलाप ने सभी लोगों को आश्चर्यान्वित कर दिया। इस प्रकार आदर्शभूत कार्यों से कुम्भ पर्व केसमय को सुचारु रूप से विताया। और सर्वदा के लिये हरिद्वार में अपनी कीर्ति को उदाहरणार्थ छोड़कर आगे का कार्यक्रम सोचने लगे।



# अष्टम परिच्छेद

## मङ्गलमूर्ति श्री गणेश जी



**कार्याब्धिपारप्राप्त्यर्थं दृढपोतं स्मराम्यहम्।**
**हेरम्बचरणाम्भोजं विघ्नौघविनिवारणम्॥**

**बद्रीनारायण की यात्रा**

कुम्भ के अवसर पर लोकोत्तर कर्मों की समाप्ति में मण्डलेश्वरजी का विचार बद्रीनारायण तथा कैलाश-यात्रा का हुआ। आपने उपस्थित सभी महात्माओं को इस वृत्त से अवगत कर दिया और इच्छानुसार सभी को यात्रा के लिये भी अनुमति दी। प्रायः साढ़े तीन सौ महात्मा, ब्रह्मचारी तथा सेवक चलने के लिये प्रस्तुत हुए। यात्रोपयोगी सभी सामग्रियाँ सम्पादित हुईं। मण्डली के साथ श्री मण्डलेश्वरजी, स्वगणयुक्त मानो शंकरजी श्रेयस्कर कार्यों का सम्पादन कर कैलाशगमनोन्मुख हुए।

हृषीकेश होते हुए मण्डलेश्वरजी जब आगे को बढ़े तो और भी महात्मा साथ हो लिये। कारण इस यात्रा की प्रसिद्धि बहुत दूर-दूर तक प्रसृत हो चुकी थी। पर मण्डलेश्वरजी के आज्ञानुसार इस प्रकार की सुव्यवस्था थी कि जनसंख्या की अधिकता ने किसी प्रकार की बाधा न पहुँचाई। मार्ग में जहाँ निवासस्थान पड़ता था महात्माओं के स्तोत्र-पाठ तथा वेद-ध्वनि से प्रतीत होता था कि मानो साङ्गवेद भगवान् ही यात्रा कर रहे हों। निवासस्थानों पर एक नवीन ग्राम-सा बस जाता था। मार्ग में किसी की भी आवश्यकता में किसी भी प्रकार की त्रुटि न होने पाती थी। मार्ग में दीन दुःखियों को अन्न वस्त्र की पर्याप्त सहायता भी होती रहती थी।

इस प्रकार बड़ी ही धूमधाम के साथ मण्डलेश्वरजी श्रीबदरीनारायण पहुँचे। मण्डलेश्वरजी प्रथम भी यहाँ आ चुके थे। पर उस समय एकाकी थे। फिर कुछ

पण्डे पुजारी तो मण्डलेश्वरजी को स्वरूपतः भी पहचान लिये। मण्डलेश्वरजी वदरिकाश्रम में निवास तथा सारी व्यवस्था को स्थिरकर विशाल समारोह के साथ भगवान् का पूजन किये। अपनी पूर्व यात्रा में की हुई प्रतिज्ञा के अनुसार पण्डे पुजारियों के मनोरथ को भी परिपूर्ण किया। यहाँ पर मण्डलेश्वरजी की ओर से दो समष्टि भोज भी हुआ जिसमें वहाँ के कोई भी महात्मा तथा ब्राह्मण असम्मिलित न थे। सभी को भोजनान्तर दक्षिणा भी दी गई। इस तरह अपूर्व कार्य से मण्डलेश्वर जी सभी के धन्यवाद-पात्र हुए।

**कैलाश-यात्रा**

बदरीनारायण के पूजन तथा अन्य शुभ कृत्यों के अनन्तर मण्डलेश्वजी का विचार कैलाश-यात्रा के लिये हुआ। कैलाश-यात्रा सभी लोगों के लिये सुगम नहीं हैं। हिमाधिक्य होने के कारण यात्री वदरिकाश्रम से ही लौट आते हैं। और मार्ग में कोई उपयोगी वस्तु भी सुलभ नहीं होती। मार्ग भी परिष्कृत नहीं है। इतना होते हुए भी मण्डलेश्वरजी वहाँ जाने का निश्चय किये।

कैलाश-यात्रा में साधारण जनों के लिये बहुत-सी आवश्यक वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है जिनमें से कुछ का उल्लेख किया जा रहा है। अच्छे गरम ऊनी कपड़े, मजबूत जूता, परिपुष्ट डण्डा, छाता, बर्फानी चश्मा, कुछ आवश्यक औषधियाँ, छोलदारी, आग की फुकनी, इत्यादि। इन वस्तुओं की आवश्यकता रहने पर भी मण्डलेश्वरजी केवल सर्वदा की भाँति ही नेपथ्य से अलंकृत थे। कारण, ये साधन साधारण जनों के लिये हैं। योगनिष्ठ जनों के लिये तो योग ही सर्वश्रेष्ठ साधन सर्वदा समीपस्थ रहता है। लोगों ने आग्रह भी किया पर मण्डलेश्वरजी ने स्वीकार न किया।

मण्डलेश्वरजी ने चलते समय सभी महात्माओं तथा अन्य भी सहवर्ती जनों से यात्रा की सूचना दे दी, पर उस यात्रा में पूर्ण सहिष्णुता की आवश्यकता थी। अतः बहुत से यात्री तो वहीं से लौट आये। अब मण्डली में बहुत कम व्यक्ति अवशिष्ट रह गये थे जिनका नामोल्लेख किया जा रहा है। (१) श्रीमान् पूज्यपाद १०८ निर्वाणपीठाधिपति मण्डलेश्वरजी महाराज, (२) वासुकि ब्रह्मचारी नेपालवाले फलाहारी, (३) श्रीस्वामी रामचैतन्य पुरीजी कुठारी काशी, (४) श्रीस्वामी नारायण भारतीजी उपकुठारी निर्वाणी अखाड़ा, (५) श्रीस्वामी महानन्दजी, (६) श्रीस्वामी विश्वेश्वरानन्दजी विरक्त, (७) श्रीस्वामी तीर्थगिरिजी, (८) श्रीस्वामी

कृष्णानन्दजी पर्वतीय, ( ९ ) श्रीस्वामी रत्नानन्दजी काशी, ( १० ) श्रीस्वामी स्वरूपानन्दजी, ( ११ ) श्रीस्वामी गिरीशानन्दजी नेपाली ( १२ ) श्रीस्वामी विश्वनाथपुरी जी निर्वाणी अखाड़ा ( १३ ) श्रीस्वामी शुकदेव गिरिजी पर्वतीय, ( १४ ) श्रीब्रह्मचारी धर्मदत्तजी इन्द्रप्रस्थीय, ( १५ ) ब्रह्मचारी शिवचैतन्यजी प्राक्प्रान्तीय ( १६ ) सेवक रामप्रसादजी कलकत्ता, ( १७ ) श्रीडूगरसिंहजी ( १८ ) श्रीपरशुरामजी पर्वतीय, ५ वैरागी महात्मा, ५ कुली, ताकलाकोट से बाबा मुक्तिगिरिजी और दो व्यक्तियों के साथ मण्डलीमें सम्मिलित हुए। इस प्रकार यात्रा में ३१ व्यक्ति थे।

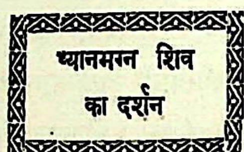
मार्ग में जल तथा काष्ठ की अत्यन्त असुविधा पड़ती है, पर मण्डली में इन वस्तुओं की कभी भी कमी न पड़ी। प्रायः कैलाश-यात्रा में लोग सत्तू तथा चाय से ही निर्वाह करते हैं, पर मण्डली में प्रति दिन भोजन सुचारु रूप से बनने की व्यवस्था थी। इस यात्रा में मार्ग की विषमता तो पद-पद पर है। यात्रियों को कभी भ्रम भी हो जाता है पर मण्डलेश्वरजी ने जिस मार्ग का समाश्रयण कर अपनी यात्रा पूर्ण की थी उस मार्ग का भी निर्देश किया जा रहा है।

## श्रीबदरिकाश्रम से कैलाश तथा पुण्यागिरि तक पड़ावों की नामावली

माणागाँव, बलवान, घस्तौली, चमरौल, तारै, कलपोती, चोसनाला, सयांकरा, पारखी, थुलीमठ, डागला, छायामण्डी, ग्यूगलनदी, सवन, शिवचिलिंग, मानाथांगा, ज्ञानमण्डी, रात्ताद्यू, जितडांगडोंग, कैलाशलेण्डीगोनवा, डेरफूगोनवा, जुमलफूगोनवा, मानसरोवर, राक्षसतालाब, गौरीगुफा, ताकलाकोट, पालागुफा कालापानी, गर्बियान, बुद्धि, रन्मगुपोगुफा, विष्णुगिरिगुफा, शंखुलागाँव, शिरखागाँव, शोसागाँव, पांगुगाँव, तपोवन, धारचुला, बलवाकोट, अस्कोटस्टेट, हंसेश्वरमहादेव, हंसेश्वरदिगरा गाँव, सत्तूगढ़गाँव, चण्डिकेश्वरमहादेव, मन्नूगाँव, छीणागाँव, लोहाघाट चम्फावल, कुकड़ौनी, शेरा, पुण्यागिरि।

इन सभी पड़ावों में यात्रियों को प्रायः सुविधा मिलती जाती है। कहीं कहीं जो असुविधा भी पड़ती है वह अनिवार्य है। उसके लिये पूर्व पड़ाव से ही सामान ले जाते हैं।

मंडलेश्वर जी सभी पड़ावों पर सभी दीन दुःखी तथा उन यात्रियों जिनका सामान समाप्त हो चुका था, सभी की व्यवस्था करके फिर भिक्षा करते थे।


ध्यानमग्न शिव का दर्शन

जिस समय मंडलेश्वरजी कैलाश पहुँचे और सभी लोगों का निवास स्थिर हो गया, अकेले पर्वत श्रेणियों का रम्य दृश्य देखने के लिये निकले। कुछ ही दूर पर आपको एक विरक्त महात्मा मिले। उन्होंने मंडलेश्वरजी से कुछ और आगे बढ़ने का संकेत किया। मंडलेश्वरजी उनके साथ हो लिये। कुछ ही दूर जाने पर वे महात्मा एक गुफा में प्रविष्ट होने लगे और मंडलेश्वरजी को भी प्रविष्ट होने का संकेत किया। गुफा अत्यन्त रमणीय तथा विशाल थी। दोनों महात्मा उस गुफा में जब घुस गये तो मण्डलेश्वरजी ने देखा कि अलौकिक तेज से पूरित विशालकाय साक्षात् तपोमूर्ति व्यक्ति ध्यानमग्न है। मंडलेश्वरजी की आँखें तो प्रथम दर्शन में चकाचौंध में पड़ गईं। फिर कुछ ही क्षण में उनके सामने वह दिव्य मूर्ति स्पष्ट दिखाई पड़ने लगी। मंडलेश्वरजी यद्यपि आकृष्ट हो कुछ समय तक वहाँ रुकना चाहे, पर साथ आनेवाले महात्मा आपको गुफा द्वार तक पहुँचाकर मार्ग का निर्देश कर स्वयं भीतर चले गये। मंडलेश्वरजी इस आश्चर्यपूर्ण घटना से अत्यन्त चकित हुए और अपने निवास स्थान पर चले आये। ये थे भगवान् ध्यानमग्न लोकशङ्कर शङ्कर।

यद्यपि मार्ग की विषमता, शीत वात वर्षा के प्राबल्य से लोगों को कठिन परिश्रम का सामना करना पड़ा, पर जिस क्षण दूर से ही कैलाश शिखर का दर्शन हुआ उसके अनुपम सौन्दर्य से मण्डली के लोगों के नेत्र तथा हृदय विकसित हो गये। उनका सम्पूर्ण परिश्रम सफल हो गया तथा अवशिष्ट मार्ग को सोत्साह तथा सुखानुभवपूर्वक समाप्त किया। ठीक है "उपेय माधुर्य मधैर्यसर्जि" अभीष्ट प्राप्ति अपने साधन सम्पादन के लिये साधक को अधीर बना देती है।

इसके पूर्व तो सभी लोग कैलाश के स्वरूप तथा सौन्दर्य का अनुमान ही करते थे, पर उस समय त्रिशूल स्वरूप सुरम्य अत्युच्च उस कैलाश-शिखर के दर्शन से ग्रन्थकारों के वर्णन में अत्युक्ति का भ्रम न रह गया। कैलाश समुद्र तटसे ३०००० हजार फुट अधिक ऊँचाई पर है। इसके चारों ओर भगवान् शंकर के करुणा-प्रवाह की भाँति झरने गिरते हुए नेत्र को आकृष्ट कर लेते हैं। मध्य में २ मील ऊँचा २५ मील गोलाकार दृश्यतम हिमाच्छन्न लिंगाकार शिखर है। इस शिखर के चारों ओर गोनवे ( मन्दिर ) लाम्बा गुरु ( पुजारी ) और देव मूर्तियाँ हैं। यहाँ दीपोत्सव अधिक मनाया जाता है। मण्डलेश्वरजी प्रत्येक देव स्थानों में जाकर पूजन अभिषेक, दीपदान आदि किया करते थे प्रत्येक मन्दिरों में पुजारियों को अन्न वस्त्र तथा द्रव्य भी दिलाया करते थे। इन्हीं कारणों से सन्तुष्ट हो वे पुजारी अन्य मन्दिरों में स्वयं

पहुँचा दिया करते थे। पूजन-सामग्री की भी स्वयं व्यवस्था कर दिया करते थे। इस प्रकार वहाँ के समग्र रम्य स्थानों का दर्शन कर मण्डली आगे चली थी।

**मानस सरोवर**

इस यात्रा में मानस सरोवर भी दर्शनीय वस्तु है। यद्यपि मार्ग में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, पर जिसके दर्शनार्थ देवगण भी सर्वदा लालायित रहते हैं। उस दर्शनसुख के समक्ष मार्ग की कठिनाई अकिञ्चित्कर है। यह वही मानस सरोवर है जिसकी प्रशंसा शास्त्रकारों ने पद-पदपर की है तथा विदेशियों ने भी मुक्तकण्ठ इसकी प्रशंसा की है। यूरोप, चीन, जापान, तथा भारत के धुरन्धर विद्वानों ने स्वयं जिसकी अपूर्व नैसर्गिक शोभा का प्रत्यक्ष कर अपने को कृतार्थ समझा है तथा पत्र-पत्रिकाओं में इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा भी की गई है।

यह सरोवर स्वच्छजलपूरित ११ मील चौड़ा तथा २५ मील लम्बा सुना जाता है। अनेक पर्वतीय नदियाँ सवेग इसमें गिरकर मानों इसका अभिनन्दन करती हैं। सतलज आदि अनेक नदियाँ इसी सरोवर से निकलकर भारतभूमि को अलङ्कृत करतीं हैं। सरोवर के तटपर चित्र विचित्र हंसादि पक्षिगण कलरव द्वारा कृतार्थता प्रकट करते हुए इसकी शोभा को अलौकिक बनाते हैं। सरोवर बहुत ही अगाध है। स्थानीय जन इसकी परिधि सत्तर मील की बतलाते हैं, पर अंग्रेजी के लेखकों ने ४५ मील ही लिखी है। इसके चारों ओर पर्वत श्रेणियाँ इसकी रक्षा करती हैं। पूर्वीतट पर नील पर्वतपरम्परा मानों इसकी अनुपम शोभा निरीक्षण करने के लिये शिर उठाये रहती है। उत्तर में त्रिशूलाकार कैलाश दृग्गोचर होता है। ऐसे अदृष्टपूर्व रम्य सरोवर की अपूर्व छटा का सप्रेम निरीक्षणकर लोगों ने दृष्टि को सफल समझा। सभी लोग स्नान से निवृत हो अपने जीवन को कृतकृत्य समझे। तदनन्तर पास में ही मन्दिर में जाकर मण्डलेश्वरजी ने सविधि पूजन किया। सभी महात्माओं ने स्तोत्र पाठ किया। यहाँ पर एक विचित्र घटना यह दिखाई पड़ती है कि विना मेघदर्शन के ही जल वृष्टि हुआ करती है।

कैलाश-यात्रा में श्री मण्डलेश्वरजी अधिकांशमौनी तथा फलाहारी रहते थे। इसी प्रकार लोगों की सत्कर्मप्रवृत्तिकामना से निर्विघ्नतापूर्ण यात्रा करते हुए मण्डलेश्वरजी टणकपुर पीलीभीत, लखनऊँ होते हुए कार्तिक कृष्ण प्रतिपत् को काशीजी आ गये। स्थानीय साधु महात्मा तथा अन्य भक्तजनों ने मार्ग ही में स्वागत किया और बड़े धूमधाम से गोविन्दमठ में लाये गये।

काशीजी में आने पर यद्यपि दूरवर्ती भक्तजन पुनः पुनः मण्डलेश्वरजी को बुलाने आते थे, पर यहाँ की भक्तमण्डली का अनुरोध था कि कुछ काल तक महाराज यहीं अपने सदुपदेशों से भक्तों को अनुगृहीत करें। मण्डलेश्वरजी ने काशी में निवास करते हुए अनेक वैदिकों से भगवान् शङ्कर के मन्दिर में रुद्राभिषेक करवाया। विद्वानों का सत्कार, समष्टि भ-डारा, यज्ञ-पूजन तो आपके साथ ही साथ यात्रा करते थे; पर काशीजी में आपने विशेष रूपसे इन कार्यों को अवसर दिया। शास्त्रावलोकन, अध्यापन तथा उपदेश तो आपका स्वाभाविक कृत्य था। आपके आगमन से पूर्व की भाँति फिर भी भक्तमंडली का प्रतिदिन यातायात प्रारम्भ हो गया।

**संन्यासी संस्कृत कालेज का महोत्सव**

कुछ दिन काशीजी में निवास करने पर ही संन्यासि संस्कृत कालेज का महोत्सव काल आ गया। कालेज का कार्य चन्दे पर था और सब प्रकार की संरक्षकता का भार मण्डलेश्वरजी पर ही निर्भर था। मण्डलेश्वरजी के सभापतित्व में महोत्सव मनाया गया। काशीके अनेक अग्रगण्य विद्वानों ने कालेज की अग्रेसरता पर अनेक धन्यवाद भी दिया। मण्डलेश्वरजी का भी भाषण हुआ जिससे कालेज के अध्यापक छात्र तथा अन्य कर्मचारियों को नितान्त सन्तोष हुआ। अन्त में सम्मान पूर्वक निमन्त्रित जन विदा किये गये।

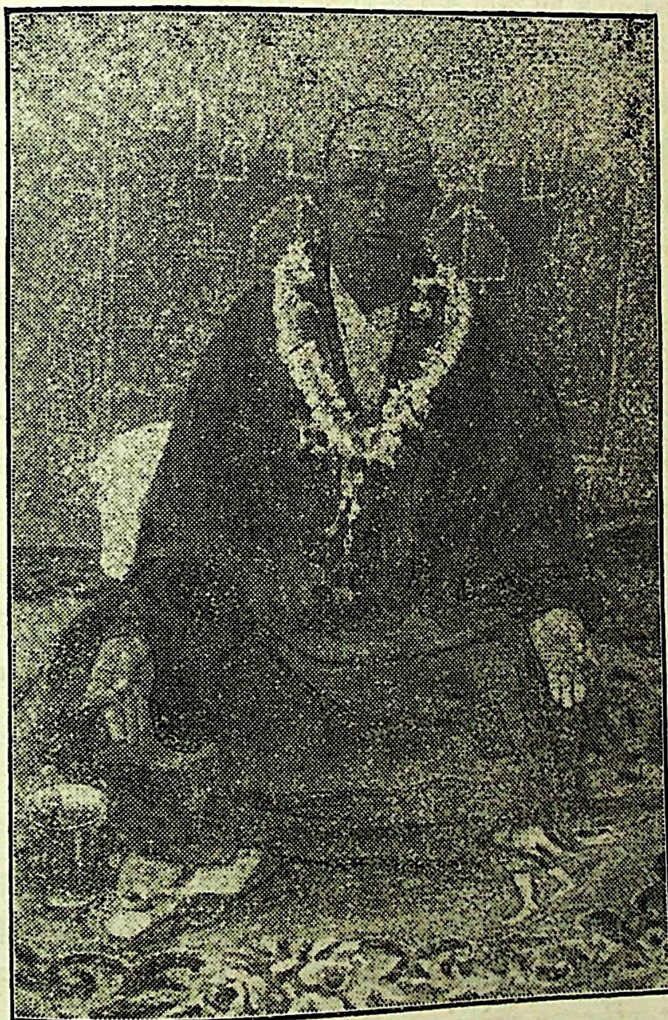
जिस समय संन्यासी संस्कृत कालेज का महोत्सव दिवस स्थिर किया गया उस समय वकुलहर मठाधिपति पूज्यपाद तपोनिष्ठ धार्मिक शिरोमणि १०८ स्वामी हरिहरानन्दजी महाराज भी निमन्त्रित थे। आप पाठशालेके एक गण्य संरक्षकों में हैं आपकी ओर से विद्यालय को नियमतः वार्षिक सहायता मिलती है। केवल सहायता ही नहीं मैं तो समझता हूं कि इस विद्यालय को आप निजी विद्यालय समझते हैं यहाँ के अध्यापकों पर भी आपका अपूर्व ममत्व रहता है। जिसका अनुभव मुझे स्वयं है। आपको देखकर मुझे उस पद्य की चरितार्थता प्रतीत होती है, जिसे किसी कविने कहा है—

दानं वित्तादृतं वाचः कीर्तिधर्मौ तथायुषः।
परोपकरणं कायादसारात्सार माहरेत ॥

बुद्धिमानों का कर्तव्य है कि 'असार धन से सार दान निकाल लें तथा वाणी से सत्यता, आयु से यश तथा धर्म, शरीर से परोपकार ले लेना चाहिये। आप बड़े ही धर्मात्मा तथा विरक्त संन्यासी हैं अनेक धार्मिक कार्यों का सञ्चालन तथा संरक्षण का भार आपने प्रेमपूर्वक स्वीकार किया है। आपने प्रथम वकुलहर में ही

संन्यासी संस्कृत कालेज की एक शाखा खोली थी जो इस समय स्वतन्त्र रूप धारण कर ली है। राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक कार्यों में आप पूर्ण मनोवृत्ति तथा सहयोग देते हैं। पर पद्मपत्र की भाँति निर्लेप रहकर पूर्ण वैराग्य का भी परिचय देते हैं। आप ही ऐसे महात्मा इस लोक तथा परलोक में आत्मश्रेय के भागी होते हैं।

बकुलहरमठाधिपति पूज्यपाद तपोनिष्ठ धार्मिकशिरोमणि
श्री १०८ स्वामी हरिहरानन्दजी महाराज



इस प्रकार कुछ काल काशी में समय का सदुपयोग करते हुए महाराज मंड-

लेश्वरजी निवास किये। जब चतुर्मास का समय आनेवाला था कि अनेक स्थलों से मण्डलेश्वरजी के पास तत्तत्स्थानों में जाने के लिये अनेक निमन्त्रण पत्र आने लगे।

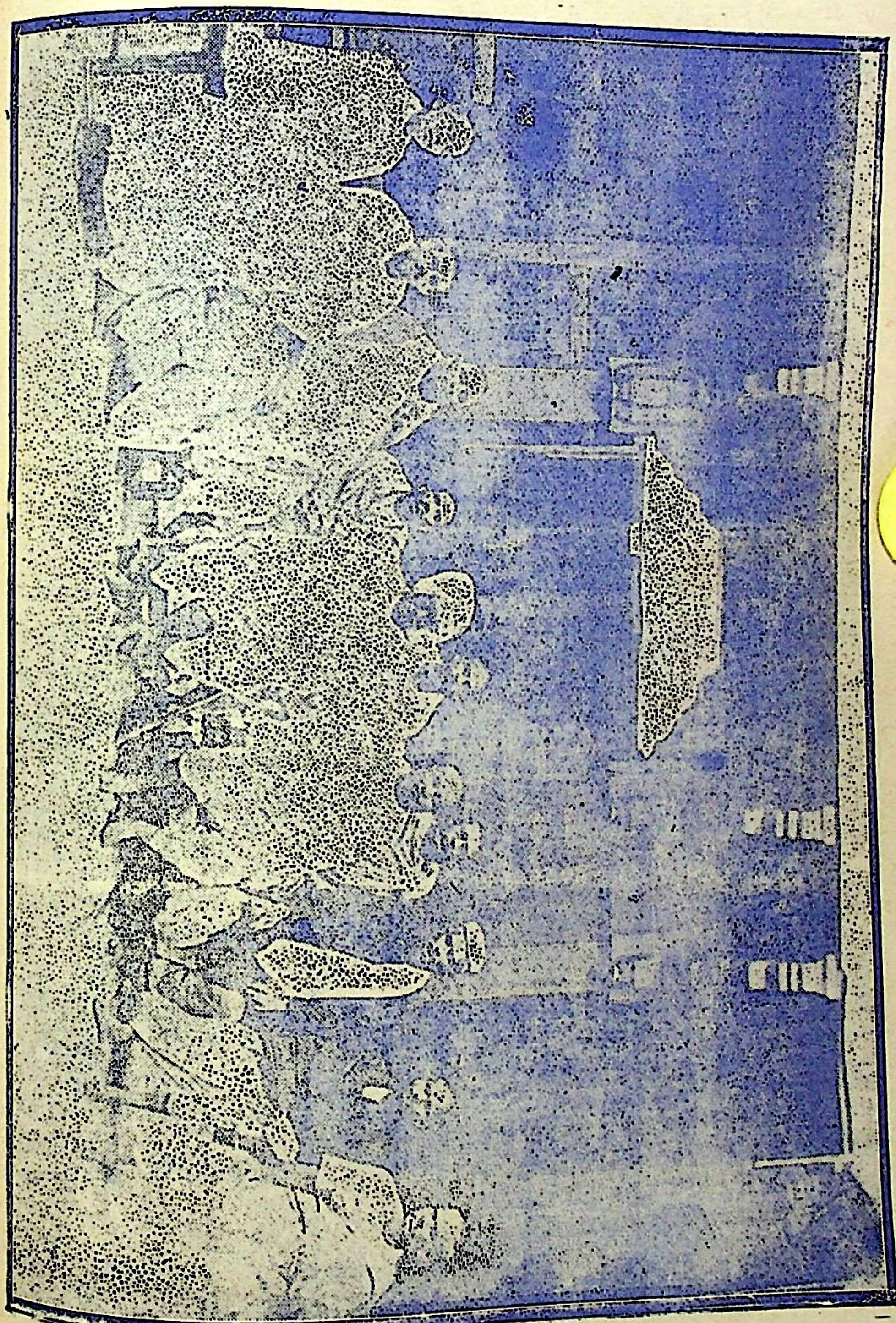
**फर्रुखाबाद का चतुर्मास**

फर्रुखाबाद निवासियों की उत्कट अभिलाषा देखकर आपने वहीं चतुर्मास व्यतीत करने का विचार किया और मण्डली के सहित फर्रुखाबाद पधारे। स्थानीय जनता चन्द्रिका-पिपासु चातक की भाँति प्रवचनामृत पान करने के लिये अत्यन्त उत्सुक थी। मण्डलेश्वरजी के गमन से लोगों ने अत्यन्त उत्सव मनाया। सभामण्डप आदि की उचित व्यवस्था भी हो गई। अनेक बार आने जाने के कारण परिचित नागरिक तथा ग्राम्य जनता भी अधिक संख्या में प्रवचन सुनने के लिये आया करती थी। प्रायः प्रति दिन चार हजार जिज्ञासुओं की उपस्थिति होती थी। चतुर्मास के अनन्तर मण्डलेश्वरजी के पास काशीजी से पुनः पुनः आगमन के लिये अनुरोध होने लगा। फर्रुखाबाद से काशीजी आने के अनन्तर आवश्यक कार्य ने मण्डलेश्वरजी को पञ्जाब जाने को विवश किया। फिर आप पञ्जाब जाने के लिये प्रस्तुत हो गये।

**पञ्जाब में धर्मप्रचार**

अनेक महात्मा तथा ब्रह्मचारियों के सहित मण्डलेश्वरजी लुधियाना गये वहाँ पर श्री १०८ स्वामी त्रिवेणीपुरीजी महाराज तथा उनके शिष्य श्री हरिपुरीजी आदि महात्माओं ने अत्यन्त समारोह के साथ महाराज का स्वागत किया। कुछ ही काल तक वहाँ निवास तथा धर्मप्रचार कर आप फरीदकोट चले गये। फरीदकोट में श्री १०८ स्वामी विवेकानन्दजी महाराज ने बड़ी तत्परता के साथ मण्डलेश्वरजी का स्वागत तथा सत्कार किया। तथा मंडलेश्वरजी के साथ-साथ धर्मप्रचार में भी पूर्ण मनोयोग दिया। अल्प काल में ही धर्मप्रचार में पूर्ण साफल्य प्राप्त कर श्री १०८ स्वामी नारायण गिरिजी महाराज तथा श्री १०८ स्वामी कृष्णानन्दजी महाराज के अनुरोध से आप हँडाया पधारे। उपर्युक्त महात्माओं ने मण्डलेश्वरजी के समान ही मण्डली के महात्माओं में भी पूर्ण अनुराग दिखलाया। तथा सब प्रकार की सुविधा के लिये भी पूर्ण तत्परता दिखलाई। हँडाया-निवास के समय में ही धर्ममूर्ति श्री ईश्वर देवीजी ने लाहौर ले जाने का विचार किया। आपके विशेषानुराग तथा आग्रह के कारण मण्डलेश्वरजी लाहौर आये और समाधियों के एक प्रधान विशाल स्थान में निवास करते हुए डेढ़ मास प्रवचन तथा धार्मिककृत्य करते रहे। यहाँ भी श्रद्धावान् जनों की संख्या अधिक मात्रा में है। जो प्रतिदिन प्रवचन में स्वयं आते थे तथा अपने इष्ट-मित्र और पारिवारिक जनों को भी लाते थे।

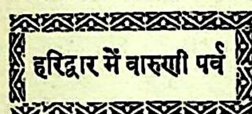
## श्री संन्यासी संस्कृत कालेज, अपारनाथ मठ, बनारस



सन् १९४४ में उपस्थित संचालक- प्रिंसिपल हरिहर कृपालु जी, प्रधानाध्यापक बालबोध मिश्र जी, पं० ज्वाला प्रसाद जी, पं० चन्द्रभाल जी, पं० सीताराम जी, पं० महादेवोपाध्याय जी, पं० ब्रह्म-

जिस समय मण्डलेश्वरजी लाहोर में धर्मप्रचारकार्य में पूर्ण साफल्य प्राप्त कर रहे थे धार्मिक अमृतसर-निवासी श्रीमान् सेठ कोटूमलजी ने अमृतसर पधारने के लिये विशेष आग्रह किया। सभी मण्डली की यथोचित व्यवस्थाकर आप अमृतसर लाये। घी मण्डी में मण्डलेश्वरजी के लिये उचित स्थान समझा गया। प्रायः डेढ़ मास तक मण्डलेश्वरजी का प्रवचन होता रहा। अनेक महानुभाव जो अन्य धर्मों में प्रेम रखने वाले थे मण्डलेश्वरजी की सूक्तिसुधा से अभिषिक्त हो कट्टर सनातन धर्म के अनुयायी तथा स्वयं सनातन धर्म के प्रचारक हो गये।

इसी यात्रा में सूर्यग्रहण के अवसर पर मण्डलेश्वरजी मण्डली के सहित कुरुक्षेत्र में पधारे थे। और वहाँ पर भी अद्भुत धर्मप्रचार हुआ था। जिस स्थान पर महाराज मण्डलेश्वरजी एक बार भी चरणार्पण कर देते थे चिरकाल के लिये वहाँ धर्म विरुढ़मूल सा हो जाता था। इस प्रकार पञ्जाब के प्रमुख स्थानों में सद्धर्म के प्रचार को कार्यान्वित करते हुए महाराज मण्डलेश्वरजी हरिद्वार आये।


हरिद्वार में वारुणी पर्व

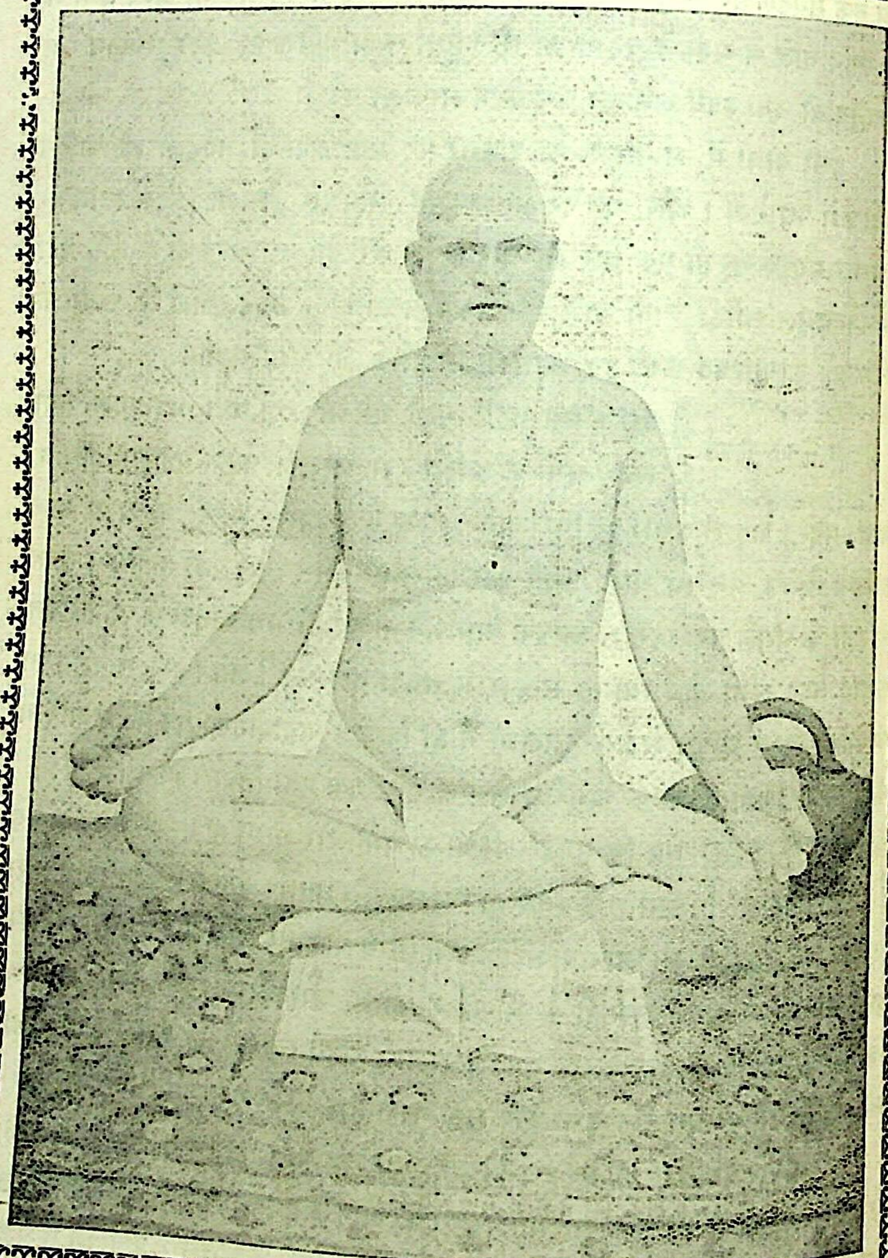
इस समय महावारुणी पर्व आ रहा था। महात्माओं तथा सद्गृहस्थों के अनुरोध से मण्डली सहित महाराज हरिद्वार आये। महन्त महाराज श्री १०८ गिरीशानन्दजीका भी हरिद्वारमें मण्डलेश्वरजी के आने के लिये विशेष अनुरोध था। इन्हीं कारणों से तथा सुसमय देखकर महाराज सूरत गिरिजी के बंगले पर ठहरे। आपके आगमन के पूर्व ही भक्त जनता में अपरिमित उत्साह था। सभी लोग स्वागत सत्कार में सर्वदा तत्पर रहने लगे। हरिद्वार आने का व्ययादि प्रबन्ध श्रीयुत सेठ कोटूमलजी ने ही किया। महावारुणी पर्व की समाप्ति में भी मण्डलेश्वरजी लोगों के अनुरोध से एक मास तक वहीं निवास किये।


वीकानेर

जब कि मण्डलेश्वरजी का धर्मप्रचार भारत के प्रत्येक अंशों में बड़े उत्साह के साथ हो रहा था और धार्मिकजनों में एक नवीन आवेश सा आ गया था कि उसी समय वीकानेर निवासी श्रीमान् विश्वेश्वर दास दमाणी ने मण्डलेश्वरजी से वीकानेर को भी चरणपराग से पूत करने के लिये विशेष आग्रह किया। भक्तवत्सल मण्डलेश्वरजी ने सहर्ष स्वीकार कर वीकानेर की यात्रा की। यहाँ पर श्रीमान् सेठ डूँगरदास राठी के बगीचे में निवासस्थान निश्चित हुआ।

मण्डलेश्वरजी के आकर्षक धर्मप्रचार ने यहाँ भी विस्तृत क्षेत्र बना लिया था। इसका प्रभाव दरवार में भी पड़ चुका था। अतः दरवार की ओर से मण्डली के सहित मण्डलेश्वरजी का यथोचित स्वागत तथा सत्कार हुआ। दरवार की श्रद्धा के अनुसार प्रजाओं में श्रद्धा का होना अनिवार्य ही है। अतः पूर्ण रूप से सभी लोग महाराज के अनुयायी हो गये।

## श्री १०८ स्वामी शङ्करभारतीजी के गुरु, बीकानेर-धनीनाथ-पञ्चमन्दिर के अधिष्ठाता हिज़ होलीनेस श्री १०८ महन्त नारायण भारतीजी महाराज





पूज्य मण्डलेश्वरजी के शुभागमन से महन्त महाराज नारायण भारतीजी

तथा आपके सच्छिष्य श्री स्वामी शङ्करभारतीजी ने बड़ी ही प्रसन्नता प्रकट की। आप काशीस्थ संन्यासी संस्कृत कालेज तथा विश्वनाथ पत्रके संरक्षकों में हैं। धार्मिक कार्यों में आप का पूर्ण मनोयोग रहा करता है। आपने मण्डली के महात्माओं का यथोचित सत्कार तथा सब प्रकार की सुविधा भी कर दी थी।

यहाँ पर एक राजगुरु का स्थान है जो शिव बाड़ी नामसे प्रसिद्ध है। उस समय उस स्थान के प्रधान अधिष्ठाता श्री १०८ महाराज स्वामी शिवपुरीजी थे। आप बड़े तपस्वी सिद्ध महात्मा थे। मण्डलेश्वरजी पर आपका विशेषानुराग था। आपने मण्ड-लेश्वरजी को साग्रह शिवबाड़ी में बुलाया। और बड़े ही समारोह के साथ स्वागत सत्कार किया। उस समय मण्डलेश्वरजी का वहाँ प्रभावशाली प्रवचन भी हुआ।

इस समय श्रीमती लालीबाई जो धर्मसञ्चय तथा ज्ञानसञ्चय में पूर्ण निष्ठा रखती थीं, आपने भी सत्सङ्ग द्वारा अपने जीवन को सार्थक किया। महात्माओं की सेवा से भी आपने अपनी उत्कट श्रद्धा का परिचय दिया। इसके अतिरिक्त अनेकभक्तों के अनुरोध को सम्मानित करते हुए मण्डलेश्वरजी ने अनेक स्थानों को पूत किया। फिर कोलाद होते हुए नागोर में भी कुछ कालतक निवास किया। इसके अनन्तर मुँडवा में भी कुछ कालतक उपदेश तथा धर्मप्रचार करते हुए समय का सदुपयोग किया।

जिस धर्मप्रचारकार्य के लिये अद्वितीय योगी एकान्तवासी मण्डलेश्वरजी ने अपने गुरुदेव की आज्ञा को शिरोधार्य किया था अब आपके मन में उसी धर्मप्रचार की वृद्धि के लिये सर्वदा अनेक भावनायें उठा करती थीं। अनवरत आप इसी विचार में रहते थे कि गुरु की आज्ञा का विशेष रूप से कार्यान्वित होना ही हमारा परम कर्तव्य है। यों तो मण्डलेश्वरजी प्रायः भारत के सभी प्रान्तों में स्वयं जाकर सनातन धर्म की ध्वजा को फहराये थे और नमः शिवाय बैंक के सविशेष प्रचार द्वारा विदेशियों को भी सनातन धर्म की उपादेयता से पूर्ण परिचित कर दिये थे फिर भी आपके चित्त में अभिवाञ्छित सन्तोष न था। इसलिये उपायान्तरों के सम्पादन की ओर भी दृष्टिपात किया करते थे। इसी अवसर पर सम्वत् १९८६ के चतुर्मास का समय भी आ रहा था। अहमदाबाद निवासी धार्मिक जनों ने वहीं पर चतुर्मास करने के लिये विशेष अनुरोध किया। कई कार्यों को दृष्टिकोण में रखते हुए मण्डलेश्वरजी ने अहमदाबाद में ही चतुर्मास का समय व्यतीत करने के लिये विचार स्थिर किया।

मण्डलेश्वरजी मण्डली के साथ अहमदाबाद पधारे। श्रीयुत सेठ मोतीलालजी के बगीचे में ठहरे। पूर्ववत् कथा उपदेश कार्य चलता रहा। मण्डलेश्वरजी ने

अहमदाबाद-संन्यास-आश्रम में एक महाविद्यालय तथा धर्मप्रचारार्थ एक पत्रिका का भी प्रस्ताव रक्खा। स्थानीय धनीमानी जनों ने सहर्ष अनुमोदन भी किया। पर मण्डलेश्वरजी चतुर्मास के अनन्तर काशीस्थ संस्कृत कालेज की आवश्यकता वस काशी चले आये।

**काशी में यज्ञादि**

काशीजी आकर सन्यासी संस्कृत कालेज की आवश्यकता को पूर्णकर मण्डलेश्वरजी का विचार कुछ काल तक काशीजी में ही निवास करने को हुआ। आप अब काशीजी में ही निवास करते हुए योगाभ्यास की ओर पुनःसंलग्न हुए। इधर आपने महारुद्र याग तथा समष्टि भण्डारा विद्वत्परिषत् की भी समारोह के साथ आयोजना की। समय-समय पर वसन्त पूजन भी कराया करते थे। ऐसा कोई भी दिन न जाता था जिसमे कोई न कोई धार्मिक कार्य न हो।

**नासिक का कुम्भ**

इस प्रकार दो वर्ष तक काशीजी निवास किये। नासिक के कुम्भ का अवसर आया। महात्माओं के साथ मण्डलेश्वरजी नासिक पधारे। प्रत्येक कुम्भ की भाँति यहाँ भी यज्ञानुष्ठानादि चलते रहे।

**श्री १०८ मण्डलेश्वर भागवतानन्दजी महाराज**



हम इस बात को प्रथम बतला चुके हैं कि मण्डलेश्वरजी का विचार धर्म प्रचार को स्थायी तथा विस्तृत बनाने को था। मण्डलेश्वरजी के धर्मप्रचार कार्य में श्री १०८ मण्डलेश्वर भागवतानन्दजी महाराज पूर्ण सहयोग दे रहे थे। आप भी मंडली के सहित प्रायः सभी प्रदेशों में धर्म प्रचार से लोकोपकार किया करते थे। जनता पर आपके उपदेशों का अत्यधिक प्रभाव पड़ता था। इसका कारण यह था कि आप सभी शास्त्रों के साक्षात् समष्टि हैं। पद, वाक्य, तथा प्रमाण में आपकी अव्याहत गति है। आपके पास भी अनेक महात्मा तथा छात्र निरन्तर अध्ययन से अलभ्य लाभ उठाते हैं। मण्डलेश्वजी के प्रति आपकी उत्कट श्रद्धा तथा हार्दिक प्रेम रहता था आपके धर्मप्रचार कार्य से मंडलेश्वरजी अत्यन्त सन्तुष्ट रहते थे।

इसके अतिरिक्त मंडलेश्वरजी का विचार था तथा अन्य गण्य महात्माओं तथा अखाड़ों के महन्तों से भी विचार विनिमय होता था कि कई एक विद्वान् ज्ञान-वृद्ध महात्माओं को मंडलेश्वरजी का स्वरूप दे दिया जाय। अतः नासिक के कुम्भ के अवसर पर आपने श्री १०८ स्वामी प्रेमपुरीजी महाराज़ मंडलेश्वर की गादी होने के समय पूर्ण सहयोग दिया तथा सहर्ष चादर ओढ़ाया। उपर्युक्त मंडलेश्वरजी विद्वान् तपस्वी तथा सनातन धर्म के अद्वितीय संरक्षक हैं।

कुम्भ अवसर की समाप्ति मे मंडलेश्वरजी भक्तजनों के अनुरोध से उसी प्रान्त में विचरण करते रहे। इसी समय उज्जैन जाने के लिये प्रस्तुत हो गये।

**उज्जैन का कुम्भ**

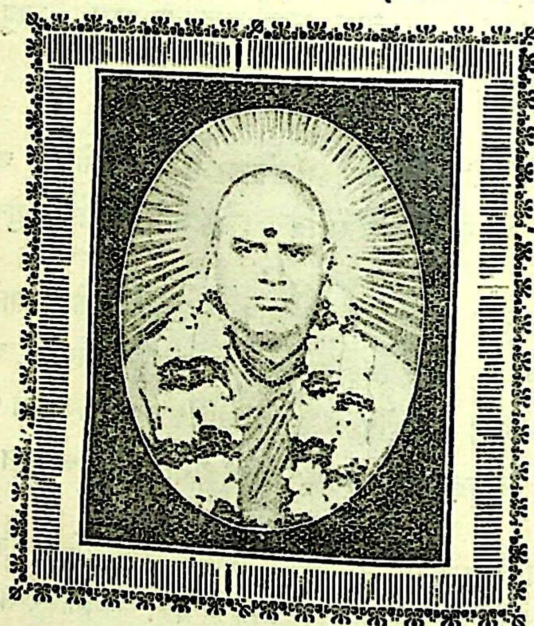
उज्जैन आकर आपने महात्माओं के निवासार्थ स्थान तथा मण्डपादि का पूर्ण प्रबन्ध करवाया। बड़े उत्सव तथा समारोह के साथ धार्मिक कार्य होने लगे। उस समय भी मण्डलेश्वर पदपर आरूढ़ करने के लिये साधु समाज में चर्चा चल रही थी।

लोगों की विचारधारा महाराज नृसिंहगिरिजी मण्डलेश्वर को पाकर अवरुद्ध हुई। धर्म प्रचार कार्य में सर्वथा आपको ही सुयोग्य समझकर सभी महात्माओं ने विचारको कार्यान्वित करने का प्रस्ताव किया महाराज मण्डलेश्वरजी ने सहर्ष इस भव्य कार्य में सहयोग देकर गद्दी के समय चादर ओढ़ाया। आप अलौकिक धीर तथा सर्वथा अनुपम गुणपूर्ण हैं। धार्मिक क्षेत्र में आपने एक नवीन जागृति-सी उत्पन्न कर दी है।

श्री १०८ स्वामी नृसिंहगिरिजी महाराज मण्डलेश्वर



श्री १०८ स्वामी कृष्णानन्दजी महाराज मण्डलेश्वर



इस अवसर पर महाराज कृष्णानन्दजी भी उपस्थित थे। आप की विद्वत्ता की ख्याति साधु समाज तथा धार्मिक जनतामें पूर्ण स्थान पा चुकी थी आपके सद्‌गुणों से धार्मिक जन अत्यन्त आवर्जित थे। अतः धर्म प्रचार का कार्यभार आप पर भी दे देना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता था। लोगों के विचार का

सहर्ष अनुमोदन करते हुए मण्डलेश्वरजी ने गादी के समय चादर ओढ़ाया। आपके लोकोपकारक व्यवहार प्रथम से ही आदरणीय हो चुके थे। तथा भविष्य में भी उत्तरोत्तर चमत्कृतिपूर्ण होते गये।

ब्रह्मसूत्र-टीका-प्रकाशन

इन भव्य कार्यों की समाप्ति में मंडलेश्वरजी काशी आये। काशी में कुछ दिन निवास करते हुए आपने शारीरक भाष्य की हिन्दी टीका का सम्पादन किया और जिज्ञासुओं के हितार्थ उसका प्रकाशन भी करवाया। पूर्ववत् यज्ञादि कार्य तो होते ही रहते थे।

पुनः अहमदाबाद

मण्डलेश्वरजी ने अहमदाबाद में जिन जिन कार्यों के सम्पादन के लिये प्रस्ताव किया था उसके लिये अहमदाबाद के भक्तगण सर्वथा सन्नद्ध थे। और वे इस कार्य की पूर्ति के लिये मण्डलेश्वरजी का पुनः पुनः आह्वान किया करते थे। इन कारणों से मण्डलेश्वरजी को पुनः अहमदाबाद जाना पड़ा।

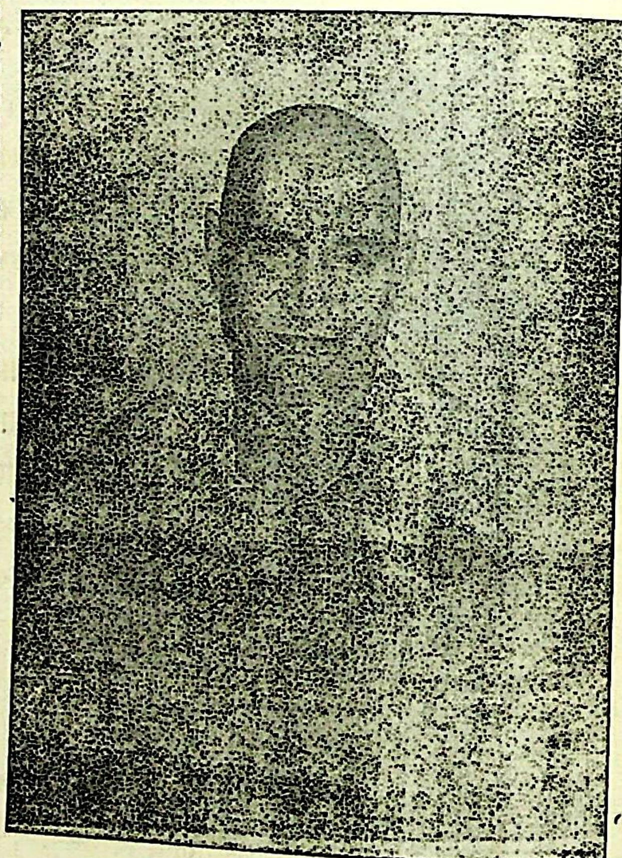
श्री काशी विश्वनाथ महाविद्यालय की स्थापना

पूज्य मण्डलेश्वरजी के पहुँचने के प्रथम विद्यालय की स्थापना के लिये भक्तगण निश्चय कर चुके थे। आपके आगमन के अनन्तर ही बड़े उत्सव के साथ संन्यासाश्रम में ही महाविद्यालय का कार्य प्रारम्भ हो गया। एक महाविद्यालय के स्वरूप-योग्य स्थायी कोष तथा समग्र साधन भी स्थानीय धार्मिक रत्नों ने सम्पादित कर दिया। इस विद्यालय में प्रथम पचास छात्रों के लिये भोजनादि का भी स्थायी प्रबन्ध हो गया। यहाँ पर सभी शास्त्रों के परीक्षार्थी गवर्नमेंट संस्कृत कालेज बनारस की परीक्षा में सम्मिलित होते हैं। वर्तमान में भी प्रतिदिन यह विद्यालय उन्नति कर रहा है। अध्यापक तथा छात्र सब प्रकार की सुविधा से अत्यन्त सन्तुष्ट रहते हुए इस पाठशाला तथा सञ्चालकों के कल्याणार्थ विश्वनाथजी से सदा प्रार्थी रहते हैं। इस समय इस महाविद्यालय के मन्त्री (१) श्री रमणलाल लल्लूभाईजी, (२) त्रिभुवनदास हरगोविन्ददासजी (३) भोगीलाल वालाभाई, (४) भोगीलाल छगुभाईजी बड़े ही मनोयोग से विद्यालय का सञ्चालन कर रहे हैं।

श्रीमती चन्द्रिका देवी चुन्नीलाल भट्ट ने संन्यासाश्रम में विशाल कूप बनवाकर आश्रम को समर्पित किया। तथा श्रीमती कमला बैनजी ने ॐ नमः शिवाय बैंक के मन्दिर तथा आश्रम और विद्यालय आदि के कार्य में अनेक बार सेवा का अलभ्य लाभ उठाया है। इसके अतिरिक्त भट्ट चीनुभाई त्रीकमलाल, नानालाल पतराला वाले

ने विद्यालय में छात्रावास तथा विद्यालय का अध्यापनालय बनवाकर विद्यालय को समर्पित किया।

## विश्वनाथ पत्र में सदा उच्चकोटि के लेखदाता
## श्री १०८ स्वामी भोलेबाबाजी महाराज



आप जीवन पर्यन्त इस पत्रिका से अधिक स्नेह रखते थे और प्रत्येक अंक में आपके वैराग्योत्पादक लेख आते थे।

**विश्वनाथ पत्र का उद्घाटन**

यद्यपि इस समय पूर्वोक्त सभी मण्डलेश्वर दत्तचित्त हो धर्मप्रचार में तत्पर थे फिर भी मण्डलेश्वरजी की अभिलाषा दूर-दूर देशों में जहाँ कि प्रचारक पहुँच न पाते थे, धर्मप्रचार की थी। जिसके लिये आपने पहले भी प्रस्ताव

किया था। अतः अहमदाबाद निवासी श्रद्धालु जनों के सहयोग से आपने विश्वनाथ पत्र का उद्घाटन किया। जिसके संस्थापक आप स्वयं थे। सम्पादन के कार्यभार को श्री १०८ स्वामी महेश्वरानन्दजी महाराज ( मण्डलेश्वरजी ) ने सहर्ष स्वीकार किया। संरक्षक श्री १०८ स्वामी कृष्णानन्दजी महाराज ( मण्डलेश्वरजी ), तथा श्री १०८ महन्त स्वामी नारायण भारतीजी तथा स्वामी शङ्करभारतीजी ( बीकानेर ) हुए। व्यवस्थापक ब्रह्मचारी धर्मदत्तजी ( स्वामी धर्मानन्दजी ) तथा प्रचारक ब्रह्मचारी शिवचैतन्यजी नियत हुए। गुजराती विभाग की सम्पादकता का भार श्री १०८ स्वामी मुकुन्दाश्रमजी ने सहर्ष स्वीकार किया।

इस प्रकार धर्मप्रचार कार्य को विरुढ़मूल करते हुए मण्डलेश्वरजी पुनः कतिपय दिवस के लिये काशीजी आये।

## श्री १०८ स्वामी स्वरूपानन्दजी महाराज मण्डलेश्वर



काशीजी आने पर मण्डलेश्वरजी के सम्मुख गौरवान्वित एक कार्य उपस्थित हुआ। वह यह था कि उस समय मृत्युञ्जय-आश्रम के अध्यक्ष श्री १०८ मण्डलेश्वर परमात्मानन्दजी के ब्रह्मीभाव के अनन्तर स्थानपूर्ति का विचार साधु समाज में चल रहा था। महाराज मण्डलेश्वरजी ने महाराज श्री स्वरूपानन्दजी को ही इस पद के योग्य समझकर सहर्ष गादी के समय चादर ओढ़ाया। आप अत्यन्त उदार तपस्वी

महात्मा होते हुए भी एक प्रौढ़ दार्शनिक थे तथा अपनी वाक्पटुता से सभी विद्वानों को चकित कर देते थे। विद्वानों से आपका इतना स्नेह था कि प्रति दिन विद्वानों का समागम चाहते थे तथा आगत विद्वानों का उचित सत्कार भी किया करते थे।



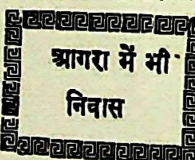

कुछ ही काल रहकर मण्डलेश्वरजी ने काशीजी से हैदराबाद की यात्रा की। यहां पर भी सेठ मनोहरलालजी आदि भक्तगण सेवा का लाभ उठाते रहे। हैदराबाद में भी आपने सनातन धर्म की महत्ता से सभी लोगों का पूर्ण परिचित कर अनेक धार्मिक कार्यों के द्वारा पूर्ण प्रचार कर उसी प्रान्त में कुछ काल तक परिभ्रमण किया। मनोनीत विषय की यथेष्ट सफलता देखकर फिर आप अहमदाबाद आ गये।

फिर सम्बत् १९९३ का चतुर्मास अहमदाबाद ही में बिताकर आप गुजरात प्रान्त में विचरण करते रहे। सम्वत् १९९४ के चतुर्मास के समय आप पेटलाद पधारे।



पेटलाद की यात्रा

गुजरात प्रान्त में परिभ्रमण के अनन्तर महाराज मण्डलेश्वर जी काशीजी को लौट आये थे, पर १९९४ का चतुर्मास भी समीपस्थ था। अतः पेटलाद से धार्मिकशिरोमणि सेठ रमणलालजी तथा सेठ छोटेलालजी आदि श्रद्धालु जनों ने निमन्त्रण पत्रों का ताँता लगा दिया। कारण, अहमदाबाद में ही मण्डलेश्वरजी ने आप लोगों को पेटलाद आने की स्वीकृति दे दी थी। मण्डलेश्वरजी भक्तिप्रियता के वशीभूत हो काशी से पेटलाद के लिये प्रस्थान किये। साथ में चालीस महात्मा थे। आगरा-निवासी सेठ रामचन्द्रजी कलकत्ते वाले को मण्डलेश्वरजी का प्रस्थान ज्ञात था। अतः वे नागरिक महानुभावों के साथ स्टेशन पर आ गये और पहुँचते ही मण्डलेश्वरजी से वहाँ ठहरने के लिये विशेष अनुरोध किया। लोगों की श्रद्धा का संरक्षण करते हुए मण्डलेश्वरजी ने स्वीकार कर लिया।




बड़े धूमधाम के साथ मण्डलेश्वरजी सेठजी के बगीचे में आये। सन्ध्या समय उपस्थित जनों को ईश्वर नाम के महत्व का उपदेश देकर तथा लोगों को कृतार्थ कर मनकामेश्वर महादेव के दर्शन कर मण्डलेश्वरजी दूसरे दिन पुनः प्रस्थान कर दिये।

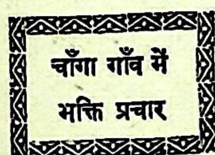



बड़ौदा पहुँचते ही स्टेशन मास्टर चन्दूलाल आदि सज्जनों ने स्वागत कर मण्डलेश्वरजी को केवल एक दिन रुकने के लिये आग्रह किया। यहाँ प्रायः अधिक संख्या में नागरिक आते थे। महाराज ने वेदान्त प्रवचन से सभी को सन्तुष्ट किया।

फिर वहाँ से चलकर आनन्द जङ्कशन से कुछ दूर पर रम्य आश्रम में श्री स्वामी शङ्कर पुरी जी की सेवा स्वीकार कर पेटलाद चले गये।

सेठ छोटेलालजी तो मार्ग में ही स्वागतार्थ आये थे पर पेटलाद में श्रीयुत सेठ रमणलालजी तथा नगर के अन्य धनी मानी लोग भी स्वागत के लिये आये। अनन्तर सेठजी की रम्य वाटिका साधु आश्रम में मण्डलेश्वरजी का निवास हुआ।

गुरु पूर्णिमा के दिन श्रीयुत सेठ रमणलालजी, सेठ छोटेलालजी तथा सेठ अमृतलालजी ने नगरवासियों के साथ समारोह पूर्वक पूजन किया। प्रति दिन कथा प्रवचन अध्यापन क्रम चलने लगा। धर्मजजनामक कस्बे के प्रसिद्ध वकील श्रीयुत मणिभाई जोइता भाई भी सत्सङ्ग में सम्मिलित होते थे दो मास तक उपनिषत् की कथा स्थान पर ही होती रही। पार्थिव पूजन भी होता था अन्त में नगर के प्रधान तालाब में असंख्य जनता की उपस्थिति में विसर्जन किया गया।


चाँगा गाँव में भक्ति प्रचार

जिज्ञासुओं के प्रश्नों का उचित समाधान करते हुए मण्डलेश्वर जी दो मास निवासकर चाँगागाँव निवासी ब्राह्मणों के अनुरोध से चाँगा चले गये। वहाँ वैष्णव शिवजी के प्रति अश्रद्धा रखते थे। मण्डलेश्वरजी ने अनेक प्रमाण तथा युक्तियों से उनके भ्रम का निराकरण किया।

## प्रमाणानि

वैष्णवः पुरुषोभूत्वा शङ्करं लोकशङ्करम्।
कर्मभूम्यां समागत्य न पूजयति नारकिः॥
भविष्य पुराण प्र० प० अ० १९ श्लोक ४४

ब्रह्मेशकेशवानाञ्च ये नरा भेदवादिनः।
तमोऽभिभूताः परितस्ते वैनिरयगामिनः॥
वि० ध० द्वि० अ० ११८ श्लोक २९

वैष्णवः पुरुषो वैश्य! शिवनिन्दां करोति यः।
नगच्छेद्वैष्णवं लोकं स याति नरकं ध्रुवम्॥
पद्म० पु० मा० मा० अ० ९-६१

जौमिनि अश्वमेध मे अर्जुन ने सुधन्वा से कहा है।

अनेन बाणेन न पातयामि शिरस्त्वदीयं सकिरीटमद्य।
विभेदनाद्विष्णुगिरीशयोर्यत् पापं समग्रं मम चास्तु वीर!॥

अ० १९-श्लोक ८४

यो हरिः सशिवः साक्षात् यः शिवः स स्वयं हरिः।
एतयोर्भेदमास्थाय नरकाय भवेन्नरः॥

दे० भा० तृ० स्क० अ० ६-५५

स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्।
स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमाः॥

इत्यादि प्रमाणों से वैष्णवों के भ्रम का निराकरण कर वेदान्तोपदेश से सभी को कृतार्थ किया।

धर्मज ग्रामवासियों की प्रार्थना स्वीकार कर आप धर्मज ग्राम आये यहाँ का स्वागत प्रकार विचित्र ही था। छोटे से गाँव में इस प्रकार की व्यवस्था आश्चर्यजनक थी। वहाँ के व्यवहार से वस्तुतः वह गाँव धर्मज ही प्रतीत होता था ३४ दिन वहाँ निवास कर महाराज खंभात आये।

**खम्भात** खम्भातमें स्वामी माधवानन्द जी महाराजके आश्रम में डेढ़ मास से अधिक दिन तक प्रवचन होता रहा। यह अत्यन्त रम्य स्थान था। रत्नाकर की लहरों से सदापूत होता रहता था जिससे मण्डलेश्वर जी का भी चित्त यहाँ विश्राम पा रहा था स्वामी मुकुन्दाश्रम जी तथा हिम्मत गिरी जी की तरफ से भी अच्छा स्वागत हुवा।

किसी दिन मण्डली में बैठे हुए मण्डलेश्वर जी आत्मनित्यता तथा शरीर की अनित्यता का उपदेश देते हुए कह बैठे कि यदि यह शरीर भी साक्षात् अथवा नर्मदा द्वारा इसी सरित्पति में आता तो अच्छा होता। लोकोपकारक शरीर की अचिर स्थायिता को सुनकर सभी ने शिव-शिव उच्चारण कर महाराज को रोका पर मण्डलेश्वर जी ने तीन वर्ष नव मास की अवधि भी बतला कर प्रपञ्च क्षणिकता के उपदेश से सभी को शान्त किया।

अहमदाबाद निवासी जनों के बुलावे पर जब विलम्ब होने लगा तो श्रीमान् इनामदार छबिल भाई जी तथा श्रीमान् वीरुभाई जी स्वयं खम्भात आकर मण्डलेश्वर जी को अहमदाबाद लाये।

भगवतीभागीरथी के तट पर परिभ्रमण करने वाले विरक्त वयोवृद्ध सिद्ध महात्मा श्री १०८ स्वामी शुक्रभारतीजी महाराज मुजफ्फर नगर में प्रायः जाया करते थे। वहाँ के प्रसिद्ध रईस राय बहादुर लाला देवीप्रसादजी, लाला जवाहरलाल, नरसिंह दासजी, डिप्टी कलेक्टर महताब सिंहजी आदि कई महानुभाव मण्ड-लेश्वरजी के दर्शन तथा सत्सङ्ग के लिये भारतीजी से प्रार्थना किया करते थे। इस समय हरिद्वार में कुम्भ का भी अवसर आ रहा था। भारतीजी ने इस स्वर्ण सुअव-सर को सफल करने की लालसा से मार्ग में ही मण्डलेश्वरजी से रुकने का अनुरोध करने के लिये लोगों को प्रेरित किया। कारण, हरिद्वार जाने का मार्ग दिल्ली होकर ही था। भारतीजी के शुभ सन्देश से आनन्दमग्न हो मुजफ्फरपुर निवासी सत्सङ्ग प्रेमी जन महाराज के पास पत्र पर पत्र भेजने लगे।

**ऊँझा में सत्सङ्ग**

महाराज मण्डलेश्वरजी ने अहमदाबाद से ज्यों ही प्रयाण करने का विचार स्थिर किया कि ऊँझा निवासी भक्त जनों ने अपने यहाँ ले जाने के लिये अतीव अनुरोध किया। अत्याग्रह देखकर, मण्डलेश्वरजी ने केवल दश दिन के लिये ही वचन दिया। फिर अहमदाबाद से ऊँझा आये। ऊँझा स्टेशन पर जनता की अपार भीड़ लगी थी। गैस की रोशनी में भजन मण्डली का सुमधुर मनोहर कीर्तन भी हो रहा था। रथ में जुते हुए बैलो के गले की घण्टियाँ भी उस स्वर को हस्तावलम्ब कर रहीं थीं। वहाँ के प्रत्येक प्रबन्ध स्थानीय जनों के अपूर्व धार्मिक भाव का परिचय दे रहे थे। बड़े ही धूमधाम से महाराज कस्बे में आये और वहाँ प्रसिद्ध स्थान उमिया माता के मन्दिर में निर्मित अतिथि गृह में ठहराये गये। वहीं पर कथा प्रवचन भी आरम्भ हुआ। भक्तों की श्रद्धा देखकर दश दिन से अधिक दिनतक निवास कर सोमवती अमावास्या को यमुनाजी स्नान करने की अभिलाषा से आप दिल्ली चले आये।

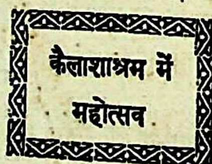
मुजफ्फर नगर निवासी श्रीयुत जवाहरलाल नरसिंहदास के फर्म के अध्यक्ष लाला रुलीरामजी दिल्ली में ही मण्डलेश्वरजी को ले जाने के लिये आये। फिर मण्ड-लेश्वरजी दिल्ली से मुजफ्फरनगर के लिये प्रस्थान किये।

**मुजफ्फर नगर**

मुजफ्फरनगर स्टेशन पर सनातन धर्म महासभा के लोग तथा अन्य गण्यमान्य महाजन बड़ी धूमधाम के साथ मण्डलेश्वरजी को नगर में ले गये। यहाँ पर नई मण्डी की सुविशाल धर्मशाला में निवास-स्थान निश्चित किया गया। श्रीमान् लाला रुलीरामजी ने सारी व्यवस्था की। लोगों की

प्रार्थना के अनुसार गीता तथा उपनिषदों की कथा हुआ करती थी। गवर्नमेंट हाई स्कूल के हेड मास्टर श्री स्वरुपानन्दजी भी अपने इष्ट-मित्रों के साथ प्रवचन में उपस्थित होते थे। आप स्वयं भी विद्वान् थे, इसलिये आत्मा के विभुत्व पर आप प्रश्न कर उचित उत्तर से सन्तुष्ट हुए। लाला रुलीरामजी ने भी सत्ता के विषय में अनेक प्रश्न किये। मण्डलेश्वरजी ने सरल रूप में आपको समझाया। अध्यासवाद पर भी आपने प्रश्न किया। तथा रायबहादुर मानराजसिंहजी ने भी जीव तथा ब्रह्म विषयक प्रश्न किया। मण्डलेश्वरजी के सन्तोषप्रद उत्तर को सुनकर वे अत्यन्त सन्तुष्ट हुए।

किसी दिन सनातन धर्म कालेज के प्रिन्सिपल श्री अमरनाथ गुप्तजी तथा मन्त्री केशवदासजी आदि महानुभाव विनयपूर्वक मंडलेश्वरजी से कालेज में प्रवचन करने के लिये अनुरोध किये। मंडलेश्वरजी की स्वीकृति पाने पर कालेज का विशाल हाल सुसज्जित किया गया। नागरिक जनों को भी सूचना थी। अपार भीड़ थी। उपदेश में मण्डलेश्वरजी ने हिन्दू समाज के सुधार तथा बल बुद्धि की वृद्धि के लिये सदाचार को महत्व देते हुए ब्रह्मचर्य की रक्षा पर विशेष जोर दिया। शास्त्र तथा गुरुजनों पर श्रद्धा की परिपुष्टि करते हुए प्रवचन की समाप्ति की। सहर्ष करतल ध्वनि हुई। इस प्रकार कुछ दिनों तक मुजफ्फरनगर में उपदेशामृत की वृष्टि होती रही। इसी समय हृषीकेश के अधिष्ठाता श्री १०८ स्वामी कृष्णानन्दजी का तार आ गया। कारण, कैलाश का वार्षिकोत्सव होने वाला था। जिसमें मण्डलेश्वर जी का रहना अत्यावश्यक था। इधर कनखल के श्री स्वामी सूरत गिरि जी के बँगले के महन्त श्री १०८ स्वामी गिरीशानन्द जी महाराज ने मण्डलेश्वर जी को बुलाने के लिये स्वामी दुर्गा पुरीजीको भेजा। अतः हरिद्वार आना अत्यावश्यक हो गया। भक्त जनोंको किसी प्रकार समझाकर मण्डलेश्वर जी हरिद्वार के लिये प्रस्तुत हो गये। रईस लाला देवी प्रसाद जी तथा राय बहादुर जीने हरिद्वार कुम्भ मेला के लिये अपनी मोटर कार दे दी, थी अतः उसीसे मण्डलेश्वर जी हरिद्वार को रवाना हुए।


कैलाशाश्रम में महोत्सव

हरिद्वार आकर आप कनखल सूरत गिरिजी के बँगले पर मण्डली के सहित ठहरे। इसके अनन्तर ही कैलाशाश्रम में महोत्सव की आयोजना हुई दूर दूर से विशिष्ट व्यक्ति भी निमन्त्रित थे। साधु समाज तथा सद्गृहस्थों की संख्या भी प्रचुर थी। मण्डलेश्वरजी को साथ ले जाने के लिये महात्मा आये। साथ में आये हुए कार से मण्डलेश्वरजी हृषीकेश पधारे। आपके शुभागम से लोगों में अपूर्व उत्साह आ

गया। नमःपार्वतीपते ! हर ! इत्यादि नारों से मण्डलेश्वरजी का स्वागत हुआ। प्रस्तुत कार्य को लोगों ने सर्वथा पूर्ण समझा।

## कैलाशाश्रम में मण्डलेश्वरपद पर श्री १०८ स्वामी विष्णु देवानन्दजी महाराज का अभिषेक

इस महोत्सव में प्रस्तुत कार्य यह था कि लोकविश्रुत हृषीकेश कैलाशाश्रम में मण्डलीशपद पर सभी साधु-महात्मा महाराज श्री १०८ स्वामी विष्णु देवानन्दजी का अभिषेक चाहते थे। मंडलेश्वरजी के पहुंचने पर स्वागत अभिनन्दन के अनन्तर पूर्वोक्त विषय का प्रस्ताव किया गया। मंडलेश्वरजी का तो पूर्वसे ही यह मनोनीत विषय था। आपने सहर्ष अनुमोदन किया। फिर उचित कर्तव्य के अनन्तर प्रथम मंडलेश्वरजी ने चादर दी। फिर अन्य मंडलेश्वर तथा महात्माओं ने। इन कार्यों की समाप्ति में महाराज मंडलेश्वरजी का प्रभावशाली भाषण भी हुआ। भाषण का भाव निम्न-लिखित है।

"यह कैलाशाश्रम लोकविख्यात तपस्वि-निकेतन है। इसकी परम्परीण मर्यादा का यथोचित पालन सत्पुरुषोंद्वारा होता आया है। स्वामी विष्णु देवानन्दजी महाराज, विद्वत्ता, त्याग, वक्तृत्व, लेखकला, दयालुता आदि गुणों से सर्वथा परिपूर्ण हैं। आपने जो इस संरक्षण भार को स्वीकार कर अनुपम परोपकारिता का परिचय दिया है इससे स्थान की उत्तरोत्तर उन्नति की ही सम्भावना है। भूतभावन भगवान् शंकर से यही प्रार्थना है कि नवीन मंडलेश्वरजी सदा स्वस्थ तथा लक्ष्यपारगामी हों।

इसके अनन्तर निमन्त्रितजनों का सत्कार किया गया। सन्ध्या समय मंडलेश्वर जी मोटरकार से निवासस्थान कनखल में आ गये।

कभी कभी विशेष रूपसे निमन्त्रित होकर महाराज मंडलेश्वरजी अन्य स्थानों में भी चले जाया करते थे, पर निवासस्थान सूरतगिरिजी के ही बँगले पर नियत था। प्रतिदिन अध्यापन उपदेश आदि भी चला करते थे। पर इन दिनों में मंडलेश्वरजी समाधि के लिये अधिक समय प्रदान किया करते थे। और समय समय पर आगन्तुक भक्तों का भ्रम निवारण भी किया करते थे।

**कुम्भमेला**

कुम्भ का अवसर आ गया। एक दिन रायबहादुर लाला आनन्द स्वरूपजी महाराज के दर्शनार्थ आये। आप मुजफ्फरपुर निवासी थे। आप सत्य सुखप्राप्ति के साधन के जिज्ञासु थे। मंडलेश्वरजी ने अनेक युक्तियों से सरल भाषा में आत्मानुभव को ही सत्य सुख का साधन सिद्धकर आपको सन्तुष्ट किया।

कुम्भ मेले के अवसर पर पर्वस्नान तथा मंडलेश्वरजी के उपदेशामृतपान के लोभ से प्रचुर संख्या में भक्त मंडली समवेत हुई। मंडलेश्वरजी की ओर से सभी के निवासार्थ प्रथम से ही निवासस्थान निर्मित थे तथा समय पर और भी बन जाते थे। महात्माओं की सुविधा के लिये तो आपका विशेष आदेश था कि किसी को भी किसी प्रकार की असुविधा न हो। ब्रह्मचारी धर्मदत्तजी का भी धार्मिक प्रचार कार्य प्रथम की अपेक्षा उन्नतिकी चरम सीमा तक पहुँच चुका था। फिर भी आगे ही पदारोपण करता जा रहा था।

इस अवसर पर मंडलेश्वरजी के पास श्री १०८ स्वामी कृष्णानन्दजी भी रहते थे। जो हूँडाया निवसी कहे जाते थे। आपकी मंडलेश्वरजी पर अनन्य श्रद्धा थी। आप मंडलेश्वरजी के साथ समय समय पर वेदान्त दर्शन का विचार किया करते थे।

श्री १०८ स्वामी कृष्णानन्दजी महाराज जो उस समय संन्यासाश्रम अहमदाबाद के अधिष्ठाता थे, वर्तमान में जो निर्वाण पीठाधिपति हैं, आप भी ब्रह्मविद्या पर मंडलेश्वरजी के पास विचार किया करते थे।

श्री १०८ स्वामी महेश्वरानन्दजी महाराज जो सभी शास्त्रों में पूर्ण निविष्ट थे, मंडलेश्वरजी महाराज के प्रति आपकी अनन्य भक्ति थी। आपकी विद्वत्ता, साधुता, तितिक्षा तथा लोकोपकारिता से केवल मंडलेश्वरजी ही नहीं प्रत्युत साधु-समाज आवर्जित था। सभी लोगों के चित्त में ये भावनायें उठती थीं कि ऐसे व्यक्ति से धर्मध्वज के उन्नति की सर्वथा सम्भावना है। अतः मंडलीशपद पर आपका अभिषेक अत्यावश्यक है। कर्णाकर्णिकया यह सत्समाचार साधु समाज में फैल गया। मंडलेश्वरजी ने भी सहर्ष अनुमोदन किया। बड़े ही समारोह के साथ आप मंडलीश पद पर नियुक्त किये गये। मंडलेश्वरजी ने सहर्ष चादर दी। अन्य मंडलेश्वर तथा प्रमुख महात्माओं ने भी चादर ओढ़ाई। उस समय धर्मप्रचार के लिये लोगों की आप से जो आशा थी उससे कहीं अधिक धर्मप्रचार में आपने तत्परता दिखलाई। विश्वनाथ पत्र के सम्पादन के अतिरिक्त स्वतन्त्र धार्मिक पुस्तकों का आपने लेखन तथा सम्पादन भी किया। और उत्तरोत्तर इस कार्य में आप अग्रसर ही होते जा रहे हैं।

गीता-धर्म के अपूर्व प्रचारक श्री १०८ स्वामी विद्यानन्दजी महाराज के सद्विचार तथा बोधन की अपूर्व शैली से मुग्ध हो माननीय महात्माओं ने मंडलेश्वरपद पर आपका भी नियत होना अत्यावश्यक समझा। अतः समारोह के साथ आपको

मंडलेश्वर की गादी दी गई। मंडलेश्वरजी ने प्रथम चादर दी। आपने भी लोगों की आशा से अतीत कार्य कर दिखाया। धर्म क्षेत्र में आपने जिस मनोयोग से कार्य किया वह अद्वितीय है। कर्णाली, अहमदाबाद तथा बड़ौदा में आपने विशाल गीता-मन्दिर का निर्माण करवा कर धर्म ध्वजको चरम सीमापर पहुँचाया। इस प्रकार के मन्दिर भारत में विरले ही होंगे।

जब कि कुम्भ के अवसर पर मंडलेश्वर जी हरिद्वार में थे उसी समय श्री १०८ स्वामी परमानन्द जी महाराज के गादी का समय उपस्थित था। मंडलेश्वर जी ने सहर्ष अनुमोदन पत्र दिया। मंडलेश्वरजी का आप पर निरतिशय प्रेम था। जब कि आप संन्यासी संस्कृत कालेज में निवास करते हुए सभी शास्त्रों में पूर्ण पांडित्य प्राप्त कर लिया था, आपकी बुद्धिपटुता से नितान्त सन्तुष्ट हो मंडलेश्वरजी ने यात्रोपयोगी सामग्रियों से सुसज्जित कर तीर्थयात्रा तथा धर्म प्रचार की अनुमति दी थी। तथा ब्रह्मचारी धर्मदत्तजी के द्वारा तत्तत्स्थानों में प्रतिष्ठित जनों के पास पत्रादि भेजकर आपके पाण्डित्य का भी परिचय कराया था।

श्री १०८ स्वामी महादेवानन्दजी महाराज मण्डलेश्वर भी मंडलेश्वरजी से हार्दिक प्रेम रखते थे। आप संस्कृत तथा अंग्रेजी के अद्वितीय विद्वान् हैं।

जिस शुभ कार्य में मंडलेश्वरजी अपना परामर्श देते थे प्रायः सभी मंडलेश्वरों का ऐकमत्य हो जाता था। अब मंडलेश्वरजी के चित्त में पूर्ण शान्ति आ गई। आपको निश्चय हो गया कि पूर्वोक्त विद्वान् तपस्वी मंडलेश्वरों की उपस्थिति में किसी भी प्रकार की शक्ति धर्म कार्य तथा प्रचार में बाधा नहीं पहुँचा सकती। जब कहीं समष्टि तथा परिषत् में सभी मंडलेश्वरों की उपस्थिति होती थी प्रथमासन आपको ही दिया जाता था। अतः आप उसी समय से **महामण्डलेश्वर** नाम से कहे जाने लगे।

इस प्रकार अनेक धार्मिक कार्य तथा धर्मप्रचार के सुपुष्ट साधनों को स्थिर कर कुम्भ पर्व की समाप्ति पर मंडली के सहित काशीजी आने के लिये महामंडलेश्वर जी ने निश्चय किया। उस समय अनेक प्रान्त के अनेक गण्यमान्य जन भी अपने अपने यहाँ ले जाने के लिये विशेष अनुरोध करने लगे। परन्तु नमःशिवाय बैंक का मन्त्रकोष परिपूर्ण हो अपनी स्थापना की भी आशा कर रहा था; अतः इस आवश्यक कार्य के सम्पादन के लिये काशीजी आना अत्यावश्यक हो गया। सभी भक्तों को सन्तोष देकर आप काशीजी चले आये।

शिवपुर में विश्वनाथाश्रम

कुम्भ मेले के प्रथम ही महामण्डलेश्वरजी के समक्ष दो विषय उपस्थित थे। एकान्तसेवी महात्माओं का अनुरोध था कि कहीं पर पञ्चक्रोशी के अन्तर्गत नगर के बाहर भजन-पूजन के योग्य स्थान अवश्य हो जाना चाहिये। इधर देश विदेशों से नमःशिवाय बैंक के मन्त्रकोष में तीन अरब से अधिक लिपिवद्ध मन्त्र भी आ चुके थे। जिनकी प्रतिष्ठा तथा मन्दिर का बनना भी अत्यावश्यक था। इन विषयों को दृष्टिकोण में रखते हुए महामण्डलेश्वरजी ने शिवपुर चुप्पेपुर में १३ बीघे का बगीचा जिसमें आम, नीबू, कटहल आमला, अमरूद, शरीफा तथा नारंगी के वृक्ष थे तथा दो विशाल सुदृढ़ कूप थे, भक्तों के सहयोग से खरीदा था। इस बगीचे में सुरम्य एक भव्य भवन भी बना हुआ था। महात्माओं की अनुमति से यही तपोभूमि निश्चित की गई थी और इसका नामकरण 'विश्वनाथ-आश्रम किया गया।

विश्वनाथाश्रम में शिवालय का निर्माण

इसी विश्वनाथ आश्रम में ही द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग ओंकारेश्वर के मन्दिर बनने का भी निश्चय हुआ था। अहमदाबाद निवासी सज्जनों ने सराहनीय मनोयोग से इस लोकोत्तर शुभ कार्य में भाग लिया तथा मन्दिर की रचना भी महामण्डलेश्वरजी के शुभागम के पूर्व ही अधिक अंश में हो चुकी थी। आपके काशीजी आने के अनन्तर बड़ी ही सावधानी से कार्य होने लगा।

सम्वत् १९९६ के प्रारम्भ में ही मन्दिर का निर्माण परिपूर्ण हो गया तथा प्रतिष्ठार्थ सभी सामग्रियाँ भी उपस्थित हो गईं। वैशाख अमावास्या से विश्वनाथाश्रम में पुराण या रामायण, गायत्री-जाप, वेद-पारायण तथा महारुद्रयागार्थ अग्निस्थापन भी हो गया।

महारुद्रयागादि

महारुद्रयाग के आचार्य पद को महामहोपाध्याय वैदिक सम्राट् पण्डितवर विद्याधरजी गौड़ जी ने अलंकृत किया। सात दिन तक ये क्रियाकलाप चलते रहे। महामण्डलेश्वरजी के आदेशानुसार सभी अभ्यागतों का यथेष्ट सत्कार होता रहा।

प्रतिमा स्थापन

याचकों की उपस्थिति से तो एक अतिरिक्त ग्राम-सा ही बन गया था। पर किसी में भी असन्तोष का लेश भी अनुभूत न

होता था। यद्यपि यह कार्य नमःशिवाय बैंक के निमित्त आये हुए द्रव्य से हो रहा था, पर ओंकारेश्वर द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग की प्रतिष्ठा में हीरावा साहिबा ( सानन्द स्टेट की राजमाता ने पूर्ण श्रद्धा के साथ कार्य का निर्वाह किया। सात दिन तक यज्ञ पाठ पूजनादि कार्य निरन्तर प्रचलित थे। ओंकारेश्वर द्वादश योर्लिङ्ग की स्थापना डेढ़ अरब मन्त्रों के ऊपर निर्मित विशाल मन्दिर में हुआ तथा मन्दिर के शिखर पर पचास करोड़ मन्त्र स्थापित किये गये। मन्दिर में शिवपञ्चायतन की भी स्थापना हुई।

**महारुद्र याग**

अहमदाबाद निवासी दानवीर श्रीमान् पुरुषोत्तमदास अम्बा-लालजी इस पुण्यप्रद कार्य में महारुद्र याग का सम्पादन कर अक्षय्य पुण्य के भागी हुए। आपने नियम पूर्वक यज्ञ कार्य का इस प्रकार निर्वाह किया कि वृत पण्डितों के मुख से सर्वदा धन्य, धन्य शब्द ही आपकी उत्कृ-ष्टकर्मठता का द्योतन करता था।

**विद्वत्परिषत्**

श्रीयुत विप्रकुल भूषण वीरुभाई जो प्रत्येक यागादि में सर्व प्रथम हाथ बटाया करते हैं, आपने इस अवसर पर काशी निवासी सभी पण्डितों को सादर निमन्त्रण देकर तथा यथोचित सत्कारकर धन्यवाद के पात्र हुए। उसी विद्वत्परिषत् में कार्यक्रम को संक्षिप्त रूप में विद्वानों के समक्ष मैंने निम्न-लिखित प्रकार से रक्खा था।

( १ )

समाधौ निर्वीजे परमहितवीजे स्थितवतः,
परिव्राजां विद्यानिभृतमनसां चैव विदुषाम्।
समर्चा, सच्चर्चा व्यवहृतिपरा यस्य भुवने,
स मण्डलथाः स्वामी यतिवर जयेन्द्रो विजयते॥

( २ )

अंहः पुञ्ज निकुञ्ज दावदहनेशान प्रतिष्ठा कृतौ,
श्री राज्या महनीयया शुभधियाऽकारि क्रियाप्रक्रिया।
सानन्दं मुदमाप्य मार्गण गणाः साणन्द सत्पत्तने,
हीरा मा जयतादिति प्रवरकं गायन्ति यस्या यशः॥

( ३ )

यस्योत्सर्गपरम्परामविरतामालोक्य कर्मारता,
आश्चर्येण परस्परं रघुरयं नूनं पुरेत्यब्रुवन्।
तेनासौ पुरुषोत्तमेन पुरुषश्रेष्ठेन सच्छ्रोत्रियैः,
कर्णानन्दकरस्वरैर्वत महारुद्राध्वरः कारितः ॥

( ४ )

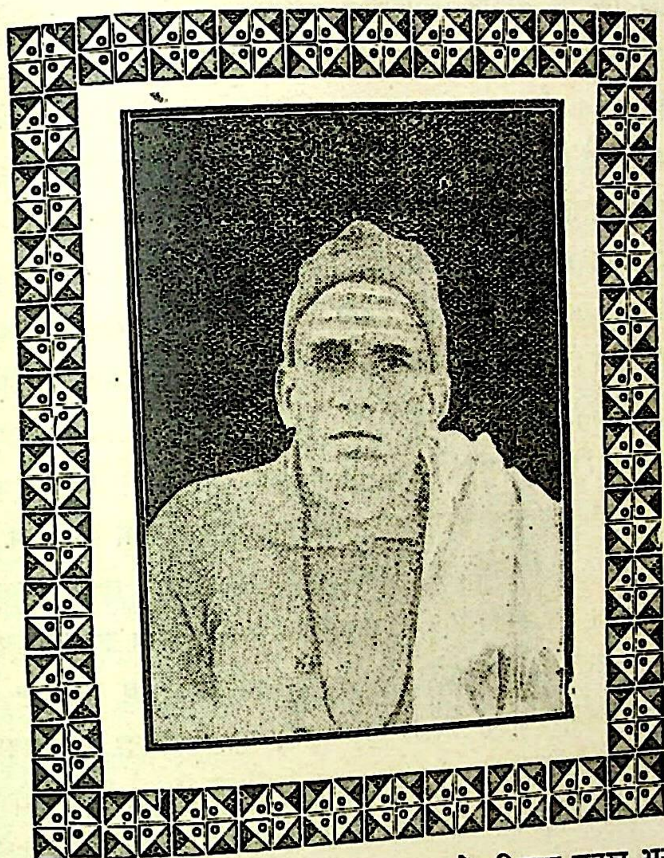
यस्योदारदयोदये भुवितले चन्द्रोदये वार्थिनः,
सञ्जाताः सुहिता हिताय न परानायन् चकोरा यथा।
विरूभायभिधो विधाववहितोऽसौ धर्मवीरोऽग्रज
आस्थानीं समपादयत् सुकृतिनां रम्ये शिवादौ पुरे॥

| | |
|---|---|
| वैशाख शुक्ल सप्तमी<br>बुध १९९६ | महादेव उपाध्याय<br>संन्यासी संस्कृत कालेज—काशी |

रात्रि के समय भजनीक श्री पण्डित वच्चन पाण्डेयजी रामलीला तथा शिव-लीला से सभी लोगों के मन का अपूर्व विनोद उत्पन्न करते थे। यों तो प्रतिदिन अगणित जनों को अन्न वस्त्र देने का प्रबन्ध था पर अवभृत स्नान के अनन्तर जब कि यज्ञ में सम्मिलित विद्वानों का यथोचित सत्कार हो गया, श्री १०८ स्वामी कृष्णानन्दजी महाराज अहमदाबाद सन्यासाश्रम के अधिष्ठाता ने एक विशाल समष्टि भण्डारे की आयोजना की। जिसमें स्थानीय तथा आगन्तुक सभी महात्मा सम्मिलित थे।

नमः शिवाय वैंक के व्यापक प्रचार, तथा महामण्डलेश्वरजी की असीम कृपा से उत्तम उपसंहार होने के अनन्तर ब्रह्मचारी धर्मदत्तजी ने अपने परिश्रम को सफल समझा। इसके पूर्व जब आपके चित्त में इस सङ्कल्प ने स्थान बनाया था उसी समय से आपने प्रतिज्ञा की थी कि इस भव्य कार्य की सुसमाप्ति में ही चौर क्रिया कराऊँगा। अब इस मनोनीत कार्य की समाप्ति में आपने मण्डलेश्वरजी से सन्यास दीक्षा के लिये प्रार्थना की। महामण्डलेश्वरजी की अनुमति से आपने सन्यास दीक्षा ली। उसी समय महामण्डलेश्वरजी ने आपका योगपट (नाम) स्वामी धर्मानन्द रक्खा।

## श्री स्वामी धर्मानन्दजी महाराज



संन्यास दीक्षाग्रहण करने के अनन्तर आपने विशाल सवस्त्र भण्डारा तथा दीनों को दान भी दिया।

जिस समय महामण्डलेश्वर जी काठियावाड़ गये थे; जसदन स्टेट में भी आप पधारे थे। वहाँ की राजमाता कुँवरिबा साहिबा परम धार्मिक थी। महामण्डलेश्वर जी के प्रति आप की अत्यन्त श्रद्धा थी। ब्रह्मचारी धर्मदत्त जी की प्रेरणा से राजमाता की सहायता से गीता का विशाल समारोह के साथ जुलूस भी निकला था। राजमाता प्रतिक्षण महामण्डलेश्वरजी की आज्ञा की प्रतीक्षा किया करती थी। पर महामण्डलेश्वरजी शिवाराधन के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार का भी आदेश न देते थे। इस शुभ अवसर में राजमाता तथा कमरीबा साहिबा की ओर से मन्दिर में नैवेद्य के लिये स्थायी प्रबन्ध हो गया जो अबतक तादवस्थ्य है।

साणन्द स्टेट की राजमाता हीराबा साहिबा ने भी मन्दिर में भोग के लिये स्थायी प्रबन्धकर महात्माओं के निवासार्थ तीन कमरे बनवाकर शिवार्पण किया।

श्रीयुत् वीरुभाई डायाभाईजी ने दो कमरे तथा नर्मदा हीरालाल भी एक कमरा बनवा कर शिवार्पण किया। श्रीमान् केशवलाल बुलाखीदासजी ने भी पीपल वृक्ष का विशाल चबूतरा तथा कमरा बनवा कर धार्मिकता का परिचय दिया था।

धार्मिक जनों की गणना में श्रीमती श्रद्धामयी लाहौर की ईश्वरदेवी का भी नाम उल्लेखनीय है। प्रयागराज में कुम्भ के अवसर पर नमः शिवाय बैंक के यज्ञ में आपने पूर्ण सहयोग दिया था। विश्वनाथ आश्रम के मन्दिर निर्माण में भी सहायता दे कर अपनी उदारता तथा धार्मिकता का परिचय दिया था।

कुछ काल तक इस कार्य की समाप्ति में महामण्डलेश्वरजी विश्वनाथाश्रम ही में निवास किये। आपके पास सभी सम्प्रदाय तथा सभी मत के लोग प्रत्येक कार्य में परामर्श लेने आते थे। सभी के साथ आपका समान व्यवहार रहता था। किसी भी मत का विरोध तो आपने कभी भी न किया। अतः सभी लोगों की आप पर अपूर्व श्रद्धा थी। उज्जैन के कुम्भावसर पर आपने निखिल धर्म सम्मेलन कर वेद भगवान् की सवारी भी निकाली थी जिसमें सभी सम्प्रदाय के लोग रिक्तपाद हो सम्मिलित हुए थे। यह केवल आप की समदर्शिता तथा उदारता का फल था।

पूर्वोक्त मण्डलेश्वरों के द्वारा धर्म प्रचार कार्य की यथेष्ट परिपुष्टि देखकर महामण्डलेश्वरजी निर्भर से हो गये। अब आपके चित्त में सर्वदा एकान्तवास तथा योगाभ्यास की ही अभिलाषा रहती थी पर आप कहीं भी अथवा किसी भी अवस्था में क्यों न हो लोग आपके पास परामर्शार्थ तथा उपदेशार्थ आया ही करते थे। जो इस समय आपकी मनोवृत्ति के प्रतिकूल प्रतीत होता था। फिर भी किसी को भी विमुख न जाने देते थे। जिस भावना से जो उपस्थित होते थे। आप यथा शक्ति यथाज्ञान उसे अवश्य सन्तुष्ट करते थे। जब कि आप विश्वनाथाश्रम में भी मिलने वालों का अधिक गमागम देखा तो वहाँ से अन्यत्र एकान्तवास के लिये यात्रा के व्याज से निकले। पर जन समागम तो आपके साथ-साथ चलता था और मार्ग में उत्तरोत्तर उन्नति भी किया करता था। अनेक स्थलों में विचरण करते हुए चातुर्मास व्रतार्थ आप अहदाबाद चले गये। सन्यासाश्रम में आपका निवास हुआ। इस वर्ष वर्षा के अभाव से उस प्रान्त में अत्यधिक अशान्ति फैली हुई थी। खिन्नजनों का सदय निरचण कर महामण्डलेश्वरजी ने पर्जन्ययाग करने का आदेश दिया।

देवा न किञ्चिद्वितरन्ति किन्तु प्रसद्य ते साधुधियं ददन्ते"

प्रसन्न देवता अपने हाथ से किसी को कुछ नहीं देते पर वे केवल सद्बुद्धि प्रदान करते हैं। मण्डलेश्वरजी के आदेशानुसार भक्त शिरोमणि जीवन लाल आशा-

रामजी पटेल ने ६०००) व्यय कर याग का सम्पादन किया। पूर्णाहुति तक सुचारु वृष्टि हुई और सभी इस घोर विपत्ति से मुक्त हुए। चातुर्मास के अनन्तर ही फिर आप तीर्थ-यात्रा के लिये विचरण किया करते थे।

शनैः शनैः महामण्डलेश्वरजी व्यावहारिक सभी कार्यों से उपरत होने लगे। इस समय आप छः छः घण्टे एकान्त में बैठकर समाधिस्थ भी होते थे। पर आपके बनाये हुए विस्तृत क्षेत्र में कहीं न कहीं अवश्य किसी न किसी प्रकार की आवश्यकता पड़ती ही जाती थी। मण्डली के महात्माओं के समझाने पर भी मिलनेवाले दुराग्रह कर ही बैठते थे। ऐसी परिस्थिति में महामण्डलेश्वरजी ने हिमालय जाने का विचार स्थिर कर लिया।

**उत्तर काशी की यात्रा**

कतिपय महात्माओं के सहित भ्रमण करते हुए आप हिमालय पहुँचे। वहाँ पर उत्तर काशी को ही समाधि योग्य स्थान निश्चित किया। उत्तर काशी पहुँचकर महामण्डलेश्वरजी ने एकान्तवास की अभिलाषा प्रकट की। उसी समय धर्मप्रिय साधुसेवी गोस्वामी गणेशदत्तजी ने जिनकी परोपकारिता से प्रायः सभी भारतीय परिचित हैं, अपने बँगलेपर निवास करने का अनुरोध किया, जो उत्तर काशी से कुछ दूर पर है। सर्वथा अनुकूल इस स्थान को महामण्डलेश्वरजी ने मनोरम समझा और वहीं निवास करने लगे। यहाँ पर आपको समाधि के लिये समय मिलने लगा। पर कुछ ही काल के अनन्तर यहाँ भी अन्य स्थानों की भाँति जनसमुदाय का यातायात प्रारम्भ हो गया। किसी दिन उत्तरकाशीस्थ विश्वनाथजी के मन्दिर की दशा देखकर महामण्डलेश्वरजी ने इसे सुचारु रूप देना निश्चित किया और मन्दिर में सङ्गमरमर पत्थर लगवाया। आपके निवास से धार्मिक जनों को तो अपूर्व आध्यात्मिक लाभ होता था, पर महामण्डलेश्वरजी की दिनोदिन समस्त विषय समूह से निवृत्ति ही होती जाती थी।

कुछ दिन उत्तर काशी में निवास करने के अनन्तर महामण्डलेश्वरजी फिर काशीजी लौट आये और विश्वनाथाश्रम में निवास करने लगे। पास में रहनेवाले महात्माओं का कथन है कि इस समय महामण्डलेश्वरजी के व्यवहार से प्रतीत होता था कि आप सप्तम भूमिका में प्राप्त हैं।

**अहमदाबाद**

इस प्रकार काशी विश्वनाथाश्रम में ही कुछ दिन निवास करते हुए महामण्डलेश्वरजी ने समय यापन किया। सम्वत् १९९८ के

चातुर्मास व्रत के लिये अहमदाबाद निवासी भक्त जनों ने तथा छबिल भाई बलवन्तराय जी ने अहमदाबाद में ही निवास करने का अनुरोध किया। भक्तवत्सल वीतराग आत्माराम महामण्डलेश्वरजी अहमदाबाद चले गये।

अहमदाबाद संन्यासाश्रम में ब्रह्मविद्या-मार्तण्ड महामण्डलेश्वरजी उपनिषद की कथा किया करते थे। पर पाञ्चभौतिक शरीर से तथा सन्मार्ग प्रदर्शक लीलाओं से निरपेक्ष से प्रतीत होने लगे थे। कारण अगणित धार्मिकोत्सव महारुद्र याग, पत्रिका प्रचार, नमःशिवाय बैंक का प्रचार तथा समर्थ अन्य मण्डलेश्वरों पर धर्म प्रचार भाररोपण से गुरुजी की आज्ञा के यथावत् पालन के अनन्तर कुछ कर्तव्य शेष न पाया। अब तो आप प्रारब्ध कर्म की समाप्ति की ही प्रतीक्षा किया करते थे। वह भी वज्रपातोपम समय समीप ही आ रहा था।

**अन्तिम प्रवचन**

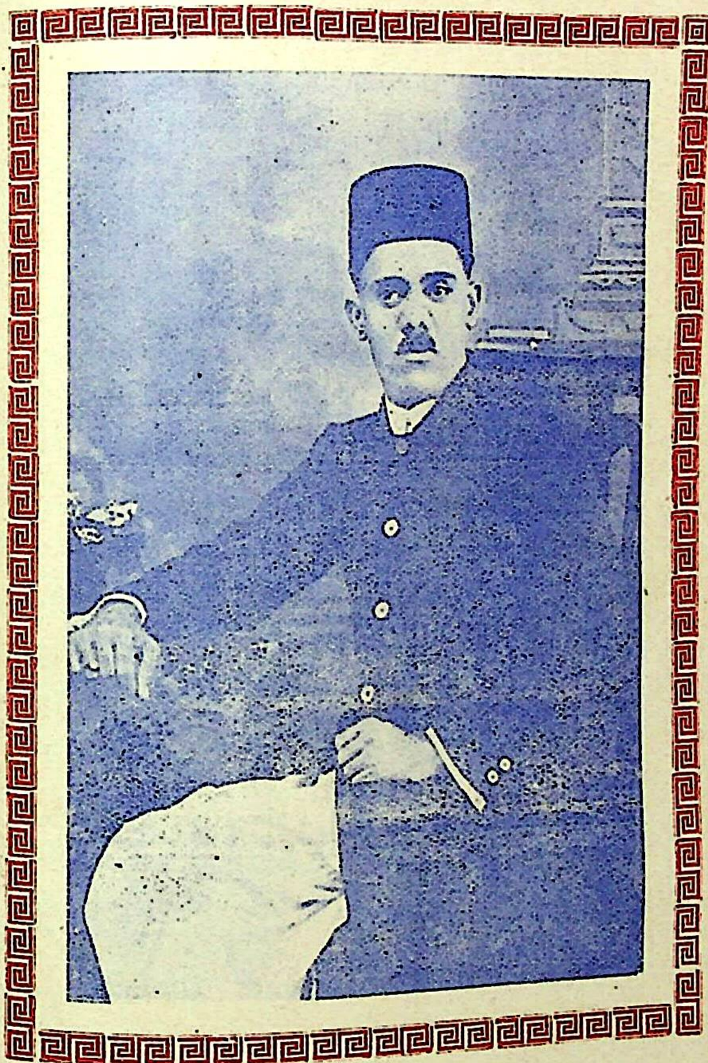
श्रावण मास की अमावस्या को महाराज के प्रवचन की व्यवस्था बड़े ही समारोह के साथ हुई। चारों ओर लाउड स्पीकर भी लगाये गये। उस दिन भक्तजनों की अपार भीड़ थी। यही महामण्डलेश्वरजी के सुधोपम प्रवचन श्रवण करने के लिये भक्तजनों के सौभाग्य की इति श्री थी। सम्भवतः इसी कारण भक्तगण अन्तरात्मा से प्रेरित हो उस दिन अधिक संख्या में प्रवचन श्रवणार्थ पधारे थे। प्रवचन तथा कीर्तन का दृश्य भी अभूतपूर्व ही था। सभी लोग आनन्द-सागर के अधस्तल तक पहुँच चुके थे। यही सुधासागर का अवगाहन अन्तिम तथा स्मृत्यर्थ था। अस्तु प्रवचन की समाप्ति में महाराज निवास-स्थान में आये। उसी समय अल्प सन्ताप के साथ शिरोवेदना का अनुभव हुआ। यही था आप का रोग अथवा लोक-लीला की समाप्ति का व्याज।

**उपचार**

वैद्यों को बुलाकर दिखलाने पर साधारण शिरोवेदना मानकर उपचार किया गया। उपचार से दो-तीन के लिये कुछ स्वस्थ दिखाई पड़े। पुनः शिरोवेदना का प्रारम्भ हुआ। फिर डाक्टर बुलाये गये। सानन्द स्टेट की राजमाता श्रीमती हीरावा साहिबा की पवित्र लोकोत्तर भक्ति का सत्य स्वरूप तत्काल विकसित हो गया। आप अपने आराध्य गुरुदेव की स्वस्थता के निमित्त अपने स्वाभाविक व्यक्तित्व तथा सुखशीलता को तिलाञ्जलि देकर सेवा कार्य में स्वयं लगी रहती थीं। आपने निश्चय कर लिया था कि चाहे जो कुछ व्यय हो गुरुदेवजी स्वस्थ हो जायँ। यह विचार कार्य रूप में भी परिणत किया गया। अनुभवी

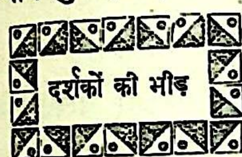
विप्रवंशावतंस

श्रीमान् छबिलभाई बलवन्तराय भट्ट इनामदार



गुरुदेवभक्तिनिरतः श्रीयुद्बलवन्तरायतनुजातः ।
सत्कर्मपूतचित्तो जीयान्नितरां छबिलभाई ॥ १ ॥

चिकित्सकों ने चिकित्सा प्रारम्भ की पर निदान तथा रोग स्वरूप के निर्णय न होने पर अनुमानतः औषधि दी गई, पर सभी उपचार अकर्मण्य रहे। उस,समय महाराजजी समदर्शिता की चरम सीमा पर पहुँच गये थे। आपकी दशा के परिवर्तन में औषधि का तनिक भी प्रभाव न दिखाई पड़ता था। मध्य मध्य में ॐकार की ध्वनि सुनाई पड़ जाती थी।




असंख्य नागरिक नरनारियाँ समाचार ज्ञानार्थ आती थीं पर बाहर से ही स्वस्थता का समाचार पाकर द्वारस्थ चिकित्सक द्वारा यथागत लौटा दी जाती थीं। महाराजजी की चित्तवृत्ति उस समय इस प्रकार तदाकार हो चुकी थी कि आपको कटु तथा मधुर औषधि का ज्ञान भी न था। कभी कभी जब समाधि से उपरत होते थे तो चिकित्साक्रम से उपचारकों को रहित होने की अनुमति देते थे। पर सांसारिक जीवों को लौकिक व्यवहारों के बिना सन्तोष ही कहाँ। वे अपने सन्तोषार्थ महाराज से प्रार्थना कर औषधि प्रयोग प्रचलित ही रखते थे।




बाह्य दृष्टि से तो यही कहा जा सकता है कि महाराज किसी अज्ञात व्याधि से आक्रान्त हैं। पर वस्तुतः तो बात यह थी कि लोकोपकार लीलाओं की पूर्णता में आप अब स्वरूपावस्थान को ही उचित समझकर व्यावहारिक प्रपञ्च व्याधियों के सर्वथा निराकरण में लगे थे। यही कारण था कि अन्तिम श्वासक्रिया तक आपकी आकृति पर नाम मात्र का भी मालिन्य तथा किसी प्रकार के विकार ने स्थान पाने का साहस न किया।

**ठीक है:—या निशा सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।**
**यस्यां जाग्रतिभूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥**

पहले इस बात को कई स्थलों में बता चुका हूँ कि महामण्डलेश्वरजी ६-८-१० घन्टे की समाधि लगाया करते थे। अब उसी समाधि का स्वरूप अहर्निश स्थिर रूप में रहने लगा। इसी लिये डाक्टरों को जब आप स्वस्थ प्रतीत होने लगे और उनकी ओर से पथ्य की अनुमति दी गई तो महाराज यदि आचमन कर रहे हैं तो उसी का पर्यवसान नहीं अथवा हस्तपदादि जिस कार्य में लगाये जाँय बिना रोके उसी कार्य में लगे रहते थे। अनुभवी लोगों का कहना है कि इसी अवस्था को सप्तम भूमिका कहते हैं। कभी कभी तो आवाज देने पर भी आप समाधि से उपरत न होते थे। पर मध्य मध्य में ॐकार ध्वनि से मुखकमल को अवश्य अलं-

कृत करते थे। व्यावहारिक कार्यों की सम्पादन दशा में इन्द्रियों से मनके सम्बन्ध न होने के कारण आपको किसी भी वस्तु का स्मरण न रहता था और न ॐकार के अतिरिक्त अन्य शब्द ही मुख से निकलता था।

जिस समय जीवन्मुक्त महाराज की यह दशा थी उस समय दान जपादि का भी प्रारम्भ हो गया था। लीला समाप्ति के दो दिन पूर्व आपने स्वयं गोदानादि भी किया था।

लोकोपकारक महामण्डलेश्वरजी के शरीर स्थिति के लक्ष्य से डाक्टरों ने अथक परिश्रम किया। पर लोक के सौभाग्य समाप्ति को कौन परिवर्तित कर सकता था। "दैवे निरुन्धति निबन्धनतां प्रयान्ति हन्त प्रयास परुषाणिन पौरुषाणि"।




विद्वान् विरक्त महात्मा रामरतनपुरीजी को जो खेड़े में चातुर्मास व्रत कर रहे थे, विदित हुआ कि महाराज महामण्डलेश्वरजी इस दशा में हैं तो आप उसी समय महाराज के दर्शनार्थ अहमदाबाद पधारे। उत्सुकता के वशीभूत हो आप तत्क्षण महाराज के दर्शनार्थ शीघ्र गये। देखा कि महाराजजी निर्वीज समाधि में स्थित हैं। यह भाद्रपद नवमी अर्ध रात्र का वृत्तान्त है। आपने सभी महात्माओं को विश्रामार्थ भेज कर स्वयं सेवार्थ समीप में बैठ गये। एक विरक्त निर्भय होते हुए भी जनता की व्याकुलता देखकर महात्माजी स्वयं भी व्याकुल हो उठे और आपके नेत्र से निकले हुए अश्रु विन्दु दैवयोगात् महामण्डलेश्वर जी के चरणों पर पड़े। अश्रुविन्दु के स्पर्श से आप समाधि से अल्पकाल के लिये उपरत हुए तथा स्वामी रामरतनपुरी जी को विषण्ण देखकर कहने लगे।

"गर्भके पूर्व यह शरीर न था और न प्राण वियोग के अनन्तर रहेगा। अतः इसका सम्बन्ध सर्वथा अनित्य है जो आपका सत्य सम्बन्धी है वह तो कहीं आने जानेको नहीं। गीता में कहे हुए सच्चिदानन्द भगवान् कृष्णचन्द्र के वाक्य का स्मरण करो।

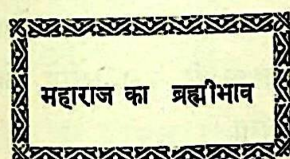
"अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युद्धस्व भारत ! ॥
नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।"

अतः इस क्षणभङ्गुर शरीर के लिये शोच करना कातरता है अविनाशी शुद्ध बुद्ध मुक्त आत्मा तो अशोच्य है।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥

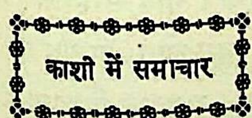
इत्यादि वचनामृत से स्वामी रामरतनपुरीजी को सन्तोष देकर महाराजजी पुनः ध्यानावस्थित हो गये।

संन्यासाश्रम के अधिष्ठाता महामण्डलेश्वरजी के प्रिय शिष्य महाराज कृष्णानन्दजी के पास तारों की गणना न थी। अनेक स्थलों के प्रत्येक व्यक्तियों की जिज्ञासा महाराज के स्वास्थ्य के विषय में थी। जामनगर स्टेट के महाराज साहेब, श्री रानी साहिबा, तथा कुँवर साहेब पृथक् पृथक् समाचार पूछते थे पर मणिविहीन फणी की भाँति सभी जन किंकर्तव्यविमूढ़ से थे उत्तर कौन देता। आगन्तुक जनों का उपचार भी करनेवाला कोई न था। कारण भीड़ अपार थी और उपचारक संज्ञा विहीन थे।



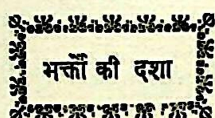

दूसरे दिन मध्याह्न में हाथ पैरों में कुछ शीतता प्रतीत होने पर नियमानुसार नीचे के कमरे में हाथों हाथ महाराज जी लाये गये। ज्योंही नीचे बिठाये गये कि स्वयं मस्तक पर हाथ फेरा, ओंकार ध्वनि के साथ वह तमोनाशक प्रकाशमान दिवाकर हाय! हाय! अस्त हो गया। समाधिस्थ अवस्था में ही लोगों ने कुशासन पर बिठाकर देखा तो कपाल दो भागों में विभक्त दिखाई पड़ा। मालूम होता था कि केवल एक सूक्ष्म झिल्ली से ऊपर आवृत है।

महाराज के ब्रह्मीभाव का समाचार उसी क्षण सम्पूर्ण नगर में फैल गया। सन्देहापन्न भक्तमण्डली सत्यता-ज्ञानार्थ तथा दर्शनार्थ शीघ्र आश्रम की ओर दौड़ पड़ी।




रात्रि में काशी जी समाचार आने पर भी किसी को विश्वास न हुआ। अतः गोविन्द मठ तथा सन्यासी संस्कृत कालेज से "महाराज जी कैसे हैं" वह समाचार तार द्वारा पूछा गया। त्रिप्रकुलभूषण वीरुभाई तथा छबिल भाई, सेठ रमणलाल, भोगीलाल, त्रिभुवन दास आदि का परिश्रम तथा सेवाविधि चिरस्मरणीय है कि आपने डाक्टरों के साथ साथ रहकर अहर्निश आश्रम को न छोड़ा। वीरुभाई का तार आया कि "हम

आकाशयान से शरीर ला रहे हैं"। समाचार की पुष्टि होने के अनन्तर विकसित कमल वन पर तुषारपात तथा प्रफुल्लित उद्यान पर दावाग्नि का प्रकोप सा हो गया।




सहसा समाचार नगर में जल पतित तैल बिन्दु की भाँति चारों ओर फैल गया। सभी भक्तजन उद्भ्रान्त से हो गये। सांसारिक जनों की बात ही क्या उस समय तपस्वी योगपरायण महात्माओं का भी धैर्य-धन लुट सा गया। उनका वशित्व, मनोनिग्रह, ब्रह्मचर्य, सर्व विषयविरक्ति, गुरुपदेश, वेदान्तचर्चा, वैराग्य बुद्धि, प्रपञ्चहेयता ज्ञान, मायापराङ्मुखत्व तपस्याभिनिवेश, चित्तानुशासन, शास्त्राभ्यास, न जाने किस मार्ग से कहाँ चले गये।

सभी भक्तगण प्रथम तो संज्ञाहीन से हो गये। कतिपय क्षण के अनन्तर जब कुछ संज्ञा हुई तो सभी सोचने लगे। कि अब हम लोग कहाँ जाँय, क्या करें, किसे शरण बनावें, किस उपाय से, किस प्रकार से, किसकी सहायता से, किस अवलम्ब से, किस चातुर्य सें, किस बुद्धि से, किस आश्वासन से, हम लोग प्राणावलम्बन करें। फिर इन निष्प्रयोजन प्राणों की रक्षा से ही हम लोगों को क्या लाभ। इत्यादि विकल्पों का पुनः पुनः आवर्तन होने लगा।

बहुत से भक्तजन तो फूट-फूट कर विलाप कर पाषाण को भी करुणा से द्रुत कर देते थे। हाय मैं मारा गया, धोखा पाया, मुझ पर यह क्या वज्रपात हुआ, हम लोग उच्छिन्न हो गये, अरे नीच! दुर्दैव! इन अशरण भक्तोंने तेरा क्या अपकार किया था। अरे पाप! चाण्डाल! काल! इतने जनों पर तूने साथ-साथ क्यों अपनी क्रूरता दिखलाई। अरे दुश्चरित! दुर्दैव! तू अपना कर्तव्य क्यों पूर्ण समझाता है, हम अनुयायियों को भी महाराज की चरणछाया में ले चल! भगवन् मण्डलेश्वर गोविन्दानन्द जी! आपकी वह ब्रह्मविद्या की निधि लूटी गई। धर्म! आज निरवलम्ब हो। हाय! तपस्ये! तू कहाँ रहेगी। हाय सरस्वति! तू आज विधवा हो गई। अये सत्य, यज्ञ, दान, शास्त्र! तुम लोग अनाथ हो। भगवति काशिके! आज तुम्हारा नाम अन्वितार्थ न रह गया। भगवान् विश्वनाथ! क्या हम अनाथ विश्व से बहिर्भूत कर दिये गये कि स्वस्वरूप मण्डलेश्वर जी को अपने में विलीन कर हमे असहाय कर छोड़ दिये।

इस प्रकार ग्रहग्रहीत सी, भूताविष्टसी, उन्मत्तसी, उद्भ्रान्तसी भक्तमण्डली जोर से विलाप करने लगी। किसी-किसी समय तो मूर्छित भी हो जाती थी।

पर प्रारब्ध कर्म को तो सभी को अवश्य भोगना पड़ता है। यद्यपि अश्रुप्रवाह के फौहारे चल रहे थे, प्रलाप के मानो अनेक नवाङ्कुर निकल रहे थे, दुःखाग्नि की अनेक लपटें प्रवृद्ध हो रही थीं, मूर्च्छा का सन्तान चल रहा था, पर प्राण त्याग के लिए सभी विवश थे। कारण, प्राण त्याग तो प्रारब्ध समाप्ति पर निर्भर है।

इतना होने पर भी विमान द्वारा महाराज के शरीर का आगमन सुन कर काशी निवासी भक्त गण अन्त्य क्रियोपयोगी विमान कौशेय वस्त्र आदि के संग्रह में किसी न किसी प्रकार लगे ही थे ? केवल इतनी आशा अवशिष्ट थी कि महाराज के शरीर का अन्तिम दर्शन हो जायगा। पर " हृष्टं मनः केन विधेः प्रविश्य " ईश्वर की इच्छा को कौन जान सकता है। दूसरा तार अहमदाबाद विश्वनाथाश्रम के अध्यक्ष महाराज कृष्णानन्द जी का आया। कि "महाराज की अन्तिम क्रिया के लिये नर्मदा जा रहे हैं" सभी लोग सुनकर पुनराहत से हुए, पर वश ही क्या था।

**काशी शव न आने का कारण**

इस वर्ष गुजरात प्रान्त अतिवृष्टि से अत्यन्त ही धनजन हानि का अनुभव कर चुका था। प्रायः लाइनें भी वह गईं थीं, अतः यातायात रुक जाने के कारण हवाई जहाज से काशी ले जाने का विचार हुआ। प्रथम तो जहाज की स्वीकृति मिली पर अन्त में वाधायें उपस्थित की गईं। सानन्द स्टेट की राजमाता का विचार था कि चाहे कितना भी व्यय हो पर शरीर काशी जी ही जाना चाहिये। अतः पातित आर्थिक बाधा भी अकिञ्चित्कर ही थी। अन्ततः अनेक प्रयत्न करने पर यह भी सफलता न मिली तब भक्तों की राय समाधि देने की हुई। पर यह भी विवादास्पद विषय था। राजमाता की अभिलाषा स्टेट में ही समाधि देने की थी। अहमदाबाद निवासी चाहते थे कि वहीं बने तथा कुछ लोगों का विचार था कि नर्मदा के किनारे समाधि स्थान हो। अनेक विवाद के अनन्तर नर्मदा के किनारे ही के लिये निश्चित हुआ।

**शव यात्रा**

रविवार के अतिरिक्त सोमवार को भी नगर का कारबार बन्द था। सोमवार को प्रातः काल महाराज जी का विमान निकलने के लिये पुलिस स्टेशन पर समाचार दे दिया गया था। प्रातःकाल ही पलटन तथा पुलिसका सुप्रबन्ध प्रचलित हो गया। घुड़सवार तेथा पैदल सिपाही भी अधिक सङ्ख्या में थे। अन्यथा इस अपार भीड़ को अधिकार में करना असम्भव था। जुलूस एलिस ब्रिज से चला। मार्ग में रुपये तथा पूजनार्थ वस्त्रों से विमान भर जाने पर मालायें हटानी

पड़ती थीं। विक्टोरिया पार्क, भद्रकाली, लाल दरवाजा, दिल्ली गेट तथा हनुमान कॉंप होता हुआ जुलूस स्टेशन पर पहुँचा। पर गाड़ियों का यातायात रुक जाने के कारण मोटर से ही जाना निश्चित हुआ। एक विशाल पेटी जो साथ लाई गई थी वह दिव्यमूर्ति उसी में निहित की गई। सर्वदा के लिये उस दिव्य मूर्ति की अगोचरता का स्मरण कर किस सहृदय के नेत्र से अश्रु बिन्दु न गिर पड़े। मण्डली के महात्मा तो करुण क्रन्दन से ही अपने शोकातिरेक को न्यून किये। पेटी में वर्फ भर कर मोटर पर रख दिया गया। नड़ियाद होते हुए रेल गाड़ी द्वारा लोग भड़ौच पहुँचे। पेटी खोली गई। शरीर की स्वच्छता तथा कान्ति में किसी भी प्रकार का परिवर्तन न था। पूजन तथा अभिषेकादि के अनन्तर नाव पर ले जाकर समाधिस्थ कर दिये गये। हाय! जिस शरीर के दर्शनार्थ तथा चरणस्पर्श के लिये लोग लालायित रहते थे, अनेक दुःखों को दर्शन से भूल जाते थे, जिसकी आशा पर अपने प्राणों का निछाधर भी अल्प समझते थे आज उसी शरीर को अपने हाथों लोगों ने जल में प्रवाहित किया। संसार में अनेक धार्मिक कार्य तथा दान मानादि से समय का सदुपयोग करते हुए महाराज जी शरीर की क्षणिकता दिखा कर यही अनत्तर उपदेश अन्त में भी दे गये कि शीघ्रातिशीघ्र इस क्षणिक शरीर से जब तक प्राण वायु का सम्बन्ध है अक्षय वस्तु का सञ्चय कर लेना ही मनुष्य जन्म की सफलता है।

**शोक सभायें**

इस अपार दुःख मय क्रिया कलाप की समाप्ति में भारत के प्रत्येक अंशो में शोक सभायें होने लगीं। काशी के अनेक स्थानों में, अहमदाबाद, कलकत्ता, बम्बई, जंडियाला, ( पंजाब ) लाहौर, चम्पारन ( विहार ) खम्भात, हरिद्वार, जूनागढ़ ( काठियावाड़ ) तथा जाम नगर आदि स्थानों में शोक सभायें हुई। अनेक विद्वानों ने पत्र पत्रिकायों में अपने शोकोद्गार को प्रकट किया। ऐहलौकिक तथा पारलौकिक मार्ग के प्रदर्शक महाराज महामण्डलेश्वर जी ब्रह्मीभाव होने पर हम संसारियों को इससे बढ़कर अधिक दुःख का विषय और क्या हो सकता है। वे सर्वथा अशोच्य थे और अब भी अशोच्य हैं पर सर्वथा शोचनीय हमलोगों को बनाकर हमारे दुर्दैव से असमय में ही सच्चिदानन्द स्वरूप धारण कर लिये।

**गुरुदेव ! समुद्धरता भवता जनता वनाहमपि ।**
**सीदन् भवमरुगर्ते करुणा मूर्ते ? न सर्वथोपेक्ष्यः ॥**

## नवम परिच्छेदः

**जयेन्द्रे स्वस्थितिं याते तत्त्यक्ताशरणान् जनान्।**
**सान्त्वयन् जयतूपेन्द्रः कृष्णानन्दश्चिरं भुवि॥**

महामण्डलेश्वरजी के निर्वाणानन्तर साधु समाज तथा भक्त जनता में शोक का साम्राज्य छा रहा था। पर लोकमर्यादा का संरक्षण यावत् शरीरस्थितिकरना तो हालिक से लेकर योगीश्वर तक अनिवार्य है। अहमदाबाद में लौट आने पर उपस्थित महात्मा वृन्द तथा भक्त जन काशीजी में ही लोकमर्यादा के अनुसार षोड़शी भण्डारा आदि करने के लिये विचार स्थिर किये। सभी लोगों के प्रस्थान की तिथि निश्चित हो गई। पर इस कार्य के प्रथम ही महामण्डलेश्वर जी के रिक्त स्थान की पूर्ति के लिये किसी तद्गुणपूर्ण विद्वत्ता, तितिक्षा, तपस्विता, वदान्यता तथा समाजप्रियता से पूर्ण व्यक्ति का निर्वाचन कर लेना अत्यावश्यक था। पर सभी कार्यों पर विचार काशी जी में ही होना सम्भव समझकर सभी लोग काशी जी आये।

काशी जी आने पर यहाँ के भक्तजनों तथा महात्माओं की दशा भी लोगों को करुणोत्पादक प्रतीत हुई। सभी किंकर्तव्यविमूढ़ से हाथ पर हाथ रखकर बैठे थे। विवेकी ज्ञानवृद्ध महात्माओं के उपदेश से जब कुछ लोगों में विचारक्षमता ने पद पाया तो सभी प्रमुख महात्मा तथा गण्यमान्य भक्तों में इस बात की चर्चा चलने लगी कि चिरकाल से इस सिद्ध पीठ से सिद्ध महात्माओं के द्वारा धर्म प्रचार कार्य होता चला आ रहा है।

पूज्यपाद मण्डलेश्वरजी ने जिस कार्य को चरम सीमा तक पहुँचा दिया है यद्यपि इसे पल्लवित करने की आवश्यकता शेष नहीं रह गई है पर इसका संरक्षण भार उठाना भी साधारण व्यक्ति का काम नहीं है। पूज्य लोकव्यवहारनिपुण महाराज रामपुरीजी महन्तजी के सम्मुख यह विचार रक्खा गया। सभी गण्यमान्य जन गोविन्दमठ में उपस्थित हुए। महाराज गुणज्ञ रामपुरीजी ने अपना मत अहमदाबाद संन्यासाश्रम के अधिष्ठाता सर्वगुण सम्पन्न श्री १०८ स्वामी कृष्णानन्दजी महाराज के लिये प्रकट किया। इसके पूर्व अनेक सदस्यों ने अपना भिन्न भिन्न मत प्रकट किया था। पर मान्य अनुभवी महन्तजी के मत पर सभी लोगों ने सहर्ष अनुमोदन कर महाराज कृष्णानन्दजी को शीघ्र बुलाने का निश्चय किया। जिस समय अहमदाबाद से सभी लोग आ रहे थे उस समय स्थानीय भक्तजनों के सान्त्वनार्थ अथवा अन्य कार्यवश स्वामीजी महाराज संन्यासाश्रम में ही रह गये थे।

महामण्डलेश्वरजी अपनी जीवनावस्था में ही आप की अलौकिक प्रतिभा, उदारता तथा बोधनशैली से अत्यन्त आवर्जित हो आपको मण्डलीश पद से विभूषित करना चाहते थे। पर संन्यासाश्रम अहमदाबादमें आपका विशेष अनुराग तथा आश्रमस्थ महात्माओं पर विशेष श्रद्धा देखकर आप इस शुभ कार्य को स्थगित करते आये थे। सम्भवतः सर्वार्थदर्शी महामण्डलेश्वरजी ने यही सोच कर स्थगित कर दिया हो कि हमारे न रहने पर समग्र धर्म कार्य आप पर सुतरां पतित होगा अतः इन विरक्त को अभी से भारान्वित क्यों किया जाय। अस्तु, जो हो सभी लोगों की रुचि सर्वात्मना महाराज कृष्णानन्दजी पर ही स्थिर हो गई। आप अहमदाबाद से सादर आमन्त्रित हुए। यों तो गुरुदेव की षोडशी के समय आपका आने का स्वयं विचार था पर आमन्त्रण जाने पर आप शीघ्र काशीजी आ गये। और टेढ़ीनीम गोविन्दमठ में निवास करने लगे। उपर्युक्त स्वामीजी महाराज के दर्शन से विकल जनता के वियोगाहत हृदय के व्रण में वेदना कुछ कम प्रतीत होने लगी।

अतः किसी प्रकार कलेजे को थाम कर लोग षोडशी के यथावत् सम्पादन में सन्नद्ध हो गये। प्रायः सभी सामग्रियाँ आवश्यकता से भी अधिक एकत्र हो गईं। षोडशी के दिवस अखाड़ों तथा अन्यान्य प्रतिष्ठित स्थानों से गण्यमान्य महात्मा तथा सद्गृहस्थ एवं विद्वत्समाज भी उपस्थित था। सभी लोगों के उचित सत्कार के अनन्तर स्वामी रामपुरीजी महाराज ने मण्डली के सम्मुख अपने भाव को उपस्थित किया। आपका आशय निम्नलिखित प्रकार का था।

**योग्य उत्तराधिकारी के लिये प्रस्ताव**

दानदयाधर्मैकवीर महाराज महामण्डलेश्वरजी की संरक्षता में इस गोविन्दमठ तथा संन्यासि संस्कृत कालेज आदि संस्थाओं का सुचारुरूप से निर्वाह होता था। आपके ब्रह्मीभाव से इन्हें हानि पहुँची केवल इस लिये मुझे दुःख नहीं। किन्तु इसलिये कि आधुनिक युग में विश्वकल्याणार्थ धर्म प्रचार कार्य को सर्वतोमुख बनाकर तथा सफलता भी प्राप्तकर जो छोड़ गये उसका संरक्षण तथा पोषण किस प्रकार होगा। आपके प्रवर्तित धार्मिक कार्य चाहे संवर्धित न हों पर उनकी यथावत् स्थिति रखना भी अधिक महत्व की बात है। हाँ! यद्यपि हम उस अलौकिक शक्ति की स्पर्धा नहीं कर सकते पर हमलोगों को जो पूज्य महामण्डलेश्वरजी के सम्पर्क में रहकर आपके विशेष कृपापात्र बने हैं, आपके ही आदेश का यथोचित पालन करते हुए कर्तव्यपरायणता तथा परिश्रमशीलता का परिचय अवश्य देना होगा। हमलोगों को जो आपकी सेवा शुश्रूषा में लगा रहना ही समय का सदुपयोग समझते थे, उस ब्रह्मीभूत

आत्मा के प्रसन्नार्थ कहीं अधिक सेवा शुश्रूषा करनी होगी। मुझे विश्वास है कि हममें ऐसी दैवीशक्ति न होने पर भी उस अजर अमर व्यापक की अनुकम्पा से हम समर्थ तथा सुपरिणामदर्शी बन जायँगे। आपके बताये हुए जीवन सम्बन्धी नियमों का भरसक पालन करते हुए तथा आपके द्वारा सञ्चालित एवं परिपोषित धार्मिक प्रवृत्तियों के स्थिरता सम्पादन में तत्पर रहते हुए हमलोग ऐहलौकिक तथा पारलौकिक शुभकार्यों में अभ्रान्त कृतकृत्य होंगे। महामण्डलेश्वरजी साक्षात् शिव स्वरूप थे और इस समय भी उसी रूप में निरवच्छिन्न वर्तमान हैं। शुद्ध तथा निःस्वार्थ भाव से आपके द्वारा लोक कल्याणार्थ प्रवर्तित प्रवृत्तियों का अनुसरण कर आपकी अजर अमर कीर्ति को स्थिर रखने के साथ हमलोग भी आपकी, अनुकम्पा से मोक्ष तक के भागी बन सकते हैं।

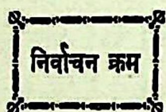
हम समझते हैं कि इस असाधारण भार के उद्वहन के लिये सभी साहस खो बैठेंगे। पर महामण्डलेश्वर जी के आदेशों पर जिसे विश्वास नहीं वह आपके शिष्य होने का दावा भी नहीं रख सकता। महामण्डलेश्वर जी का कथन था। "किसी कार्य में क्षम न होनेपर भी अभिलाषा को हीन न बनाओ" हमें विश्वास है कि यदि हम आपके प्रदर्शित पथ के अनुसारी बनने का साहस रखते हैं तो "जड़ानप्यनुलोमार्थान् प्रवाचः कृतिनां गिरः" इस नियम से आप का ही अनुग्रह विषम से विषम कार्याब्धि में बेड़ा पार कर देगा। इन बातों की यथार्थता समर्थित करते हुए सर्वगुणसम्पन्न तपस्वी महोदार श्री स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज (अध्यक्ष संन्यासाश्रम अहमदाबाद) इस कार्यभार को स्वीकार कर भक्तों की शोकाश्रुधारा को आनन्दाश्रुप्रवाह से अनुगत कर देंगे, यही हमारी आन्तरिक अभिलाषा तथा विश्वास है।"

**सर्वसम्मति से निर्वाचन**

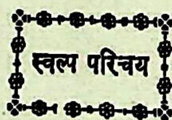
यद्यपि प्रमुख कतिपय अधिकारियों ने महाराज श्री १०८ कृष्णानन्द जी को मनोनीत कर लिया था पर सर्व साधारण के सम्मुख तो यही प्रस्ताव सर्वसम्मति के लिये उपस्थित किया गया। इसके पूर्व भिन्न-भिन्न जनों की भिन्न-भिन्न व्यक्तियों पर दृष्टि थी। महाराज श्री १०८ स्वामी रामपुरी जी के प्रस्ताव पर सहसा 'हरहर महादेव' की उच्चैः ध्वनि के साथ सहर्ष तालिका ध्वनि भी हुई। और सभी की मनोवृत्तियां अत्र केन्द्रित हो गई। अर्थात् सर्वसम्मति से श्री १०८ स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज ही इस रिक्त पद के लिये निर्वाचित हुए।

इसके प्रथम इस विषय की प्रबल आशङ्का थी कि इतने शीघ्र निर्विवाद ऐकमत्य न होगा। प्रायः इस प्रकार के उच्चपद पर अधिकारी के निर्वाचन में विवाद का होना असम्भव नहीं होता जब कि भिन्न-भिन्न विचारशील व्यक्तियों के ऐकमत्य की अपेक्षा अनिवार्य है। पर सर्वप्रियता, भारनिर्वाहकता का ज्वलन्त प्रमाण है। अनेक उलझनों से परिपूर्ण इस कार्यको आपके अनुपम व्यक्तित्वने किस सरलता से हल किया यह भी महत्व का विषय है।

आप के व्यक्तित्व से आवर्जित हो अनभिलषित भार को भी आप के मृदुल कन्धे पर लोगों ने रख दिया। इस प्रकार के उच्च पद की प्राप्ति के लिये प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से उन्नत व्यक्ति भी प्रयास किया करते हैं पर पूज्य श्री १०८ स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज गुरुदेव के वियोगाग्नि से जनित सन्ताप के दूरीकरण का ही प्रतिक्षण उपाय सोचने में व्यग्र थे।

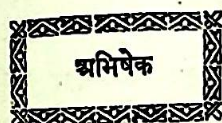



गोविन्दमठ की गद्दी (निर्वाणी अखाड़े के आचार्य पद) का चुनाव किसी एक व्यक्ति पर निर्भर नहीं होता। निर्वाणी, निरञ्जनी आदि अखाड़ों के महन्त, मण्डलेश्वर तथा अन्य दशनामी साधु महात्माओं का ऐकमत्य ही निर्णायक होता है। अतएव गोविन्द मठ की गादी को सर्वथा सुयोग्य महापुरुष ही गौरवान्वित करते आये हैं। इसी क्रमका अवलम्बन आप के निर्धारण में भी किया गया।




श्री १०८ स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज उच्च कुल के ब्राह्मण हैं। बाल्यावस्था से ही साधु महत्माओं में आपका विशेष अनुराग रहता था। इसी कारण अल्प अवस्था से ही आप विरक्त हो विद्याध्ययन के लिये घर से निकल पड़े व्याकरणादि अध्ययन करते हुए आपने यथावत् वेदान्त का भी अनुशीलन किया। शास्त्र, धर्मशास्त्र, इतिहास तथा पुराणों पर भी अधिकार प्राप्त कर आप महामण्डलेश्वरजी के पास भी गम्भीर विवेचना किया करते थे। आपकी योग्यता तथा कर्तव्यपरायणता पर महामण्डलेश्वरजी को इतना बड़ा विश्वास था कि अहमदाबाद संन्यासाश्रमका भार आपही पर रक्खा था। और आपने भी अपने अदम्योत्साह से महामण्डलेश्वर जी की कीर्ति को अजर अमर कर दिखाया। उदारता, त्याग, तपस्विता, लोकप्रियता तथा गुणानुराग तो आप में महामण्डलेश्वर जी के ही सङ्क्रांत हैं। आप की विद्वत्ता तथा सदाचार से समस्त

गुजरात तथा काठियावाड़ अत्यन्त प्रभाविव हो चुका है। राज प्रासाद तथा महाजन मण्डली भी आपके इन अपूर्व गुणों से अपरिचित नहीं हैं। महामण्डलेश्वर जी अनेक पुण्यस्मृतियों के साथ एक अनुपम गुणशाली शिष्यको महाराज कृष्णानन्द जी के रूपमें हम अशरणों के सान्त्वनार्थ छोड़ गये हैं इसमें अल्प भी अतिशयोक्ति नहीं।




सर्व सम्मति से निर्णीत निर्वाचन के अनन्तर अखाड़ों के महन्त तथा अन्य प्रधान महात्माओं ने सहर्ष चादर दी। उसी दिन समष्टि भोज भी था। अगणित महात्मा तथा पण्डितवर्ग भी बुलाये गये थे। बड़े ही धूमधाम से इसका सम्पादन हुआ। मण्डलेश्वरजी तथा प्रधान कार्यकर्ताओं की अनुमति से अनिमन्त्रित तत्समयागत जनों का भी समान ही सत्कार होता था। सवस्त्र भिक्षा हुई और कोई भी ऐसा अभ्यागत न बचा जिसे सादर वस्त्र तथा भोजन न मिला हो।

इसके अनन्तर काशीस्थ विद्वानों की परिषत् की आयोजना हुई जिसमें काशी के सभी अध्यापक तथा अन्य भी विद्वान् सम्मिलित थे। प्रवचन तथा शास्त्र विचार के अनन्तर सभी लोगों का उचित सत्कार भी किया गया। अधिक क्या "नवे तस्मिन् महीपाले सर्वं नवमिवा भवत्" यह उक्ति उस समय चरितार्थ हो रही थी। नवीन मण्डलेश्वरजी की तात्कालिक उदारता तथा धार्मिक प्रवृतियों से भक्तों को विशेष आश्वासन मिला। उनका मनोवल जो महामण्डलेश्वरजी के वियोग से विशेष अवनति की ओर जा रहा था अब उसे उठने के लिये फिर हस्तावलम्ब मिल गया।




इन धार्मिक कृत्यों में निम्नलिखित महानुभाव सहयोग देकर विशेष लाभ के भागी हुए।

श्रीमती हरहोलीनेस बड़ी मां साहेब प्रतापकुँवरि बा साहेब जामनगर स्टेट।
श्रीमती श्रद्धामयी धर्ममूर्ति राजमाता हीरा बा साहेब सानन्द स्टेट।
श्रीमान् विप्रकुलभूषण भट्ट छविलभाई बलवन्तराय जी अहमदाबाद।
श्रीमान् पटेल जीवनभाई आशारामजी।
श्रीमान् भोगीलाल मोतीलालजी पटेल।
श्रीमान् वाड़ीलाल मूलचन्दजी पटेल।

**अभिनन्दन समारोह**

आश्विन कृष्ण तृतीया को संयुक्त प्रान्तीय वर्णाश्रम स्व-राज्य-संघ की ओर से श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी कृष्णानन्दजी महाराज मण्डलेश्वरजी को अभिनन्दन-पत्र देने की आयोजना हुई। हजारों से अधिक संख्या में साधु महात्मा तथा सद्गृहस्थ जुलूस में सम्मिलित थे। निर्वाणी अखाड़े के महात्मा भी जयध्वनि से लोगों के उत्साह को परिवर्धित कर रहे थे।

जुलूस ५ बजे टाउनहाल में पहुँचा। काशी के प्रसिद्ध विद्वान् भी वहाँ उपस्थित थे। महामहोपाध्याय पं० हरिहर कृपालु द्विवेदी जी की, जो इस समय संन्यासी संस्कृत कालेज के प्रिंसिपल हैं, अध्यक्षता में कार्य क्रम का प्रारम्भ हुआ। श्री स्वामी धर्मानन्द जी महाराज मन्त्री संन्यासी संस्कृत कालेज ने सर्व प्रथम शान्तिपाठ किया। पुनः सभापति जी ने हिन्दू संस्कृति में महात्माओं के महत्व तथा प्रभाव पर शास्त्रीय विवेचन करते हुए नवीन मण्डलेश्वर जी से भी सनातन संस्कृति के संरक्षण की आशा प्रकट की। अ० भा० वर्णाश्रम स्वराज्य संघ के उपाध्यक्ष पं० धर्मदत्त जी वेदशास्त्री, श्री राजेश्वर शास्त्री साङ्गवेद विद्यालयाध्यक्ष, श्री पं० देवनायकाचार्य भूतपूर्व मन्त्री अ० भा० वर्णाश्रम स्वराज्य संघ के भी समयानुकूल प्रभावशाली भाषण हुए। अहमदाबाद निवासी वीरुभाई डायाभाई ने भी अपने भाषण में अहमदाबाद की भक्तमण्डली की ओर से आश्वासन दिया कि धार्मिक कार्यों के सहयोग तथा सहायता की पूर्व की अपेक्षा कमी न होने पावेगी।

इसके अनन्तर आपको सादर अभिनन्दन पत्र समर्पित किया गया।

अभिनन्दन पत्र के उत्तर में श्री मण्डलेश्वर जी ने समारोह के संयोजकों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए तथा अपने में इस पद की अयोग्यता प्रकट करते हुए निवेदन किया कि यदि आप महानुभावों का मुझे सहयोग प्राप्त होता रहा तो मुझे विश्वास है इस गद्दी की मर्यादा तथा प्रतिष्ठा का संरक्षण कर सकूँगा। इस अभिनन्दन समारोह में महोपदेशक व्याख्यान भास्कर पं० कल्पनाथ जी शर्मा ने अत्यधिक तत्परता दिखाई थी।

इसके अतिरिक्त प्रयाग महानिर्वाण वेदविद्यालय के अधिकारिवर्ग तथा अन्य समाज ने भी समारोह के साथ आप का अभिनन्दन किया।

मण्डलेश्वर जी ने अपने गुणों से सभी भक्तों को इस प्रकार आवर्जित किया कि आप के भी प्रवचन सुनने के लिए प्रतिदिन अपार भीड़ होती रही। जप, यज्ञ,

वेदपारायणादि कार्य भी महाराज धर्मानन्द जी के आयोजनानुसार चलते रहे। इस प्रकार पञ्चक्रोशी यात्रा स्वाध्याय अध्ययनादि से आप अपने समय का सदुपयोग करते हुए उत्तरोत्तर जनता के हृदय में स्थान पाने लगे।

नमः शिवाय बैंक के मन्त्रकोष में डेढ़ अरब से अधिक संख्या में अभी मन्त्र उपस्थित थे। महाराज धर्मानन्द जी उनके भी स्थापन के लिए प्रस्ताव रक्खा करते थे। दूसरा विषय मण्डलेश्वर जी के सम्मुख यह भी रखते थे कि ब्रह्मीभूत महामण्डलेश्वर जी की स्मृति में किसी पुण्य स्मारक का भी शीघ्र हो जाना अत्यावश्यक है। मण्डलेश्वर जी भव्य विचार का सहर्ष समर्थन किया करते थे। परम गुरु भक्त श्री १०८ स्वामी धर्मानन्द जी महाराज ने गोविन्द मठ जिसमें ॐ नमः शिवाय बैंक की स्थापना हुई थी उस स्थान में मन्त्रों के पूजन, शिव प्रतिमा स्थापनादि कृत्यों का विचार स्थिर किया महामण्डलेश्वर जी की पुण्य स्मृति में आपने प्रतिमा स्थापन का भी विचार किया। इसी लक्ष्य को लेकर आप कानपुर पधारे। सेठ बिश्वम्भर दास जी के गिरिधर भवन में जाकर आपने अपने हृद्गत भाव को प्रकट किया। सेठ जी बड़े ही उदार तथा धर्म कार्य में प्रथम हाथ बटानेवाले थे। आपने भव्य पारलौकिक कार्य के सम्पादन के लिये सहर्ष अपनी स्वीकृति दी।

देवानां स्थापने लोके महत्पुण्यं प्रकीर्तितम्।
स्थापनाद्देव देवस्य त्रैलोक्यं स्थापितं भवेत्॥

सभी देवताओं का स्थापन यद्यपि पुण्यप्रद है पर शङ्कर जी के स्थापन से त्रैलोक्य की प्रतिष्ठा का फल होता है, इस स्कन्द पुराण की उक्ति के महत्व को स्थान देते हुए श्री सेठ जी ने शिव पञ्चायतन तथा महामण्डलेश्वर जी की संगमरमर की भव्य प्रतिमा बनवाकर शिवार्पण किया। सम्वत् १९९९ ज्येष्ठ कृष्णा एकादशी को प्रतिष्ठा का कृत्य निश्चित हुआ।

## गोविन्द मठ में विराट पूजन तथा यज्ञादि

ऐसे शुभावसर पर यज्ञ तथा पचास करोड़ मन्त्रों का विराट पूजन जपादि कार्य भी होने लगे। इस मास में अधिक मास भी था अतः जनता के सम्मुख यह एक अत्यन्त हर्ष का विषय था अतः दूरस्थ जनता भी काशी गङ्गा स्नान तथा यज्ञ स्थापनादि दर्शन से भी अपने को कृतकृत्य करने के लिये अधिकसङ्ख्या में आ रही थी। श्री १०८ स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज मण्डलेश्वर के कर कमलों द्वारा

श्री स्वामी धर्मानन्द जी की उत्कृष्ट अभिलाषा रूप प्रतिष्ठा एकादशी को की गई। उस दिन की छटा अपूर्व थी। दर्शकों की सङ्ख्या इतनी मात्रा में थी कि प्रवन्धकों को अन्त में प्रबन्ध कार्य से हाथ खींच लेना पड़ा। शिवपञ्चायतन तथा महामण्डलेश्वर जी की भव्य प्रतिमा स्थापन तथा अभिषेकादि शुभकृत्यों की समाप्ति होने पर समाहूत मान्यजनों का यथोचित सत्कार किया गया। दूसरे दिवस साधु ब्राह्मणों का भोज समष्टि भण्डारा आदि कार्य भी किये गये। और पुरुषोत्तममास की समाप्ति पर्यन्त रुद्राभिषेक तथा नवागत मन्त्रों का पूजन चलता रहा। मन्दिर में आरती पुष्पाञ्जलि तथा नैवेद्यादि की व्यवस्था और भी सुचारु तथा परिपुष्ट कर दी गई। सर्व सम्मति से मण्डलेश्वरजी ने प्रतिष्ठित शङ्करजी का नामकरण **जयेन्द्रेश्वर महादेव** किया।

## दशकोशी चौरासी समारोह

इन भव्यकार्यों के यथावत् सम्पादन के अनन्तर मण्डलेश्वरजी अहमदाबाद पधारे। त्यागमूर्ति स्वामी धर्मानन्दजी महाराज भी अहमदाबाद गये। वहां पहुँच आप महानुभावों के विचार में आया कि प्रातःस्मरणीय गुरुदेव स्वामी श्री १०८ जयेन्द्रपुरी महाराज महामण्डलेश्वर के ब्राह्मीभावके उपलक्ष्यमें दशकोश तक की दूरी के तथा अहमदाबाद नगर के ८४ प्रकार के ब्राह्मणों का भोज होना चाहिये। स्वामी धर्मानन्दजी महाराज गुरुभक्ति से प्रेरित हो अन्य भक्तजनों से परामर्श करने लगे। अहमदाबाद निवासी भक्त जनता तन मन धन से इस विचार की पुष्टि करते हुए पूर्ण सहयोग के साथ समारोह पूर्वक इस शुभ कार्य के सम्पादन में दत्तचित्त हुई। मार्गशीर्ष कृष्ण तृतीया को इस भव्य कार्य का सोत्साह सम्पादन हुआ। संन्यासाश्रम में सभा, मण्डप तथा भोजादि का प्रबन्ध किया गया पर इतने विशाल कार्य के लिये स्थान पर्याप्त न देखकर कई स्थानों में इसकी व्यवस्था की गई। भक्तों का यह कार्य अत्यन्त सुचारु तथा सराहनीय था। इस धार्मिक कार्य के सम्पादन का श्रेय अहमदाबाद निबासी भक्त जनता को ही प्राप्त हुआ।

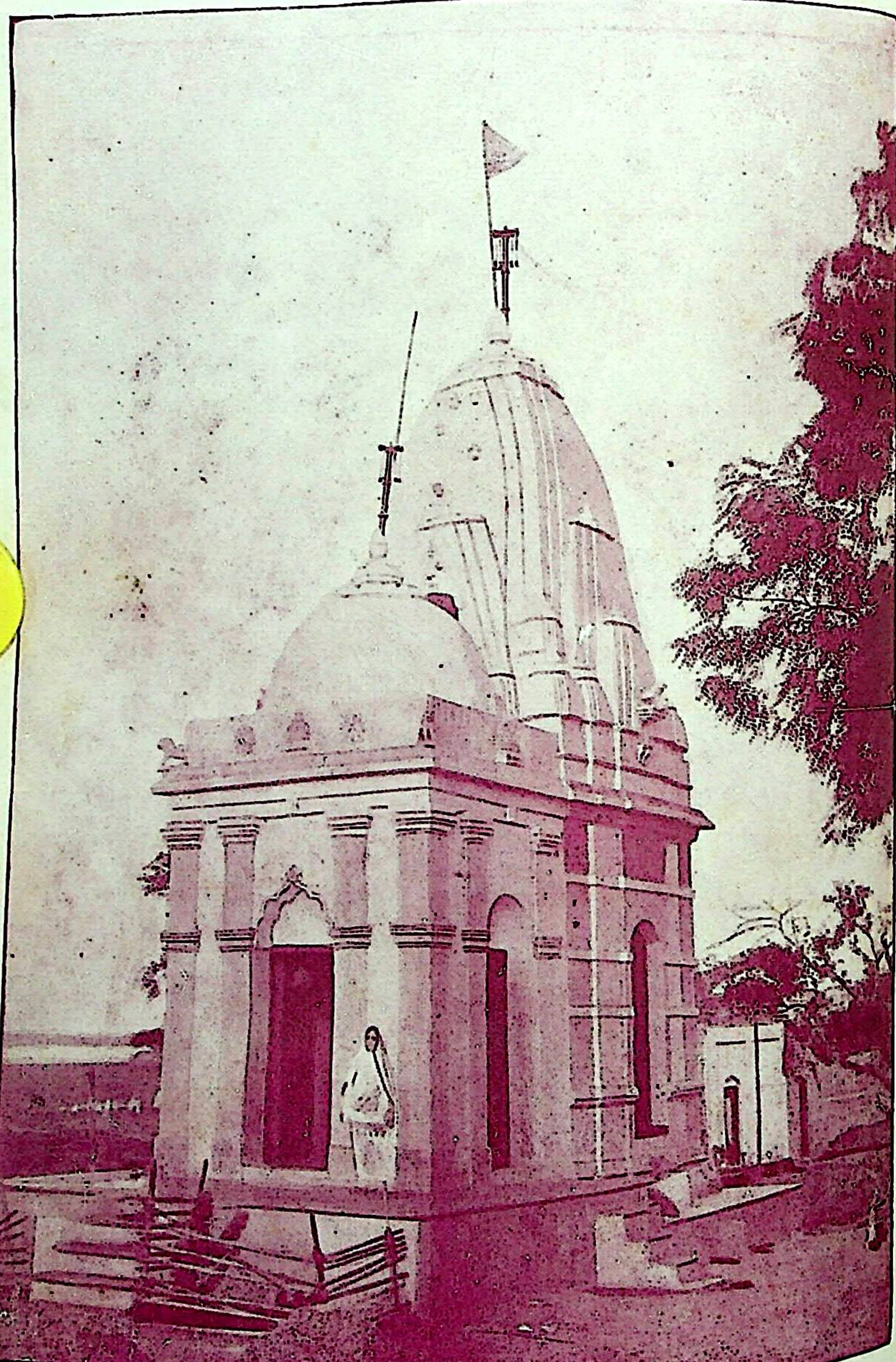
अहमदाबाद में इन शुभावह कार्यों के सम्पादन के अनन्तर भड़ौच का कार्य सम्पादन अवशिष्ट रह गया था। वहाँ के कार्य सम्पादन के लिये भी भक्तजनों की त्वरा शान्ति न लेने देती थी। अतः मण्डलेश्वरजी को इस कार्य की पूर्ति के लिये भड़ौच जाना पड़ा।

देवानां स्थापने लोके महत्पुण्यं प्रकीर्तितम् ।
स्थापनाद्देव देवस्य त्रैलोक्यं स्थापितं भवेत ॥ १ ॥ स्कन्दपुराणे



भरूच में मंदिर के अन्दर का भाग श्रीजयेन्द्रेश्वर शिव पंचायतन तथा गुरुदेव की प्रतिमा की सन्निधि में राजमाता श्री हीरा बा साहेब पूजन कर मंत्र जाप करती हैं।

साणंद स्टेट की राजमाता श्री हीरा बा साहेब द्वारा प्रतिष्ठित





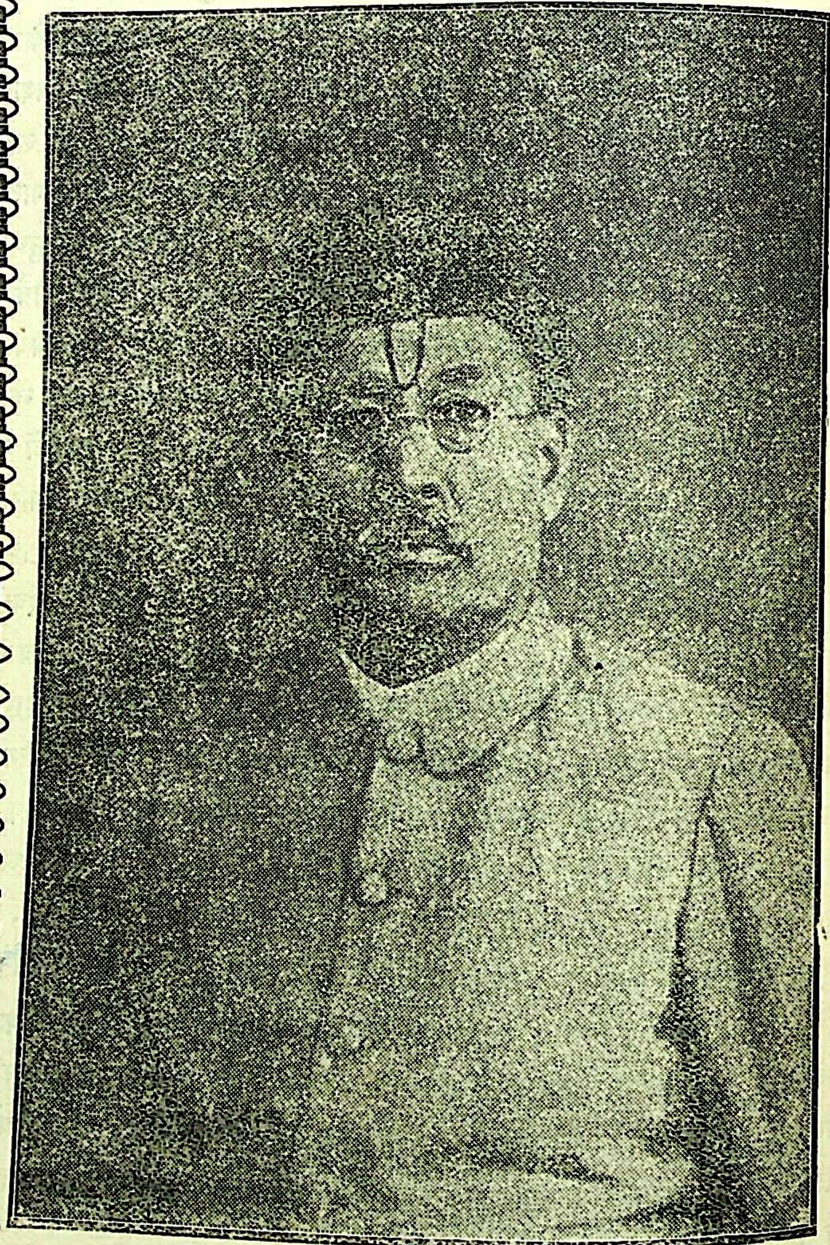
भरूंच नर्मदा तट दशाश्वमेध घाट की सन्निधि में पुल के समीप

## भड़ौच में शिव पञ्चायतन तथा जयेन्द्रेश्वर प्रतिमा स्थापन

भड़ौच नर्मदा के किनारे दशाश्वमेध घाट के पास जहाँ प्रातः स्मरणीय श्री महामण्डलेश्वर जी को समाधि दी गई थी, परम गुरुभक्त साधु द्विज हितैषी सानन्द स्टेट की राजमाता श्री हीरा वा साहेब ने गुरुभक्ति के वशीभूत हो नर्मदा किनारे पुल के पास विशाल जगह भक्तवर्य दुर्लभ जी के द्वारा खरीदा। इसमें विशाल शिवपञ्चायतन मन्दिर का निर्माण हुआ। महाराज महामण्डलेश्वर जी की सङ्ग-मरमर की भव्य प्रतिमा की जो जैपुर से बनवा कर आई थी, स्थापना हुई। आश्रम तथा मन्दिर के रक्षार्थ घाट की परिपुष्टि पर ध्यान देते हुए घाट का नवयोग भी सुचारु रूप से किया गया। अक्षय तृतीया को बड़े ही समारोह के साथ प्रतिष्ठादि कार्य के सम्पादन का मुहूर्त निश्चित किया गया। प्रथम विधिपूर्वक मूर्तियों का अन्नाधिवास जलाधिवास किया गया। इसके अनन्तर, अष्टोत्तर शत घटाभिषेक हुआ। शंख ध्वनि तथा वाद्य ध्वनि के साथ सवारी भी धूमधाम से निकाली गई। यज्ञादि कार्य में २५ वैदिक विद्वान् सुचारु रूप से मनोयोग दे रहे थे। प्रतिष्ठा दिवस में नगर के सुप्रसिद्ध रईस वर्ग भी उपस्थित थे। ।सानन्द दरबार की राजमाता जी तथा श्रीयुत् यशवन्त सिंह जी आदि धार्मिक जन तो सभी कार्य में भाग ही लेने वाले थे। श्री १०८ स्वामी रेवानन्दजी तथा श्री स्वामी जनार्दनपुरीजी महाराज भी सभी कार्यों की देख रेख कर रहे थे। ॐ नमः शिवाय बैंक के व्यवस्थापक श्री १०८ स्वामी धर्मानन्द जी महाराज मन्त्री संन्यासी संस्कृत कालेज काशी तथा श्रीमान् दुर्लभ जी भी इस भव्य कृत्य के सम्पादन में सर्वदा तत्पर रहा करते थे। कीर्तन-कलानिधि ब्रह्मचारी शिव चैतन्य जी महाराज अपनी कीर्तनकला से उपस्थित जनता के हृदय में धर्म के प्रति अपूर्व अनुराग का प्रादुर्भाव कर रहे थे। सद्गृहस्थ मण्डली, सेठ ठाकुरलाल जी, सेठ त्रिभुवन दास जी मंगलदास जी तथा विनोद राय जी आदि महानुभाव भी इस शुभ प्रवृत्ति में उपस्थित थे। आश्रम का नामकरण **श्री जयेन्द्र पुरी अशोकाश्रम** रक्खा गया। आश्रम में मंगलदास हरगोविन्द दास जी, सेठ त्रिभुवन दास जी, इनामदार छविल भाई वलवन्त राय भट्ट तथा श्रीमती पूर्णावाई, महात्माओं के निवासार्थ कमरे तथा कथा हाल बनवाये। चन्द्रिका वैन ने भी इस रम्य कार्य में पूर्ण सहयोग दिया।

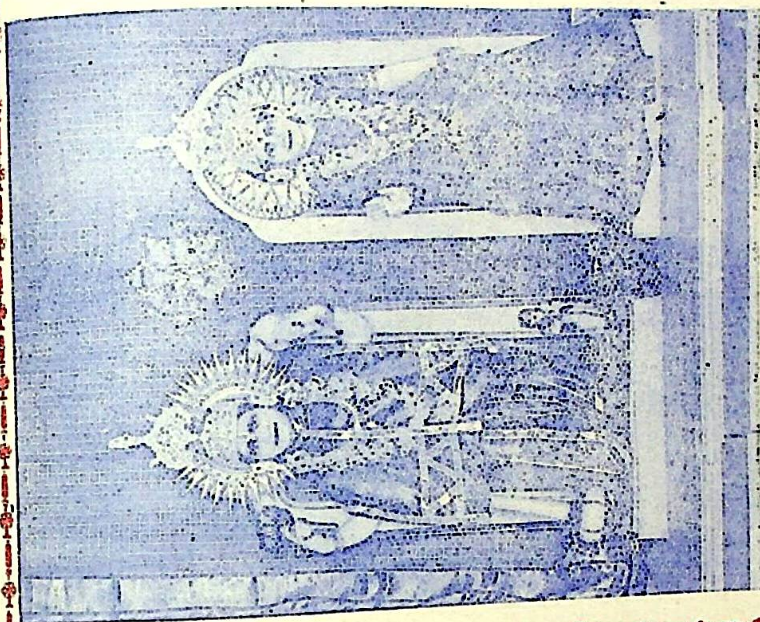
श्री जयेन्द्रपुरी अशोकाश्रम में इस समय भी निर्माण कार्य भक्तों की अपूर्व श्रद्धा का परिचय दे रहा है। आशा है कि यदि इसी प्रकार जगन्नियन्ता भगवान् विश्वनाथ की कृपा से भक्त मण्डली सुखी तथा स्वस्थ रही तो श्री जयेन्द्रपुरी अशो-

काश्रम अल्पकाल में ही अधिक उन्नति प्राप्त कर लेगा। यहाँ पर शंकरजी की स्थापना तथा २५ करोड़ ॐ नमः शिवाय मन्त्रों को ऊपर शिखर में रखा गया है।

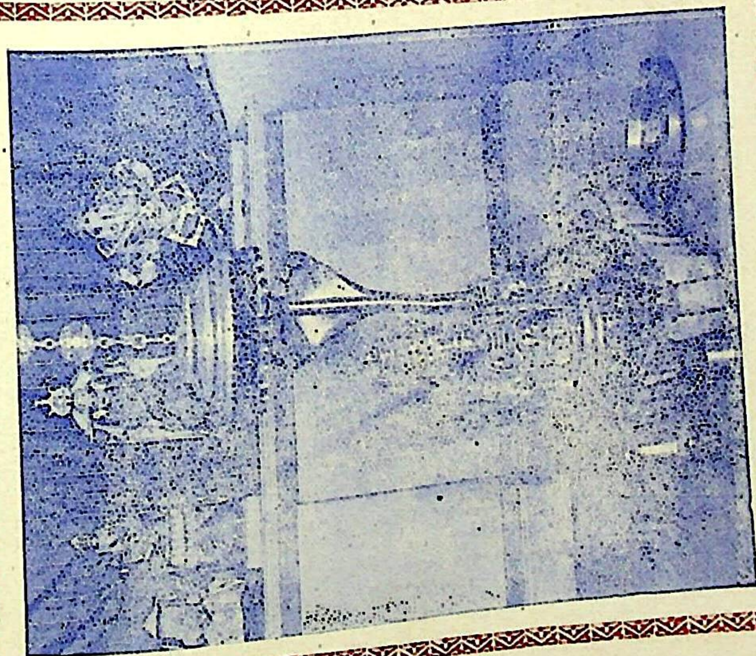


धर्मपरायण श्री छोटेलाल हीराचन्द्रजी

काशी विश्वनाथ शिवपंचायतन मंदिर सेठ वालाभाई जी की स्मृति में भोगीलाल, ठाकुरलाल, रमणलाल द्वारा समर्पित



श्री काशी विश्वनाथ महाविद्यालय, अहमदाबाद
संस्थापक—श्री १०८ स्वामी जयेन्द्रपुरी जी महाराज महामण्डलेश्वर
संरक्षक—श्री १०८ स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज मण्डलेश्वर



श्रीयुत सेठ जी का परिचय पहले दिया जा चुका है फिर भी आपकी धर्मपरायणता पुनः पुनः आपके सत्कार्यों को स्मरण करने के लिये वाध्य करती है। आपकी धर्मानुरागता की पराकाष्ठा का परिचय आपके द्वारा अर्पित संन्यासाश्रम दे रहा है तथा देता रहेगा। इसी आपके संन्यासाश्रम में वर्तमान मण्डलेश्वरजी की प्रेरणा से धर्मानुरागी भक्त मण्डली ने शिव पञ्चायतन मन्दिर तथा महामण्डलेश्वर जी की भव्य प्रतिमा-स्थापन का निश्चय किया।

## अहमदाबाद संन्यासाश्रम में शिवपंचायतन मंदिर की प्रतिष्ठा

सं० १९९९ अहमदाबाद संन्यासाश्रम में ब्रह्मनिष्ठ श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज मण्डलेश्वरजी की अध्यक्षतामें नवीन विशाल मंदिर के अन्दर श्रीविश्वनाथ महादेव, तथा श्री लक्ष्मीनारायण, भुवनेश्वरी देवी, श्री गणेश जी, श्री सूर्यनारायण भगवान, श्री पार्वती जी, नन्दीगण व कूर्म देवताओं की मूर्तियों की स्थापना (प्रतिष्ठा) बड़े समारोह के साथ की गई। काशी से नर्मदेश्वर तथा अन्य मूर्तियां जयपुर से मंगाई गईं। यज्ञ मण्डप के अचार्य काशी के सुप्रतिष्ठित श्री संन्यासि संस्कृत कलेज के वेदाध्यापक पं० चन्द्रभाल जी शर्मा तथा ब्रह्मा के पदपर पं० शम्भू जी -व० प० मार्कण्डेयजी और शेष अहमदाबाद के सुयोग्य २१ पण्डितों की संरक्षता में ३ दिन तक यजमान पं गिरजाशंकर जी जोशी की सन्निधि में वेदोक्त विधि विधान पूर्वक प्रतिष्ठा की कार्यवाही हुई। साणन्द के स्वामी रेवानन्द जी तथा कथावाचक स्वामी अतुलानन्द जी तथा श्री स्वामी जनार्दनपुरी जी, कीर्तन शिरोमणि ब्रह्मचारी शिवचैतन्यजी, संन्यासी संस्कृत कालेज के मंत्री, ॐ नमःशिवाय बैङ्क के व्यवस्थापक स्वामी धर्मानन्द जी—गीता मन्दिर के महात्मा वर्ग-नीलकण्ठ अखाड़े के साधु महात्मा व शहर के प्रतिष्ठित सज्जन भक्त गण आदि उपस्थित थे। कथा प्रवचन कीर्तनादि की व्यवस्था भी सुचारु रूप से की गई थी। मन्दिर शाह बालाभाई व्रजवल्लभ दास जी के स्मारक में उनके सुयोग्य पुत्र शाह भोगीलाल जी तथा ठाकुरलाल, रमणलाल जी ने बनवा कर संन्यासाश्रम को अर्पण किया। मंदिर के अन्दर तथा बाहर संगमरमर की मूर्तियाँ भी चित्ताकर्षक बनाई गई हैं। स्थानीय काशी विश्वनाथ महादेव जी की जलधारी के नीचे गुफा में ७५ करोड़ ॐ नमः शिवाय मन्त्रों की स्थापना भी की गई है।

## महामण्डलेश्वर जी की प्रतिमा की स्थापना

विप्रकुलभूषण श्रीयुत छविल भाई बलवन्त राय भट्ट जी ने निज व्यय से सङ्गमरमर की प्रतिमा तथा मन्दिर बनवाकर जयपुर से मँगाया तथा मन्दिर की

सन्निधि में काशी के प्रतिष्ठित पण्डितों के द्वारा समारोह के साथ स्थापित किया।

इस प्रकार महाराज श्री १०८ स्वामी जयेन्द्रपुरी जी महामण्डलेश्वर के ब्रह्मीभाव के अनन्तर श्री १०८ स्वामी कृष्णानन्दजी महाराज मण्डलेश्वर की अध्यक्षता में महामण्डलेश्वर जी के स्मृत्यर्थ अनेक शुभ कार्य स्थायी तथा अस्थायी रूप से होते रहे। इसके अतिरिक्त काशी, प्रयाग, हरिद्वार, हृषीकेश, उत्तर काशी, पुष्कर आदि तीर्थ स्थानों में तथा अहमदाबाद आदि नगरों में महामण्डलेश्वर जी के स्मृत्यर्थ कई हजार ब्राह्मण महात्मा तथा विद्वानों का समय समय पर भोजन भाजन वस्त्र आदि से सत्कार होता रहा। और अब भी तिथि पर स्थान स्थान में वही नियम चला आ रहा है। महामण्डलेश्वरजी याग के बड़े प्रेमी थे अतः आपके अद्वितीय भक्त स्वामी धर्मानन्दजी महाराज समय समय पर रुद्राभिषेक तथा महारुद्र याग, विष्णु याग का विधान किया ही करते हैं। प्रयागराज कुम्भ के अवसर पर भी महाराज मण्डलेश्वरजी की आज्ञा से स्वामी श्री धर्मानन्दजी महाराज ने महामण्डलेश्वर जी के स्मृत्यर्थ इसी निमित्त यज्ञ, पुराण पाठ, वेदपारायण आदि कार्यों के साथ अगणित मन भक्तों से प्रदत्त आटे की सवा करोड़ गोलियों को भी महामण्डलेश्वर जी के स्मृत्यर्थ तथा कूर्ममत्स्य के प्रसन्नतार्थ रुद्राष्टाध्यायी के पारायण तथा अन्य वेदपारायण के साथ साथ त्रिवेणी जी में विसर्जन किया। स्वामी धर्मानन्दजी महाराज, श्री १०८ स्वामी कृष्णानन्दजी महाराज मण्डलेश्वर की आज्ञा से महामण्डलेश्वरजी के स्मृत्यर्थ अनेकों कार्य करते रहते हैं। धन्य हैं ऐसे उत्साही तथा धन्य हैं आपको उत्साह पूर्वक सहयोग देने वाले भक्तगण।

महामण्डलेश्वर स्वामी जयेन्द्रपुरी जी महाराज क्या थे हम अज्ञानियों के लिये यह विषय दुर्गम है। जिस प्रकार चक्षुविहीन जनों को हाथी का जो अङ्ग पकड़ाकर "यह हाथी है" बतला दिया जाय केवल वह उसी अङ्ग को हाथी समझता है। वस्तुतः हाथी का स्वरूप तो चक्षुष्मान् जन ही जान सकता है। अतः जिसने शुद्ध बुद्ध, अपरिमेय निरवच्छिन्न उस परब्रह्म को समझ लिया है तथा उसके मायोपहित स्वरूप को समझ लिया है वही महामण्डलेश्वर जी के स्वरूप को पहचान सकता है। मैं तो केवल उस दयामूर्ति से यही प्रार्थना करूँगा कि :—

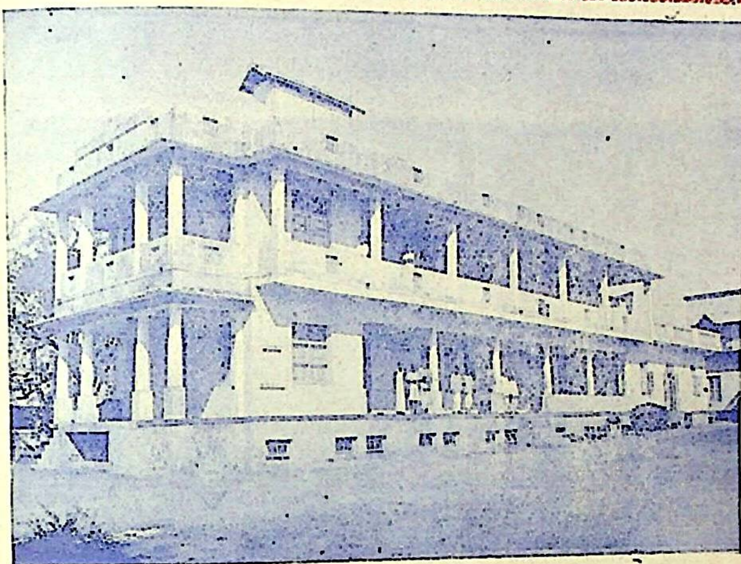
**शिवमस्तु सर्वजगतां, परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः।**
**दोषाः प्रयान्तु नाशं, सर्वत्र सुखी भवतु लोकः॥**



ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः

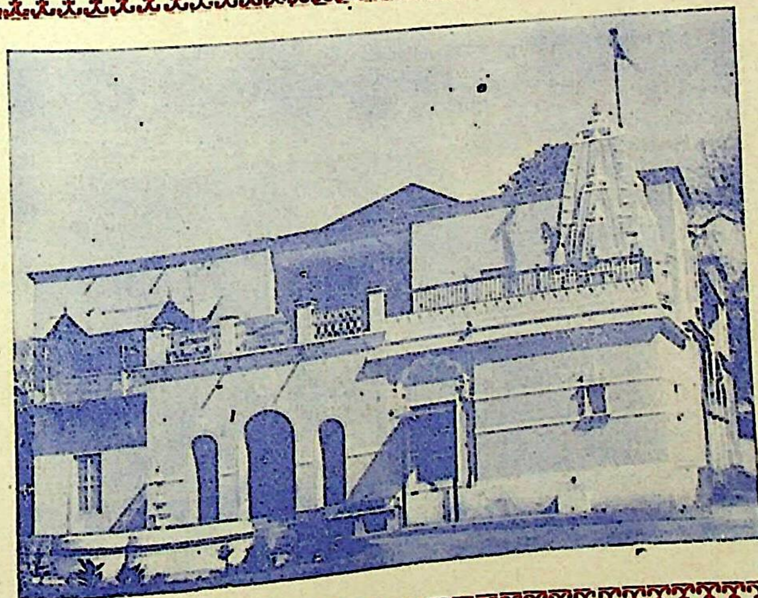
अहमदाबाद संन्यास-आश्रम में

## श्री लक्ष्मीनारायण भगवान् का मंदिर



अहमदाबाद संन्यास-आश्रम मंदिर में

## श्री काशी विश्वनाथ महादेव, गणेश, पार्वती, श्री सूर्य नारायण भगवान्



## दशम परिच्छेद

श्री दुर्गायै नमः



### श्री श्रीमत् परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १००८ महामण्डलेश्वर श्री जयेन्द्रपुरी जी महाराज के पुनीत जीवन-चरितान्तर्गत स्वस्थान श्री साणंद अमर चरित

**मनोभाव निवेदन**

गुरुदेव श्री १०८ स्वामी जयेन्द्र पुरी जी महाराज कौन थे इसका विवेचन मुझ अल्पज्ञ के लिये सर्वथा दुरूह विषय है। केवल मेरे ही लिये नहीं किन्तु अलौकिक साधन तथा स्वरूपावबोधसम्पन्न जीवन की समीक्षा किसी के लिये भी सरल नहीं हो सकती। किसी के अपरिमित भावों का प्रकटीकरण अपनी भाषा में यथोचित रूप में करना लौकिक ज्ञान का विषय नहीं हो सकता। पर एक बार एकाग्र चित्त होकर गुरुदेव की जीवनचर्या पर सूक्ष्म दृष्टि-पात करने पर प्रतीत होता है कि गुरुदेव जी सभी धर्म तरङ्गों के विशाल गम्भीर सागर थे। प्रत्येक धर्मावलम्बी श्री गुरुदेव सुधासागर के पास आकर अपनी जिज्ञासा पिपासा को शान्त करके ही जाया करते थे। आप केवल उपनिषत्, धर्म-शास्त्र, दर्शन आदि के ही विशाल भण्डार न थे पर प्रत्येक धर्मों के समन्वयकर्ता

भी थे। द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत जैन, बौद्ध तथा अन्य मतावलम्बी भी विवादग्रस्त विषय को सुलझाने का यदि कोई आश्रय पाते थे तो वे केवल प्रातः स्मरणीय गुरुदेव के समीप। सांसारिक जनों को सन्मार्ग में ले जाने के लिये उनके सम्पर्क में रहकर भी ध्यान धारणा समाधि द्वारा अहन्ता तथा ममता का त्यागकर अपने को धन्य तथा कृतकृत्य बनाने का निदर्शन गुरुदेव जी स्वयं थे। शास्त्रानुशीलन, उचितानुचित विवेक, ज्ञान, दया, निस्पृहता, योगादि के सामञ्जस्य का आदर्श मिलना अत्यन्त दुर्गम है। इसी अन्वेषण में इतने समय प्रतीक्षा के अनन्तर लोकोत्कृष्ट सौभाग्य सूचक पूर्वोक्त वस्तुओं के सामञ्जस्य का एकमात्र निकेतन श्री गुरुदेव कृपालव का मैं भी भाजन हुई। तथा–

**'हरत्यघं सम्प्रति हेतुरेष्यतः शुभस्य पूर्वाचरितैः कृतं शुभैः।**
**शरीर भाजां भवदीय दर्शनं व्यनक्ति कालत्रितयेऽपि योग्यताम्॥'**

इस कथन के अनुसार अपने को भी किसी योग्य समझने की अधिकारिणी हुई। संसार की विषय बाधाओं से अत्यन्त भीत मुझे गुरुदेव के उपदेश नियन्ता ने ही निर्भय बनाया। श्री गुरुदेव जी मेरे भयापहरणार्थ इस श्रीमद्भागवत के पद्य को मेरे सम्मुख स्थित करते थे।

**"ज्ञान वैराग्य युक्तेन भक्तियोगेन योगिनः।**
**क्षेमायपादमूलं मे प्रविशन्त्यकुतोभयम्॥"**

क्या ही भयनिवारक अपूर्व अस्त्र प्रयोग है।

इतना होने पर भी सत्यसुख प्राप्ति के साधनो के स्वायतीकरण में मुझे भ्रान्ति ही रहती थी। गुरुदेव जी का भी कथन था कि **"दुर्गं पथं तत्कवयो वदन्ति"**। कभी कभी भ्रान्तिनाशक गुरुदेव जी के समक्ष अपनी व्याकुलता को उपस्थित भी करती थी पर गुरुदेव जी **"पौनः पुन्येन करणमभ्यास इति कथ्यते। पुरुषार्थः स एवेह न तेनास्ति विना गतिः"** इत्यादि उक्तियों से मेरे विचार को सुदृढ़ बनाया करते थे। गुरुदेव प्रत्येक उपदेशों में मनोबल को उन्नत बनाने के लिये विशेष जोर दिया करते थे। अगस्त्य ऋषि ने जो समुद्र पान कर लिया इसका कारण मनोबल था। हनूमान् जी ने जो समुद्रलङ्घनकर लोक को चमत्कृत कर दिया इसका भी मूल हेतु मनोबल ही है। अतः मनोबल की वृद्धि के लिये ही

सर्वदा प्रयत्नशील रहना चाहिये। ऐसा कोई भी कार्य नहीं है जिसे दृढ़सङ्कल्प व्यक्ति न कर सके। इसपर महाभारत आदि ग्रन्थों की उक्तियां भी निदर्शन रूप में उपस्थित कर उत्साह को बढ़ाया करते थे। आपका कथन था कि **"यत्नवद्भिर्दृढाभ्यासैः प्रज्ञोत्साह समन्वितैः मेरवोऽपिनिगीर्यन्ते केव प्राक्पौरुषे कथा ॥** आपके अल्पकाल के सत्सङ्ग ने वस्तुतः मेरे नेत्र पटलको खोल दिये जिससे मुझे उपादेयता तथा अनुपादेयता का अल्पबोध होने लगा। ठीक कहा है कि—"मोहनाशाय महतां वचोनो मोहवृद्धये" महापुरुषों के सदुपदेश से अज्ञान की क्षति होती है न कि मोह वृद्धि। मन के वशीकरण का अनेक उपाय, जो मुझ ऐसे आजन्म सुखभोगोपलालित के लिये भी सुगम हो सकते थे गुरुदेवजी बतलाया करते थे। **"मुख्याङ्कुरं सुभग विद्धिमनो हि पुंसां देहास्ततः प्रविसृतास्तरुपल्लवाभाः। नष्टेऽङ्कुरे पुनरुदेति न पल्लव श्रीर्नैवाङ्कुरः क्षयमुपैति दलक्षयेषु"॥** मनही मुख्य अङ्कुर है, उसी से हस्तपदादि शाखा पल्लव निकलते रहते हैं। अतः उसी अङ्कुर को ही विलून करना चाहिये उसी के विलून होनेपर पत्तों का पुनरुद्गम न होगा। पत्तों के नष्ट होने पर अङ्कुर का नाश नहीं होता। वस्तुतः महापुरुषों का स्वभाव ही अविद्या सागर में डूबते हुए अज्ञानियों को निकालना ही है "मूढोत्तारण मेवेह स्वभावो महतामपि" अधिक क्या जो कुछ अपने सत्य स्वार्थ का परिज्ञान मुझे हुआ है केवल करुणार्णव साक्षात् बोधरूप श्रीगुरुदेव के कृपा कटाक्ष लेश के पात से ही। वस्तुतः इस प्रकार के गुरु की प्राप्तिसे अपने को भी मैं सौभाग्यशालिनी समझती हूँ। किसी कवि ने कहा है कि:—भूतानि सन्ति सकलानिबहूनि दिक्षु वोधान्वितानि विरलानि भवन्ति किन्तु। वृक्षाभवन्ति फलपल्लव जालयुक्ताः कल्पद्रुमास्तु विरलाः खलु सम्भवन्ति।

गुरुचरण पङ्कज पराग लोलुप राजमाता हीरा बा साहेब सानन्द स्टेट—

**प्रथम दर्शनः ***

श्री स्वामी जी महाराज का राज नगर (अहमदाबाद) में प्रथम चतुर्मास था, इस चातुर्मासके अनन्तर आश्विनमास में साणंद के भक्तों के आग्रह से महाराज श्री समस्त साधु मंडल सहित साणंद में पधारे थे, यहाँ पर स्वामी श्री रेवानंदजी के संन्यास आश्रम में तीन दिवस रहने का निश्चय था। स्वामी श्री रेवानंदजी के कथनानुसार नेकनामदार श्री साणंद ठाकुर

* यहाँ से राजमाता की उक्ति का श्री स्वामी रेवानन्दजी ने अनुवाद किया है।

साहेब श्री जयवंतसिंह जी (साहेब) तथा आप नेक नामदार श्री की पूज्य माता श्री श्रीमती हीरा वा साहेबा स्वामीजी महाराज के शुभदर्शनार्थ आश्रम में पधारीं, वहाँ से अत्यन्त प्रेम भक्ति पूर्वक स्वामीजी महाराज को दरबार गढ़ में आमंत्रित करके सद्ब्राह्मणों द्वारा आपका यथाविधि षोडशोपचार पूजन कराया गया, राजकुटुम्ब का अत्यन्त विशुद्ध प्रेम देखकर स्वामी जी महाराज ने आदेश किया कि, "अहमदाबाद में सेठ श्री मोतीलाल जी के बँगले में कथा प्रवचन होता है, आप वहीं पधारें।

## कथा श्रवण और वैराग्य बीजारोपण:—

कुछ दिवस पश्चात् नामदार ठाकुर साहेब और राजमाता श्री हीरा वा साहेबा कथा श्रवणार्थ उक्त स्थान में पधारे, स्वामी जी महाराज के मुखारविंद से झरते हुए अमृत प्रवाह का पान कर राजमाता श्री के मनमें नित्य प्रति इस कथारूपी अमृत पान करने की इच्छा हुई, और उसके दूसरे ही दिन से वहां पर रहने की उचित व्यवस्था करा के मातुश्री प्रति दिन कथा श्रवण करने लगीं। यथावकाश श्री नेकनामदार ठाकुर साहेब भी पधारते थे। स्वामी जी महाराज के मुखारविंद से कथा श्रमण करने से राजमाता के अंत:करण में उत्कट वैराग्य बीज का प्रादुर्भाव हुआ। तथा महाराज श्री के उपदेश से राजमाता श्री को यह भी विदित हुआ कि, आप कोई महापुरुष हैं, और उच्चकोटि के तत्त्व ज्ञानी भी, क्योंकि ( गुरव: बहव: सन्ति शिष्य वित्ताप हारका:। गुरवोविरला: सन्ति शिष्य संतापहारका:॥ ) अत: राजमाता की मनोवृत्ति में उच्च वैराग्य का भी आभास हुआ।

किसी कवि का कथन है—**"जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं, मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति। चेत: प्रसादयति दिक्षु तनोतिकीर्तिं, सत्सङ्गति: कथय किं न करोति पुंसाम्"** ॥

## उपदेश तथा सद्गुरु निर्धारण की अभिलाषा

एक दिन महामण्डलेश्वर जी के सन्निधि में जब राजमाता शान्ति पूर्वक विराजमान थी, महाराज जी ने आप से नित्य कर्म करने का क्रम पूछा। राजमाता ने जप, स्मरण तथा पाठ आदि वतलाया। महाराज ने अनुमोदन कर आप से योग वाशिष्ठ के पाठ का आदेश किया। आदेशानुसार पाठ तथा अर्थ बोध करते हुए आप की मनोवृत्ति वाह्य विषयों से शनै: शनै: उपरत होने लगी। उसी समय आपने महाराज महामण्डलेश्वर जी को अपना दीक्षा गुरु निर्धारित करने का विचार किया।



## गुरु दीक्षा

कुछ काल सत्सङ्ग के अनन्तर श्री राजमाता जी ने धार्मिक शिरोमणि अपने सत्पुत्र श्री ठाकुर साहब जयवन्त सिंह जी के सम्मुख इस अभिलाषा को प्रकट किया। ठाकुर साहब ने सहर्ष अनुमोदन कर महाराज जी से प्रार्थना करने की अनुमति दी। राजमाता ने महाराजमण्डलेश्वर जी के समक्ष अपने भाव को सविनय अभिव्यक्त किया। उत्कट जिज्ञासा समझकर भक्त वत्सल महाराज जी ने स्वीकार कर लिया।

शुभमुहूर्त में सभी पूजोपयोगी सामग्रियों की उपस्थिति में प्रथम महामण्डलेश्वर जी ने यह उपदेश किया। "यह संसार अनित्य है। इसका सम्बन्ध नाशशील है। आदि मध्य तथा अन्त में भी सम्बन्ध रखनेवाला ब्रह्म है। उसी की प्राप्ति परम पुरुषार्थ है। उसकी प्राप्ति के लिये शमदमादि साधन की आवश्यकता होती है इसी की शिक्षा के लिये सद्गुरु की अपेक्षा पड़ती है। यही गुरु निर्धारण का प्रयोजन है।"

अदृष्ट पूर्व मोक्षमार्ग पर चलनेवालों के लिये गुरूपदेश एक अपूर्व मार्गप्रदर्शक बन्धु है। आप इसी की सहायता से श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन में अहर्निश तत्पर हो गईं।

## श्रीराजमाता के करकमलों से काशी शिवपुर में द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग तथा ओंकारेश्वर की स्थापना।

श्रीमहाराज महामण्डलेश्वरजी के प्रवचन में शिवलिङ्ग स्थापन की महत्ता श्रवण कर आपकी उत्पन्न उत्कट श्रद्धा की पूर्ति काशी शिवपुर बगीचे में हीरेश्वर की स्थापना में हुई। जिसका पूर्ण विवरण जीवन चरित में दिया जा चुका है। नमः शिवाय बैंक के कोष में भी राजकुटुम्ब तथा प्रत्येक परिजनों से मन्त्र लिखवा कर आप ने प्रतिष्ठा में समर्पण किया अब भी मन्त्रलेख प्रचलित है।

## कुम्भ यात्रा

सद्भावना से प्रेरित हो राजमाता ने नासिक, उज्जैन, प्रयाग तथा हरिद्वार चारों कुम्भपर्वों में गुरुदेव के सुखप्रद पादच्छाया में विश्राम करते हुए सत्सङ्ग का लाभ लिया। आपने काशी पञ्चक्रोशी यात्रा भी बड़े धूमधाम से की।

## वाक्सिद्धि

एक बार राजमाता के व्याधि पीडिता होने पर महाराज जी खम्भात से साणन्द पधारे। आप ने शरीर की अनित्यता प्रतिपादन करते हुए ॐ नमः शिवाय मन्त्र को ३६ लाख लिखने की आज्ञा दी। सङ्कल्प काल से ही व्याधि दूर होने लगी और राजमाता सर्वथा स्वस्थ हो गईं।

एक बार श्रीयुत् ठाकुर साहब विद्रधि (फोड़ा) से पीड़ित हो शल्य चिकित्सा के लिये बम्बई गये। गुरुदेव ने कहा कि रोग विना शल्य चिकित्सा के अच्छा हो जायगा, इसी आशय का तार भी शीघ्र आया जिससे लोगों को आश्चर्य हुआ।

श्रीयुत् राजगढ़ सरकार के केन्सर की रुग्णावस्था में भी महाराज जी ने मन्त्रोपदेश तथा आशीर्वाद दिया। आप शीघ्र स्वस्थ हो गये। महारानी साहिबा के पुत्ररत्नोत्पत्ति के वारे में भी आपने प्रथम से ही भविष्य वाणी की थी जो सर्वथा सत्य निकली।

श्री महाराज साहेब राजगढ़ तथा महारानी साहिबा सानन्द स्टेट के परलोक वास के सम्बन्ध में महाराज जी ने राज माता से सूचित कर दिया था। अपने ब्रह्मी भाव के विषय में भी आपने प्रथम से ही सङ्केत कर दिया था पर किसी को निश्चय न होता था।

श्री राजमाता के ६० वें वर्ष में मारकेश दशा निश्चित होने पर उत्तर काशी में गुरु देव के पास पत्र भेजा गया। पत्रोत्तर में श्रावणमास में दुग्ध पान, फलाहार भूमि शयन, भजन पूजन तथा महारुद्रयाग का सङ्कल्प आदि का आदेश आया। जिसके आचरण से सभी की भ्रान्ति नष्ट हुई।

## शुभप्रवृति

अहमदाबाद में ही निर्वाण के अनन्तर राजमाता ने श्री स्वामी रेवानन्द जी तथा कार्यकर्ता दुर्लभजी भाई को काशी भेज कर षोड़शी तथा समष्टि भण्डारा आदि कार्यों में सोत्साह भाग लिया।

अपनी उत्कट श्रद्धा के अनुकूल महाराज जी के समाधि स्थान के सन्निधि में जमीन खरीद कर शिवालय का निर्माण कर श्री स्वामी रेवानन्द जी से लाये हुए

नर्मदेश्वर तथा जयेन्द्रेश्वर की स्थापना की गई। सभी कार्य श्री १०८ स्वामी कृष्णादन्दजी महाराज मण्डलेश्वर जी के सानिध्य में किये गये।

इस प्रतिष्ठा महोत्सव में श्रीयुत गोद्विज पालक ठाकुर साहब श्रीमती रानी साहिबा समस्त राजकुटुम्ब, दवे साहब, मुख्य कार्यकर्ता श्री सोमनाथ जी तथा कामदार दुर्लभ भाई आदि ने बड़े ही उत्साह से समग्र कार्यों में भाग लिया। भड़ौच नगर वासी भावुक जनता ने विशाल जुलूस निकाल कर इस भव्य कार्य का यथोचित सम्पादन किया।

इस स्मारक में कई हजार रुपये का व्यय हुआ पर धन्यवादार्ह श्री कामदार दुर्लभजी भाई ने अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए पूर्ण मनोयोग से माँ जी साहिबा के द्रव्य का सदुपयोग किया।

उत्तर काशीवाले पत्र में गुरुदेवजी ने महारुद्र यज्ञ करने की आज्ञा दी थी जो श्रीं १०८ महाराज कृष्णानन्दजी मण्डलेश्वर के सानिध्य में श्रीयुत ठाकुर साहेब द्वारा १९९९ आश्विन शुक्ल एकादशी से पूर्णिमा तक निर्विघ्नतापूर्वक सन्पादित किया गया। जिसमें काशी तथा अहमदाबाद के वैदिक विद्वान् आमन्त्रित थे।

यह सभी श्रेयस्कर कार्य श्रीगुरुदेव के असीम अनुग्रह के फल हैं।

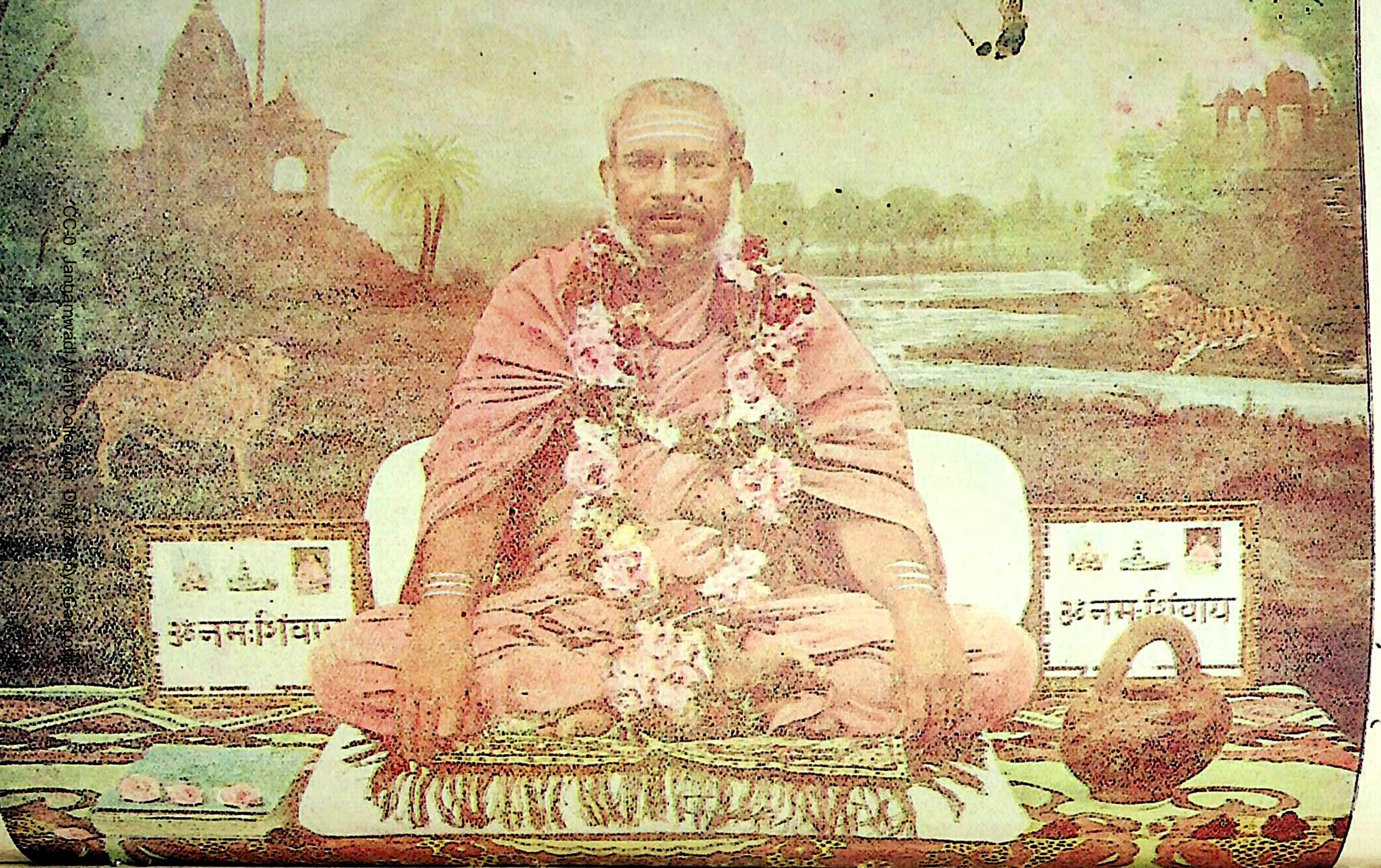
दूरीकरोति कुमतिं बिमली करोति
चेतश्चिरन्तनमघं चुलुकीकरोति ।
भूतेषु किञ्च करुणां बहुलीकरोति
सङ्गः सतां किमुनमङ्गलमातनोति ॥

ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः

# परिशिष्ट

और

# श्रद्धाञ्जलि


ॐ नमःशिवा
ॐ नमःशिवाय

## सर्वतन्त्र स्वतन्त्र परम विवेकी वीतराग विरक्त महानुभाव महात्मा शङ्करचैतन्य भारती जी महाराज

येनाक्रम्य विलून मूलकदशां नीता प्रथामायिकी।
यच्चिन्तामयता निवृत्तिमयता मायामयादामयात्॥
अत्ताणां विजयाद्यतीन्द्र पदतश्चान्वर्थनामाऽपियि-
स्तस्मै श्रौत धुरन्धराय विबुधेधाम्ने गुणानान्नमः॥

आलम्बनं विमलबोध परम्पराणां-
निष्ठा पराकृत परश्रुति सन्तती नाम्॥
तुर्यं पदं जिगमिषोर्गति रेकिकाऽऽसी-
च्छ्रीमज्जयेन्द्र यतिराट् प्रशमैकभूमिः॥ २॥

पारे रजोजवपदे पदपातकामैः-
पापापनोदनकृते सुकृतैर्विमृग्यम्॥
मोहप्रणुन्न मनसां मनसाऽप्यगम्यं-
श्रीमज्जयेन्द्रपदपद्मरजो भजामः॥ ३॥

केचिद्वदन्ति यतिषु प्रथमं विरक्तं-
प्राहुः परे परतरं परमात्मरक्तम्॥
पुण्यप्रसूतविभवं प्रभुमाहुरन्ये-
मान्या जयेन्द्र सुतनूः सकलेऽपि पक्षे॥ ४॥

स्वयं क्लेश मनास्वाद्य कृपालुः सुलभोजनः।
स्वयं क्लिष्टवा कृपात्प्रोजयेन्दो मुनिरेककः॥ ५॥

### ओं नमोनारायणाय—

अति हर्ष का अवसर है कि महापुरुषों के गुण वर्णन का प्रस्ताव उपस्थित है, परन्तु हमारे जैसे का इतना सौभाग्य कहाँ, कि उनके गुणों का लेश भी निरूपण कर सकें, वस्तुस्थिति यह है कि किसी एक चित्त का यह स्वभाव होता है कि वह किसी एक गुण से आकृष्ट होकर उसके बिना कहे रह नहीं सकता, इस लिये इस व्यक्ति को उनके साथ विशेष प्रसङ्ग वार्ता का अवसर न मिलने पर भी कादाचित्क प्रसङ्गों से ही यह निश्चित अवश्य हुआ कि शान्ति, हृदय की विशालता और गम्भीरता, परदोष विस्मरण शीलता, गुणैकपक्षपातिता, स्वार्थविमुखता ये गुण विशेष

रूप से उनमें श्रद्धेयता के प्रयोजक थे, उनका आविर्भाव महात्मसमुदाय को सुख पहुँचाने के लिये था, इन गुणों से ही यह विदित होता है कि उनका संन्यास ग्रहण शास्त्रीय निमित्त से था। गुणाः पूजा स्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः।

## कोविदचक्रचक्रवर्ती वादिनिवहवारण वारण पञ्चानन महा-महोपाध्यायाद्यनेक विरुदावली विभूषित पण्डिताखण्डल श्री हरिहर कृपालु द्विवेदी जी

ब्रह्मानन्दा भिषिक्त स्रवदमृतकण प्रोतसुप्रीति पात्रैः।
भूतार्थैः श्रोतृवृन्दश्रवण सुखमुखैर्भाषितैर्भूरिभावैः॥
कर्तव्यार्थप्रधानैः सहृदयजनता स्वान्त सन्ताप शान्तिम्।
कृत्वाऽऽनन्दात्म मोत्तं निरुपधि भजते श्रीजयेन्द्रोयतीन्द्रः॥१॥
दृप्यद्दुर्वादिदर्प द्रुतदलन दृढोदर्कतर्कैः प्रतीपम्।
पक्षं प्रक्षिप्यदक्षं त्वरित मभिमतस्थापनेऽस्य प्रमाणैः॥
नैपुण्यं पुण्यवाचोऽसकृदवकलितं यद्धि सभ्यैः सभायाम्।
शङ्के तान्यत्र कस्तत्सुकृतकृततनो रस्मदीयात् यतीन्द्रात्॥ २॥
मिथ्यामायैकमूलामित विषय विषद्वेषधीजो परक्तेः।
प्राचीनापूर्व पुञ्जप्रमित सदसतोऽद्वैत ब्रह्मैकवृत्तेः॥
वेदान्तोदन्त चिन्ता चिरनिचिवचितेर्दान्त शान्तान्तरारेः।
जीवन्मुक्तस्य चास्य व्यवहृतिरखिला लोकवर्त्माभिगुप्त्यै॥ ३॥
साङ्गाम्नायाभिरूपाप्रतिम प्रतिभयाऽध्यापयामास शिष्यान्।
एषस्वाचार निष्ठान् सदसि विजयिनोऽध्यात्मविद्यानदीष्णान्॥
कृष्णानन्द्रान्प्रवाचो भवसुखविमुखान् भारती तीर्थ वर्य्यान्।
धर्मानन्दान् सुधोक्तीन् गुरुगिरइतरात् कोहिसंख्यातुमर्हः॥ ४॥
एषां लोकातिशायि प्रसृमर चरितं विश्वविश्वासभाजाम्।
एभिः स्वल्पाक्षरैःकः परिमितवचनोऽशेषमर्हेन्निबद्धुम्॥
शुध्येदात्मा महात्मस्मृति नतिनुतिभिर्नूनमित्याशयानो।
नाहंयुर्व्याप्रतोहं तदिह सहृदयै र्नासदीहोऽपहास्यः॥ ५॥
काश्यामस्ति विशालशालमतुलं सारस्वतं मन्दिरम्।
यत्रापेक्षित सुव्ययाय यतिना प्रोत्सृष्टभूरीन्दिरम्॥

स्वाध्यायं च तदङ्गमुत्तमधियो विप्राश्च सन्यासिनः।
सानन्दं समधीयते समनयं चिन्ताभरन्यासिनः ॥ ६॥
यद्यप्यत्रपरश्शताः सुरगिरां विद्यालयाः स्वालयाः।
सन्त्येवेषु सवृत्तिकाः श्रमसहा विद्यार्थिनोऽधीयते॥
किन्त्वध्यक्ष समादरो न विषमो नो मन्त्रिणोयन्त्रणा।
ख्यातैरम्यगुणैरमुष्य महती कीर्तिर्जनैर्गीयते ॥ ७॥
अध्याप्याभवतामभैवनपरे छात्रा न चात्रापिमे।
माभूवन् प्रविविक्षवः पुनरिमे काषायवासस्विनः॥
ईदृक् कर्णपुटीनटीकटुकथा विक्षुब्ध विद्यार्थिनः।
पीयूषप्लुतभाषितेन समुदे प्रोवाच शान्ति नयन्॥ ८॥
यस्माद्धोस्तिमनीषिणः विपठिषा तं वानियुञ्ज्याम्यहम्।
कोर्थस्तत्रगतौ तथा प्रतिकृतिर्नैवात्मनीनायतिः॥
अज्ञान प्रभवात्मभेद भिदुरोत्कृष्टेर्दयघ्वं सदा।
साधूक्तं विदुषः परात्मगरतेर्नैवास्तिकश्चित्परः॥ ९॥
ग्रन्थाध्यापन कोविदाः सुविदिताचारा नियोज्याः परे।
येन ज्ञानपिपासवोऽत्रवहवस्तृप्यन्त्वरुद्धागमाः॥
ईदृग् वागमृतं निपीय मुदितो मन्त्री मनोज्ञाकृतिः।
धर्मानन्द यतिस्तथैवनचिरं कुर्वेहमित्यभ्यधात्॥ १०॥
नायंस्वल्पधनव्ययेन भवितान्नार्थागमेहा यतेः।
युक्ता किन्त्वनुरागिणो भवसुखोन्मेषाय दित्सोर्धनम्॥
नास्मिन्दानफलं त्रयीतिकृतिनः सम्बोधनं सर्वदा।
सन्मार्गस्यरिरक्षया हितमिदं नोपेक्षणीयं यतेः॥ ११॥

## प्रगाढ पाण्डित्यमण्डितान्तःकरण महामहोपाध्याय श्री गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी जी ( जयपुर )

ब्रह्मीभूत श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज महामण्डलेश्वरजी के दर्शन करने का सौभाग्य मुझे कई बार प्राप्त हुआ था। आप संस्कृत विद्या और विद्वद्वर्ग के परम अनुरागी थे यह मैंने खूब अनुभव किया। वैसे तो आपने आजन्म अपने श्रमसे द्वारा सनातनधर्म और संस्कृत

विद्या की उन्नति के बहुत बड़े बड़े कार्य किये; किन्तु अहमदाबाद में एक उच्च श्रेणी के संस्कृत महाविद्यालयका प्रतिष्ठापन मेरी दृष्टि से बहुत उच्चकोटि का कार्य आपके द्वारा हुआ। अन्यान्य प्रान्तों की अपेक्षा मुम्बई प्रान्त में संस्कृत विद्यालय की न्यूनता सब ही संस्कृतानुरागियों को खटकती थी। इतना धनिक प्रान्त होते हुए भी संस्कृतविद्या की यह उपेक्षा भला किसे. सह्य हो सकती है, किन्तु ब्रह्मनिष्ठ श्री स्वामी जी ने इसका केवल अनुशोचन करके ही अपने कर्तव्य को समाप्त नहीं कर दिया, प्रत्युत अपने पुरुषार्थ से इस अभाव और कलङ्क को धो डाला और भी जहाँ कहीं सनातनधर्म और संस्कृत विद्या पर कोई विपत्ति आपने सुना कि नाना कष्ट उठाकर स्वयं वहाँ पधारते और यावच्छक्य उसका प्रतीकार करते थे। अत्युच्च पद पर विराजते हुए भी संस्कृत विद्वानों का असाधारण सम्मान करते हुए मैंने आपको कई बार देखा। आपके उपदेश से आपके शिष्य अनेक महात्मा भी संस्कृत विद्या के परमानुरागी हैं। श्री मण्डलेश्वर जी अपना कर्तव्य पालन कर अपनी कीर्ति पताका फहरा गये। अब अन्यान्य महात्मगण भी उनका अनुसरण कर धर्म विद्या की रक्षा करें—यही प्रार्थनीय है।

## श्री १०८ विशिष्टाद्वैतसिद्धान्त संरक्षक अखिल भारतवर्षीय वर्णाश्रम स्वराज्य संघ के प्रधान नेता उत्तराद्रि श्री-वैष्णवमठाधीश तिरुपति वाला जी बड़गादी बम्बई श्री १०८ श्रीदेवनाथकाचार्य्य जी महाराज

श्री स्वामी महामण्डलेश्वर जी का जन्म संसार में अधर्म विध्वंसपूर्वक धर्म-त्राण ही के लिये था। आप अपनी समदृष्टि, दया, दानशीलता, औदार्य्य तथा तपश्चर्य्या के कारण धार्मिक संसार के लिये एक मात्र निदर्शन थे। तीर्थ यात्राओं तथा धर्म प्रचारार्थ भ्रमण द्वारा आपने जन जन के हृदय में आस्तिकता का स्रोत बहा दिया। आपकी शिक्षा का प्रभाव जनता के ऊपर भलीभाँति पड़ा। विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि आज बहुत वर्षों से जो साम्प्रदायिक रागद्वेष की ज्वाला चरम सीमा पर पहुँच रही थी उसके लिये आपने विशेष प्रयत्न करके सबके हृदय में एक जगह बैठ कर धार्मिकोन्नति तथा शास्त्रीय मर्यादा संरक्षणार्थ विचार करने का प्रेम भाव जमा दिया जिसका परिणाम यह हो रहा है कि चार आचार्य वैष्णव सिद्धान्त के तथा श्री शंकराचार्य स्वामी प्रभृति उज्जैन—नासिक—हरिद्वार—प्रयागादि के

शुभ कुम्भावसर पर एकत्र बैठकर गतमनोमालिन्य होते हुए पवित्रान्तःकरण द्वारा संसार के श्रेय एवं धर्माभ्युत्थान के विषय में मन्त्रणा तथा विचार करते हैं। ऐसे २ शुभ और सुन्दर कार्यों में श्री महामण्डलेश्वर जी ही अग्रसर और निदान कारण थे। हम तो यहाँ तक समझते हैं कि श्री शंकर भगवान् जगत्कल्याणार्थं रूपत्रय से आविर्भूत हुए। प्रथम श्री शंकराचार्य स्वामी दूसरे वेदव्याख्याता श्री विद्यारण्य स्वामी और तीसरावतार श्री महामण्डलेश्वर स्वामी जी का ही हुआ है।

---

## श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ मण्डलेश्वर स्वामी नृसिंहगिरिजी महाराज

इस भूमण्डल में उद्भिजादि योनि की अपेक्षा मनुष्य योनि श्रेष्ठ है। मनुष्य योनि के चार वर्णों में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। ब्राह्मण वर्ण के चार आश्रमों में संन्यासाश्रम श्रेष्ठ है। कुटीचकादि संन्यासापेक्षया परमहंस श्रेष्ठ हैं। विविदिषु परमहंसापेक्षया विद्वत्परमहंस महात्मा श्रेष्ठ हैं। विद्वदपेक्षया ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष श्रेष्ठ हैं।

जिसकी निर्विशेष निर्धर्मक ब्रह्म में निरंतर स्थिति रूप निष्ठा है वह महापुरुष ही श्रेष्ठता की सीमा है—यह गीता ६।३२ के श्लोक से सिद्ध है—

**आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।**
**सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मत इति।**

हमारे परमहंस संन्यासी समुदाय में महामण्डलेश्वर महोदय श्रीमान् स्वामी जयेन्द्रपुरी जी महाराज की ब्रह्मनिष्ठा पूर्ण थी। आपका त्याग और उदारता भी अलौकिक थी ! आपकी शरीरिक मुद्रा और पदार्थों में अनासक्तता उनकी पूर्ण ब्रह्मनिष्ठा की सूचिका हैं। जिस महापुरुष की चिदानन्दमय परब्रह्म में पूर्णतया स्थिति हो जाती है उसकी दृष्टि में सत्यतया पदार्थाभाव होने से उनमें आसक्ति का अत्यन्ताभाव हो जाता है।

संक्षेप शारीरक में महापुरुष की दृष्टि बतलाई है—

**कृपणधीः परिणाममुदीक्षते विगतकल्मषधीस्तुविवर्ततााम्।**
**स्थिरमतिः पुरुषः पुनरीक्षते व्यपगतद्वितयं परमं पदम्॥**

योगवासिष्ठ में भी ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष की दृष्टि बतलाई है—

**सर्वा हि शब्दार्थदृशो ब्रह्मैवैताः पृथक् न तत्।**
**कटकस्व पृथग्धर्म[illegible]त्वं पृथक् जलात्॥**

यथा न संभवत्येव न जगत्पृथगीश्वरात् ।
मरुनद्यां यथा तोयं द्वितीयेन्दौ यथेन्दुता ।
नास्तिचैवं जगन्नाम दृष्ठमप्यमलात्मनि ।। इत्यादि

नेति नेति, नेहनानास्ति किंचन, सर्वं खल्विदं ब्रह्म, वासुदेवः सर्वमिति समहात्मास्तु दुर्लभः,

एकः समस्तं यदिहास्ति किंचित्तदच्युतोनास्ति परं ततोऽन्यत् ।
सोहं स च त्वं सच सर्वमेतदात्मस्वरूपं त्यज भेदमोहम् ।।

इत्यादि श्रुति स्मृति प्रमाणक दृष्टि वाले महामण्डलेश्वर जी की मायिक तुच्छ पदार्थों में आसक्ति कैसे हो सकती है । आसक्ति को पदार्थसत्ता की अपेक्षा है । ऐसे महापुरुषों की दृष्टि में पदार्थ सत्ता ही नहीं ।

---

## श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी परमानन्द जी महाराज ( मण्डलेश्वर ) काशी

संसारासारतां बुद्ध्वा, यं च संसारपारगम् ।
ब्रह्माम्बुधौ निमज्जन्तं, तं प्रणेमि पुनः पुनः ।।१।।
श्रीजयेन्द्रपदं नत्वा, सर्वसिद्धिपरायणम् ।
ब्रह्मीभूतस्य तस्यैव, कैवल्यं वर्ण्यते मया ।।२।।

वेदान्तसिद्धान्ताभेदभावगतानां महात्मनां जयेन्द्रनामाङ्कितानां संन्यासिवर्याणां जीवनचारित्रं प्रोत्साहेन सुमनसा कथयामि । कैवल्यप्राप्तिपूर्वतः दर्शनार्थं गतोऽहं अहमदाबाद नगरे । गत्वा च शयनभवने, तस्मिन् समये तत्संनिधौ केचन साधवः आसाञ्चक्रुः ।। शयालुं महात्मानं निरीक्ष्य मे मनसि विचारो जागर्तिस्म "केयमवस्था संपन्ना" । विलोकनेनापि परिचयो नायाति । यथा कश्चित् पुरुषः गृहकुटुम्बादीनि परित्यज्य ब्रह्मानन्दं अनुभवति, नोद्भवति शोकमोहादिकम् । तद्वत्...

तद्बुद्धयः स्तदात्मानः, तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छंत्यपुनरावृत्तिं, ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ।।

इति भगवतां वाक्यानुसारेण गतामवस्थामनुभूय आसम् । किञ्चित् कालान्तरं प्रबुद्धः, मां विलोक्य मयासाकं भाषणमकारि मम हस्तं गृहीत्वा च कथयतिस्म । "दृश्यमानं जगत् स्वप्नतुल्यं विभावयन्तु गन्धर्वनगरं यथा" । इति मधुरवैराग्य

संपन्नवचनं श्रुत्वा मम हृदि परमानन्दोऽभूत्। जीवन्नेव तेन योगजधर्मवैलक्षण्यं कैवल्यपदमनुभूतमिति। शास्त्रप्रामाण्यादेव समनुमानं सिद्धम्। येन महात्मना विद्यमाने शरीरे संसारसुखं परित्यज्य ब्रह्मानन्दसुखमनुभूतं तस्य का कथा शरीरत्यागानन्तरं ब्रह्मानन्दापारानन्दप्राप्तौ। सर्वथैव ते मुक्तिं लेभिरे।

**इत्यमेव समालोचयन्तु भवन्तः। लेखनादलं विरम्यते मया॥**

---

## श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी भागवतानन्द जी महाराज मण्डलेश्वर काव्य-साङ्ख्य-योग-न्याय वेद-वेदान्ततीर्थ, वेदरत्न, मीमांसाभूषण, वेदान्त-वागीश, दर्शनाचार्य, कनखल (हरिद्वार)

'इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः' (ऋग्वेद १०।१४।१५। अथर्ववेद १८।२।२।)

इस विरञ्चि-रचित प्रपञ्च (संसार) में अदृष्टवश से पवन-द्वारा शुष्कपर्ण के सदृश प्राणी विविध योनियों में भ्रमण करता हुआ अनेक प्राक्तन जन्म-समुपार्जित पुण्य पुञ्ज के प्रभाव से कदाचित् मनुष्य शरीर प्राप्त करता है। यह तो निर्विवाद सिद्ध है कि मनुष्य शरीर ही ब्रह्मज्ञान के योग्य होने के कारण सर्व-श्रेष्ठ है। इस नर-देह को प्राप्त कर अपने कल्याण का साधन करना बड़े पुण्य के ही कारण हो सकता है, परन्तु सब संसार के कल्याण का साधन करना अतीव महापुण्य पुञ्ज के प्रभाव से ही सम्भव है।

जगदीश प्रभु त्रितापदुर्वारदावानलसन्तप्त जनता के उद्धार कार्य के लिये अपनीविभूतिविशेषविशिष्टगुणगणमण्डनमण्डित किसी महात्मा को इस मर्त्यलोक में आने का आदेश करते हैं। फलतः परोपकारैककृतिपरायण महापुरुषों का इस धराधाम में प्राकट्य होता है।

ऐसे सन्त महात्माओं को 'यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वम्' इस भगवद्गीता (१०।४१) कथितरीति से प्रभु की विभूति विशेष कहने में अथवा 'ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति' (मुण्डक उ० ३।२।९) इस श्रुति-विश्रुत सिद्धान्तानुसार ब्रह्मरूप कहने में अतिशयोक्ति का लेश भी नहीं किन्तु सत्योक्ति ही है। सुरेश्वराचार्य ने स्पष्ट रूप से कहा है कि जिस महात्मा की सर्वात्म-भावना परिपक्व हो गई है, संसार को तारने वाला वही महात्मा साक्षात्परमेश्वर स्वरूप है—

'सर्वात्मभावना यस्य परिपक्वा महात्मनः । संसार तारकः साक्षात्स एव परमेश्वरः ।( मानसोल्लास ३।२८ ) । श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्री १०८ श्रीमान् स्वामी जयेन्द्रपुरी जी महाराज महामण्डलेश्वर इसी कोटि के थे ।

श्री महामण्डलेश्वर स्वामी जी के प्रिय कुछ श्लोक—

'एकं ब्रह्मास्त्रमादाय नान्यं गणयतः क्वचित् ।
आस्ते न धीरवीरस्य भङ्गः सङ्गर केलिषु ॥'

( खण्डन खण्डखाद्य १।१५ ) एक ब्रह्मरूपी अस्त्र को ग्रहण करके दूसरे को कुछ न समझने वाले वीर धीर का युद्ध में पराजय नहीं होता, जब कि सब को एक ब्रह्म दृष्टि से ही जान लिया फिर दूसरा कोई रहा ही नहीं फिर युद्ध कहाँ पराजय कहाँ—यह परम सार है ।

'ईश्वरानुग्रहादेषा पुंसामद्वैतवासना ।
महाभयकृतत्राणाद्वित्राणां यदि जायते ॥'

(खण्डन० १।२५) यह अद्वैत वासना ( अद्वैतानुभवजन्यसंस्कार ) पुण्यशाली पुरुषों के मनमन्दिर में ईश्वर के अनुग्रह से उत्पन्न होती है, यदि यह दो तीन अर्थात् विरल अल्प पुरुषों को हो जाती है तो संसार रूपी महाभय से रक्षा कर देती है ।

'आपाततो यदिदमद्वयवादिनीनामद्वैतमाकलितमर्थतया श्रुतीनाम् ।
तत्स्वप्रकाशपरमार्थचिदेवभूत्वा निष्पीडितादहह निर्वहते विचारात् ॥
( खण्डन० १।२६ )

अद्वैत बोधक श्रुतियों का जो यह अद्वैत अर्थ आपात मात्र से ( अविद्या अवस्था में वाच्य वाचक भावरूप से) विचारा था आश्चर्य है कि शोधित विचार से वही अद्वैत स्वप्रकाश परमार्थ चित्रूप होकर 'ब्रह्मैवेदम्' इत्यादि श्रुतियों की एकवाक्यता पूर्वक शोधित विचार द्वारा सिद्ध हो जाता है । अर्थात् अज्ञानावस्था में अद्वैतबोधक श्रुतियों का अद्वैतपरक अर्थ ऊपर २ से ही जाना था, अब ज्ञानावस्था में वही अद्वैत अर्थ ठीक सिद्ध हो गया ।

'आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा ।
वितथैः सदृशाः सन्तोऽवितथा इव लक्षिताः । (माण्डूक्य कारिका २।६)

जो दृश्यवर्ग आदि और अन्त में सद्रूप नहीं हैं, वह वर्तमान काल में भी सद्रूप ( सत्य ) नहीं है किन्तु मिथ्या है । ये दृश्य पदार्थ मृगतृष्णिकादि पदार्थों के सदृश हुए भी अज्ञानियों के द्वारा सद्रूप समझे जाते है ।

'भेदं च भेद्यं च भिनत्ति भेदो यथैव भेदान्तरमन्तरेण।
मोहं च कार्यं च बिभर्ति मोहस्तथैव मोहान्तरमन्तरेण' (संक्षेप शारीरक १।५५)

जैसे घटपटादिनिष्ठ भेद (अन्योऽन्याभाव) स्वाश्रयभेद्य घटपटद्वय को परस्पर भिन्न करता हुआ स्व ( भेद ) को भी घटादि से भिन्न करके बोधन करता है, अनवस्था दोषभय से स्व को भिन्न करने के लिये स्वप्रतियोगिक भेदान्तर की अपेक्षा नहीं करता है, ऐसे ही मोह ( अज्ञान ) मोहान्तर की अपेक्षा न करता हुआ मोह की तथा मोह के कार्य की कल्पना करता है।

'निर्विशेषं परं ब्रह्म साक्षात्कर्तुमनीश्वराः। ये मन्दास्तेऽनुकम्प्यन्ते सविशेषनिरूपणैः॥
वशीकृते मनस्येषां सगुणब्रह्मशीलनात्। तदेवाविर्भवेत्साक्षादपेतोपाधिकल्पनम्॥
( भामती की टीका कल्पतरु' १।१।७।२० )

जो साधारण बुद्धि के लोग निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं कर सकते हैं उनके ऊपर दया करके उनके लिये शास्त्रों में सगुण का निरूपण किया है, सगुण ब्रह्म की उपासना करने से मन के वश हो जाने से निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है।

'देहं च नश्वरमवस्थितमुत्थितं वा सिद्धो न पश्यति यतोऽध्यगमत्स्वरूपम्।
दैवादपेतमुत दैववशादुपेतं वासो यथापरिकृतं मदिरामदान्धः॥
देहोऽपि दैववशगः खलु कर्म यावत्स्वारम्भकं प्रति समीक्षत एव सासुः।
तं सप्रपञ्चमधिरूढसमाधियोगः स्वाप्नं पुनर्न भजते प्रतिबुद्ध वस्तुः॥'
( भागवत-११।३६।३७ )

मदिरा से उन्मत्त हुआ पुरुष जैसे अपने पर ओढ़े हुए वस्त्र के दैववश रहने या गिरने के विषय में कुछ भी नहीं जानता वैसे ही आत्मस्वरूप को जानने वाले जीवन्मुक्त का यह नाशवान् शरीर बैठा हो या खड़ा हो उसे कुछ पता नहीं होता। जबतक प्रारब्धकर्म शेष रहता है तब तक यह दैवाधीन शरीर प्राणादि के सहित जीता रहता है, किन्तु समाधि योग में आरूढ़ होकर तत्त्व साक्षात्कार कर लेने से विज्ञ पुरुष फिर प्रपञ्च सहित इस देह को स्वप्नवत् समझ कर इसमें आसक्त नहीं होते।

इन श्लोकों को स्वामी जी महाराज एकान्त में बैठे २ बहुत बोला करते थे, अतः उन महापुरुष के संस्मरणार्थ इन श्लोकों का यहाँ उद्धृत करना उचित ही है।

## श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी विष्णुदेवानन्दजी महाराज मण्डलेश्वर ( कैलाशाश्रम हृषीकेश )

श्रीमन्महामण्डलेश्वर स्वामी जयेन्द्रपुरीणां "सुप्रशस्तिका"

जित्वेन्द्रियरिपूनद्धाऽजैषीदिन्द्र पुरीमिमाम् ।
श्रीजयेन्द्रपुरीनामा मण्डलीशमहोदयः ॥१॥
इन्द्र आत्मा पुरीतस्य शरीरं वेदविश्रुता ।
तज्जयो जीवतो मुक्तावच्छेदकतामतः ॥ २ ॥
स समाट समामिलामिह प्रकटामुत्कटतीर्थतादिभिः ।
वसुधामसिधारयासमं यतितानामविधारयन् व्रतम् ॥ ३ ॥
विचचार भुविप्रचारयन्नपि वेदान्तविचारचातुरीम् ।
सवितेवदिविप्रभामसौ जनतासन्तमसापहारिणीम् ॥ ४ ॥
महतीं यतिमण्डलीं वहन्नुपदेशामृतमुद्गिरन्नगात् ।
स यदादिशि दिश्यमुंतदा विलुलोके जनतेन्द्रमागतम् ॥ ५ ॥
चकमे स वनानि योगिभिः प्रतिलेभेऽथ धनानि भोगिभिः ।
स धनेषु वनेषु वा यतिः समदर्शी चरतिस्म धीरतिः ॥ ६ ॥
स यदा विकचाम्बुजोपमाद्वदनाद्दुद्भमतिस्म वाङ्मधु ।
ददृशे जगतीगतस्तदा स्रवदुस्रोऽमृतरश्मिरुत्सुकैः ॥ ७ ॥
स च जातु तुषारपर्वते बदरीनाम तपोवने वसन् ।
अवदभ्रपरं परं गृणन्नचरद्भूरि तपोऽन्यदस्मरन् ॥ ८ ॥
तपसा परितुष्यतेव ही हरिणा सम्मुमुदे स तत्र किम् ।
यदसौ न कृशो न पिङ्गलो धमनिव्याप्ततमो न वाऽभवत् ॥ ९ ॥
द्विगुणं समदीपिवर्चसा प्रजहर्षातुलमेव चेतसा ।
वपुषा विरराजसोऽधिकं प्रशशामान्तरनन्तमोदभाक् ॥ १० ॥
यतिभिः सहसोऽथ लङ्घयन् हिमवन्तं प्रतिपेदिवान्शनैः ।
कतिभिर्दिवसैर्यतीश्वरो बत कैलासगिरिं शिवौकसम् ॥ ११ ॥
अद्राक्षुरभ्रंलिहमेकशृङ्गं नगं तुषारैः परिवारिताङ्गम् ।
ते भिक्षवो यक्षजनैरसङ्ख्यैरधिष्ठितं रुद्रगणैश्चनेकैः ॥ १२ ॥
तं नगेन्द्रमभिवीक्ष्य संस्थितं [illegible]मिव पुष्करोदवम् ।
मेनिरे स्वयमिवोत्थितं शिवं ताण्डवाय यतिपुङ्गवादयः ॥ १३ ॥

तत्र कन्दरनिवासिभिरिद्धै र्बौद्धभिक्षुवरसिद्धसमूहैः ।
सत्कृतायतिपतिप्रमुखास्ते भिक्षवः परममेव ननन्दुः ॥ १४ ॥
तत्रैक पिङ्गपुरुषैरिवनिर्मितेषु चन्द्रप्रभेषुयतयः पटमन्दिरेषु ।
ध्यायन्तऊषुरनिशं गिरिजेशमन्तर्वीक्षाम्बभूवुरथ तं पुरतःस्फुरन्तम्॥१५॥
इति विलोक्य तथा प्रमथाधिपं परमहंसगणैः सह मानसम् ।
सफलितस्वमनोरथसंमदो यतिवरः ससरः समढौकत ॥ १६ ॥
तद्विगाह्यसरोदिव्यमच्छोदकमनाकुलः ।
परिचक्राम पादाभ्यां कुर्वन्निव सरोजवत् ॥ १७ ॥
कलहंसगणाकीर्णे हिमानीपरिवारिते ।
तत्र सन्ध्यापयोदाभां परहंसावितेनिरे ॥ १८ ॥
जेपुरेके तपस्तेपुरन्येदध्युस्तथापरे ।
समाधौ लिल्यिरे केचिद् भिक्षवस्तत्सरस्तटे ॥ १९ ॥
इत्थं यतीनां निवहेन सार्द्धं विहृत्य तत्राल्पमनेहसंसः ।
शिवं स्वमात्मानमवेक्ष्य साक्षाद् यतीश्वरोऽथावततार कुध्रात् ॥२०॥
इत्येवं यतिपतिरेष आहिमाद्रे रासेतोरिह विचरन्नमन्दभाग्यः ।
विद्याढ्यै रथवसुमज्जनैरनेकैरानर्चे भुविदिविषद्वदेव नित्यम् ॥ २१ ॥
स एष यतिमण्डलीपतिरधीतसर्वागमः प्रगाढमतिरद्वये शिवमनुप्रचारेद्दढः ।
जनोपकृतिजंमहद्भिरमनाशितत्वायशश्चिरन्तन पदंययावपुनरागमालङ्कृतम् ॥

---

## श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी विद्यानन्दजी महाराज मण्डलेश्वर लोकसंग्रही, गीताव्यास, श्रीगीतामन्दिर, अहमदाबाद

**यद् यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।**
**तत्तदेवावगन्तव्यं मम तेजोंऽश सम्भवम् ॥**

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने स्वयं गीता में कहा है कि—जहां कहीं विशेष चमत्कृति दृष्टिगोचर होती हो, जानना कि—वहां प्रभु की अतुल शक्ति का अंश विद्यमान है। आज हम एक ऐसे महापुरुष के विषय में कुछ कहना चाहते हैं जो अनेक अलौकिक योग्यताओं की समष्टि थे। महात्माओं के सदुपदेश से जितना लाभ होता है, उससे भी अधिक उनकी जीवन विषयक घटनाओं के अनुशीलन से हुआ करता

है। "हम क्या थे तथा हैं" ? यदि हम इस विषय में विचार करें तो हमें पूर्व पुरुषों के जीवन-विषयक इतिवृत्तों का अध्ययन करना होगा। जब हम पूर्व पुरुषों का चरित्रालोचन करते हैं तो हमारे शरीर और मनमें अपूर्व शक्ति का संचार हो जाता है। रामायण, महाभारत और भागवत आदि का इतिहास हमें प्राक्तन पुरुषों का स्मरण दिलाते हैं।

फिर बात यह भी है कि जो जाति अपने पूर्व पुरुषों का पूजन करना नहीं जानती और अपनी जातिके विशेष-विभूति-सम्पन्न पुरुषों को भुला बैठती है उसकी नाड़ियों का उष्णरक्त-प्रवाह शुष्क हो जाता है, फिर उसका जीवित रहना सम्भव नहीं होता। भूतकालिक धटनाओं पर ध्यान देनेवाला, प्राचीन महापुरुषों के चरित से शिक्षा ग्रहण करनेवाला और कल की घटनाओं पर आज ध्यान देनेवाला ही वर्तमान में बैठकर भविष्य को उज्वल कर सकता है।

इस सिद्धान्त का अनुसरण करनेवाले जिन सज्जनों ने "श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य्य अद्वैत विद्या-दिवाकर माननीय स्वामी "श्रीजयेन्द्रपुरीजी महाराज महामण्डलेश्वर" के 'जीवन-चरित' के प्रकाशन का उद्योग किया है, हम उनके स्तुत्य समारम्भ की श्लाघा करते हुए नहीं अघाते।

स्वामीजी ने जो कार्य किये, अपूर्व ही किये। कुम्भ के विपुल व्ययपूर्ण मेले समारोह के साथ सम्पन्न किये। हरिद्वार के कुम्भ में असंख्य संन्यासि-समाज के समक्ष घोषणा कर दी कि—जो कोई भी बद्रीनारायण की यात्रा करना चाहता हो, हमारे साथ चले। बहुत-से महात्मा साथ गये, और उनका व्ययभार उठाकर, उनकी आने जाने की यात्रा सानन्द समाप्त की। स्वामीजी उस समय अति कठिन कैलाश की यात्रा करने भी पधारे थे। नमः शिवाय बैंक का प्रचार भी आपके प्रभाव का फल है। किसी समय आपने दक्षिण के एक प्रसिद्ध तीर्थ में सर्वस्व दान कर दिया था। इसी प्रकार अनेक महत्त्व के कार्य स्वामीजी ने अपने जीवन में सम्पादन किये थे।

हमने तो संक्षेप में कुछ शब्द लिखकर अपनी वाणी कृतार्थ की है। 'वे क्या थे ?' 'कहां के थे ?' इसके जानने की हमें जरूरत नहीं है। हम तो उनके उन उपकारों के प्रति कृतज्ञता पूर्वक श्रद्धाञ्जलि अर्पण करना चाहते हैं जो उन्होंने संन्यासी समाज का मुख उज्ज्वल करते हुए लोक कल्याणार्थ किये हैं। उन्होंने यों तो सर्वत्र पर गुजरात में विशेषरूप से ब्रह्मविद्या प्रचार के साथ-साथ भक्ति की सरस्वती बहा दी। स्वामीजी ब्रह्मलीन हो गये, उन्हें जो करना था, कर गये। वे कृतकृत्य थे, और अपने भक्तों को भी कृतार्थ कर गये।

अन्त में हम गीता–गीत श्रीवासुदेव से प्रार्थना करते हैं कि—स्वामीजी का भौतिक देह यद्यपि आज हमारे साथ नहीं है, तथापि 'जीवन–चरित' रूपी यशः शरीर सदा हमारे सम्मुख विराजमान रहता हुआ सब समाज को सदुपदेश की शिक्षा देता रहे। ॐ हरिः ॥

---

## श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी महेश्वरानन्द जी महाराज मण्डलेश्वर, सूरतगिरि का बंगला, कनखल, ( हरिद्वार )

श्रीमज्जयेन्द्रयतितल्लजपादपद्मौ,
संसारघोरजलधेस्तरणेऽभ्युपायौ ।
वन्दे मुमुक्षुनिवहैश्शरणीकृतौ यौ,
भक्त्या विनेयधिषणापरिशोधकौ तौ ॥

अद्वैतपीठस्थितदेशिकं तं, हृद्यात्मविद्याविशदान्तरङ्गम् ।
नित्यं भजामः शिवसत्स्वरूपं, जयेन्द्रयोगीन्द्रगुरुं हृदन्तः ॥

### श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ

श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य्य-पूज्यपाद-प्रातः स्मरणीय–अद्वैत ब्रह्मविद्या-मार्तण्ड-महामण्डलेश्वर श्री १०८ स्वामी ( जयेन्द्रपुरी ) जी महाराज श्रोत्रिय एवं ब्रह्मनिष्ठ महात्मा थे।

स्वमीजी महाराज की अनुपम विद्वत्ता से अनेक-सहृदय शिष्यों को एवं असंख्य भावुक भक्तों को बड़ाभारी लाभ हुआ है। इनकी महान् देदीप्यमान-विद्या-ज्योति के सम्बन्ध से अनेक विद्वान्-शिष्यरूपी ज्योतियाँ प्रकट हुई हैं, और वे इस समय भी जनता को बड़ा भारी लाभ पहुँचा रही हैं।

श्री स्वामी जी महाराज जैसे अद्वितीय श्रोत्रिय थे, वैसे अद्वितीय ब्रह्मनिष्ठ भी थे। वे सदा अन्तर्मुख वृत्ति से रहते थे, जिन भाग्यशालियों ने पूज्य स्वामी जी महाराज के दर्शन किये हैं, उनको सहज ही में स्वामी जी महाराज की निष्ठा का आभास हो जाता था! मुझे श्री स्वामी जी महाराज के पुनीत चरणों में कई वर्ष तक रहने का अलभ्य लाभ मिला है। श्री स्वामी जी ब्रह्मात्मज्ञान। के—'अक्रोध-वैराग्यजितेन्द्रियत्वं क्षमादयासर्वजनप्रियत्वम्। निर्लोभदानं भयशोकदानं ज्ञानस्य

चिह्नं दशलक्षणाख्य ॥' इस श्लोकोक्त सभी अक्रोधादि लक्षणों से पूर्ण थे। दर्शन-मात्र से ही उनके श्रद्धेय विग्रह में कैलासवासी दक्षिणामूर्ति भगवान् महादेव की ही भावना हो जाती थी।

## श्री स्वामी जी महाराज साधनकाल में अद्वितीय साधक थे।

कभी कभी अपने अन्तरंग शिष्यों के सामने श्री स्वामी जी महाराज अपनी साधना का वर्णन किया करते थे। प्रथम स्वामी जी हिमालय के एकान्तस्थान में रहकर प्राणायाम का बड़ा अच्छा अभ्यास किया करते थे। उस अभ्यास से स्वामी जी का शरीर बहुत ही कृश हो गया था, अस्थिपञ्जरमात्र ही अवशेष रह गया था। आहार दूध मात्र का ही था। एक रोज एक तेजस्वी जटाजूटमण्डित महात्मा आया, उसने स्वामी जी महाराज को दूध पिलाया, उस दूध का स्वाद बड़ा अवर्ण-नीय था। उसके पान से शरीर में बड़ी विलक्षण स्फूर्ति एवं प्रसन्नता का सञ्चार हुआ। दूध पिलाकर वह महात्मा स्वामी जी से कहने लगा कि—अब तुम विशेष प्राणायाम का अभ्यास मत करो, तुम्हारे इस शरीर से बड़ा काम लेना है। काशी में जाकर शास्त्रों का कुछ अभ्यास करो, पश्चात् भारतवर्ष में सभी जगह भ्रमण कर उपदेश करो। पापियों का उद्धार करो। अज्ञानियों को ज्ञान प्रदान करो। मूढ मनुष्यों को सद्धर्म का उपदेश करो। यही कार्य आपके इस शरीर से लेना है। भगवान् का अवतार साधु महात्माओं की रक्षा के लिए एवं दुष्टों के विनाश के लिए होता है। परन्तु पापी, मूढ़, अज्ञानियों के उद्धार का कार्य भगवान् ने एक मात्र सन्त महात्माओं को ही सौंपा है।

इतना कहकर वह महात्मा स्वामी जी महराज की उस अभ्यास की गुफा से अन्तर्हित हो गया। स्वामी जी महाराज को निश्चित हो गया कि—ये साक्षात महादेव कैलाशवासी थे। महात्मा के वेष में आकर दर्शन दे गये, और कर्त्तव्य का आदेश दे गये। उनके आदेश के अनुसार स्वामी जी महाराज प्राणायाम आदि योग का अभ्यास छोड़ कर काशी गये। विचार किया कि—अभी इस शरीर की आयु बहुत छोटी है, इसलिये विशेष रूप से शास्त्रों का ज्ञान भी सम्पादन करना चाहिए। कुछ ही वर्षों के परिश्रम से ही स्वामी जी महाराज ने सभी व्याकरण, न्याय, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त आदि शास्त्र पढ़ लिया। अच्छे योग्य विद्वान् बन गये। पुनः स्वामी जी महाराज को अपनी योग्य साधनाभ्यास की धुन सवार हुई। काशी छोड़ कर वे हिमालय के एकान्त स्थान में चले गए। प्रणव मन्त्र का

अजपाजप करने लगे। स्वामी जी प्रातः काल कुछ-कुछ प्रकाश होने पर पास की एक छोटी सी नदी में स्नान करने जाते थे। वहाँ बड़ा भयावह जंगल था। मनुष्य का दर्शन भी दुर्लभ था। एक रोज प्रातः स्नान करने जा रहे थे। बीच में एक चौमुहानी मिलती थी। उस रास्ते के दूसरी तरफ से एक बड़ा लम्बा चौड़ा सिंह (व्याघ्र) आ रहा था। स्वामी जी सीधे रास्ते से नदी की तरफ जा रहे थे और वह दूसरे रास्ते से आ रहा था। बीच में स्वामी जी से उस सिंह का मिलाप हुआ। एक ही हाथ वह दूर रह गया था। उस सिंह को देखकर स्वामी जी को प्रथम कुछ भय का संचार हुआ। परन्तु द्वितीय क्षण में तुरन्त ही उस सिंह में आत्म-भावना हो गई। यह भी तो मेरा आत्मा है। आत्मा से आत्मा को भय क्या? स्वामी जी महाराज उसको आत्मदृष्टि से देखने लगे और हाथ उठाकर उसको 'हू' करके चले जाने के लिए कहा। तुरन्त ही वह भयानक दीप्त विद्युत की तरह चमकती हुई आँखवाला फाड़े मुख में मोटे-मोटे दन्तों से विकराल दिखाई देने वाला, सिंह, पूँछ को नीची करके वापिस चुपचाप जाने लगा। उस समय ऐसा मालूम होता था कि इस सिंह की क्रूरता नष्ट हो गई है और उसमें सौम्यता प्रकट हो गयी है। स्वामी जी महाराज को उस समय विशेष रूप से निश्चय हो गया कि साधन-भजन, एवं ज्ञाननिष्ठा में कितनी बड़ी भारी शक्ति है। इस क्रूर सिंह की हिंसक शक्ति भी इस शक्ति के सामने परास्त हो गई। योग शास्त्र में कहा है—'अहिंसाप्रतिष्ठायांतत्सन्निधौ वैरत्यागः' अहिंसा आदि योग के साधनों की परिपकता होने पर उस योगी महात्मा के समीप में आने वाले क्रूर हिंसक दुष्ट प्राणी भी अपनी क्रूरता दुष्टता एवं हिंसक वृत्ति का परित्याग कर देते हैं। यह योग शास्त्र का उपदेश यथार्थ सिद्ध हुआ।

## आदर्श जीवन

श्री स्वामीजी महाराज का जीवन, रागद्वेषरहित, शान्त, प्रसन्न, एवं आदर्शमय था। श्रीस्वामी जी स्वयं अमानी, मानद एवं मान्य थे। इसलिए वे कभी अहंकार या बड़ाई का एक शब्द भी अपने लिए नहीं बोलते थे। अपनी मान-प्रतिष्ठा की चाह भी नहीं करते थे। 'विहाय कामान् यः सर्वान् पुमाँश्चरतिनिस्पृहः। निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति॥ एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।' इस भगवद्गीतोक्त ब्राह्मी स्थिति में ही स्वामीजी सदा आरूढ़ रहा करते थे।

## श्री स्वामीजी महाराज संन्यासी समुदायरूपी गगनमण्डल के अद्वितीय-सूर्य थे।

सूर्य की तरह उनकी शुभ्रकीर्ति का प्रकाश, भारतवर्ष के कोने-कोने में व्याप्त होगया था। अपने दिव्य-ज्ञानालोक से भारत के अनेक देशावस्थित मुमुक्षु भावुक-भक्त-शिष्यों के हृदयस्थित-अज्ञानान्धकार का विनाश कर दिया था। स्वामी जी महाराज सूर्य की तरह, श्रद्धेय, वन्दनीय, एवं आराध्य थे।

## श्री स्वामी जी महाराज—सिद्ध महापुरुष थे।

ब्रह्मात्म तत्त्वसाक्षात्कारसम्पन्न-जीवनन्मुक्त, महात्मा ही सिद्ध महापुरुष कहे जाते हैं। ऐसे महापुरुष सदा कृतकृत्य होकर लीलामात्र ही अपने शरीर का व्यवहार चलाते हैं। किसी में उनकी आसक्ति नहीं होती। जो अमृत-पान से संतुष्ट होगया है, वह नींम के कड़वे पत्ते में क्यों आसक्ति करेगा? श्रीस्वामी जी ने अपने शरीर द्वारा अनेक उपकार किया। अनेक संस्थाओं का निर्माण किया। परन्तु उन सभी कार्यों में वे सदा निर्लिप्त थे। स्वप्न का तमाशामात्र ही समझते थे।

श्री स्वामीजी अनन्त गुणों के सागर थे। अन्त में यही श्लोक पढ़कर विशेष लिखने से विराम लेता हूँ।—

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे, सुरतरुवरशाखा लेखिनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं, तदपि तव गुणानामीश! पारं न याति॥

हरिः ॐ तत्सत्।

---

## श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी कृष्णानन्दजी महाराज मण्डलेश्वर नारायणमठ, लक्ष्मीकुण्ड, बनारस।

प्रिय पाठकगण! आज मैं अपनी आयु का सबसे उत्तम दिन समझता हूँ। जो गुरु ऋण से अनृण होने के लिये कृतज्ञता के दो शब्द लिखने का शुभ अवसर देख रहा हूँ।

सज्जनों? इस जन्मभूमि भारतवर्ष में कोई ऐसा हतभाग्य स्त्री पुरुष होगा जिसके कानों में निर्वाणपीठाधिपति आचार्य सार्वभौममहामण्डलेश्वराधिपति श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य गुरुवर्य सुनामधन्य श्री १०८ श्री स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज का नाम नहीं पड़ा होगा। सज्जनों! कहाँ चरितनायक आचार्यप्रवर के लोकोत्तर आकाशवत् अगाध गुण-कहाँ मेरी विक्षेपवती हास्यास्पद स्वल्पबुद्धि,

लेकिन जिस जगद्वन्द्य गुरुचरणों के कुछ स्वानुभूत गुणों के लिखने का हृदय में उत्साह हुआ है–इनकी इस तुच्छ शरीर पर पूर्ण कृपा रही। और वर्तमानकाल में भी इस शरीर से जो लोकसेवा हो रही है यह सब मैं गुरुचरण कृपा का ही प्रसाद मानता हूँ।

आपकी विद्या का प्रकाश तो भारतवर्ष के कोने कोने में प्रचण्ड सूर्य के प्रकाश के सदृश प्रसारित हो रहा है। आप से विद्या प्राप्त कर कई तो सनातनधर्म के संरक्षक आचार्य अर्थात् मण्डलेश्वर पद पर आरूढ़ होकर सनातनधर्म की सेवा कर रहे हैं। श्री १०८ स्वामी भागवतानन्द जी मण्डलेश्वर तथा श्री १०८ स्वामी प्रेमपुरीजी मण्डलेश्वर तथा १०८ स्वामी परमानन्दजी मण्डलेश्वर तथा श्री १०८ स्वामी महेश्वरानन्दजी मण्डलेश्वर श्री १०८ स्वामी कृष्णानन्दजी मण्डलेश्वर जो कि वर्तमान में आपकी ही गद्दी पर विराजमान हैं। तथा श्री १०८ स्वामी नृसिंहगिरि जी मण्डलेश्वर तथा पूज्यचरण आचार्यवरों के कृपा का पात्र लेखक कृष्ण यतीश्वर लक्ष्मीकुण्ड नारायण मठ काशी तथा श्री १०८ विद्यावारिधि स्वामी शङ्कर चैतन्य भारतीजी जो कि संसारभर में संस्कृत विद्या के एकही विद्वान् हैं जिन्होंने लोकमान्य पं० श्रीहर्ष की कृति खण्डन खण्डखाद्य के ऊपर शारदा नाम की टीका की है। जो कि विद्वद्ग्राह्य है–इत्यादिक अनेक विद्वान् जिस महान् कल्पतरु की प्रधान शाखायें भारतवर्ष में फैली हुई हैं। प्रशाखाओं की तो गणना ही नहीं हो सकती है। ऐसे लोकोत्तर विशेष गुणसम्पन्न ईश्वरीय विभूति को यदि ईश्वरावतार भी कह दिया जाय तो भी अत्युक्ति नहीं होगी। इस विषय में भगवद्वाक्य भी प्रमाण है ( यद्यद्विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा। तत्तद्देवावगच्छत्वं मम तेजोंऽशसंभवम्॥ जो विशेष गुण ऐश्वर्यशाली विभूतियां हैं वे मेरे ही अंश से अवतीर्ण हुए मेरे अंशावतार हैं। तथा श्रीमद्भागवत में भी लिखा है—अवताराह्यसंख्येया हरेःसत्त्वनिधेर्द्विजाः। यथाऽविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः॥ ऋषयो मनवोदेवा मनुपुत्रा महौजसः। कलाःसर्वे हरेरेव सप्रजापतयः स्मृताः। अर्थ—जैसे जलपूर्ण सरोवर से अनेक नालियां निकलती हैं इसी प्रकार सर्वत्र चेतनतापूर्ण ब्रह्म-सरोवर से धर्म-ग्लानि तथा अधर्म वृद्धि के समय ईश्वर के अनेक अवतार देवता मनुष्य पशु पक्षीरूप में अवतीर्ण होकर धर्म की रक्षा तथा लोकमर्यादा को रखा करते हैं। इसी प्रकार चरित्रनायक आचार्यप्रवर ने भी श्रीभगवान् आद्य शंकराचार्य महाराज की वंश परम्परा में अवतीर्ण होकर तत्सदृश लोकमर्यादा को रखकर सनातनधर्म की रक्षा का कार्य किया। यह लोकप्रसिद्ध है। इसलिये आपको साक्षात् शिवस्वरूप शङ्करावतार भी कह दिया

जाय तो भी उपर्युक्त प्रमाणों से अत्युक्ति न होगी। और भागवत के द्वितीय श्लोक में तो ऋषिगण देवगण मनु पुत्र आदि अनेक भगवान् के अंशावतार माने गये हैं। और सज्जनों! अवतार सिद्धि तो प्रायः मनुष्य की भावना के अनुसार ही देखी गई है। संसार में अपने अपने धर्माचार्यों को ईश्वर की विशेष विभूति मानकर सभी लोग ईश्वरावतार ही मानते हैं। तथापि आचार्यप्रवरों में तो सर्वानुभूत लोकोत्तर गुण प्रसिद्ध ही थे। आपने सनातनधर्म रक्षार्थ गृह त्याग कर जगत्पूज्य चतुर्थाश्रम संन्यास का ग्रहण किया था। आपने श्रीभगवान् आद्यशंकराचार्य की मर्यादा को अक्षुण्ण रखने के लिए देहावसान पर्यन्त भरसक प्रयत्न किया। आपके संन्यासाश्रम में पदार्पण से संन्यासाश्रम की इस गये गुजरे कलिकाल में भी बड़ी भारी उन्नति हुई। यह बात विशेषकर किसी मनुष्यमात्र से या संन्यासिमात्र से छिपी हुई नहीं है। इसी लिये विशेषकर संन्यासियों के ऊपर तो आचार्यप्रवर का बड़ा भारी ऋण है। इस ऋण से अनृण होने के लिये हमलोगों के पास कोई ऐसी विभूति नहीं है जिसको अर्पण कर अनृण हो सकें और आचार्यप्रवरों के अगाध गुण वर्णन करने के लिये हमारे पास कोई ऐसे शब्द भी नहीं हैं जिन शब्दों से आचार्यप्रवरों के लोकवाह्य गुणों को हमलोग वर्णन कर सकें। केवल हमारे पास तो श्रद्धा के शब्द ही पुष्पोपहार थे वे आपके चरणारविन्दों में अर्पण कर दिये। उसी से ही आपकी प्रसन्नता चाहते हैं और हमारा मन-मधुप आपके चरणारविन्द में सर्वदा लगा रहे यही श्रीचरणों से प्रार्थना है। श्लोकः—

रत्नाकरोस्तिसदनं गृहिणी च पद्मा किं देयमस्तिभवते जगदीश्वराय। राधा-गृहीतमनसेऽमनसे चतुर्भ्यं दत्तं मया निजमनस्तदिदं गृहाण॥ इस भक्तोक्ति के अनुसार चरित्रनायक आचार्य सार्वभौम के अगाध गुणों को वर्णन करने में किसका सामर्थ्य है। लेकिन 'नभःपतन्त्यात्मसमं पतत्रिणः' इस न्याय के अनुसार केवल स्वान्तःसुखाय तथा कृतज्ञताप्रकटीकरणार्थ आचार्य चरणों में दो शब्द भेंट कर दिये हैं। स्वल्पबुद्धि हमलोग आपको क्या प्रसन्न कर सकते हैं। आप तो अपनी कृति से तथा सर्वात्मभाव से ही प्रसन्न थे-तथा लिखा भी है—तुष्यन्त्यदभ्रकर्मकरुणाः स्वकृतेन नित्यम्। इसलिये जगत्-विख्यात आचार्य सार्वभौम के सम्बन्ध में अधिक लिखना सूर्य को दीपक दिखलाना है। आचार्य सार्वभौम का सर्वात्मभाव समस्त विश्व का कल्याण करे यही ईश्वर से प्रार्थना है—सर्वे कुशलिनःसन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥ ॐ शान्तिः ३॥



---

## श्रीमत्परमहंस परिब्राजकाचार्य श्री १०८ भूतपूर्व मण्डलेश्वर स्वामी प्रेमपुरी जी महाराज कैलाशाश्रम, हृषीकेश, देहरादून

श्री १०८ मत्परमहंस परिब्राजकाचार्य ब्रह्मलीन स्वामी जयेन्द्र पुरीजी महाराज इस समय स्थूल शरीरसे संसारके सामने नहीं हैं, तथापि उन महाभाग महापुरुषका पवित्र नाम मानवजिह्वा पर ही नहीं मानवहृदय में भी घर कर रहा है।

नाम उन्हीं का रहता है —उन्ही के नाम की महिमा होती है, जिन्होंने लोक कल्याण के लिये अपने जीवन का उत्सर्ग कर दिया है, जिन्होंने अपनी सारी शक्ति धर्मरक्षा के लिये न्यौछावर कर रखी है और जिन्होंने अपना आखिरी श्वास तक को परहित में खर्चने के लिये ही खींचा है।

ब्रह्मीभूत स्वामी जी महाराज उनमें से अन्यतम थे। उनके ऊपर से विधि-निषेध का शास्त्रीय अङ्कुश सर्वथा हटा हुआ था, फिर भी उन्होंने उसे ही अपने जीवनका आदर्श बना रखा था। उनकी दृष्टि में लोकसंग्रह के लिये भी कर्तव्यबुद्धि को अवकाश नहीं था, फिर भी उसे कर्तव्य रूपेण अपनाया। वे दुनियाँ की अविद्या को विदा करने में अपना तन, मन, धन सभी कुछ लड़ा सके। व्यवहार में कौशल को साङ्गोपाङ्ग निभा सके। निर्द्वन्द्व और निर्भय होने के कारण स्तुति, नमस्कार तथा स्वाहास्वधाकार आदि व्यवहार कोटिसे ऊँचे उठकर व्यवहारागोचर ब्राह्मपद में रत रहते हुए भी उपर्युक्त व्यवहार में पगे रह सके। व्यवहार में लथ-पथ रहने पर भी न तो स्वयं किसी से डरते थे और न अन्य किसी को डराते थे। जिस प्रकार तलवार का बनाने वाला होता है उसी प्रकार 'सर्वं ब्रह्म' का उपदेश करने वाला ज्ञानी नहीं होता, किंतु उसे आचरण में कर दिखलाने वाला होता है—इस जन-श्रुति को स्वामी जी महाराज ने अपने नित्य के आचारों से चरितार्थ कर रखा था। सिद्धियाँ तो किसी-न-किसी प्रलोभन से ही प्राप्त की जाती हैं, पर वास्तविक सिद्धि तो वह है जो कि मन किसी प्रकारके लोभ से किञ्चित् भी विचलित न हो पाये—यह असली सिद्धि स्वामी जी को सहज सिद्ध थी।

जो परहित के लिये जीना, जागना और मरना भी जानते हैं, जो परमार्थ के लिये मरमिटना भी उतना ही पसन्द करते हैं जितना कि स्वार्थ के लिये जीवित रहना, उन महानुभावों के नाम में उनकी खुद की अपेक्षा कहीं अधिक बल होता है। माना कि मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्री रामने अपने जीवितकाल में अहल्या, शबरी तथा जटायू जैसे अधमों का उद्धार किया है; परन्तु उनका नाम अनेकानेक पाषाणप्राय अधमतरों को भी तार चुका है तार रहा है एवं तारता भी रहेगा।

चरित्र की अपेक्षा नाम में अधिक चमत्कार होता है। नामका प्रकाश तारे की तरह संसार के सन्मुख आता है और अज्ञानान्धकार को अलग करता हुआ मार्ग-दर्शक बनता है। भगवान् राम के चरित्र को अक्षरशः और क्रमशः स्मरण रखना असम्भव नहीं तो कम संभव अवश्य है; पर नाम में वैसी बात नहीं। चरित्र भुलाता है, नाम जीभ पर घर करता है और नामी के आदरणीय एवं अनुकरणीय गुणों के स्मरण को ताजा करता हुआ हृदय तक पहुँचता है। जो मनुष्य भगवान् राम के चरित्र से परिचित नहीं हैं वे भी उनका नाम बड़ी श्रद्धा-भक्ति से लेते हैं और पवित्र होने के साथ-साथ कृतकृत्य भी होते हैं। सुतराम्, नाम ही तारक है। यदि कोई आस्तिक श्रद्धेय स्वामीजी महाराज का नाम प्रेम से लेता हुआ उन्हें श्रद्धाञ्जलि समर्पित करेगा और साथ ही उनके ब्रह्मनिष्ठा, शास्त्रनिष्ठा, धर्मनिष्ठा तथा लोकनिष्ठा आदि पावन गुणों को याद करेगा तो वह श्राद्धके ऋण से मुक्त हो सकेगा। अपने पूर्वजों के नाम को श्रद्धापूर्वक स्मरण करना और उनके शुभ गुणों को आचरण में उतारना ही तो श्राद्ध कहलाता है।

---

## श्रीस्वामी लक्ष्मण गिरिजी महाराज सेक्रेटरी श्री पञ्चायती अखाड़ा महानिर्वाणी दारागंज ( प्रयाग )

श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ महामण्डलेश्वर स्वामी जयेन्द्रपुरी जी के अनुपम अलौकिक लोकहितकारक गुण वागगोचर थे। आपमें एक महापुरुष में अपेक्षित समग्र गुण पाये जाते हैं। आपके समदर्शिता तितिक्षा, लोकोद्धारकता आदि प्रभूत गुण केवल साधु समाज ही को नहीं किन्तु प्रत्येक आश्रमियों'को उपकृत बना दिया। महानिर्वाणी अखाड़े के तो आप आचार्य ही थे। पर आपके अद्वितीय विचार ने सभी से अपना आचार्यत्व स्वीकार करवा लिया था। आप एक व्यपगत काम, द्वन्द्वातीत महात्मा होते हुए भी लोकमर्यादा का जिस प्रकार संरक्षण किया वैसा आपके समान ही कोई महापुरुष कर सकता है। निर्वाणी अखाड़ा तो आपके लोकोत्तर विचारों से अत्यन्त आवर्जित हो सर्वदा आपकी अविस्मरणीय कीर्तिका जाप करता है तथा प्रार्थी है कि आप उसी भाँति अनुग्रहार्ह दृष्टि का सरसपात इस पर सर्वदा करते रहें।

ॐ शान्तिः ३



---

# धर्मपरायण परोपकारी श्री रमता पञ्च पञ्चायती महानिर्वाणी अखाड़ा, दारागंज (प्रयाग)

परब्रह्मभूतो यतिर्ब्रह्मचारी भवे चात्र मूर्तिं शरीरं विसृज्य,
गतो ब्रह्मभावं विचिन्त्यैव ब्रह्म नमामो वयं तं महामण्डलेशम् ।
स्वरूपं विशुद्धं तपः शास्त्रसिद्धं परेसामगम्यं वलं मानसं वै,
स्मरन्तो वदन्तो जना यान्ति सिद्धिं मुदा योगि गम्यं पवित्रं चरित्रम् ॥

श्री पूज्यपाद श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय ब्रह्मीभूत महामण्डले-
श्वर जी हमारे पूज्य आचार्य थे। हम लोगों को इस विषय का बड़ा गौरव है कि
हम ऐसे त्यागमूर्ति विद्वान् तपस्वी आचार्य के शिष्य हैं जिनकी कृपा से सदा फूलते
फलते रहेंगे और हम लोगों का भी ब्रह्मचर्य-तप-शास्त्र इत्यादि सुरक्षित रहेगा क्योंकि
शिष्यवर्ग की विद्या व तप इत्यादि गुरु आचार्य के तप के बिना नहीं विस्तृत हो
सकते और ऐसे महान व्यक्ति शान्तिस्वरूप आचार्यवर्य का ध्यान ही मनुष्य मात्र
के लिये मोक्ष-पथ का साधन कहा जा सकता है। ब्रह्मचर्य के अतीव रक्षा होने के
कारण पूज्यपाद श्री स्वामी जी का स्वास्थ्य बहुत उत्तम था। आकृति का दर्शन
करने से ही यह सब विषय तथा शास्त्रों के अनुशीलन का अभ्यास स्पष्ट प्रतीत होता
है। बड़े बड़े प्रतिवादी अपने विषयों को तैय्यार कर बड़े गर्व से सन्मुख जाते थे पर
उनके दर्शन से ही शान्त होकर और अनुपम शिक्षा द्वारा पराजित होकर शिष्य
बनकर ही लौटते थे। यह सब प्रतिभा थोड़े तप का फल नहीं है। आप साक्षान्निर्गुण
ब्रह्म के सगुण अवतार ही थे और इस देश के उद्धार के लिए जन्म धारण कर
जनता में सद्धर्म का उपदेश कर पुनः अपने स्वरूप को प्राप्त कर लिया। श्री स्वामी
जी हम दशनामी नागा संन्यासी श्री पञ्चायती अखाड़ा महानिर्वाणी के पूज्य आचार्य
थे और परम पूज्यपाद श्री १००८ श्री गोविन्दानन्द जी महाराज के पश्चात् से जब
से इस पद को अलंकृत कर हम लोगों के अग्रसर हुए तब से अखाड़े के ऊपर
विशेष अनुकम्पा रखते रहे और अनेक भांति से उन्नति-पथ पर ले जाने में सतत
तत्पर रहते थे। अतः हम लोग उनके विशेष कृतज्ञ हैं और ईश्वर से प्रार्थना करते हैं
वह आत्मा अपने ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त कर सच्चिदानन्दात्मक हो।

## श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी गिरीशानन्द जी महाराज मण्डलेश्वर, सूरतगिरिजी का बंगला कनखल, ( हरिद्वार )

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ महामण्डलेश्वर श्रीयुत् श्री १००८ स्वामी जयेन्द्रपुरी जी महाराज एक महान आत्मा थे। अध्यात्मिक उन्नति में आप एक अद्वितीय थे। उनके सत्संग का प्रसङ्ग मुझे हरिद्वार के दो कुंभ तथा प्रयाग के चार कुंभ तथा अर्धकुंभी पर हुआ, जिससे मुझे पूर्ण अनुभव हुआ कि गीता के अध्याय बारहवें में जो भक्ति का लक्षण तथा अध्याय चौदहवें में जो गुणातीत का लक्षण वर्णन किया गया है वह आपमें पूरे पूरे लक्षण घटते थे। आप संन्यासी समाज तथा सनातन धर्म के संरक्षक थे। ऐसे महान् पुरुष के जीवन चरित्र के विषय में जितना भी लिखा जाय थोड़ा है, क्योंकि आपकी कीर्ति भारत के कोने-कोने में प्रख्यात है।

---

## श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ महन्त स्वामी विभूति पुरी जी महाराज ब्रह्मा जी का मन्दिर, मु० पुष्कर

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्री १००८ श्री स्वामी श्री जयेन्द्रपुरी जी महाराज महामण्डलेश्वर संन्यासी मण्डल के सूर्य थे। उनका अभाव हमारे हृदयों में खटक रहा है, परन्तु उनकी कीर्ति अमरत्व पाकर हमारे सम्मुख विराजमान् हो रही है और हमको सांत्वना प्रदान कर रही है।

मुझ पर महाराज की विशेष अनुकम्पा थी। महाराज पुष्कर राज भी कई बार पधारे थे। श्री ब्रह्मा जी महाराज के मन्दिर में विराज कर भक्तों को अपने वचनामृत तथा सदुपदेशों से कई बार तृप्त किया था। जब भी मेरा उनसे समागम होता था, नूतन और दुगुने प्रेम से संभाषण करने की दया करते थे।

आपके प्रेम, कृपा, सौजन्य तथा सदुपदेशों का स्मरण आने से हृदय प्रफुल्लित हो जाता है।

स्वामी जी महाराज की विद्या, सद्गुणों तथा कार्यों की प्रशंसा करना तो सूर्य को दीपक दिखाना है। माननीय वही है जिसको सब ही याद करें। स्वामी जी की शत्रु-मित्र सभी प्रशंसा करते थे।

संन्यासी-समाज की उन्नति के निमित्त स्वामी जी स्तुत्य कार्य कर गये हैं।

ऐसे श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ महात्मा का वियोग कष्टप्रद तो है परन्तु अमृतात्मा के लिये विशेष शोक-प्रदर्शन अनुचित समझ कर धैर्य धारण करना पड़ता है।

---

## वयोवृद्ध ब्रह्मनिष्ठ श्रीमत्परमहंस त्यागशील मान्य श्री १०८ स्वामी कल्याणानन्द जी महाराज, कल्याणाश्रम काशी।

रे रे चित्तचकोर चञ्चल चिरात् संसारदावानलात्,
भीतो यद्यसि तर्हि भावय सखे तापोपशान्त्यै मनाक्।
त्यक्त्वा लोकमनेकदुःखसुभृतं ज्ञानप्रभावैर्निजैः,
कल्याणं समपादयन्न किमु भोः श्रीमज्जयेद्रो यतिः॥ १॥

आसीद्विप्रकुलाम्बुधौ हिमकरो देवद्विजार्चापरो,
विद्याचारविवेकधैर्यधनिको मेधाविनामुत्तमः।
सत्यश्रीविनतान्वितो गुणिवरो दीनान्धसंरक्षको,
धन्योऽयं धरणीगतः सुरपतिः साक्षाद्दिवासीद्यतिः॥ २॥

लोकेष्वप्रथयन्निजां शुभमतिं श्रद्धालुमुख्यः श्रुतौ,
मेधावान् धृतिमान् विवेकनिरतः सद्धर्मभीरुः सदा।
स्मृत्वेवोत्तमविप्रवंशतिलकः प्राग्जन्मपुण्यावलीः,
आसीदच्युतचित्तवृत्तिरनिशं सत्तत्वचिन्तापरः॥ ३॥

वाल्येऽघस्य मनो न चञ्चलतरं नो वा कठोराक्षरा:,
वाग्वृत्तिश्चटुला रसादिविषये नो लोभलेशो मनाक्।
तारुण्येऽपि शमप्रधानममलं चित्तं न चित्रं तु तत्,
प्राग्जन्मार्जितपुण्यवैभववशात् किं किं न सम्भाव्यते ॥ ४ ॥

आदावात्मगृहान्विकस्थ सरयूमाप्लाव्यतत्तीरगे,
साकेते स्थिरतामुपेत्य विधिना पश्चात्प्रयागं ययौ।
तत्राप्युग्रतपो दृढव्रतमना भिक्षासकन्दादिभुक्,
नीत्वा तत्र सुखेन कालमगमच्छ्री चित्रकूटं नगम् ॥ ५ ॥

एवं पुस्करमुख्यतीर्थनिवहान् सम्प्राप्य पद्यां क्रमात्,
तत्तत्तीर्थं नरोचितानि विधिवत्कर्माणि कृत्वा शनैः।
सम्प्रापत्वदरीवनं तदुचितं तीव्रं तपः संचरन्,
षण्मासं स्थिरधीरुवास विपिनेऽयं शाकपत्राशनः ॥ ६ ॥

एवं हायनपञ्चकेन विधिवत्तीर्थानुपास्य प्रभुः,
प्रापत्पूर्वपयोनिधेस्तटगतं नीलाचलं भूधरम्।
पश्चाच्छ्रीमदनान्तकस्य नगरीं वाराणसीं विश्रुतां,
प्रापद्याशिवरूपिणी सुरनदीपूराऽविमुक्ता सदा ॥ ७ ॥

मण्डलीशपदमाप्य च तत्र भिक्षुभिः कृतिवरैः समवेतः।
आचारन् जनहितं विविधं हा, क्वापहायविवुधः प्रगतो नः ॥ ८ ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

---

## श्री स्वामी रामानन्दजी महाराज, दर्शनशास्त्री, व्याकरणाचार्य, काशीदेवीमठ, काशी।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥

आज हम एक महामहिम-महोदय महापुरुष की महनीय महिमा के विषय में कुछ शब्दमय-पुष्पाञ्जलि समर्पण करके अपने आपको कृतार्थ करना चाहते हैं। वे हैं 'आनन्द-वन-निवासी, स्वनामधन्य, श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य, वय, दार्शनिक-सार्वभौम, वेदान्तसिद्धान्तादित्य स्वामी श्री १००८ जयेन्द्रपुरी जी महाराज, महामण्डलेश्वर'।

यद्यपि उनका भौतिक-संघात आज इस असार संसार में विद्यमान नहीं है, किन्तु--उनका यशः शरीर आज भी हम लोगों के हृदय-मन्दिर-कन्दरा में सुशोभित हो हमारे जीवन का सूत्रधार बना हुआ है। राम, कृष्ण, व्यास, गौतम, आचार्य शंकर, सूर और तुलसी आदि विभूतियां भी तो उस आनुपूर्वी में हमारे सामने नहीं हैं, जिस प्रकार हमारे भाग्यशाली पूर्वजों के समक्ष वर्तमान थीं। किन्तु उनके उपदेश-कल्पलता की छाया का आश्रय करने वाले तापत्रयसन्ताप से बच जाया करते हैं। महापुरुष प्राचीन हो जाते हैं, और उनके उपदेश भी पुराने पड़ जाते हैं। किन्तु उनके आचार, उपदेश, और बर्ताव जो हमको उनके 'जीवन-चरितों' से अवगत होते हैं, हमारे जीवन के निम्नगामी स्रोत को उन्नत बनाने को वैसा ही सामर्थ्य रखते हैं जैसा अनादि काल में। जो लोग महापुरुषों के भूतकालिक इतिवृत्तों (जीवन-चरित्रों) से वर्तमान को समुज्वल करते हैं, उनका भविष्य निःसन्देह मङ्गलमय हो जाता है। सभी को अपने देश तथा जाति के महापुरुषों के विचित्र अथच पवित्र चरित्रों से परिचित होना चाहिए।

जैसे नदी का पानी नाली द्वारा क्षेत्रों में पहुँच कर शश्य-सम्पत्ति का सिंचन करता है, उसी प्रकार महापुरुष-सरिताओं से उपदेश-रूप सलिल, जीवन चरित रूप प्रणालिका से जिज्ञासुओं के हृदय-क्षेत्र में पहुँच कर सदाचार, नीति और धर्म आदि

धान्यों को सिंचन रूप पुष्टि प्रदान करता है। अभिप्राय यह है कि—हमें अपने महापुरुषों से परिचित कराने वाला 'जीवन वृत्त' ही तो एक सूत्र है।

"सबको महापुरुष की जीवनी से स्व-स्व-जीवन-हर्म्य निर्माण करने में सफलता मिले" इस भावना से ओत-प्रोत होकर जिन 'जीवन चरित्र-प्रकाशक-मंडल' के सज्जनों ने 'स्वामी श्री जयेन्द्रपुरी जी महाराज' के जीवन पर प्रकाश डालने का स्तुत्य यत्न किया है, हम उनकी मुक्तकण्ठ से श्लाघा करते हुए नीलकण्ठ से प्रार्थना करते हैं कि—इन लोगों को पूर्ण बल दें।

किसी जातिके जीवित रहनेका एक यही चिन्ह है कि—उसमें समय-समय पर महापुरुष उत्पन्न होते रहें। वेही जातिमें धार्मिक तथा सामाजिक जीवन का संचार किया करते हैं। जिस जाति में चिरकाल तक कोई महात्मा जन्म न ले तो समझ लेना वह मर गई या मरने वाली है। यों तो प्रत्येक मनुष्य जातीय-जीवन की जातीय इमारत खड़ा करने और कायम करने में थोड़ा-बहुत भाग लेता ही है। जैसे इस संसार में कांटे और झाड़ियाँ भी अपना काम करती हैं। परन्तु वाटिका का सौन्दर्य और उपयोग उसके कुछ फूलों में ही होता है। इसी तरह समाज का उन्नत कहा जाना उसकी उपयोगिता और सजावट उसमें जन्मे महापुरुषों से ही होती है।

हम असभ्य जातियों की चर्चा नहीं करते, किन्तु संसार की सभ्य जातियों में सदा से महापुरुषों की पूजा होती चली आरही है। जहां उनका पूजन होता है वहीं वे जन्म लेते हैं। महात्माओं की श्रेणी और कार्यप्रणाली भिन्न-भिन्न होने पर भी परार्थ और स्वार्थसाधन रूप कार्य सिद्धि में उनका मतैक्य हुआ करता है। विशेषतः धार्मिक महापुरुष तो दूसरों के लिये खुद को मिटा देने में ही अपना अस्तित्व मानते हैं। राजनैतिक महात्मा और धार्मिक महापुरुष में यह अन्तर हुआ करता है कि—पहले अपने आपको बचाता हुआ परोपकार्य के काम का सम्पादन करता है, और दूसरा निजके मिट जाने की कुछ भी परवाह न करके परार्थ कार्य करने से नहीं चूकता। इसी कारण युद्धवीर, दानवीर, कर्मवीर प्रभृति किसी भी श्रेणी का उन्नत पुरुष हो वह धर्मवीर ( धर्मगुरु या धर्माचार्य ) के आगे झुक जाता है। इसी आधार के आश्रयण करने की वजह से वशिष्ठ, गौतम, पराशर प्रभृति एकाकी आरण्यक

ऋषियों के सामने शिवि, मान्धाता तथा दशरथ आदि सैन्यवल तथा कोशशक्ति सहित नम्र रहते थे।

मण्डलेश्वर होने के बाद महामण्डलेश्वरजी जो अन्न दान, तथा पुस्तक-वस्त्र-आश्रय-विद्या आदि प्रदान किये उनका वर्णन नहीं हो सकता। स्वामीजी के जीवन से 'क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे' इस महत्त्वपूर्ण उपदेश की शिक्षा मिलती है।

स्वामीजी का जीवन सबके लिए आदर्श है, वह बोधन करता है कि—यदि मनुष्य अपने कार्य साधनार्थ दृढ़ता से बद्धपरिकर हो जाय तो वह अपने मार्ग में पड़नेवाले विघ्न-सागर को गोष्पद की तरह अनायास लांघ जाता है। कर्मयोगी के सामने असम्भव कुछ भी नहीं है।

स्वामीजी वेदान्ती होते हुए भी पूर्ण उपासक थे। वे पठन काल में भी उपासना में बहुत समय लगाया करते थे। उनको हमने कभी भी अधैर्ययुक्त नहीं देखा। उनके मुखारविन्द से कभी अहन्तुद शब्द का उच्चारण होते नहीं सुना।

स्वामीजी ने जो कुछ किया ( बहुत कुछ किया ) परमार्थ के लिए किया। दूसरों को देने-खिलाने-सम्मान करने में उन्हें आनन्द का अनुभव होता था। सबसे बड़ी विलक्षण बात यह है कि—वे सदा एकरस रहे।

ॐ शान्तिः ३।

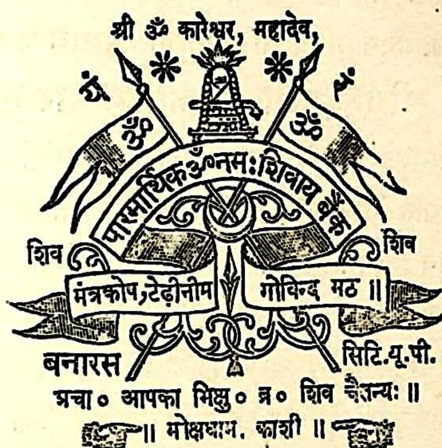
---

## श्री १०८ स्वामी मोहनानन्दजी महाराज
## राजगुरु-डूँगरपुर स्टेट मोहनानन्द-आश्रम, हरिद्वार-भीमगोड़ा

चित्स्वरूपं ब्रह्मनिष्ठं सत्प्रवृत्तिप्रवर्तकम् ।
शिष्यसंशयभेत्तारं श्रीजयेन्द्रं नमाम्यहम् ॥

श्रीमान् परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महामण्डलेश्वर एक उच्चकोटि के महात्मा पुरुष थे। आपका जीवन सादा और सरल था। भावुक के लिये अनुकरणीय था। स्वभाव से सौम्य थे, दर्शनमात्र से जनता पर ब्रह्मतेज का प्रभाव पड़ता था। आपकी आकृति ही स्थितप्रज्ञता को प्रकाशित करती थी। आप सच्चे संन्यासी थे। ऐसा नैष्ठिक पुरुष होना बहुत कठिन है। स्वामीजी के चित्त की स्थिरता पदार्थों के संयोगकाल में रहती है या नहीं देखने के लिये तथा लोकसंग्रह के लिये मण्डलेश्वर पद को स्वीकार करके संन्यास आश्रमोचित कर्म करते कराते हुए जनता-जनार्दन को भी अपना पाठ सुनाते थे। जनता आपके प्रवचन से बड़ी सन्तुष्ट होती थी। आपकी निष्ठा सब सज्जनों को सच्चे स्वरूप की जिज्ञासु बना देती थी, आपका स्वभाव सदा निर्मल रहता था। सबको अपनी आत्मा ही समझते थे। इस उदारता से आपके पास रहनेवाले कई साधु महात्मा बन गये हैं। कई उपदेष्टा बनकर जनता की सेवा कर रहे हैं। 'सपनेहुँ नहिं देखैं परदोषा' स्वप्न में भी दूसरे की बुराई नहीं सुनते थे न कहते थे। महात्मा मण्डली आपके साथ रहती थी। उसमें कई स्वभाव के सन्त लोग रहते थे तथापि आपकी कृपादृष्टि से अवगुणों से रहित होकर एक सच्चे साधु जीवन में परिणत हो गये हैं, 'सत्संगतिः किं न करोति पुंसाम्'। उदारता इतनी थी के दैवयोग से जो सामग्री आ जाती थी उसे परोपकार, तीर्थयात्रा, विद्वानों के सत्कार में खर्च करा देते थे, उसके संग्रह का कभी ख्याल नहीं किया। आपके साथ हमेशा सौ सवासौ के करीब मूर्तियाँ रहती थीं। वे सब सदा उपनिषद्गीतादि शास्त्रों का विचार करते हुए आनन्द करते थे। आपके प्रत्येक कार्य महापुरुषत्व के द्योतक थे।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः




## संन्यासी संस्कृत कालेज तथा नमः शिवाय बैंक के प्रचारक कीर्तन-शिरोमणि ब्रह्मचारी श्री शिवचैतन्य जी, महाराज।

॥ ॐ नमः शिवाय ॥

श्री गुरुचरण कमलेभ्यो नमः

दोहा—मंगल मय गुरुदेवके चरित सुनो धर ध्यान।
मंगल "मंजुल शिव" करें सुखमय श्रीभगवान् ॥

प्रभुके प्रेमियों ! कल्याणके भागी सज्जनों !! जरा इधर देखो तो सही कभी प्रखर प्रचुर प्रचण्ड प्रताप, उग्र, प्रकाशआकाश, मण्डल स्थित, तेजपुञ्ज, श्रीसूर्य्य भगवानके देखनेको किसी दीपक या गैस या बड़े पावरकी बिजली के प्रकाश की आवश्यकता होती है ? नहीं नहीं, कदापि नहीं। जो सम्पूर्ण प्रकाशोंका प्रकाशक है, उसको प्राकृतप्रकाश क्या प्रकाशित कर सकता है ? नहीं। इसी तरह श्रीमहाराज-जीकी जो प्रतिभा जगत्में प्रकाशित है, वह किस प्रेमीके दृष्टि गोचर नहीं है। इन भगवान् स्वरूप श्रीमहाराजजीके सम्बन्ध में लिखना तो लेखनी की सामर्थ्य से वाहर की बात है। तथापि मन वाणी को पवित्र करने केलिए महाराजके परमोत्कृष्ट चमत्कारोंका अवगाहन कर समयका सदुपयोग कर कृतार्थ हों।

श्रीस्वामीजी महाराज कौन थे ? सज्जनों, जरा ध्यान दो। श्रीमहाराजजी जैसे देवताओंमें विष्णु तथा रुद्रोंमें महादेव, नदियोंमें गंगा, पर्वतोंमें हिमालय, वृक्षोंमें पीपल, राजाओंमें इन्द्र, देवियोंमें भगवती महादुर्गा, वनस्पतियोंमें तुलसी, प्रकाशकोंमें भानु, नक्षत्रोंमें कमनीय कलानिधि, ऋतुओंमें कुसुमाकर (वसन्त), मासोंमें मार्गशीर्ष, ह्रदों में मानसरोवर और वर्णोंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ है इसी तरह संपूर्ण शास्त्रों

में पारंगत यतिकुलभूषण योगीन्द्र मुनीन्द्र कवीन्द्र अमलात्मा परमहंस सिद्धों से वन्दितपादारविन्द तथा पावन पवित्र श्री स्वामीजी महाराज थे।

## एतादृश श्रीगुरुदेवजी को कोटिन वार प्रणाम है

छप्पय छन्दः—श्रीगुरुदेव अनन्तरूप सुन्दर सुखराशी।
जयति निरञ्जनदेव मुक्ति काशी के वासी॥
जय विज्ञान निधान प्राणधन जन के प्यारे।
जयति जयति आनन्दरूप "गुरुदेव" हमारे॥
"श्री जयेन्द्र यतिराजवर" जिनका नाम ललाम है।
"शिव मञ्जुल" उन पद पद्ममें, कोटिनवार प्रणाम है॥ १॥

## पुनः सौ सौ वार प्रणाम है।

जय गुरुदेव अनन्त निरञ्जन निज सुख भोगी।
तरुण मोहतमहरण, तरणि सम द्वैत वियोगी॥
श्रीनारद, शुक, भेद बतावत पार न पावत।
नित्य भजन आनन्द मगन ह्वै शुभ गुण गावत॥
जगत जाल तजि जीव को, मिला जहाँ विश्राम है।
"मञ्जुल" उनके चरण में, सौ सौ वार प्रणाम है॥ २॥

## बार बार प्रणाम है।

पूर्णः पुरुषोत्तम, परात्पर, परम प्रभु, पुरुष प्रसिद्ध, परमेश्वर, प्रकृतिपार।
प्रेरक, प्रणत प्रतिपालक, परेश पति, प्रेमी प्रणपालक, पलकमें पकरि, प्यार॥
पातकी पतित पाय पावन पदारविन्द, पावत परमपद पल २ में प्रति पुकार।
प्राणहूँ के प्राण, प्राण प्रियतम परम पूज्य, "मञ्जुल" प्रणाम पादपङ्कज में वार २॥

## श्रीस्वामीजी महाराज का विद्या विकाश

ॐ साङ्गैः सम्पूर्ण वेदैर्मुनिभिरविहतैर्दर्शनैश्चान्यतन्त्रैः।
सार्धं श्रीशारदम्बा कमलभववधू यस्य जिह्वाग्रभागे॥
मोदान्नृत्यञ्चकार प्रसभमविरतं सत्यलोकं विहाय।
पायाच्छ्रीसद्यतीन्द्रः सकल नियमिनाग्रणीः श्रीजयेन्द्रः॥ १॥

## पद्यानुवाद—छप्पय छन्द में

सांग वेद सम्पूर्ण मुनिविहित दर्शन सारे।

तन्त्र शास्त्र श्रुति सकल भेदयुत न्यारे न्यारे॥

साथ शारदा सत्यलोक तजि रसना आगे।
वसत जासु मुख मुदित सबै नृत्यति अनुरागे॥
वे सकल नियमिजन मुकुटमणि, सद्यतीन्द्र गुरुराजजी।
मंगल "मञ्जुल शिव" करै, श्रीजयेन्द्र महराजजी॥ १॥

## श्रीस्वामी महाराज की स्वयंभू ब्रह्मवत् धारणा तथा लोकोपकार

यो धाता सर्गकाले निजहृदि निहितं वेदराशिं चतुर्धा।
कृत्वा चैकैकवक्त्रात्स्फुटतरममरान् बोधयामास सर्वम्॥
सोऽद्यत्वे वीक्ष्य लोकान् जनिमृति जलधौ मज्जतःसानुकम्पम्।
तत्सारं चैकवक्त्राद्गदितुमुपगतः श्रीजयेन्द्रो यतीशः॥ १॥

### पद्यानुवाद—छप्पय छन्द

आदि सृष्टि उर छिपे वेद विधि ने प्रगटाये।
चार भागकर एक २ मुख सुर समुझाये॥
अब भवजल दुख बीच लोक डूबत जब देखे।
कहत एक मुख सार वेद करुणाके लेखे॥
धाता दाता मुक्तिके, ज्ञाता गुरु गिरिराज वे।
मंगल "मञ्जुल शिव" करैं, श्रीजयेन्द्र महराज वे॥ १॥

## श्रीमहाराजजी की निष्ठा की पराकाष्ठा और वर प्राप्ति

स्नात्वा नित्यविधिं विधाय रहसि स्थित्वा च सिद्धासने।
रुद्ध्वा चानिलपञ्चकं हृदि शिवं ध्यात्वा च लक्ष्मीपतिम्॥
बाह्यं विस्मृतवाञ्जयेन्द्र ।यतिराट् तन्मात्रचेतास्तदा।
तौ देवौ सुवराऽभयाञ्चितकरौ प्रत्यक्षजातौ स्वयम्॥ १॥

पद्यानुवाद—छप्पय छन्द—नित नहाय नियमन निभाय सिद्धासन बाँधैं।
पञ्च प्राणको रोक हिये हरि हर अराधै॥
बाह्य ज्ञानको भूलि सकल स्मृति चितसे खोवै।
जब "जयेन्द्र गुरूदेव" ध्यान मन तन्मय होवै॥
सत्वर हरिहर प्रगट ह्वै, अभय वरद कर शिर धरैं।
"मञ्जु ल मंगल" मूर्ति वे, उभय सदा करुणा करैं॥ १॥

इस तरह उपयुक्त श्रीमहाराजजी धारणा ध्यान समाधि तथा जीवन्मुक्ति के

आनन्द में आनन्दित होकर लोकोपकार के लिये इस भूमंडल पर विचरण करते हुये जनता जनार्दन का अनेक प्रकारसे कल्याण करते थे ॥

## प्रथम यात्रा में फर्रुखाबादका अलौकिक चमत्कार

पूज्यपाद, परम पूजनीय, पदवाक्यप्रमाणपारावारीण धर्मधुरीण, प्रातः स्मरणीय श्रीमत्परमहंस, परिव्राजकाचार्य्य वर्य, श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ परम शान्त शिवस्वरूप श्रीयुत् श्री १०८ श्रीस्वामी जयेन्द्र पुरीजी महाराज महामण्डलेश्वरजी फर्रुखाबाद प्रथमवार पधारे थे। वहां श्रीमान् भक्तसेठ भोजराज मारवाड़ी के बाग में निवास किया था। उसी समय परम पुनीत, पवित्र, पतितपावनी, कलिकल्मष विध्वंसिनी, जह्नुतनया पुण्यतोया, श्रीमती भगवती, भागीरथी श्री गंगाजी फर्रुखाबाद के टोकर घाटको छोड़कर रेती तथा कटरी में तीन चार मीलकी दूरी पर थी। नगर निवासी श्री गंगाप्रेमी यात्रियों को वहां तक जाने में बहुत ही परिश्रम के साथ २ महान् कष्ट का अनुभव करना पड़ता था। यह लोगों की दीन दशा देखकर परम दयालु, दयार्द्र हृदय, अकारण करुणावरुणालय, गंभीर स्वभाव श्री महाराजजी की परम दया का उद्वेल सागर उमड़ा। और उन्होंने उन नगर निवासियों के कष्ट निवारण के लिए फर्रुखाबाद टोका घाट पर साक्षात् तपस्या की मूर्ति होकर अन्न जल का ग्रास न करते हुये, सर्व प्रकार की तितिक्षा को धारण कर समाधि लगा कर बैठ गये। फलतः तीन दिन तीन रात्रि व्यतीत हो जाने के उपरान्त, ग्रीष्मकाल की भीषण ज्वाला को शान्त करने के लिये परम सुखदाई, सुहावनी सुधामयी वृष्टि हुई और श्री भागीरथी गंगा महारानी जी की तरुणतरंगें, तटवर्ती करारों को विध्वंस करती, लतापत्रादिकों को अपने में लीन करती हुई घाट पर आ ही गईं। तब तो जनता की अद्भुत अपार हर्ष प्राप्त हुआ। तभी महाराज जी को भी परम सन्तोष हुआ और गंगाजल को शिरोधार्य कर आचमन किया। बाद कुछ समय ध्यान मग्न रहें नेत्रों से प्रेमाश्रुओं का प्रवाह बहने लगा। पश्चात् श्री गंगा जी को सभी भक्तों ने अपने २ घरों से सम्पूर्ण दूध अर्पण किया तथा पूजन कराकर व्रत की पूर्णाहुति की। पश्चात् बाग में महाराज ने कथा की। महाराज जी के कथा में प्रभाव तथा उसमें अनेकानेक चमत्कार थे। महाराज जी के मुखारविन्द से निर्गत वेदमयी बौछार ने कर्णकुहर द्वारा मेधामहीगत, प्रेमियों के हृदय क्षेत्र में नानाप्रकार के धार्मिक भावाङ्कुरों को उत्पन्न किया। और सुनते २ यह समझने लगे थे कि हमें श्री महाराज जी ने परम पिता परमेश्वर परमात्मा जी से मिला दिया। अब तो दिन प्रतिदिन दर्शनार्थियों की संख्या बढ़ती ही चली गयी। अभी नगर निवासी प्रेमी यथेष्ट तृप्त न हो पाये थे,

कि लगभग चार महीने बाद इन्हीं दिनों महाराज जी को मोक्षधाम श्री काशी नगरी चले जानेका अवसर आ गया। वहां भी जाना उनका आवश्यक था, क्योंकि बड़े महाराज का कुछ आदेश ही ऐसा था। अस्तु। यहां की प्रेमी जनता को इतने में सन्तोष कब होने का था। प्रेमी भक्तमण्डली ने महाराज जी को बारंबार विशेष विनम्र अनुरोध पूर्वक आमन्त्रित किया। अतः महाराज जी को पुनः कुछ ही समय के बाद आना पड़ा। क्यों न आते भक्तों को निरास कैसे कर सकते थे। महाराज जी भक्तों को किसी दशा में दुखित देखना नहीं चाहते थे। अब की बार लाला डमरूनाथ दुर्गाप्रसाद के बाग में महाराज जी के शिष्य प्रेमियों ने ठहराने का प्रबन्ध किया। यहाँ के ठहरने से जनता को और भी अपार आनन्द हुआ। जनता जनार्दन प्रेमियों ने कथा के लिये प्रार्थना पूर्वक फिर आग्रह किया। महाराज जी ने कथा प्रारम्भ की। क्रमशः जनता कथा श्रवण करने लगी। और नास्तिक लोगों को भी आस्तिक बनाया। यही नहीं, उन्होंने बहुत कुछ किया। हमारे यहाँ अंगुरी बाग से मिले हुए पूर्व भाग में लाला हरिश्चरण लाल जी श्यामलाल जी रहा करते थे। वे कट्टर आर्य समाजी थे--देवमूर्तियों पर उनको विश्वास न था, परन्तु महाराज जी की उनपर कृपा हुई। उनको अँधेरे और दुर्भावना की कीचड़ से निकालकर सुन्दर प्रखर प्रकाश में खड़ाकर दिया। लाला जी महाराज जी के परम प्रभावमय, उपदेश से इतने प्रभावित हो गये कि वे जिसे कहते थे कि यह सब ढकोसले है उन्हीं धार्मिक कार्यों को करना प्रारम्भ कर दिया। लाला जी महाराज जी के उपदेशानुसार अपना परम कर्तव्य समझने लगे। लाला जी के बाग में श्री जगन्नाथ जी की मूर्ति तथा मन्दिर टूटी फूटी हालत में था। मूर्तियाँ यों ही पड़ी हुई थीं उनकी कोई पूजादिक की देखभाल नहीं होती थी राजभोगादिक की तो बात ही क्या, परन्तु श्री महाराज जी के इशारे पर मन्दिर का जीर्णोद्धार और श्री जगन्नाथ जी की व हनुमान जी की स्थापना कराई। और असंख्य साधु ब्राह्मणों को यथेष्ट भोजन वस्त्रादि से सन्तुष्ट किया। मन्दिर में पुजारी रखवा दिया। फिर वहाँ पर भी भजन, कीर्तन कथा प्रारम्भ की गयी। यह सब महाराज जी की अतुल, अनन्त, अलौकिक, कृपा का फल है। अतः मन्दिर का प्रबन्ध आजतक ठीक २ होता चला आ रहा है। श्री महाराज जी जिस प्रशंसा के पात्र थे वह किसी से भी हो सकती ही नहीं। मनुष्य ज्ञान के बाहर की बात है। कितनी भी प्रशंसा की जाय वह थोड़ी ही है।

हमारे यहाँ एक पुरुषोत्तमदास साध सम्प्रदाय का था और अनोखेलाल साध, दोनों छपाई का काम करते थे—इनपर भी महाराजजी की कृपादृष्टि हुई। आज

दिन तक प्रतिदिन ये सज्जन श्रीगंगाजी का स्नान करते हैं और श्रीशंकरजी महाराज पर जल चढ़ाते पूजन करते और प्रदोष व्रत भी किया करते हैं। यह अलौकिक अनहोनी बात है। उनके सम्प्रदाय में कोई भी भूलकर इन आचरणों को नहीं करता है। यह महाराजजी के ही अलौकिक चमत्कारों का प्रत्यक्ष फल है। इसी तरह जनता में दिन प्रतिदिन नवीन नवीन श्रद्धाभक्ति बढ़ती ही गई। और आज महाराजजी के ब्रह्मीभूत हुये वही जनता उनके स्वरूप का चिन्तन करती हुई प्रेम प्रवाह में निमग्न होकर आँसू बहाया करती है।

## महाराजजी कैसे थे

वेद-शास्त्र-भारत-पुराणके विचारक थे, और थे निवारक, अशक्त, भक्त, तापों के।
नेता थे स्वधर्म के समस्त मण्डलेश्वरों के, विश्रुत विजेता थे विमोह द्रोह पापों के॥
त्राता थे स्वदेशके समाजके स्वधर्मके भी, धाता के समान मोक्षदाता कोटि शापों के।
ऐसे 'श्रीजयेन्द्र महाराज' थे हमारे आह, कैसे हो गुणानुवाद उनके प्रतापों के॥

यह फर्रुखाबाद निवासी परम प्रेमी, श्रीमान् पं० ब्रजवासीलाल जी तथा अन्यान्य वृद्ध सज्जनों द्वारा श्रवणका साधारण उल्लेख है।

## श्रीबद्रीनाथजी की यात्रा का चमत्कार। सिद्धि का प्रभाव।

प्रिय सज्जनों! जरा ध्यान देने की बात है कि जब सम्वत् १९८४ का कुम्भ मेला हरिद्वार का परिसमाप्त हुआ, श्रीमहाराजजी ने लगभग १५० मूर्तियों को साथ लेकर परम पावन, नगप्रधान, विश्व प्रख्यात, परम पुण्यमय, हिमालय, श्रीकेदारनाथ तथा वद्रीनारायणजी की यात्रा को पधारे थे। मार्ग में प्रायः मूर्तियों की वृद्धि ही होती रही। जिन २ साधु सन्तों ने सुना कि, महाराजजी मण्डली के सहित उत्तराखण्ड, उत्तम तपोवन बद्रीवन बद्रिकाश्रम को पधारे हैं—और जिसे श्रीमहाराजजी की परमोदारता, दयालुता, भक्तवत्सलता, का थोड़ा भी परिचय था और यात्रा के जाने का भी विशेष विचार न था, वे भी महानुभाव सहसा ही प्रफुल्लचित्त, प्रसन्न वदन से, प्रस्थान कर उत्सुकता से उत्कट उत्कण्ठा से विशेष विभोर होकर रोमाञ्चयुक्त पुलकावलि सहित, गद्गद कण्ठ परम प्रेमावली तरंगो से तरातर सराबोर हो होकर प्रेमपूर्वक श्रीमहाराजजी से मिलते रहे। विभिन्न सन्त महन्तों से वेष्ठित मण्डली की वृद्धि दिनों दिन होती ही रही। नौकर भण्डारियों का पाकशाला का कार्य बढ़ता गया। तब महाशन में सहायता देने को प्रौढ़ पुराने पाक प्रवीण परिचित ब्रह्मचारियों को नियुक्त किया गया। इनमें सबसे अधिक परिश्रमी सेवाभार वही विशेष-रूप से, बिलासपुर निवासी ब्रह्मचारी "शिवचैतन्य" नामा थे। इनकी सेवा तथा

उत्सुकता परिश्रम की सफलता श्री महाराजजी के चरणकमलों में पूर्ण श्रद्धा विश्वास सुहृदयता सराहनीय थी।

सज्जनों! आगे श्री महाराजजी त्रियुगीनारायण श्रीकेदारनाथ तुंगनारायण होते हुये परमधाम दुर्ज्ञेय दुर्गम नारायण पर्वत से परावृत कोटयुक्त विशालक्षेत्र श्रीबद्रीनारायण का दर्शन कर मण्डली के सहित तप्तकुण्ड में स्नान कर मार्ग में परिश्रम को शमन किया। दूसरे दिन उपर्युक्त परिश्रमी ब्र० शिवचैतन्यजी एकदम एकाएक सहसा सरसाम (सन्निपात) के आक्रमण (आघात) से असाध्यता युक्त अत्यन्त विकल होगये। देहावसान की सी मुद्रा प्रतीत होने लगी। साथी भी घबड़ाये, कोई भाग्य की भी सराहना करने लगे कि धन्यवाद है जो ऐसे पुण्यक्षेत्र में तत्त्वलीन हो, क्या कहने की बात है। अहोभाग्य! हर २ महादेव शम्भो! काशी विश्वनाथ! गंगे! ऐसे सुन्दर मनोहर मधुर सुधारस मिश्रित शब्द की ध्वनि ब्रह्मचारीजी के श्रवणपुट द्वारा अन्तःकरण में प्रविष्ट हुई। लोचन पुटकपाट खुले और क्षीण वाणी से कुछ बोले, कि अब गुरुदेवजी के दर्शन करा दो जो मैं श्रीचरणों में मस्तक रखकर परम पावन, पवित्र पराग मकरन्द का भ्रमर, बनकर, भ्रान्ति-निवृत्तिपूर्वक, मृदु मधुर मकरन्द सुधा का पान करता हुआ, अन्तिम श्वास को समष्टि वायु में लीन करूँ। ऐसी मेरी आशा है शीघ्र प्रार्थना करो! ऐसा सुनकर सेवकों ने "श्रीचरणों में" निवेदन किया। सारा समाचार सुनकर स्वाभाविक करुणार्द्र हृदय दयासागर, श्रीमहाराजजी शीघ्र ही आसन से अभ्युत्थान कर वहां पधारे। और कहा अरे भाई! हमारे ब्रह्मचारीजी को क्या हो गया। घबराना नहीं होः हाँ! ऐसा सुनते ही ब्रह्मचारीजी के शरीर में पुनः कुछ शक्ति का संचार हो गया, उठने की हिम्मत की, सहारा लगाकर बैठाया गया। श्रीचरणों में मस्तक रख दिया। प्रेमाश्रु प्रवाह बहने लगा। रोमाञ्चयुक्त कण्ठावरोध से विशेष न कहकर कहा कि आपके पादपद्मों में ही मेरे श्वांस पूरे हों। यही प्रार्थना है—चरणामृत पिला दो बस। ऐसा सुनकर समीपवर्ती एक ब्रह्मचारी को कहा कि भगवान के मन्दिर से तीर्थ—चरणामृत लाओ। रुग्ण ब्रह्मचारी बोले कि गुरुदेव! अपने चरणों का अमृत मय चरणोदक दीजिये, यदि मैं अधिकारी हूँ तो। परम गुरुदेवजी परम कृपाकटाक्ष से प्रेमावलोकन करते हुए बोले, अरे भाई सब अपना ही तो है। तूं तो कहता था कि मैं भ्रान्ति को निवृत्त कर चरणों में श्वास पूरा करूँगा? सो तुझे अभी तक भ्रान्ति ने छोड़ा नहीं है क्या? ऐसी सौन्दर्यमय वाक्सुधा का श्रवणपुट द्वारा पानकर ब्रह्मचारी मौन होकर कुछ ध्यान सा करने लगे। इतने में शीघ्र ही

मन्दिर से चरणामृत उपस्थित हुआ। श्रीमहाराजजी ने उसे लेकर कुछ अभिमन्त्रित कर आपही आगे हाथ बढ़ाकर दयासागर गुरुदेवजी ने कहा, लो चरणामृत पीकर अमरत्वको प्राप्त हो। तुमने हार्दिकभाव से इन सन्त महात्माओं की सेवा की है, अतः अभी दीर्घजीवी होकर प्रभु का भजन पाठ धारणा ध्यान समाधि का सुखपूर्वक सञ्चय करो। हर हर महादेव।

ब्रह्मचारीजी ने श्रीमहाराजजी के ही करकमलों द्वारा जीवनदाता चरणामृत का पान किया। फिर क्या था, जैसे पावरहाऊस की बिजली का स्वीच दबाते ही सारे शहर की लेनों में एकदम परम प्रकाश हो जाया करता है, वैसे ही अंग प्रत्यंगोंमें विद्युद्रूप शक्ति का संचार हुआ। निदान तीसरे दिन बड़ी प्रसन्नतापूर्वक अन्यान्य महात्मागण भी श्रीमहाराजजी की आज्ञानुसार हरिद्वार तक का यथेष्ठ मार्ग व्यय प्राप्त कर नीचे आगये। अस्तु ! उक्त ब्रह्मचारी शिवचैतन्यजी जब कभी कुम्भार्धकुम्भी के विशेष मेले में आया करते हैं तो सब बैठकर परस्पर कुछ गोष्ठी किया करते हैं। तब पूर्व यात्रा की स्मृति होते ही एकदम अन्तःकरण में, रोमाञ्चजनक, हिमाच्छादित, रजतमय, कर्पूर सदृश धवलाभायुक्त परम सुरम्य शिखरावली का चित्रपट सामने आ जाया करता है। वहाँ की बातें करते हुये ब्रह्मचारी जी, परम गुरुदेवजी को स्मरण करते हुए कहा करते हैं, कि अहह ! गुरुदेव !! धन्य हैं, मुझे तो आपने सुधारस पान कराकर अभी तक निरोग बना दिया। परन्तु आप तो ब्रह्मलीन होगये। हे गुरुदेव आपकी अपार महिमा है मैं कैसे जान सकता हूँ, अतः ( गुरु की महिमा वेद न जानै। जानै तेती बखानै ) अस्तु। इसलिये "एकं गुरूं तं प्रणमामि नित्यम्" सज्जनो ! यह प्रत्यक्ष श्री महाराज जी का चमत्कार सैकड़ों यात्रियों के दृष्टिगोचर हुआ था। इसी तरह की कई विशेष बातें यात्रा में होती रही। यह घटना बिल्कुल संक्षेप में है।

इसके अतिरिक्त नमः शिवाय बैंक के प्रचार में भी जो कुछ सेवा हुई या हो रही है, सब महामण्डलेश्वर जी की ही कृपा का फल है। और आप की मानसरोवर तथा कैलास यात्रा में भी सेवक साथ ही साथ था। वहाँ की आश्चर्य पूर्ण घटनाओं का उल्लेख स्थानाभाव से उपस्थित न कर सका।

सज्जनों ! फर्रुखाबाद तथा श्री बद्री नारायण की यात्रा और श्री कैलास मान सरोवर के दर्शन ॐ नमः शिवाय के प्रचार व्याधि पीड़ित व्याकुल प्रेमियों का सत्संग चमत्कार को एकाग्रतापूर्वक श्रवण मनन करनेवाले प्रेमियों को भगवान भूतभावन आशुतोष सदाशिव परम सुखमय शान्तिवर्धक जीवन नौका को भवपारावार से पार करैं ऐसी मेरी शुभ सम्भावना है।

अब केवल अपनी भावना का एक संस्कृत पद्य तथा चार सवैया सेवा में निवेदन करके त्रुटियों की क्षमा प्रार्थना करते हैं ।

श्रीमद्ब्रह्मविदग्रगण्यसुगुरोर्यस्यांघ्रिसंचारिणी ।
सर्वानर्थपरम्परामदकरी माया जगद्रूपिणी ॥
या साक्षादपरोक्षवीक्षण परा सौख्यस्यचोत्पादिका ।
स स्यादेष यतीश्वरो ममगतिः श्रीमज्जयेन्द्रः स्वयम् ॥ १ ॥

" श्री यतिराज जयेन्द्र हमारे "

ज्ञान निधान महान स्वरूप अनूप विवेक सदा उरधारे ।
जीवन प्रान सदा जनके वरदान अभै कर देत पुकारे ॥
ध्यान सुधारत ही जनके अभिमान निवारत ज्ञान सुधारे ।
'मञ्जुल मंगल रूप सदा शिव' श्री यतिराज 'जयेन्द्र' हमारे ॥१॥

पावन प्रेम सुपंकजके विकसावन हेतु प्रभाकर प्यारे ।
मोहमई रजनी दलको दलके प्रिय पूर्ण प्रकाश प्रसारे ॥
कौतुक ही कलिकाल कराल के कौतुक काटिके कष्ट निवारे ।
'मञ्जुल मंगल रूप सदा शिव' श्री यतिराज 'जयेन्द्र' हमारे ॥२॥

भारति भूषण भारत भूति भले भुवि भाग्य दले भय भारे ।
मोद मई महिमा महि मंडल मंडन मूर्ति मनोहर प्यारे ॥
सेवत सन्तत सन्त सुधी, सुधि लेत सदा सत संग सुधारे ।
'मञ्जुल मंगल रूप सदा शिव' श्री यतिराज 'जयेन्द्र' हमारे ॥३॥

पूर्ण प्रताप त्रिताप हरे भवदाप को दर्पि के पाप पछारे ।
प्रीति प्रतीति निवाहि नई शुचि नेह सुनीति की रीति प्रचारे ॥
मोह-प्रवाह बहे सो गहे गहि बाँह सो डूबत पार उतारे ।
"मंजुल मंगल रूप सदा शिव" श्री यतिराज 'जयेन्द्र' हमारे ॥४॥

सज्जनों ! बस इतना ही संक्षेप में निवेदन कर लेखनी भी विश्राम करती है ।

" कह्यों न कछु करि युक्ति विशेषी, यह सब मैं निज नयनन देखी "

शिवमिति शुभम ॥

## श्री स्वामी दुर्गाचैतन्य भारती जी महाराज, गोविन्द मठ, काशी

कार्य कारण नियम सर्वत्र स्वीकृत है। निखिल जगत् इस नियम के अनुसार चल रहा है। जड़ जगत् में आज जो अद्भुत वैज्ञानिक आविष्कार हो रहे हैं, प्राकृतिक कार्य कारण सूत्र ( Law of Causaelity ) अवलंवन द्वारा ही यह संभव हो सकता है। एक प्रसिद्ध पाश्चात्य वैज्ञानिक कहते हैं—

Every effcect has a sufficient cause. Given the cause, the effect is bound to follow. Quantitively the effeet is equivalent to the cause.

अर्थात् प्रत्येक कार्य का तदुपयोगी एक कारण है । कारण रहने से कार्य अवश्यंभावी। कारण के परिमाण के अनुसार कार्य का परिमाण भी नियन्त्रित है।

केवल स्थूल जड़ राज्य में ही नहीं किन्तु सूक्ष्म मानस राज्य में भी वहीं एक ही नियम कार्य कर रहा है। एक माता पिता के पांच पुत्रोंकी मतिप्रवृत्ति एक समान ही क्यों नहीं होती ? कोई विद्वान्, कोई मूर्ख, कोई भोगासक्त, कोई निवृत्तिशील क्यों होता है ? कार्य कारण के नियम बिना, जन्मान्तरीय कर्म संस्कारों के बिना और किसी भी प्रकार से इस प्रश्न की मीमांसा नहीं हो सकती। कार्य कारण के नियम को मानने पर जन्मान्तर भी मानना पड़ेगा।

परम पूज्य महामण्डलेश्वर श्री मत्स्वामी जयेन्द्रपुरी जी महाराज ने वैभवसंपन्न गृहमें जन्म ग्रहण किया था। किन्तु जन्मान्तरीय प्रबल संस्काररूप कारणवश कौमार अवस्था में ही वैराग्य पथ के पथिक हुए थे। मृदुतीव्र वैराग्य के तारतम्य होने पर फल में तारतम्य होता है—अर्थात् कारण के परिमाण से कार्य का परिमाण जाना जाता है। संपत्ति के प्राचुर्य होने पर भी उनमें जो वैराग्य भाव बाल्यावस्था में ही देखा गया था, वही संन्यास जीवन में तपश्चर्या एकान्त वास ब्रह्मविद्यानुशीलन निदिध्यासन द्वारा पुष्ट हुआ था।

महामण्डलेश्वर जी जीवन्मुक्त थे। मोक्ष अवस्था में जगत् जीव ईश्वर इत्यादि भेद कल्पना सर्वदा के निवृत्त हो जाती है। बद्ध जीव को यह भय होता है कि जब सभी चिन्मात्र में मिल गया तो हमारा और क्या रहा। न तो घर, न तो स्त्री, न पुत्र, न वाड़ी, न गाड़ी न घोड़ा, न मोटरकार, न नाटक, न सिनेमा—इन में यदि कुछ भी नहीं रहा तो हम क्या ले कर रहेंगे ? परन्तु जब उसको यह बोध होगा कि विषय सुखमात्र ही दुःखमिश्रित है, और विचार से ज्ञात होने

पर जब उसकी भेद बुद्धि दूर होगी और परमानन्द का स्वाद मिलेगा, तब उसको और विषय से प्राप्त छोटे छोटे सुख की इच्छा ही नहीं रहेगी। अतः एक विषय के अभाव जनित कोई दुःख या भय नहीं रहेगा।

हमारे संन्यास-आचार्य पूज्यपाद श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ महामण्डलेश्वर स्वामी जयेन्द्रपुरी जी के चरित माहात्म्य हमारे "संन्यास और संन्यासी" ग्रन्थ में कुछ वर्णित हैं। अतएव इस जगह उसकी पुनरुक्ति करने की कोई आवश्यकता नहीं है। मेरे जैसे अयोग्य व्यक्ति के ऊपर उनकी सविशेष कृपा एवं प्रेम का अनेक प्रमाण मैंने पाये हैं। विस्तारभय से उसका उल्लेख यहां करना नहीं चाहता हूँ। स्वामी जी की पवित्र स्मृति में यह सामान्य श्रद्धार्घ्य अर्पण करता हूँ। शिवमस्तु॥ ॐ तत्सत्॥

---

## श्री स्वामी वासुदेवानन्द जी महाराज, ललिता घाट काशी

सुमुखाः सर्वभूतनां प्रशान्ताः शंसितव्रताः।
सेव्याः सन्मार्गवक्तारः पुण्यश्रवणदर्शनाः॥ १॥
वदनं प्रसादसदनं सदयं हृदयं सुधामुचोवाचः।
करणं परोपकरणं येषां केषां न ते वन्द्याः॥ २॥

अर्थस्पष्ट है।

महामण्डलेश्वरजी ईश्वरप्रदत्त प्राकृतिक शारीरिक सौन्दर्य में अनुपम थे। सुडौल दीर्घाकार वर्तुलाकार निर्मल गौरवर्ण विशाल नेत्र तेजोमयी लावण्यमयी कलासे शरद्‌चन्द्र सम मुखमण्डल चमकतासा प्रतीत होता था। आजानु बाहु समग्र-सामुद्रिकलक्षणोंसे पूर्ण थे, माधुर्य्य शान्त रसकी प्रतिमूर्ति भव्य-दिव्य विग्रहका दर्शन करके ही सब कुछ प्राप्तसा हो जाता था, अपने वरप्रद उभय हाथों से आप आशीर्वाद संकेतों से चतुर्वर्ग फल प्रदान करके भक्तों को आनन्दित करते रहते थे। जो भी सामने आया 'आओ जी, 'अच्छे हो' पूछा करते थे, इतना सुनते ही दर्शक की भी आत्मीयता जागृत हो उठती थी। नित्य निरञ्जन निर्गुण ब्रह्म की निर्विकल्प भावना से भावानुकूल समय समय पर आपके श्रीमुख से 'हरहर महादेव' 'वासुदेव' की ध्वनि गुञ्जित होती रहती थी। आपकी वाणी में विलक्षण आकर्षण

शक्ति थी, आपकी दृष्टि में इतना प्रेम था कि जिधर निगाह उठावें, उधर शान्ति टपकने सी लग जाती थी।

आपकी रिद्धि-सिद्धियों के विषय में कई महात्मा और भक्तों के मुँह से विचित्र कथानक सुनने में आये हैं, किन्तु उनकी यथार्थता के विषय में निश्चित-रूप से मैं कुछ न कहकर इतना अवश्य कहूँगा कि—आप सरीखे त्रिकालदर्शी एवं वाक्सिद्ध सदाचारसम्पन्न महात्मा में इन सब बातों का सुसंघटित होना सहज है, धर्मनीति–समाजनीति–राजनीति को वेद-पुराण-धर्मशास्त्रों के आधार पर उदाहरण प्रत्युदाहरणों द्वारा अत्युत्तम ढंग से आप समझाते थे। आपके प्रवचनों में यह खास विशेषता रहती थी कि–किसी भी सम्प्रदाय से बैर विरोध नहीं उठा करता था, सर्वधर्मसमन्वय करने की प्रशस्तशैली आपके पास थी, आपका प्रधान प्रवचन उपनिषदों के आधार पर होता था।

आपकी सुसंस्कृत विशुद्धवाणी ने सहस्रों मनुष्यों को शान्ति और धर्म की शिक्षा दी। आपके आदर्श प्रचार ने देश में विद्वान्-शूरवीरों को तैयार किया, सती साध्वी वीराङ्गनाओं को पातिव्रत धर्म सिखाया। अनेकों को कुमार्ग से सुमार्ग पर लगाया। कितनों को घोर पापों से बचाकर पुण्य संचय करने में जोड़ा, सत्य का आदर्श सामने रक्खा।

आपके साथ बड़े २ तपोधन ब्रह्मनिष्ठ विद्वान् संन्यासी ब्रह्मचारी रहते थे, साधु समाज को आपने उन्नत किया। दिगन्तचंक्रमणपरिचर्य्यानिपुण होकर आपने 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' का सच्चा पाठ पढ़ाया। अपार सुख वैभव के स्वामी होकर भी आपने उदासीन भाव से रहकर जितेन्द्रियता पूर्वक अखण्ड ब्रह्मानन्द का पूर्ण आनन्द प्राप्त किया।

धन्य हैं वे प्रान्त-नगर-ग्राम जिनको आपके चरणकमलों ने पावन तीर्थ बनाया। धन्यमान्य हैं वे सज्जन जिन्होंने अपने नेत्रों को आपके दर्शनों से और कानों को वेदमन्त्रों से पवित्र करने का सौभाग्य पाया। परमधन्य हैं वे साधु महात्मा और ब्रह्मचारी जो आपके पास अहर्निश ब्रह्मविद्या के स्वाध्याय का आनन्द प्राप्त कर सके हैं। ज्यादा धन्यवाद के पात्र हैं, वे महात्मागण जो आपके संस्थापित संस्थाओं का यथावत् सञ्चालन करते चले जा रहे हैं। कोटिशः सादर प्रणाम है पूज्य श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य्य सुग्रहीत नामधेय महामण्डलेश्वर श्री १०८ श्री जयेन्द्रपुरी जी महाराज के चरण कमलों में। ॐ नमोनारायणाय।

# श्री १०८ स्वामी नृसिंह गिरिजी महाराज के शिष्य, श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी संन्यासि-संस्कृत-कालेज, काशी

## विश्व की एक विभूति और उसके लिये आठ पद्य

अज्ञान एक अनादि पदार्थ है। वस्तुतः यही अन्धकार है। अतएव इससे ऊब जाना पड़ता है। आलोक की ओर बढ़ना पड़ता है। जीव मात्र को एक न एक दिन यह करना ही पड़ता है। उस आलोक की प्राप्ति के बिना जीव कभी निष्क्रिय बन ही नहीं सकता। क्योंकि आलोकातिरिक्त जितने भी पदार्थ हैं, सभी सावधि और सान्त तथा सन्तापक हैं। एक वह आलोक ही अविनाशी और अनन्त अतएव आह्लादक है। "यदल्पं तन्मर्त्यम्" "यद्वैभूमातदमृतम्" अस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति, इत्यादि वैदिक वाक्यों से उपर्युक्त आशय को स्पष्ट किया जा सकता है।

किन्तु उपर्युक्त अँधेरे में पड़े हुये जीव को उस आलोक तक पहुँचाने के लिये किसी सहायक की आवश्यकता हुआ करती है, अतएव "तमसो मा ज्योतिर्गमय" इत्यादि जीव जगत् की ओर से की हुई प्रार्थनाओं का उल्लेख पाया जाता है। यही कारण है कि इसे हस्तावलम्ब देने के लिये ही समय समय पर ईश्वर या उसकी विभूति का प्रादुर्भाव पाया जाता है। अतः ईश्वर या ईश्वर विभूतिभूत महापुरुष स्वभावतः "सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात्" इस पवित्र पद्य में कहे हुये सर्व सुहृद्भाव से विभूषित हुआ करते हैं। यही कारण है कि, उनके जीवन स्रोत का बहाव प्रथम से ही सर्व दुःख प्रहाण पक्ष की ओर ही पाया जाता है। यहाँ तक कि स्वरूपावस्थान के बाद भी लिपिबद्ध जीवनी के रूप में वे उपर्युक्त पक्ष की पुष्टि की क्रिया को किया ही करते हैं। यही है सत्पुरुषों की जीवनी का वैशिष्ट्य।

हमारे श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ पूज्यपाद महामण्डलेश्वर स्वामी श्री जयेन्द्रपुरी जी महाराज भी आज के एक विभूति पुरुष थे। उनकी पवित्र जीवनी अनेक पवित्र तत्त्वों से भरपूर है। मण्डलेश्वरजगत् में आप एक अनुपम रत्न थे। मेरे लिये खुशी की बात है कि, आपकी बोधप्रद धार्मिक जीवनी को लिपिबद्ध कराने का आयोजन होने जा रहा है और उस पुनीत प्रसङ्ग में उत्साहमूर्ति स्वामी श्री धर्मानन्द जी महाराज के सस्नेह आमन्त्रण से मुझे भी सम्मिलित होने

का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। अतः निम्नोक्त पद्यपुष्प समर्पित करके 'ही समयाभाव वश सन्तोष का अनुभव कर रहा हूँ।

मधुरालापिनी मुग्धा स्निग्धा सौन्दर्यवाहिनी।
श्रीजयेन्द्रयतेः साध्वी तनुर्मनसि राजताम्॥ १॥

हन्त नास्ति जगत्यस्मिन् श्रीजयेन्द्रसमो यतिः।
अचेतनापि यत्कीर्तिः प्रेरकत्त्वमुपैति नः॥ २॥

जातिर्विद्या विभूतिः सदसि श्रुतिसुखं वाक्पटुत्वं पटुत्वम्।
शान्तिर्दान्तिर्दयादिधृ तिरपि महती मानमौदार्यमार्यम्॥
भक्तिर्ज्ञानं विरागस्तदनु च महतो जीवतो मुक्तिरासीत्।
यन्नासीत्तन्न जाने विमल तनु मुनौ शंहिसर्वं समासीत्॥ ३॥

पृथुलपृथिव्यां बहवः सन्तः सन्तीति सन्दिहे नाहम्।
किन्तु जयेन्द्रयतिप्रभशान्तात्मा नो यतिर्लभ्यः॥ ४॥

विद्यायां व्यवहारे निष्ठायां ब्रह्मचर्येपि।
तेन सनाभिर्नान्यो कथमपि केनापि शक्यते लब्धुम्॥ ५॥

यद्यप्यहं 'न बहुशः सानिध्यं तन्महात्मनोप्यलभे।
सम्प्रति हन्त हि स्वस्थं स्मरत्यभीक्ष्णं तथापि मे चेतः॥ ६॥

अन्तर्हृदि वात्सल्यं पद्मा पद्मासनाङ्कने चास्ये।
यस्य यतेस्तत्सदृशः कश्चिन्नान्योपलभ्यते भूमौ॥ ७॥

यस्मै द्रुह्यति नायं लोकः धातः कोयं धरणितलौकः।
इति परिपृष्टो ब्रूते धाता वत्स! जयेन्द्रपुरी मे भ्राता॥ ८॥

॥ ॐ शान्तिः॥

---

## उत्तराखण्ड गंगोत्तरी यात्रा:

### श्री स्वामी श्यामानन्दजी महाराज, गोविन्द मठ, काशी।

**शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे शिवो नहि।**
**शिवादप्यधिकस्तस्माद् गुरुं यत्नेन पूजयेत्॥**

महापुरुष गुरुजनों की मनोरम जीवन की गति-विधि चाल-ढालों को एकान्त शान्त में अध्ययन करके बड़ी शान्ति मिलती है। सन्तों के उपवास-तीर्थाटनों की

साधारण बातों में मनुष्य-हृदय को शुद्ध करने की ताकत रहती है, मजबूती से अपने को काबू में रखने का तरीका मालूम होता है, हृदय में प्रसन्नता उत्पन्न होती है, अपने जीवन को सच्चाई के सुनहले सांचे में ढालने की आन्तरिक प्रेरणायें जागृत हो उठती हैं।

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्री १०८ पूज्य जयेन्द्रपुरी स्वामीजी महामण्डलेश्वर महाराज वै० सं० १९९१ वैशाख बदी १२ शनिवार (ता० ४-५-१९४० ई०) को उत्तरकाशी-गंगोत्तरी की यात्रा को पधारे, साथ में ११ महात्मा भी महाराज की सेवा शुश्रूषा सत्संग के लोभ से चल दिये। जनता की भीड़ दर्शनाथ जुट जाती थी, प्रतीत होता था श्री काशी से विश्वनाथ रुद्र भगवान् एकादश गणों को साथ लेकर नगाधिराज के घर को जा रहे हों।

देहरादून में हरिद्वार-कनखल-हृषिकेश से सहस्रों दर्शनार्थी आने लगे, मण्डलेश्वर श्री १०८ महेश्वरानन्द स्वामी दार्शनिक सार्वभौम महाराज भी अनेकों महात्मा-सद्‌गृहस्थों के साथ भेंट करने पधारे, लाहौर-अमृतसर से दर्शक आये। देहरादून में महामण्डलेश्वर महाराज चार रोज ठहरे। ता० १०-५-१९४० ई० को प्रातःकाल देहरादून से मन्सूरी होते हुए, ता० १६-५-४० को उत्तर काशी पहुँचे।

देवदर्शन करके कोटेश्वर स्थान में आकर आसनादिक लगाये, एक दिन समस्त उत्तर काशीनिवासी महात्माओं को वस्त्र सहित समष्टि भण्डारा दिया, सात दिन उस स्थान में निवास करके कोटेश्वर से दो मील की दूरी पर पण्डित गणेशदत्त शास्त्री लाहौर वालों के बँगले में निवास किया।

## गंगोत्तरी की यात्रा

ता० २६-६-४० ई० को उत्तर काशी से गंगोत्तरी को प्रस्थान किया, साथ के महात्माओं ने बड़े ही आग्रह से डाँडी की व्यवस्था की, किन्तु एक मील आगे जाकर डाँडीवाले को पूरी मजदूरी देकर आप उतर कर पैदल चलने लगे, डाँडी वाले को खर्चा देकर वापिस किया। उत्तर काशी से उक्त फलाहार विधि के साथ ही आपने मौन व्रत भी धारण किया था, अत्यावश्यक बात को लिख देते थे। प्रायः यही लिखा करते थे—'इस शरीर की कोई चिन्ता मत करो, उत्तराखण्ड की यात्रा के कष्टों को तप ही समझना चाहिये।'

महाराज के चरणों से रक्त बहना ही चाहता था, पत्थरों की ठोकरों से दाग तक पड़ गये थे, बड़ा ही कष्ट प्रतीत हो रहा था, पूछने पर महाराज ने वही बात लिख दी जो लिखा करते थे, चेहरा प्रसन्न था, उत्साह और आत्मबल दृढ़ था, मानो यह कोई दुःख ही नहीं है।

प्रिय पाठक समझ गये होंगे, इन लाइनों का लेखक भैरों घाटी से इसी प्रकार महाराज के साथ गंगोत्तरी तक पहुँचा। गंगोत्तरी में भी उसी नियमानुसार देवदर्शन पूजनादिक करके महाराजजी ने समस्त गंगोत्तरी निवासी साधुओं और पण्डों को भण्डारा दिया।

पांच दिन गंगोत्तरी में निवास करके उत्तर काशी को लौट आये। ता० १५-७-१९४० ई० को पुनः पं० गणेशदत्त शास्त्री जी के बँगले में रहने लगे।

एक समय आप नर्मदा तटपर घोर जंगलों में विचर रहे थे, एक सिंह सामने से आरहा था, आप भी अविचलित भाव से आगे बढ़ते रहे, सिंह नीचे शिर करके चला गया।

एक समय काशी में आप पञ्चक्रोशी को अकेले ही जा रहे थे, रात का समय था अस्सी घाट पर आप रास्ता भूलकर इतस्ततः भटकने लगे, एक वृद्ध तपस्वी विलक्षण छटा वाला आपको अपने साथ बुला ले गया, कई दिव्य मन्दिरों का दर्शन करवा कर ठीक रास्ते में आपको रखकर अन्तर्हित होगया।

वेदान्ताभ्यासनिरतः शान्तो दान्तो जितेन्द्रियः।
निर्भयो निर्ममो नित्यो निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः॥

अर्थ स्पष्ट है, इस प्रकार के उपदेशों को सुनने के लिये तथा जीवनपथप्रदर्शक मानकर आपके चतुर्दिक् संन्यासी सर्वदा रहा करते थे। आपके दर्शनों से ही चित्त पवित्र हो जाता था, आप जंगमस्वरूप तीर्थ ही थे, जैसा कि शास्त्रों में कहा है:—

'सतां सद्भिः संगः कथमपि हि पुण्येन भवति।'
'सज्जनैः संगतं कुर्य्याद्धर्माय च सुखाय च।'
गंगापापं शशीतापं, दैन्यं कल्पतरुस्तथा।
पापं तापं च दैन्यं च हरेत्साधुसमागमः॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

## श्री १०८ महन्त स्वामी शंकर भारतीजी, धनीनाथ मंदिर, बीकानेर

**यो ब्रह्माणं बिदधाति पूर्वं, यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।**
**तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं, मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥**

यह मायामय संसार अनादिकाल से चला आ रहा है। माया का कारखाना होने के कारण इसमें बड़े २ परिवर्तन होते रहते हैं। एक सुन्दर वाटिका को ही लीजिये, उसमें भिन्न २ प्रकार के पौधे लगाये और मिटाये जाते हैं। कालभेद से उसमें हेर-फेर होता ही रहता है। अन्ततः इस परिवर्तन का कारण क्या है ?

विचार करने से सहज ही में ज्ञात हो जाता है-कि इसमें कार्य्य करने वाले मजदूरों जमादारों अध्यक्ष मालियों व कभी २ मालिक द्वारा ही ऐसा होता है। आवश्यकतानुसार मजदूरों व उनसे काम लेने वाले जमादारों द्वारा बहुतसा हेर-फेर हो जाता है। संयोगवश कभी अधिक काट छाँट की आवश्यकता हो तो अध्यक्ष तथा माली ठीक कर देता है। कभी २ ऐसा देखा जाता है-कि मालिक अपनी सत्ता से वाटिका का चित्रपट बिल्कुल ही बदल देता है। यह तो हुई फुलवारी की बात।

अब जरा इस विश्व पर दृष्टि डालिये। यहाँ भी प्राणी अपनी २ चेष्टानुसार अपने २ कर्तव्य का पालन करते देखे जाते हैं। जब उनकी चेष्टा विषमता में परिणत होने लगती है, तव उसी समय किसी सुधारक द्वारा उचित सुधार कर दिया जाता है। जहाँ साधारण बुद्धि बल से कार्य्य नहीं चलता दीखता-वहाँ बड़े २ महापुरुषों द्वारा उक्त कार्य्यसुधार होते देखे गये हैं। जब विशृङ्खलता आ जाती है अथवा वातावरण अधिक बिगड़ जाता है-तब स्वयमेव जगदीश्वर का व्यक्तित्वभाव में प्रादुर्भाव होता है ऐसा इतिहास ( शास्त्र ) देखने से पता चलता है।

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचाय श्री १०८ महामण्डलेश्वर स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज का प्रादुर्भाव भी इसी हेतु था।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

## SRI SWAMI CHIDGHANANANDA PURI,

### RAM KRISHNA MISSION, Benares.

India has been the land of sages and saints ever since the dawn of time. Many such great men of unrivalled wisdom have come and gone leaving their mark in the Srutis and Smritis which embody the result of their lifelong Tapasya and enquiry into the science of life both in this world and in the next.

Swami Joyendra Puri Maharaj belonged to this latter category of Sanyasins who spent his life in the service of both God and humanity. His mission over, he has been Called back by his Maker to His numerous followers and admirers among the ordinary run of mankind, his passing away has naturally cast a gloom.

When he came to be called a Paramahansa to whom all worldly happiness paled into insignificance before tne happiness of realising the Sachhidanada, the source of being, intellect and joy. When he was elected Mahamandaleswara, people felt that a better selection could not have been made. Taking up that exalted position he felt that the onerous duty ot diffusing education for the spiritual benefit of the children of the soil had devolved on him and he established and maintained education institutions for the purpose where not only was education imparted frae of cost but the poor were also provided with food and clothing. Besides, his purse strings were always open to all good causes. There was hardly a holy place in india which he did not visit and at every such place he was requested to give religious discourses for the benefit of the people. He could never say no to any such request and in this and in several other ways he served humanity which, to his mind, was akin to serving God, I feel confident that he attained Jivanmukti of emancipation during life time and passed away when the time was ripe for the purpose. With these few words I pay my tribute of respect to the memory of the departed Swamiji, but here I must conclude, for language fails me to give expression to my feelings.

# तपोनिष्ठ योगेश्वर वासुकिगुहा निवासी बालब्रह्मचारी (वासुकि) श्री पशुपतिनाथ ( नेपाल )

अयिमान्या: तत्राशेष वेदवेदाङ्गादि निखिल दर्शनशास्त्र सूक्ष्मविचार समीक्षा परिष्कृत शेमुषीकाणां निरन्तर वेदान्त चिन्तासंयतेन्द्रियाणां धर्माऽधर्म्मतोलनतुलादण्डायमानमानसानां शमदमोपरतितितिक्षादिसहिष्णुतासमुत्पन्नात्मविवेकमतीनां धर्मविचारचारुचातुर्य्यचित्तानां विविधसंसारसागरविषयग्रहग्रासपरिभीतलोकानां स्वात्मानुभूत्याभयप्रदानाद्भवपरिमोचनकर्त्तृणां यतिवरभूषणभूंषितानामष्टोत्तरशतोपाधिकानां श्रीस्वामि जयेन्द्रपुरीणां पयोऽब्धि परिगृहीत पक्षिचञ्चुपुटोदकमिवाल्पं जीवनचरितं ब्रूम: । अद्यावधि यावन्तोऽपि महापुरुषा: सम्बभूवुस्तेषां जीवनचरितसमालोचनया स्पष्टमिदं ज्ञायते यच्छ्रीस्वामिपादा अपि श्रीभगवतो नारायणस्यांशविशेषा एवासन् ।

बाल्यएवेमे सकलवेदवेदान्तविचारविज्ञस्य विवेक वैराग्यादि मुमुक्षुता सम्पन्नस्य निर्विकल्पसमाध्यभ्यासक्षपितकल्मषस्य सदानन्दैकस्वरूपस्य संन्यासिन: पार्श्वेप्रतिदिनंगन्तुमारेभिरे । तत्र च महात्मन: पार्श्वेऽनेकशआत्मज्ञानेच्छयाऽध्यात्मिक प्रश्नान् पृच्छन्तिस्म, महात्मा च परं कारुणिक: सशङ्कान् सर्वान्प्रश्नानुद्भाव्य बोधयतिस्म । स्वामिनोऽध्यात्मिकोपदेशश्रवणान्तरं ते ततोऽपि दृढतरवैराग्या: सर्वे संन्यासेच्छाञ्चक्रेरि । एकदा चैकाकिनो मातापितृबन्धुवर्गाणामननुज्ञयैव प्राप्य वाराणस्यां कस्यचिन्महात्मन: पार्श्वमभ्युपेत्यसाञ्जलय: संन्यासग्रहणाथमनुनयं विदधु: । सोऽपिमहात्मा शान्तं गंभीरं सदयार्द्रहृदयं दृष्ट्वा स्पष्टमवोचत्, अयि वत्स! किमर्थं संन्यासं कर्तुमिच्छसि किन्तुगृहे एव स्थित्वा मातापित्रो: पादतलसेवया स्वकल्याणमिच्छ, अनेकविधसांसारिकरमणीयदर्शनीयानति प्रयाससाध्यविषयभोगेष्वेव सुखं लभस्व, किमर्थं पुन योगिजनैरप्यगम्ये वर्त्मनिप्रवृत्तिं कर्तुं समीहसे, बालाअपि नानाविषयदोषदर्शिनस्तच्छ्रुत्वा पुनरपि करुणवचसा संन्यासमेव प्रार्थयन् । महात्माऽपि च तस्य शमदमोपरति तितिक्षादिषट्सम्पत्ति सम्पन्नस्य संसारापातरमणीयेषु विषयेषु दृढतरवैराग्यं विज्ञाय संन्यासदीक्षां ददौ । सोऽपि च धृतचारुसंन्यासवेश:, जयेन्द्रपुरीति संज्ञां लेभे । संन्यासग्रहणानन्तरं वेदान्त श्रवण मनन निदिध्यासनैरेवात्मतत्त्वं विचारयन्नत्युच्चभूमिमगात्, एवञ्च महात्मानोऽपि, अत्यन्त वैराग्यशालिनं संसारविषयनिस्पृहं विज्ञाय महा-

मण्डलेश्वरत्वपदे समारोपयन्, महात्मनः इमे च महामण्डलेश्वरपदमधिच्छन्तो निखिल देशदेशान्ततीर्थयात्राव्याजेनाध्यात्मिकोपदेशामृतवर्षणेन सर्वान् संसारदावानलसन्तापतप्तान् भवसागरतो मोचयन्त एव स्वात्मस्वरूपे व्यलीयन्त ।

---

## SRI 108 SWAMI JAYENDRAPURIJI MAHARAJ

( By Sri Swami Sivananda, Ananda Kutir, Rikhikesh. )

Great men appear from time to time, to enrich sacred literature, to protect Dharma, to destroy unrighteousness and reawaken the love of God in the minds of people.

Sri Swami Jayendrapuriji Maharaj, Maha Mandaleswar, Benares was an ideal Sannyasin. He was well versed in all the scriptures. Further he has a perfect Virakta or Tyagi. He was an Anubhava Gyani. He was working hard and devoted his whole life for the welfare of the humanity at large.

He has left behind him deep footprints of idealism for earnest seekers to follow..

---

## श्री स्वामी शंकरानन्दजी भारती, गीताप्रचारणी सभा, मैसूर

श्रितयतिशतमध्ये भ्राजमानं जयेन्द्रम्,
विभवविरतिशुद्धं पृष्टवान्कश्चिदेत्य ॥
न भवति हृदि चिन्तारत्तणे स्वाश्रितानाम
इति विनयविनम्रं वाक्यमाकर्ण्य विज्ञः ॥१॥
प्रतिवचनमुवाच श्रूयतां सावधानः
सुरनरदनुजा वा प्राणिमात्रः स्वभोगान् ।
निजकृतिसममाराद्भुञ्जते दैवयोगात्
मम हृदि परितापे कोऽत्रहेतुः प्रमादे ॥२॥



---

## श्रीमान् सेठ कन्हैयालाल जी, मोतीबाग, अहमदाबाद

श्री श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मीभूत श्री १०८ स्वामी श्री जयेन्द्रपुरी जी महाराज महामण्डलेश्वर के चरित्र अलौकिक थे, वे साक्षात् महापुरुष थे। उनके चरित्र अनन्त और अगम्य हैं। क्योंकि महात्माओं और विशिष्ट पुरुषों में कुछ और ही प्रकाश की विशेषतायें हुआ करती हैं। जिनको हमारे जैसे साधारण बुद्धि के लोग अच्छी तरह नहीं समझ सकते। उक्त महात्मा जी ने जबसे गुजरात में पदार्पण किया था, प्रायः तभी से हमारे पिता श्री स्वर्गस्थ श्री सेठ मोतीलाल हीराभाई जी से उनका विशेष परिचय था। महात्माजी का प्रेम पिताजी पर अगाध था। तथा पिताजी उनको साक्षात् शिवजी का अवतार स्वरूप मानते थे। उस समय मेरा भी पिताजी के पास रहने के कारण सघन सम्बन्ध हो गया। तब ही से वे मुझे बच्चे जैसे मानते आरहे थे। कितने वर्षों तक वे अनेकों महात्माओं को साथ लेकर मोती-बाग़ में उतरते थे, बाद में स्थानीय संन्यास-आश्रम की संस्थापना करने के पश्चात वहीं उतरते थे। और कथा प्रवचन के द्वारा भावुक तथा श्रद्धालु भक्तजनों को धार्मिक उपदेश प्रदान कर अपार भवसागर से पार करने का नौका-रूप अपने चरण कमलों के दर्शन देकर सभी को कृतकृत्य करते थे।

"देवो भूत्वा देवान् यजेत्" के अनुसार उनके वास्तविक रूप को तो विशिष्ट अधिकारी ही समझते होंगे। परन्तु उक्त गुरुदेव के चरणों की कृपा से उनका स्वरूप जो कुछ हमारे समझ में आया था, वह नीचे लिखे प्रकार से है।

शमः—वे महान् योगी थे। शान्ति तो उनके रोम-रोम से टपकती थी। उनके गम्भीर मुखमण्डल के दर्शन से हृदय खिल उठता था। अपार श्रद्धा उत्पन्न हो जाती थी। साधारण ढंग से उनकी अखण्ड शान्ति की छाप सभी पर तुरन्त पड़ जाती थी। क्रोध और उद्वेग उनके शरीर में नाम मात्र को भी नहीं थे। सभी के अन्दर वे महान् ब्रह्म की विभूति का अनुभव करते थे।

इन्द्रियदमनः—उनको अपने शरीर का अध्यास नहीं था, क्योंकि अंतिम समय में, जबकि उनका शरीर छूटने वाला था, हमलोगों के जाननें में आता था कि उनके मस्तक में अत्यन्त कड़ी पीड़ा हो रही थी। परन्तु वे उसको जरा सा भी अनुभव तथा प्रकाशन नहीं करते थे। कभी कभी उसका वेग बढ़ जानेसे "शिव शिव" मात्र का उच्चारण करते थे।

निष्ठाः—उनकी धर्म-निष्ठा बेजोड़ थी। इतने बड़े महान् पुरुष होते हुये भी बड़े से बड़े धनिक और विद्वान् से लेकर छोटे से छोटे गरीब तथा मूर्ख जन के लिये

भी उनका व्यवहार बहुत ही मधुर तथा प्रेममय था। उनके सामने आनेपर रजोगुण तथा तमोगुण का लय हो जाता था। सभी की धर्म में प्रवृत्ति करने का विचार होने लगता था।

श्रद्धा:—"श्रद्धामयोऽयं पुरुषः" इस उपाविषद के सिद्धान्त के अनुसार उनको ब्रह्म में अटूट विश्वास था परन्तु लोक संग्रह की दृष्टि से सभी देवी देवताओं में पूर्ण श्रद्धा करते थे। उनके धार्मिक प्रवचन में सभी प्रकार के लोग प्रेम रखते तथा सुनते और तदुनुकूल आचरण करने का प्रयास करते थे।

विवेक:—साधु महात्माओं को किस प्रकार लोक संग्रह करना चाहिये, आचार व्यवहार कैसे रखना चाहिये इसका उनको पूर्ण ध्यान रहता था। वे अपने पास आये हुए किसी भी संप्रदाय के साधु तथा ब्राह्मण पण्डित विद्वानों का सत्कार करते थे। जो कुछ उनको भेंट पूजा रूप में प्राप्त होता था, उसका सदुपयोग करते थे।

अन्नक्षेत्र—पाठशाला इत्यादि संस्थायें खोलते तथा खुली हुई संस्थाओंका पोषण करते थे। स्वयं उनके साथ मण्डली में ही कभी २ तो सैकड़ों महात्मा साथ रहते थे।

वैराग्य:—वे विरक्त थे। अपने रहन-सहन को अत्यन्त साधारण रखते थे। उनके दैनिक कार्यों को देखने से पता चलता था कि वे अभ्यास और वैराग्य में बहुत आगे निकले हुए हैं। ज्वर इत्यादि से कभी २ शरीर के पीड़ित रहने पर भी प्रतिदिन नियम और विधिपूर्वक स्नान, ध्यान ठण्डे जल से अविचल रूप से करते थे। हिमालय के कठिन से कठिन प्रदेश कैलास तक की पैदल यात्रा कर चुके थे। उत्तर काशी में भी बहुधा रहा करते थे।

त्रिकालज्ञता:—वे त्रिकालदर्शी थे, क्योंकि वे अपना शरीर-त्याग का समय खूब अच्छी तरह जानते थे। जिस वर्ष उनका शरीर छूटने वाला था उस वर्ष अमदाबाद आने का उनका विचार नहीं था, परन्तु धार्मिक जनता की विशेष प्रार्थना से वे अमदाबाद पधारे। परन्तु अपने उत्तर कर्तव्य की यथायोग्य व्यवस्था करके ही उन्होंने अपना स्थान छोड़ा था। भला इससे इस विषय में बढ़कर प्रमाण क्या होगा?

उनके कार्य:—उन्होंने कितनी ही संस्थायें खोली हैं। काशी इत्यादि स्थानों में अनेक अन्नक्षेत्र तथा पाठशालायें उन्होंने खोली हैं। अहमदाबाद में एक संन्यास-आश्रम स्थापित किया है। तथा एक संस्कृत का बड़ा विद्यालय खोला है। जिसके भीतर बड़ी २ कक्षा पर्यन्त विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते हैं।

उनका ध्येय:—उनका यह परम ध्येय तथा प्रवृत्ति थी कि इस कलियुग में भी लोगों में धार्मिक भावना बढ़ती रहे। शिक्षा तथा भक्ति ज्ञान का पूर्ण प्रचार हो।

सभी लोग विवेक और विचारपूर्वक सदाचार तथा सद्व्यवहार के पालन करनेवाले हों। सम्पूर्ण जगत में शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो जाय। सभी लोग ब्रह्मज्ञान तथा मुक्ति के अधिकारी हो जावें।

ऐसे महापुरुष के दर्शन तथा उपदेश श्रवण कर जिनको लाभ हुआ हो उनके धन्य भाग्य हैं।

## धर्मधुरन्धर सेठ श्री रमणलाल लल्लूभाईजी, मोतीबाग, अहमदाबाद

परमपूज्य श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य श्री १०८ श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ स्वामी जयेन्द्रपुरीजी महाराज स्थानीयभक्तों के अत्यन्त आग्रह से सम्वत् १९९७ विक्रमाब्द में चातुर्मास व्रत करने के लिये अहमदाबाद पधारे थे। यहाँ साबरमती के तटपर संन्यासाश्रम में उपनिषदों का प्रवचन किया करते थे। आपकी बोधनशैली इस प्रकार की थी कि वेदान्त ऐसे विषय को भी संस्कृतानभिज्ञ जनता के लिये भी सुखबोध्य बना देते थे। आषाढ़ अमावस्या को आपका अन्तिम प्रवचन था। इसके अनन्तर आप अस्वस्थ हो गये। महाराज के निषेध करने पर भी भक्तों ने चिकित्सक बुलाए। कुछ लोग काशी भेजने का भी विचार करने लगे। पर महाराजजी ने आत्मोपदेश के साथ सब लोगों को इस प्रवृत्ति से रोका। अन्त में महाराजजी के ब्रह्मीभाव के अनन्तर नागरिक जनता में शोक तथा क्रन्दन का साम्राज्य दिखाई पड़ा। भक्तों का विचार हुआ कि शरीर को विमान द्वारा काशी ले चलें पर वर्षा के कारण लाइनों के टूट जाने पर जिस प्रकार रेलगाड़ी से ले जाने की व्यवस्था न हुई इसी प्रकार विमान प्राप्ति में भी बाधायें पड़ती गईं। अन्त में शरीर को बर्फ से पूर्ण पेटी में रख कर भड़ौच में अपार समारोह के साथ जल समाधि की गई। अहमदाबाद में मण्डलेश्वरजी ने जो जो भव्य कार्य किये उसके लिये हम नगरनिवासी अत्यन्त कृतकृत्य तथा कृतज्ञ हैं।

## श्री कल्याण-सम्पादक श्री हनूमान प्रसाद पोद्दार

महामण्डलेश्वर स्वामी श्री जयेन्द्रपुरी जी महाराज मण्डलेश्वर महात्माओं में अग्रगण्य थे। उनकी विद्वत्ता और ब्रह्मनिष्ठा प्रख्यात थी, तथापि वे अत्यन्त सरल प्रकृति के थे। अपने विरक्त जीवन के आरम्भ में उन्होंने कठोर तपस्या की थी। उसीके कारण उन्होंने इतना सम्मान प्राप्त किया था। कल्याण पर वे सदा ही कृपा करते रहे। उनकी पुण्यस्मृति प्रत्येक जिज्ञासु और विरक्त के लिये दीपस्तम्भके समान है।

॥ श्रीमज्जयेन्द्र-स्तुतिः ॥

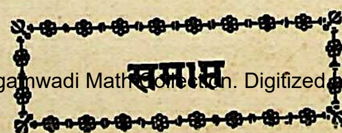
**रचयिता—स्वर्गीय कविचक्रवर्ति म०म० पण्डित देवीप्रसादात्मज काली प्रसाद शुक्ल 'सुरेन्द्र', काशी ।**

नित्यं निर्गुणमव्ययं गुणगणैर्युक्तं विमुक्तं नुतं ।
स्वानन्दैकरसं निरञ्जनमजं सत्यं शिवं चिन्मयम् ॥
शुद्धं बुद्धमखण्डमेकममितं वेदान्तवेद्यं परम् ।
वन्दे तं नरपुङ्गवं यतिवरं श्रीमज्जयेन्द्रं गुरुम् ॥

**कवित्त**

अमर अनादि अज अजर अखण्ड एक—
अमित अनन्त ईश जामे नहिं पुण्य पाप ।
अकल अनीह त्यों अरूप रूप नाना धरे—
अजित अनूप जाको होय नहिं तीन ताप ॥
अगुण अनेक गुण-शोभित विकार-हीन—
शुद्ध बुद्ध मुक्त जो उदार अति है दुराप ।
सोई परब्रह्म रूप श्रीयुत जयेन्द्र पुरी—
सेवक 'सुरेन्द्र' मन-मन्दिर विराजौ आप ॥ १ ॥
जाको गुण गावैं पर पार नहिं पावैं वेद—
अति अनपाया जासु माया उमगी रहै ।
वारबार विश्व को बनाय कै बिगारै जौन—
जामें युक्त योगिन की लगन लगी रहै ॥
दीन जन-पालन करैया जो प्रसिद्ध एक—
जाकी शुभ सेवा किये सम्पति सगी रहै ।
सोई परब्रह्म-लीन सेवक 'सुरेन्द्र' पूज्य—
श्रीयुत जयेन्द्र-ज्योति जग में जगी रहै ॥







# શ્રી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજ મંડલેશ્વર.

જીવન સુવાસ: સત્કાર્યો: ધર્મ અને બ્રહ્મવિદ્યા પ્રચાર.

( રતિલાલ મનસુરામ પટેલ ) यस्यकीर्तिः स जीवति



શ્રીમત્ પરમહંસ પરિવ્રાજકાચાર્ય શ્રી ૧૦૮ શ્રી સ્વામી

કુટુંબ પરિચય.

મોક્ષમાર્ગ પ્રવર્તક જીવન્મુક્ત બ્રહ્મવિદ્યાવારિધિ, બ્રહ્મવિદ્યામાર્તંડ પરમયોગેશ્વર શ્રી ૧૦૮ સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજ મહામંડલેશ્વરજી ઉત્તરમાં પહાડી પ્રદેશમાં અલમોડાથી ૪૨ માઈલદૂર વેનો નાગ પાસે ઢનોલી ગામમાં સંવત ૧૯૩૩ ના અષાડ સુદ ૯ ના રોજ પૂર્વજન્મના મહાપૂણ્ય અને તપશ્ચર્યાના યોગે પંતજાતિના બ્રાહ્મણ જેવી ઉચ્ચ જાતિમાં જન્મ્યા હતા. મહારાષ્ટ્રમાં આપંતજાતિના બ્રાહ્મણો ઉચ્ચકોટીના ગણાય છે. આ ચરિત્ર નાયકના પૂર્વજો દક્ષિણમાંથી મુસ્લીમોની રાજ્ય સત્તામાંથી છૂટી જાતિ અને ધર્મરક્ષાર્થે અહીં આવી રહ્યા હતા. સ્વામીજીના પિતાનું નામ પંડિત હરિકૃષ્ણ પન્તજી અને માતાનું નામ પાર્વતી દેવી હતું. તેમને ત્રણ પુત્રો નામે ઇશ્વરીદત્ત શર્મા, કેદારદત્ત શર્મા, મુરલીધર શર્મા અને એક કૌશલ્યા દેવી નામે પૂત્રી હતી. આ આખુએ કુટુંબ પવિત્ર અને ધર્મના સંસ્કારવાળુ હતુ. પિતાએ પોતાના મોટા પુત્ર ઈશ્વરીદત્ત શર્માનો ૧૦ વર્ષની ઉમરે બ્રાહ્મણ જાતિને ઉચીત યજ્ઞોપવિત-ઉપનયન સંસ્કાર ભારે ઉત્સાહ અને ધામધુમથી કર્યો હતો. ઇશ્વરીદત્ત શર્મા શ્રી માતૃદેવોભવ, પિતૃદેવોભવ, આચાર્યદેવોભવ. અતિથી દેવોભવ એ વેદની-શ્રુતિની આજ્ઞાનુસાર માતા પિતા અને આચાર્યાદિની આજ્ઞાનું યથાર્થ પાલન કરનાર હતા. બાળ પણુથી જ તેમનું મન આ માયાવી અસાર સંસાર પ્રત્યે નહિ હોવાથી તેમની ચિત્તવૃત્તિ વીરાગી જેવી હતી. અને તેથી પરણવા લાયક મોટી ઉમરના થતા માતા પિતાએ વંશ વૃદ્ધિ સારૂ વિવાહ કરીને લગ્ન કરવાનો વિચાર જણાવ્યો ત્યારે લગ્ન કરી ગૃહસ્થાશ્રમી બનવાને ના પાડી હતી.

પ્રાથમીક શિક્ષા—સ્વામીજીએ. ( ઈશ્વરીદત્તશર્માએ ) થોડા જ સમયમાં મીડલ સ્કુલમાં હિન્દી ભાષાનું સામાન્ય જ્ઞાન મેળવી લેવાથી તેમના પિતા ઘણા જ પ્રસન્ન થયા હતા. અને તેથી પાઠશાળામાં સંસ્કૃત ભાષાનું જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરે એવી તેમના પિતાની ઈચ્છાથી એવામાં અકસ્માત જ તેઓશ્રીના ઘરના બારણે કાશીથી એક બ્રહ્માનંદ સરસ્વતી નામના મહાત્મા આવી ચડ્યા. સ્વામીજીએ ભોજન કરેલુ હોવાથી માતા પિતાને સદર બ્રહ્માનંદજીને તેમના મુકામે ભોજન કરાવીને પછી તેમને ભોજન કરવા વિનંતિ કરી. તે પ્રમાણે માતા પિતાએ આવેલા મહાત્માને ભોજન કરાવીને પછી ભોજન કર્યું. મહાત્માએ સ્વામીજીના માતા પિતાને કહ્યું કે તમારો પુત્ર મોટો ભાગ્યશાળી લાગે છે. તેને ભણાવજો. તેથી પિતાએ પોતાના મોટા પૂત્ર ઈશ્વરીદત્ત શર્માને સંસ્કૃત શીખવવાને મહા-

ત્માને વિનંતિ કરી. આથી મહાત્માએ કેટલોક સમય ત્યાં રહીને પ્રસન્નતા પૂર્વક સંસ્કૃત ભાષાનું સામાન્ય જ્ઞાન આપવા સાથે બે એક સામાન્ય ગ્રંથ વંચાવ્યા હતા. થોડા વખત પછી મહાત્મા શ્રી એ કાશીમાં વિદ્યાભ્યાસ કરવા સારૂ મોકલવાને આગ્રહ કર્યો અને પોતે કાશી ગયા. અને ઈશ્વરીદત્ત શર્મા પણ થોડાજ સમયમાં વધુ વિદ્યાભ્યાસ સારૂ કાશી જઈ પહોંચ્યા.

**કાશીમાં અધ્યયન અને અધ્યાપન**—સ્વામી શ્રી જયેન્દ્રપુરીજીને કાશી માં કોઈની પણ સાથે ઓળખાણુ કે સંબંધ નહિ હોવાથી ઇચ્છાપુરીની ધર્મશાળાના નામથી ઓળખાતી પ્રસિદ્ધ ધર્મશાળામાં તેઓ શ્રીએ પ્રથમ પગ મૂકયો. શરૂઆતમાં થોડા દિવસ વિદ્યાભ્યાસના સમયમાં ખાવા પીવાની વ્યવસ્થા નહિ હોવાથી જેમ તેમ જ ચલાવી લેવુ પડતુ હતુ. ભૂખ્યા પણ રહેવુ પડતુ અને વિદ્યાભ્યાસના પુસ્તકો પણ માગી લાવીને ભણુવુ પડતુ હતુ. આ વિકટ પરિસ્થિતિમાં કેટલાક દિવસો કાઢયા પછી થોડા દિવસ બાદ પરમ સિદ્ધ બાબા અપારનાથ મઠમાં શ્રી રામાનંદજી નામના એક સંન્યાસીએ રોજની ચાર રોટલી જેટલા ભોજનની વ્યવસ્થા કરી આપી હતી બાકીની પોતાને કરી લેવી પડતી હતી. આથી સ્વામીજી લલીતાઘાટ રાજરાજેશ્વરી આવીને રહ્યા. અને સન્યાસી સંસ્કૃત પાઠશાળામાં સંસ્કૃત ભાષાના ગ્રંથોનું અધ્યયન શરૂ કર્યું હતુ. અને પછી તો સ્વામીજીએ કાશીમાં વિદ્વાન્ પંડિતો પાસેથી સંસ્કૃત ભાષાના કઠણુ ગ્રન્થોનું અધ્યયન પણ શરૂ કર્યું. તેઓની સમજ શક્તિ ઘણી જ તીવ્ર હતી. પૂર્વ જન્મના સંસ્કાર પણ હતા. અને તેથી કહે છે કે તેઓ શ્રી જે કોઈ ગ્રન્થ એક જ વાર વાંચી જતા તે ગ્રન્થ તેઓ શ્રી ને બરાબર સમજઈ જતો હતો. તેઓ શ્રીએ પંડિત શંકરદત્તજી પાસે અધ્યયન કરવા ઉપરાંત કાશીના ધુરંધર પંડિતો જયદેવ મિશ્ર પાસે વ્યાકરણ બેચનઝા પાસે ન્યાય, અચ્યુત શાસ્ત્રીજી પાસે થી વેદાન્ત શાસ્ત્ર અને દેવપ્રસાદજી પાસેથી સાંખ્ય યોગ ન્યાય સાહિત્યાદિનું થોડા જ વર્ષોમાં અધ્યયન કરી લીધુ હતુ. સ્વામીજીની વિદ્વત્તાની જાણુ કાશીના પંડિતોમાં પણ થવા પામી ત્યાર બાદ સ્વામીજી પાસેથી કેટલાયે સાધુ સન્યાસી, વૈરાગી, ઉદાસી, નિર્મલી લગભગ તમામ સંપ્રદાય નાઓ એ અધ્યયન કર્યું હતું. આથી તેઓ શ્રીની એક સમર્થ વિદ્વત વિરાગી સન્યાસી તરીકેની ખ્યાતી કાશી નગરીના પ્રદેશના તમામ ભાગોમાં થવા પામી હતી.

**ગોવિંદમઠની ગાદી માટે પસંદગી**—કાશીમાં આવેલી સુપ્રસિદ્ધ ગોવિંદ મઠની ગાદીના અધિષ્ઠાતા કૈલાસવાસી બ્રહ્મનિષ્ઠ બ્રહ્મવિદ્યા પ્રવર્તક શ્રી ૧૦૮

સ્વામી ગોવિન્દાનન્દજી મહારાજ મંડલેશ્વર શ્રીની વૃદ્ધાવસ્થાને લઇને ઉક્ત ગાદી ઉપર એક લાયક ઉત્તરાધિકારી તરીકે એક વિદ્વત્ બ્રહ્મનિષ્ઠ સન્યાસીને બેસાડવાની જરૂરીઆત ઉભી થઈ. આ સમયે કેટલાક વિદ્વાનો અને ખાસ કરીને પ્રયાગરાજના નિર્વાણિ અખાડાના પ્રધાન મહન્ત બાલકપુરીજી એ ઉચ્ચ વર્ણમાં જન્મેલા પૂજ્ય શ્રી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજને ગોવિંદમઠની ગાદી ઉપર બેસાડવાનો વિચાર કરીને તે સંબંધી પ્રચાર શરૂ કર્યો; પરંતુ આ બાબતની ખબર જીવન્મુક્ત દશાનું પાલન કરવાની દૃઢ ઇચ્છા વાળા અને પ્રસિદ્ધિમાં નહિ આવવાની ઇચ્છાવાળા સ્વામીજી હોવાથી તેઓ ત્યાંથી દૂર ગંગા કીનારે એકાંત સ્થળે જતા રહ્યા. અને ત્યાં ભજન કીર્તન કરવા સાથે સ્વાધ્યાયમાં સમય ગાળવા લાગ્યા. યોગની ક્રિયા સાધનાદિ પણ કરતા હતા. એકવીસ દિવસના અપવાસ પણ કરેલા. અને તેથી તપશ્ચર્યાને લીધે તેઓશ્રીના શરીરને ભારે અસર થઇ હતી. આ સમય દરમ્યાન કાશીમાં સંવત્ ૧૯૮૦ ના જેઠ માસમાં ગોવિંદ મઠની ગાદીના શ્રી ૧૦૮ સ્વામી ગોવિંદાનંદજી મહારાજ મંડલેશ્વરનો કૈલાસવાસ લલીતા ઘાટ ઉપર થયો. અન્ત્યેષ્ટી ક્રિયા, ષોડષી, ભંડારો વિગેરે ક્રિયાઓ યોગ્ય રીતે કરવામાં આવી. આ વખતે તેમના શિષ્યો પૈકી એક શિષ્ય શ્રી સ્વરૂપાનંદજી હાજર હતા. પરંતુ તેઓને ગાદીએ ના બેસાડ્યા. પ્રયાગ-રાજના નિર્વાણિ અખાડાના પ્રધાન મહન્ત બાલક પુરીજીની ઇચ્છા બ્રાહ્મણ જેવી ઉચ્ચ જાતિમાં જન્મેલા ને ગાદી ઉપર બેસાડવાની હોવાથી ષોડષી પુરી થઈ જવા છતા કોઇને ગાદી ઉપર ના બેસાડતાં ષોડષી પછીથી અસાડ સુદ ૧૫ ગુરૂ પૂર્ણિમાના રોજ પૂજ્ય સ્વામી શ્રી જયેન્દ્રપુરીજીને શોધી કાઢીને તેઓની ઇચ્છા વિરૂદ્ધ તેમને સમજાવીને લાવીને ગાદી ઉપર બેસાડવામાં આવ્યા: સ્વામીજીએ ઘણી વિચારણા કર્યા બાદ એક ઉચ્ચ કોટીની સુપ્રસિદ્ધ ગોવિંદ મઠની ગાદી ઉપર આવવાથી તે સંસ્થાના કાર્યો લોકકલ્યાણાર્થે સનાતન ધર્મ-મર્યાદાનુસાર શાસ્ત્રીય રીતે નિષ્કામ ભાવથી કરવા કરાવવામાં પોતાની જીવન-મુક્ત દશાની સ્થીતિને કાંઈ બાધા નહિ આવે એવો નિર્ણય કરી લીધો હતો; અને જગન્નિયંતા પરમાત્માને જે અત્યંત પ્રિય છે એવા સનાતન ધર્મના પ્રચાર અને રક્ષાના તેમજ બ્રહ્મ વિદ્યાના ઉપદેશના પવિત્રકાર્યના પરમ ઉચ્ચ ધ્યેયનો લોક કલ્યાણાર્થે સ્વીકાર કરતાં ઉચ્ચ વર્ણ અને ઉચ્ચ આશ્રમના ધર્મોનું પાલન થશે એવા શુભ ઉદ્દેશથી ગોવિંદ મઠની શ્રી ૧૦૮ સ્વામી ગોવિન્દાનંદજી મહારાજ મંડલેશ્વરની ગાદી ઉપર ઉત્તરાધિકારી

તરીકે બ્રહ્મનિષ્ઠ શ્રી ૧૦૮ સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજ મહામંડલેશ્વર બીરાજયા હતા.

મંડલેશ્વરોમાં સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજીનું સ્થાન અને ગૌરવ—શ્રી ૧૦૮ સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજ મહામંડલેશ્વર ગાદી ઉપર આવતાની સાથે થોડા જ સમયમાં તેઓશ્રીની વિદ્વત્તા, નિર્માનિતા, રાગ દ્વેષ રહિતતા, સદાચાર, આનંદીપણુ કર્ત્તવ્યપરાયણુતા અને એક બ્રહ્મનિષ્ઠ મહાત્મા યોગીને ઉચીત મહાન્ ત્યાગને લેઇને વિદ્વાનો, સંતો, મહંતો અને મંડલેશ્વરોની અંદર તેમના માન પ્રતિષ્ઠાદી તેઓશ્રીનાપ્રભાવને લેઇને દિવસે દિવસે વધવા પામ્યા. વળી તેઓમાં સર્વના સુખમાં સુખી અને દુખમાં દુ:ખી થવાનો સર્વાત્મભાવનો વિશેષ ગુણ હોવાથી મહાન્ પુરૂષ તરીકે ગણુના થવા લાગી; અને આકાશમાં ચમકતા એક તેજસ્વી સૂર્યની પેઠે ધાર્મીક સમાજમાં ચમકવા લાગ્યા. નિર્વાણિ અખા-ડાના આચાર્ય શ્રી ૧૦૮ સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજ મહામંડલેશ્વરની નિરંજની અખાડાના આચાર્ય સ્વામી શ્રી નરસિંહગિરિજી, હરિદ્વાર નિવાસી સ્વામી શ્રીકૃષ્ણાનંદજી તેમજ નિર્વાણિ અખાડાના આચાર્ય સ્વામી શ્રી વિદ્યા-નંદજી મહારાજ તથા સ્વામી શ્રી મહેશ્વરાનંદજી તેમ જ જુના અખાડાના આચાર્ય સ્વામી શ્રી પરમાનંદજી તથા સ્વામી શ્રી પ્રેમપુરીજી વિગેરે મંડલેશ્વરો થયા છે તેમાં સંમતિ હતી. મંડલેશ્વર સ્વામી શ્રી ભાગવતાનંદજી, સ્વામી પરમાનંદજી, સ્વામી વિદ્યાનંદજી, હરિદ્વાર નિવાસી શ્રી કૃષ્ણાનંદજી વિગેરે મંડલેશ્વરો ગોવિંદમઠની ગાદીના આચાર્યોના શિષ્ય અને ઉક્ત ગાદીના આચા-ર્યોથી સંસ્કાર પામેલા છે. અને આચાર્ય શ્રી પાસે અભ્યાસ પણ કરેલો છે. નાશિક કૃષ્ણુતીર્થ તપોવનવાળા બ્રહ્મનિષ્ઠ શ્રી નર્મદેશ્વરીજી પણ પોતાને શ્રી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજની શિષ્યા કહેવડાવે છે. આ પ્રમાણે સ્વામીજીની સાધુ મહાત્મા મંડલેશ્વરો અને વિદ્વાનોમાં માન અને પ્રતિષ્ઠા જોતાં મંડલેશ્વરોમાં શ્રી ૧૦૮ સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજ મહામંડલેશ્વરનું સ્થાન અને ગૌરવ કેટલુ ઉચ્ચ હતુ એ કહેવાની ભાગ્યેજ જરૂર રહે છે.

## કાશીમાં ગોવિંદમઠની સંસ્થાઓ.

(૧) કાશીમાં સન્યાસિ સંસ્કૃત કૉલેજ—કાશીની ગોવિંદમઠની ઉપર આવ્યા પછીથી શ્રી ૧૦૮ સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજી મંડલેશ્વર શ્રીના ગુરૂ સ્વામી શ્રી ગોવિન્દાનંદજી મહારાજે સન્યાસિ મહ

હ્રાસ થતો જોઇને સન્યાસી સંસ્કૃત પાઠશાળા સ્થાપી હતી; તેને સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજીએ પ્રસિદ્ધ બાબા અપારનાથ મઠમાં તા૦ ૨૧ મી એપ્રીલ સને ૧૯૦૬ ના રોજ સન્યાસી સંસ્કૃત પાઠશાળાને સન્યાસી સંસ્કૃત કોલેજના રૂપમાં સ્થાપન કરી. આ કોલેજ માટે સંતો મહાત્માઓ મંડલેશ્વરો અને ધર્મનિષ્ઠ ધનવાનો પાસેથી તેના નિભાવ સારૂ રૂ. ૧૪૬૦૦) જેટલુ નાનુ સરખુ સ્થાયી ફંડ આજે થવા પામ્યુ છે. આ કોલેજ અંગે એક છાત્રાલય શ્રી સિદ્ધ બાબા અપારનાથજીના ટેકરા લક્ષ્મીકુંડ ઉપર છે. અને બીજુ છાત્રાલય ઈચ્છાપુરી ધર્મશાળામાં છે. આ કોલેજમાં સન્યાસી, ઉદાસી, વૈરાગી, નિર્મળ સાધુ, બ્રાહ્મણ વિદ્યાર્થીઓ મળી આશરે ૨૫૦ વિદ્યાર્થીઓ અભ્યાસ કરે છે. તેમાં સારા સારા પંડિતો અને વિદ્વાનો અધ્યાપક તરીકે વેદ, વેદાન્ત, ન્યાય, વ્યાકરણ, સાહિત્ય, જ્યોતિષ, આયુર્વેદ, ધર્મશાસ્ત્રાદિની શિક્ષા આપે છે. આ સન્યાસી સંસ્કૃત કોલેજ જેના સંસ્થાપક મંડલેશ્વર સ્વામી ગોવિંદાનંદજી મહારાજ હતા અને મંડલેશ્વર શ્રી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજથી સંરક્ષાયલી હતી. તેના વર્તમાન સંરક્ષક શ્રી ૧૦૮ સ્વામી કૃષ્ણાનંદજી મંડલેશ્વર મહારાજ છે. આ કોલેજનું સંચાલન મંત્રી તરીકે સ્વામી ધર્માનંદજી મંડલેશ્વર શ્રી જયેન્દ્રપુરીજીના વખતથી તેઓની તેમજ હાલમાં મંડલેશ્વર શ્રી કૃષ્ણાનંદજી મહારાજની પ્રેરણાનુસાર કરી રહ્યા છે. આ કોલેજના સર્વાધ્યક્ષ પ્રધાન પ્રિન્સિપાલ ન્યાય અને વેદાંતના પંડિત હરિહર કૃપાલુજી છે. આ કૉલેજમાં મંડલેશ્વર જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજના પરમ શિષ્ય અને સ્વામી કૃષ્ણાનંદજી મહારાજના આજ્ઞાનુરાગી શેઠ મંગળદાસ હરગોવનદાસ તથા તેમના ધર્મપત્નિ શ્રી ચંદ્રિકા બ્હેને કોલેજના ઉત્તર ભાગમાં ઉપર ૬૩ મો અને પૂર્વ ભાગે ૪૩ મો અને મધ્યમાં એક રૂપ બંધાવી આપી છે. જેના છ હજાર ઉપરાંત રૂપીયા ખરચ્યા છે. આ ઉપરાંત વિદ્યાર્થીઓના ભોજન માટે ૫૧ તીથી નોંધાવી આશરે દસ હજાર રૂપીયાનું વધુ દાન કરી સંગીન મદદ કરી છે.

(૩) શ્રી વિશ્વનાથ પુસ્તકાલય—સન્યાસિ સંસ્કૃત કોલેજના અંગે એક શ્રી વિશ્વનાથ પુસ્તકાલય તથા વાંચનાલયનું મકાન રૂ. ૫૦૦) આપીને પાટડી સ્ટેઇટના શ્રીમાન્ નટવર સિંહજી નારણસિંહજી તથા તેના ઉપરના રૂમો બીકાનેર નિવાસી પંચ મંદિરના અધિષ્ઠાતા સ્વામીનારાયણ ભારતીજી તથા શ્રીશંકર ભારતીજી તરફથી રૂ. ૧૦૦૦) આપી બંધાવી આપેલું છે. વધું રૂ. ૪૦૦) માટે વચન આપ્યું છે. આ પુસ્તકાલયના મકાનની વૈદિક વિધિ કરાયા પછીથી

આ પુસ્તકાલયની તા૦ ૨૪-૬-૪૧ ના રોજ મંડલેશ્વર સ્વામી શ્રી જયેન્દ્રપુરીજી ના હસ્તે ઉદ્ઘાટન ક્રિયા યોગ્ય વિધિથી કરવામાં આવી હતી.

(૨) સંન્યાસિ સંસ્કૃત કોલેજની સાથે સંબંધ રાખનાર એક શાખા ચંપારણ્ય જીલ્લામાં બકુલ હર મઠના અધિષ્ઠાતા શ્રીમાન્ મહન્ત હરિહરાનંદ જી મહારાજ શ્રી એ હરિહર કોલેજના નામથી ખોલી છે. જેનો વિદ્યાર્થીઓ સારો લાભ લે છે.

(૪) ૐ નમઃ શિવાય બેંક—મંડલેશ્વર સ્વામી શ્રી જયેન્દ્રપુરીજી ની હયાતીમાં જ ૐ નમઃ શિવાય બેંક નામની એક દેશ ભરમાં પ્રસિદ્ધ મંત્રોની બેંક સ્વામીજીના આશ્રમના એક ઉત્સાહી અને નિરભિમાની પ્રધાન કાર્યકર્તા બ્રહ્મચારી શ્રી ધર્મદત્તજી એ ખોલેલી જેના મંડલેશ્વર સ્વામીજી સંરક્ષક હતા સ્વામીજીના પ્રભાવ અને લાગવગને લીધે દેશ ભરમાં આશરે ત્રણ સો જેટલી શાખાઓ સ્થપાઈ હતી. અને તે દ્વારા ૐ નમઃ શિવાય, ૐ નમો ભગવતે વાસુદેવાય અને શ્રી રામનામના ૧૨૧ કરોડ જેટલી મોટી સંખ્યામાં જપો ભક્તો અને સાધુઓ મહાત્માઓ તરફથી લખઈ આવ્યા હતા. કાશીમાં મંત્રોનું પૂજન તથા પરિક્રમા તથા મંત્ર લેખનો સપ્તાહ મનાવવામાં અવ્યો હતો. અને તે મંત્રો પૈકી મોટા ભાગનો ઉપયોગ કાશીમાં વિશ્વનાથ આશ્રમમાં આશરે પચાસ હજારના ખરચે દ્વાદશ જ્યોતિર્લિંગ મહાદેવની સ્થાપના સંવત ૧૯૮૭ ના વઈશાખ સુદ ૬ ને રવિવારે મંડલેશ્વર સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજની અધ્યક્ષતામાં વૈદીકસમ્રાટ્ પંડીત વિદ્યાધરજી ગૌડ દ્વારા કરાવવામાં આવી હતી. આ સમારંભ પ્રસંગે અભીષેકાત્મક મહારૂદ્ર યજ્ઞ અને લઘુરૂદ્રયજ્ઞ પણ કરા- વવામાં આવ્યા હતા અને સાધુ, મહાત્મા, વિદ્વાનો, મંડલેશ્વરો અને સ્વામી વિદ્યાનન્દજી મહારાજ મંડલેશ્વર વિગેરે એ પધારી શોભામાં વૃદ્ધિ કરી હતી.

(૫) વાક્પ્રવર્ધિની સભા—આ સભા પ્રત્યેક માસની અમાવસ્યાએ સ્વામી શ્રી કલ્યાણાનંદજી વિગેરેના સભાપતિત્વમાં થાય છે. સંસ્કૃત તથા હિન્દીમાં શાસ્ત્રાર્થમાં જીતનારને ઇનામ વિગેરે આપવામાં આવે છે. જેના મંત્રી દયાનંદજી છે.

આ ઉપરાંત મહારાજ શ્રીની કાશીમાં સંસ્થાઓ છે. શ્રી કાશી વિશ્વ- નાથ ઔષધાલય ચાલે છે. અપારનાથમઠ ગોવિંદમઠનું કાર્ય સ્વામી બાલાનંદજી, લલીતાઘાટ ઉપર આવેલા રાજરાજેશ્વરી મંદિરનું કાર્ય સ્વામી સુખા- [illegible] બનારસ કેન્ટ. નંદજી સંભાળે છે. અને કાશીવિશ્વનાથ આશ્રમ [illegible]

કમ્પાઉન્ડમાં સાધુ મહાત્માઓ ભજનાદિક કરે છે જેના કાર્યકર્તા સ્વામી અખંડાનંદજી છે.

**સમસ્ત દેશમાં ધર્મ પ્રચારાર્થે પર્યટન**—આદ્ય જગદ્‌ગુરૂ શંકરાચાર્ય મહારાજે સમસ્ત દેશમાં પર્યટન કરી અદ્વૈતમતનો પ્રચાર અને વેદ ધર્મ સનાતન વર્ણાશ્રમધર્મનો પુનઃ ઉદ્ધાર કર્યો હતો તે પ્રમાણે શ્રી ૧૦૮ સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજ મહામંડલેશ્વરે પણ સમસ્ત દેશમાં કુંભાદિ તેમ જ યાત્રાદિના પ્રસંગોએ પ્રયાગરાજ, કલકત્તા, કાનપુર, દેહલી, જગદીશ, મદ્રાસ, બેંગ્લોર, મ્હૈસુર, નાશિક, રામેશ્વર, વર્ધા, ખરાગના (જી-વર્ધા) ઓમકારેશ્વર, ઉજ્જૈન, અને ઇંદોર તથા ગુજરાત કાઠિયાવાડમાં અમદાવાદ, રાજકોટ, જસદણ, દ્વારિકા, બેટદ્વારીકા, જામનગર, ધર્મજ, નડીઆદ, ડાકોર, મુંબઈ, સુરત, ભરૂચ, પેટલાદ તથા વડોદરા વિગેરે સ્થળે પ્રવાસ દરમ્યાન સનાતનધર્મ અને બ્રહ્મવિદ્યાનો ઉપદેશ આપ્યો હતો. સનાતન હિન્દુધર્મીઓના પ્રયાગરાજ, હરિદ્વાર નાસિક અને ઉજ્જૈન વિગેરે સ્થળોએ કુંભના ભરાતા વિરાટ દિવ્ય અને ભવ્ય મેળાઓમાં વિના જાહેરાતે કરોડોની સંખ્યામાં સાધુ મહાત્મા અને ધર્મનિષ્ઠ હિન્દુ જનતા આવી ભાગ લે છે તેમાં કર્તવ્ય સમજીને સ્વામીજી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજ સનાતનધર્મના પ્રચારાર્થે જતા હતા. અને ત્યાં ભવ્ય મંડપ બંધાવીને મહાત્માઓ અને ધર્મપ્રિયભાઇ બ્હેનોને ગંગાસ્નાન કથા શ્રવણ ભજન કિર્તન તથા આત્મકલ્યાણનો સદ્‌ઉપદેશ અને મહાત્માઓના દર્શનનો લાભ આપતા હતા.

વળી મહારાજ શ્રીએ બદ્રીનારાયણની યાત્રા ૩૦૦ મહાત્માઓ સાથે કરી હતી. કૈલાસ માનસરોવરે અનેક સાધુ મહાત્માઓ સાથે દર્શને ગયેલા અને ઉત્તર કાશી જેવા કઠણ સ્થળે પણ ચાતુર્માસ કર્યો હતો. અને યોગ સાધના કરી હતી.

### ધર્મ પ્રચાર રક્ષા અને કર્ત્તવ્ય

સ્વામી શ્રી મહેશ્વરાનંદજી મહારાજના સંપાદક પણાથી પ્રથમ અમદાવાદથી અને પછી કાશીથી “વિશ્વનાથ” માસિક સંવત ૧૯૯૧ ના ફાગણ માસથી સનાતનધર્મ, અદ્વૈત મત તેમજ શ્રી ૧૦૮ સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજી મંડલેશ્વર મહારાજના ઉપદેશનો પ્રચાર કરવા સારૂ શરૂ કરવામાં આવ્યુ હતુ. જેના સંસ્થાપક બ્રહ્મનિષ્ઠ સ્વામી શ્રી જયેન્દ્રપુરીજી મંડલેશ્વર મહારાજ સહ સંપાદક સ્વામી કૃષ્ણાનંદજી મહારાજ હતા. તેમાં તેઓ શ્રીનો સદ્ઉપદેશ તથા

યોગ તત્વ મીમાંસાના લેખો તેમજ અન્ય વિદ્વાનો અને અન્ય મંડલેશ્વર મહાત્માઓના સનાતન વેદધર્મ અને અદ્વૈત સિદ્ધાંત પ્રતિપાદન કરતા લેખો પ્રસિદ્ધ થતા હતા. સદરહુ માસિકમાં સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજી મંડલેશ્વર મહારાજના પ્રસિદ્ધ થયેલા લેખોમાંના ઉપદેશ ઉપરથી સ્પષ્ટ સમજાય છે કે તેઓ શ્રી સનાતનધર્મ લોકો સમજે અને પાળે તેવું ઇચ્છતા હતા. સનાતનધર્મનો પ્રચાર અને રક્ષા કરવામાં તથા આત્મા પરમાત્મા સંબંધી કથામાં ઉપદેશ આપવા માટે પોતે બ્રહ્મનિષ્ઠ અને જીવન્મુક્ત હોવા છતાં પોતાની ફરજ સમજતા હતા. લોકો તરફથી મળતું દાન ભેટાદિ જે આવે તેમાંથી તેઓની સંસ્થાનો નિભાવ તથા પંડિતોનો સત્કાર કરતા હતા. તેમજ સનાતનધર્મના પ્રચાર અને રક્ષાના કાર્યોમાં પંડિત શ્રી કલ્પનાથજી તથા પંડિત પદ્મનાથજી જેવા ઉપદેશકો પંડિતોને રોકીને ખર્ચતા હતા. સનાતન ધર્મ વિરોધી બીલો અને આંદોલનો ઉપસ્થિત થતાં તેના માટે ભરાતી સભાઓનું અધ્યક્ષ સ્થાન લેતા હતા. અને તેવા કાર્યોમાં કેટલીકવાર સ્વર્ગસ્થ ધર્મવીર નગીનદાસ પુરૂષોત્તમદાસ સંઘવીને મદદ પણ કરતા હતા. સ્વામીજીને સંઘવીજી માટે ઘણું જ સારૂ માન હતુ. સંઘવીજીના ધર્મ રક્ષાના કાર્યોમાં દૃઢ વિશ્વાસ હતો. સ્વામીજી સાથેના સમાગમને લીધે સ્વામીજી જીવન્મુક્ત દશા ભોગવતાં હોવા છતાં ધર્મ રક્ષા માટેના નિષ્કામ કાર્યોમાં કર્તવ્ય બુદ્ધિ અને તત્પરતા જણાવવાથી સંઘવીજીને પણ સ્વામીજી માટે ઘણુંજ માન હતું.

સ્વામીજી અખિલ ભારત વર્ષીય વર્ણાશ્રમ સ્વરાજ્ય સંઘ સનાતન ધર્મ પ્રચાર અને રક્ષાના કાર્યો કરતા હોવાથી સંઘના કાર્યોને સાથ આપતા હતા. સંવત્ ૧૯૮૧ ના માગસર માસમાં અમદાવાદમાં સ્વામીનારાયણના મંદિરમાં વર્ણાશ્રમ સ્વરાજ્ય સંઘનું અમદાવાદના ઇતિહાસમાં જે યાદગાર સપ્તમ મહાધિવેશન ભરાયુ હતુ તેમાં બીજા સંપ્રદાયના આચાર્યો સાથે બીરાજી એક મહાન્ ઉપદેશક આચાર્યની પેઠે ત્રણેય દિવસ લગભગ બધો વખત હાજરી આપવા પધાર્યા હતા.

મહારાજ શ્રી મોતીબાગમાં બીરાજતા હતા ત્યારે તેઓ શ્રીએ વડીધારા સભાના એક મદ્રાસી સનાતની નેતા એમ. કે. આચાર્ય અમદાવાદમાં આવ્યા હતા. અમદાવાદના જાણીતા મીલ માલીકો, પંડિતો, શાસ્ત્રીએ અને હજારો ધર્મપ્રેમી ભાઈ બ્હેનોને તેમના પોતાના અધ્યક્ષપદે વિરાટ સભાઓ ભરીને અંગ્રેજીમાં ભાષણો અપાવી હિંદીમાં રહસ્ય કહેવડાવી ધર્મરક્ષા સંબંધીના

કર્ત્તવ્યના બોધનો લાભ સ્થાનિક વિદ્વાનો, શાસ્ત્રીઓ અને સનાતનધર્મ સભાના મંત્રીઓ અને પ્રમુખોની વિનંતિ અને યોજનાથી અપાવ્યો હતો. નિરાયેલી એ યાદગાર સભાઓમાં શ્રી ૧૦૮ સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજ મંડલેશ્વરે સનાતનધર્મ અને પવિત્ર મંદિરોની રક્ષા સંબંધી જે એક ધર્માચાર્ય અને મંડલેશ્વર સમ્રાટ તરીકે પોતાના લંબાણ ભાષણમાં ઘોષણા કરેલી કે "જે સનાતન વર્ણાશ્રમધર્મની રક્ષા માટે ઈશ્વર સ્વતઃ અવતાર લે છે. તે ધર્મનો નાશ કરવાની કોઈ સંત મહાત્માની શક્તિ નથી." તેને હજી અમદાવાદના શાસ્ત્રી, પંડિતો અને ધાર્મિક હિન્દુ જનતા યાદ કરે છે. અને કહે છે કે ઉપદેશક ધર્માચાર્યો એવા જ હોવા જોઈએ.

સનાતન ધર્મમર્યાદા પાલનમાં દૃઢતા અને કર્ત્તવ્ય નિષ્ઠતા.

અમદાવાદની એક સુધારક ( હિંદુ મિશન ) સંસ્થાએ સ્વામીજીના અધ્યક્ષપદે ઈનામ આપવાનો મેળાવડો કર્યો હતો. તેઓ શ્રીના હસ્તક ઈનામો વહેંચાવવામાં આવ્યા હતા. સદરહુ સંસ્થાના સંચાલકોએ સ્વામીજીએ ભેદભાવ વગર બધાની સાથે અસ્પૃશ્યોને પણ ઈનામો પોતાને હાથે આપ્યાનું જણાવતુ લખાણ વાર્ષિક રિપોર્ટમાં પ્રસિદ્ધ કર્યું તે સંબંધી ચર્ચા અમદાવાદના અઠવાડિક "ગુજરાતી પંચ" નામના પત્રમાં આવી હતી. આ ખબર સને ૧૯૩૭ માં ખંભાતવાળા યતિ મુકુન્દાશ્રમ સ્વામીને પડતાં સ્વામીજીને ખુલાસો કરવા વિનંતિ કરી હતી. સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજીએ મુકાન્દાશ્રમજીને જણાવ્યું કે તમો આ સંબધી શ્રી નગીનદાસ સંઘવીજીને અમદાવાદ લખીને જણાવો કે સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજીના વિચારો સનાતનધર્મની મર્યાદા સંબંધી દૃઢ છે તે આપ જાણો છો તેથી "ગુજરાતી પંચ" માં ખુલાસો છપાવવા યોગ્ય કરશો. આથી સંઘવીની સલાહ પ્રમાણે", ગુજરાતી પંચ" માં યતિ મુકુન્દાશ્રમે તેમની સહીથી એવી મતલબનું પ્રસિદ્ધ કર્યું કે મંડલેશ્વર શ્રી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજ સનાતન વર્ણાશ્રમધર્મની મર્યાદાને માનનાર અને પાળનાર છે. અને જો ઈનામ વહેંચાવનાર સંસ્થાએ યોજેલા પ્રસંગમાં અજાણમાં વર્ણાશ્રમ ધર્મમર્યાદા વિરુદ્ધ કંઈ કરાવ્યુ હોય તો તે સ્વામીજીની જાણ બહાર છે. આ પ્રસંગ પછીથી સ્વામીજીએ કોઈ પણ અજાણ સંસ્થાના કાર્ય માટે જવાનું બંધ કર્યું હતું. આથી સ્વામીજી સનાતન ધર્મમર્યાદાના પાલનમાં કેટલા દૃઢ વિચારના હતા તે સાબીત થાય છે.



ઉદાસીન સંપ્રદાયના એક વિદ્વાન્ મંડલેશ્વર સ્વામી શ્રી ગંગેશ્વરાનંદજી

મહારાજે આત્મમુનિ ચરિતામૃત નામનુ એક પુસ્તક પ્રસિદ્ધ કર્યું છે. જેમાં શ્રીમદ્ જગદ્ગુરૂ શ્રી શંકરાચાર્ય, ભગવાન શ્રી રામચંદ્રજી, શ્રી કૃષ્ણ અને નૃસિંહાદિ અવતારો ઉદાસીન સંપ્રદાયના હોવા સંબંધી જણાવ્યું હતું. આથી કાશીના વિદ્વાનો અને પંડિતો તેમજ સ્વામી શ્રી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજ મંડલેશ્વરને ભારે ખેદ અને આઘાત થયો હતો. અને આથી કાશીમાં ભારે ખળભળાટ થયો હતો. આ સંબંધી વિદ્વાનોની ૧૮ દિવસ સુધી સભાઓ મળી હતી અને તેમાં થએલી ચર્ચાને અંતે કાશીના ટાઉન હોલમાં કલકતાવાળા સુપ્રસિદ્ધ અનંત કૃષ્ણશાસ્ત્રીના અધ્યક્ષપદે વિદ્વાન્ પંડિતો શાસ્ત્રીઓ અને મહાત્માઓની સભાઓ ભરાઈ, તેમાં થયેલા અવતારી મહાન્ પુરૂષો અને આચાર્યો ઉદાસીન સંપ્રદાયના હોય તો તે મંડલેશ્વર શ્રી ગંગેશ્વરાનંદજી મહારાજે સાબીત કરવું એમ ષડ્દર્શન કેસરી પંડિત શ્રી પદ્મનાભ શાસ્ત્રી વિગેરે તરફથી કહેવામાં આવ્યું શ્રી સનાતન ધર્મ મર્યાદા અને ઐતિહાસીક ધાર્મિક સત્ય તાત્વિક હકીકતના રક્ષાર્થે શ્રી ૧૦૮ સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજ મંડલેશ્વરે જણાવ્યું કે શ્રી શંકરાચાર્ય, શ્રી રામકૃષ્ણ અને નૃસિંહાદિ અવતારો ઉદાસીન સંપ્રદાયમાં થયેલા હોય તો સ્વામી ગંગેશ્વરાનંદજી મહારાજ સાબીત કરે અને હું તેમાં હારૂ તો હું અખિલ ભારતીય વર્ણાશ્રમ સ્વરાજ્ય સંઘ જે સનાતન ધર્મ પ્રચાર અને રક્ષાનું કાર્ય કરે છે તે તે રૂપીયા દસ હજાર આપુ અને સન્યાસિ મટી ઉદાસીન સંપ્રદાયી બનુ. અને જો સ્વામી ગંગેશ્વરાનંદજી હારી જાય તો તેઓ સદર વર્ણાશ્રમ સ્વરાજ્ય સંઘને રૂ. દસ હજાર આપે અને સન્યાસિ બને આ ચેલેન્જનો સ્વીકાર સ્વામી ગંગેશ્વરાનંદજી મહારાજ કે તેઓના કોઈ પંડિત તરફથી સભામાં આવીને કરવામાં આવ્યો નહોતો. આ પ્રશ્નમાં મંડલેશ્વર સ્વામી શ્રી જયેન્દ્રપુરીજી સનાતન ધર્મના તત્વ-મહત્વ અને ગૌરવને ઉણપ ના આવે તેથી સખેદ ઉતર્યાં હતા. અને પોતાનું ધર્મ કર્તવ્ય બજાવ્યું હતું.

બેટ દ્વારિકાની યાત્રામાં સર્વસ્વ ત્યાગ—મંડલેશ્વર સ્વામીજી દ્વારિકાની યાત્રાર્થે આશરે ૪૦ સાધુ મહાત્માઓ સાથે ગયા હતા. દ્વારિકામાં ગોમતિ અને સમુદ્ર સ્નાનાદિ કર્યાં હતા. અને શ્રી દ્વારિકાધીશજીને રૂ. ૫૦૦) ભેટાદિ ધરી. અને ચાલીસ સાધુ મહાત્માઓ પોતાની સાથે હોવા છતાં ભવિષ્યની બેટાદિની યાત્રાર્થે ખર્ચાદિનો વિચારના કરતા કોઠારી શ્રી શંકરાનંદજીને અને બ્રહ્મચારી શ્રી ધર્મદત્તજીને બોલાવીને પંડયા સાધુ સન્યાસિ બ્રાહ્મણોને ભોજનાદિ કરાવીને દક્ષિણાદિ આપવામાં પોતાની પાસેનું તમામ ખરચાવી નાંખ્યુ

હતું. આ પ્રસંગે કહે છે કે મહારાજ શ્રીની ઇચ્છા વિરૂદ્ધ જાણબહાર એક ગીની કોઠારી શ્રી શંકરાનંદજીએ કોઈ પ્રસંગે જરૂર પડે તો ઉપયોગી થઈ પડે તેવા હેતુથી છુપાવી રાખી હતી. મહારાજ શ્રી દ્વારિકાથી કોઈ ભક્તની દાન-વૃત્તિને લેઇને તેના પૈસે નાવમાં બેસીને બેટ દ્વારિકામાં પધાર્યા. અને ભોજન વિગેરે કર્યું. બેટ દ્વારિકામાં કર આપીને દર્શન કરવાને મહારાજ શ્રી પાસે પૈસા ના હોવાથી દર્શન નહિ કરવા જવા મહારાજે નિર્ણય કર્યો. મંદિરના પુજારીઓ અને અધિકારીઓ એ દ્વારિકામાં મહારાજે ધામધુમથી સારી રીતે દર્શન કરી ભેટ દાન દક્ષિણાદિમાં ઘણો જ ખર્ચ કરેલો જાણ્યું હતું તેથી અહીં પણ મહારાજ એવો ખર્ચ કરશે એમ ધારેલું; પણ મહારાજે દ્વારિકામાં સર્વ-સ્વનો ત્યાગ કર્યો હતો-બધુ ખરચી નાંખ્યું હતું. તેની ખબર પુજારીઓને નહોતી અને તેથી મહારાજ કર અને ભેટાદિના ધરે તો દર્શન નહિ કરાવવાના વિચારના હતા. મહારાજ શ્રી પાસે તો કંઇજ હતું નહિ. મહારાજ શ્રી બેટ-દ્વારિકાં પધાર્યા હોવાની તેમના ભક્ત કચ્છ માંડવીના મહંત રેવગિરિજીને ખબર પડી એટલે મહારાજ શ્રીને કચ્છ માંડવી પધારવા નિમંત્રણ કર્યું. તેથી મહારાજ શ્રીએ વિના દર્શન કરે કચ્છ માંડવી જવાનો નિર્ણય કર્યો. આ વાતની મંદિરના પુજારીઓ અને અધિકારીઓને ખબર પડી કે ખરેખર મહા-રાજ શ્રીપાસે બીલકુલ પૈસા નથી અને મહાત્મા મંડળ સાથે વિના દર્શને અહીંથી પાછા જાય છે. તેથી પુજારીઓ અને અધિકારીઓ એ આવીને મહા-રાજ શ્રીને દર્શન માટે પધારવા વિનંતિ કરી. આથી મહારાજ શ્રીએ બીજે દિવસે નિર્માણ–દિગંબર મૂર્તિનું દર્શન કરવાને આવવાનું કહ્યું. અને તે પ્રમાણે મહારાજે મંડળી સાથે વહેલી સવારના પ્રાતઃકાળે ભગવાનની દિગંબર મૂર્તિના દર્શન કર્યા. આ સમયે પણ મહારાજ શ્રીએ મંડળીના માણસોને કહ્યું કોઇની પાસે કંઈ પણ હોય તો ના રાખતા ભગવાનને ભેટ ધરી દેવી. આથી શ્રી શંકરાનંદજી કોઠારીએ મહારાજ શ્રીની જાણ બહાર રાખેલી એક ગીની હતી તે કાઢી આપી. મહારાજ શ્રીએ પોતાની મંડળીમાં રહેલી એક ગીની પણ ભગવાનને ભેટ ધરાવી દીધી. અને મહારાજ શ્રીએ એ પ્રમાણે સર્વસ્વનો ત્યાગ કર્યો. કચ્છ માંડવીના મહંતને ત્યાં હોડીમાં બેસીને જવાના પૈસા પણ તેમની પાસે રહ્યા નહોતા. એક નાવવાળાને હોડી કરીને ભાડાના પૈસા કચ્છ માંડવી જઈ આપવાના રાખ્યા. અને કચ્છ માંડવી જઈ હોડીવાળાને પૈસા અપાવ્યા. મહંત રેવગિરિજીએ કચ્છ માંડવીમાં કાશીવિશ્વનાથ મંદિરમાં

એકમાસ સુધી મહારાજને ૪૦ મહાત્મા સાથે રાખીને લોકોને ધર્મોપદેશ અપાવ્યો હતો. મહારાજ શ્રીએ બેટ દ્વારિકામાં સર્વસ્વ ત્યાગ કર્યાનું મહંત રૈદ્ધગિરિજીએ જાણવાથી યાત્રાદિના ખર્ચ સારૂ આશરે ત્રણેક હજાર જેટલી સારી રકમ ભેટ આપીને મહારાજનો સત્કાર કર્યો હતો.

### બ્રહ્મસૂત્ર ઉપર ભાષ્યાર્થ પ્રદીપિકા

વિવિધ સંપ્રદાયના આચાર્યો બ્રહ્મસૂત્ર ઉપર ભાષ્યો રચી ગયા છે. તે પ્રમાણે સ્વામી શ્રી જયેન્દ્રપુરીજીના ગુરૂ મંડલેશ્વર 'શ્રી ગોવિંદાનંદજી ગિરિજી મહારાજે બ્રહ્મસૂત્ર ઉપર ભાષ્યાર્થ પ્રદીપિકા સહિતનો ગ્રંથ શરૂ કરેલો. તેમાં પ્રથમાધ્યાય શરૂ કરેલો અધૂરો રહ્યો હતો તે શ્રી ૧૦૮ સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજ મંડલેશ્વરે પૂર્ણ કરીને સંવત્ ૧૯૮૮ માં પ્રસિદ્ધ કરાવી લોકો ઉપર ઉપકાર કર્યો છે.

કાશીથી પ્રસિદ્ધ થતા "વિશ્વનાથ" માસિકમાં સ્વામીજીનો સદ્ ઉપદેશમાં યોગતત્વ મીમાંસાનો વિદ્વત્તા વાળો લેખ આવતો હતો. વળી ગોરખ પુરથી પ્રસિદ્ધ થતા "કલ્યાણ" ના અને ૧૯૩૪ ના શક્તિ અંકમાં ગાયત્રી મીમાંસા સંબંધી વિદ્વત્તા પૂર્ણ લેખ લખ્યો છે. જે તેઓ શ્રીનું ગાયત્રી મંત્ર સંબંધી વિશાળ જ્ઞાન-વિજ્ઞાનનું રહસ્ય બતાવે છે. આ લેખ વાંચી જવા જેવો છે. કેટલાક કહે છે કે સ્વામીજી ઉપર સરસ્વતી દેવી તેમજ અન્નપૂર્ણા દેવીની તથા યોગમાર્ગ પ્રવર્તક ભગવાન્ શંકરની પ્રસન્નતા હતી.

### અમદાવાદમાં મંડલેશ્વર જયેન્દ્રપુરીજીનું પ્રથમ આગમન

આશરે પંદર વરસ ઉપર શ્રી ૧૦૮ જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજ મંડલેશ્વર જ્યારે દ્વારિકાની યાત્રાર્થે ડાકોરથી સરસપુરવાળા એક ભગત ભાઈ મોહનલાલ સાથે ગુજરાતના પાટનગર અમદાવાદમાં પ્રેમ દરવાજા પાસે સુપ્રસિદ્ધ શ્રી સરજુદાસ મહારાજના મંદિરે ડહેલામાં પધાર્યા હતા. તે સમયે અમદાવાદમાં ઉતારાની જગો સારૂ મહારાજ શ્રી તરફથી સ્વામી રામાનંદજી રામચેતન પુરીજીને પણ અગાઉથી મોકલવામાં આવ્યા હતા. મંદિરમાં મહાત્મા શ્રી સરજુદાસજીનું અને મંડલેશ્વરજીનું મળવું થયું. વળી સરસપુરવાળા મોહનલાલ ભાઈ નામના ભગવદ્ભક્ત દ્વારા સુપ્રસિદ્ધ શેઠ શ્રી મોતીલાલ હીરાભાઈ સાથે મળવુ થયુ. તેમણે મહારાજ શ્રીનું મળવુ થતા ૪ થી ૫ દિવસ માટે ખાવા પીવાનો અને રહેવાનો પ્રબંધ કરવાનું જણાવ્યું. પરંતુ મહારાજ શ્રીની સૌમ્ય અને આનંદદાયક મૂર્તિના દર્શન અને સમાગમ સંત મહંતોની સેવા કરનાર

સ્વર્ગસ્થ શેઠ શ્રી બાલાભાઈ વ્રીજવલ્લભદાસની સાથે શેઠ શ્રી મોતીલાલ ભાઈને ત્યાં થતા બન્ને ગૃહસ્થોએ સ્વામીજીને ૧૫ દિવસ રોકાવવાને વિનંતિ કરી હતી આ સમયે મહારાજ શ્રી સાથે આશરે ૩૫ સાધુ મહાત્માઓ અને સાથે બ્રહ્મચારી શ્રી ધર્મદત્તજી પણ હતા. આ ચાતુર્માસમાં ના રોકાઈ શકાય તો બીજા ચાતુર્માસમાં પધારીને અમદાવાદની ધાર્મિક હિન્દુ જનતાને વેદાંત ઉપનિષદ્‌ની અમૃતમય કથાનો લાભ આપવાને શેઠ શ્રી મોતીલાલ હીરાભાઈ અને શેઠ શ્રી બાલાભાઈ વ્રજવલ્લભદાસે મહારાજ શ્રીને વિનંતિ કરી હતી. તેથી દ્વારિકાની યાત્રાએથી આવીને મંડલેશ્વર શ્રી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજે અમદાવાદની ધાર્મિક હિન્દુ જનતા ઉપર કૃપા કરીને ચાતુર્માસ સારૂ મહાત્મા મંડળ સાથે શેઠ શ્રી મોતીલાલ હીરાભાઈના એલીસ બ્રીજમાં આવેલા પ્રસિદ્ધ મોતીબાગ માં–બંગાલામાં પધાર્યા હતા. એમ ત્રણ ચાતુર્માસ મહારાજ શ્રીએ અમદાવાદના મોતીબાગ વાળા બંગાલામાં સન્યાસિ મંડળ સાથે પધારી કર્યા હતા. અને ધાર્મિક હિન્દુજનતાને આત્માની ઓળખ કરાવનાર ઉપનિષદ્‌ની કથાનો સરળ અને રસમય ઉપદેશ આપ્યો હતો.

### અમદાવાદમાં વેદાન્તના ઉપદેશ માટે સન્યાસઆશ્રમની સ્થાપના

અમદાવાદમાં એલીસબ્રીજના મોતીબાગમાં મંડલેશ્વર શ્રી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજની ચાતુર્માસોમાં કરાયેલી કથા ધાર્મિક જનતાને ઘણીજ પ્રિય થઈ પડી હતી. આથી મહારાજ શ્રી પ્રત્યે લોકોનો અનહદ પ્રેમ થયો હતો. તેથી મંડલેશ્વર શ્રી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજ ચાતુર્માસાદિ સમયે અમદાવાદમાં પધારીને વેદાંત–ઉપનિષદ્‌ની કથા કરે તે માટે તેઓ શ્રી પધારે ત્યારે રહેવાને અને કથા કરવાને માટે એક સ્વતંત્ર આશ્રમ જેવું કોઈ સ્થાન હોય તો સારૂ એમ સ્વ૦ શેઠ શ્રી મોતીલાલ હીરાભાઈ અને શેઠ શ્રી બાલાભાઈ વ્રીજવલ્લભદાસ તથા મહારાજ શ્રી વચ્ચે વાત થઈ તેમાં મહારાજ શ્રી એ જણાવ્યું અને આ સંબંધીની વાતચીત શેઠ શ્રી છોટાલાલ હીરાચંદ કોન્ટ્રેકટરની સાથે ઉપરના ગૃહસ્થોને થતાં શેઠ શ્રી છોટાલાલ હીરાચંદે સાબરમતી નદીના કીનારે એલીસબ્રીજ પુલ પાસે આવેલો પોતાનો રસાલાવાળા બંગલાના નામથી પ્રસિદ્ધ બંગલો વિશાળ કંપાઉન્ડની છુટી જમીન સાથે મહારાજ શ્રીને આપવાને ઇચ્છા પ્રદર્શિત કરી. અને તે સંબંધી આશરે એકાદ વરસ વિચાર કરીને શેઠ શ્રી છોટાલાલ હીરાચંદે કોન્ટ્રાક્ટર [illegible] છોટાલાલ હીરાચંદ તથા મંછાબાઈ સન્યાસઆશ્રમ તથા કાશી વિશ્વનાથ સંસ્કૃત મહાવિદ્યાલય અમદાવાદના નામથી આશરે

દોઢ લાખ રૂપીયાની કિંમતનો છુટી જમીન સાથેનો બંગલો શ્રી ૧૦૮ સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજ મંડલેશ્વરને સપ્રેમ અર્પણ કર્યો. સદ્દહું સ્થળે જ્યાં રહેવુ ભયભીત અને મુશ્કેલ ગણાતુ હતુ ત્યાં પરમ યોગેશ્વર બ્રહ્મનિષ્ઠ સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજ મંડલેશ્વરનું મહાત્મા મંડળ સાથે પધારવું થતાં ભય રહિત વસવા યોગ્ય અને પવિત્ર થઇ ગયુ. આ સ્થળે મહારાજ જયેન્દ્રપુરીજીએ સન્યાસ આશ્રમની સ્થાપના કરી. જે આજે અમદાવાદમાં જ નહિ પરંતુ દેશમાં શ્રી ૧૦૮ સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજ મંડલેશ્વર દ્વારા સંસ્થાપીત સન્યાસ આશ્રમના નામથી પ્રસિદ્ધ છે. આ સન્યાસ આશ્રમમાં વ્યવસ્થાપકના પ્રબંધથી સનાતન ધર્મની મર્યાદાનુસાર સનાતનધર્માનુયાયી ધાર્મિક હિન્દુ જનતાને પંચદશી તથા ઉપનિષદ્ જેવી વેદાંતની કથાનો તથા ગીતા મહાભારતાદિનો ઉપદેશ વિદ્વાન્ મહાત્માઓ આપતા રહે છે. આશ્રમના સંસ્થાપક શ્રી ૧૦૮ સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજ મંડલેશ્વરે ચાતુર્માસ દરમ્યાન કાશીથી અમદાવાદ પધારીને શ્રી ઇશોપનિષદ્, શ્રીકેનોપનિષદ્, શ્રી કઠોપનિષદ્, શ્રી પ્રશ્નોપનિષત્, શ્રી મુંડકોપનિષત્, શ્રી કારિકા સહિત માંડૂકયોપનિષત, શ્રી તૈત્તિરીયોપનિષત, શ્રી ઐતરેયોપનિષત્, શ્રી છાંદોગ્યોપનિષતની કથા કરવા ઉપરાંત શ્રી બ્રહદારણ્યકોપનિષત્‌ના પ્રથમ અધ્યાય જેટલી કથા ઘણીજ સરળતાથી લોકોને સમજાય તેમ કરી હતી. આ શિવાય આશ્રમમાં મંડલેશ્વર શ્રી નરસિંહગીરજી, મંડલેશ્વર શ્રી ભાગવતાનંદજી, મંડલેશ્વર શ્રી મહેશ્વરાનંદજી, મંડલેશ્વર શ્રી કૃષ્ણાનંદજી વિગેરે અનેક મંડલેશ્વરોની આત્મજ્ઞાનનો ઉપદેશ આપનારી ઉપનિષદાદિની કથાઓ થઇ છે. તેમજ સ્વામી શ્રી મુકુન્દાશ્રમજી, શ્રીસોમેશ્વરાનંદજી, શ્રી હરનામગિરિજી, શ્રી અતુલાનંદજી, શ્રી વિશુદ્ધાનંદજી, શ્રી જનાર્દનપુરીજી, તથા સ્વામી પૂર્ણાનંદજી વિગેરે મહાત્માઓની ગીતા, ઉપનિષદ્, મહાભારત, પંચદશી, ભાગવતાદિની કથા થઈ છે. શ્રી સનાતનધર્મની મહત્તા ઉપર વ્યાખ્યાનો પણ થયા છે. આ આશ્રમની વ્યવસ્થાનું કાર્ય મંડલેશ્વરજી તરફથી કોઠારી સ્વામી મોતિગિરજી કરે છે.

અમદાવાદના સન્યાસ આશ્રમમાં ચાતુર્માસ દરમ્યાન શ્રાવણમાસમાં મહાદેવજીની, ગણેશ ચતુર્થી ઉપર ગણપતિની અને નવરાત્રીમાં દુર્ગાદેવીની પાર્થીવ મૂર્તિઓ બનાવાતી હતી તેનું ષોડષોપચાર વિધીથી પૂજન આરતી થતા હતા. આ પાર્થિવ મૂર્તિઓના વિસર્જન કરવા પ્રસંગે સાબરમતી નદિમાં વહેવડાવવા સારૂ લઇ જવાને ભવ્ય સરઘસ નિશાન ડંકા સાથે નિકળતા હતા.

જેમાં મહારાજ શ્રી જયેન્દ્રપુરીજી સરઘસમાં સદ્‌ગૃહસ્થો અને મહાત્માઓ સાથે પાલખી આગળ પગે ચાલીને જતા હતા.

### શ્રી કાશી વિશ્વનાથ સંસ્કૃત મહાવિદ્યાલયની સ્થાપના.

શેઠ રણછોડલાલ છોટાલાલ હીરાચંદ સન્યાસઆશ્રમ અમદાવાદવાળી જગ્યામાં કાશીની પેઠે ગુજરાત કાઠિયાવાડાદિમાં સંસ્કૃતભાષા ભણનાર વિદ્યાર્થીઓને અમદાવાદ જેવા કેન્દ્રસ્થળે એક ઉચ્ચ કોટીનું સંસ્કૃત મહાવિદ્યાલય સાથે સ્થપાય તો સંસ્કૃત ભાષા ભણનાર વિદ્યાર્થીઓને કાશી જેટલે દૂર જઈ રહીને ભણવાની ઘણી અડચણ દૂર થાય; અને ગરીબ તથા મધ્યમ સ્થીતિના સંસ્કૃત ભાષા ભણનાર વિદ્યાર્થીઓને અમદાવાદ જેવા મધ્યસ્થ સ્થળે રહીને ભણવાનો સારો લાભ મળી શકે એવા પરોપકારી ઉચ્ચ આશયથી મંડલેશ્વર શ્રી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજે સને ૧૯૩૫ ની સાલમાં અમદાવાદમાં સાબરમતી નદીના કીનારા ઉપર સન્યાસ આશ્રમના કંપાઉન્ડમાં શ્રી કાશી વિશ્વનાથ સંસ્કૃત મહાવિદ્યાલયને પોતાને આશરે. રૂ. ૬૭૨૭) અંકે છ હજાર સાત સો સતાવીસ રૂપીયા જેટલી ચાતુર્માસ દરમ્યાન મળેલી ભેટની મોટી રકમ પોતે પ્રથમ અર્પણ કરી. અને ગુજરાત કાઠિયાવાડાદિમાં સનાતન ધર્મનું જ્ઞાન મેળવેલા સુસંસ્કારી ઉપદેશકો સનાતન ધર્મનો પ્રચાર અને ઉપદેશ કરી શકે, સારા કર્મકાંડીઓ થઈ શકે અને પોતાનો જીવન નિર્વાહ સારી રીતે કરી શકે તેમ થવાને મોટી મદદ રૂપ થાય એવા ઉચ્ચ ઉદ્દેશથી સદહું પાઠશાળાની સંસ્થાપના કરી હતી. આ મહાવિદ્યાલયની ઉદ્‌ઘાટન ક્રિયાનો મહોત્સવ તા. ૭-૮-૧૯૩૬ ના રોજ શુક્રવારે સાણંદ સ્ટેઇટના મહારાણા શ્રી જયવંતસીંહજી રણમલસીંહજીના પ્રમુખ પણા નીચે મંડલેશ્વર સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજીની હાજરીમાં કરવામાં આવ્યો હતો. જેમાં અમદાવાદના મીલમાલીકો ગૃહસ્થો, જાણીતા વિદ્વાનો અને હજારો ભાઇ બ્હેનોએ ભાગ લીધો હતો.

આ કાશી વિશ્વનાથ સંસ્કૃત મહાવિદ્યાલયને સને ૧૮૬૦ ના ૨૧ મા કાયદા મુજબ રજીસ્ટર કરાવવામાં આવ્યુ છે. અને દાખલ કરાયેલા વિદ્યાર્થીઓને રહેવાનું, જમવાનું, પહેરવાના વસ્ત્રો, ચોપડીઓ, તથા પરીક્ષા માટે ફી રેલ્વે ભાડુ વિગેરે તમામ અપાય છે. વિદ્યાર્થીઓને શીખવવાને સારૂ ન્યાય, વેદાન્ત, વ્યાકરણ અને સાહિત્યાદિના સારા વિદ્વાન્ શાસ્ત્રીઓ રાખવામાં આવે છે. અને તેથી શાસ્ત્રી તથા આચાર્યાદિની પરીક્ષા બંગાળ સંસ્કૃત એસોસીએશન (કલકત્તા) તથા બનારસ (કાશી) ગવર્નમેન્ટ સંસ્કૃત, કૉલેજની પરીક્ષા ઘણું

વિદ્યાર્થીઓ આપી આવીને પાસ થઇ ચૂક્યા છે અને થતા જાય છે. આ મહાવિદ્યાલયની સુંદર યોજના મંડલેશ્વર શ્રી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજની વિચારણા અને સંમતીથી થયેલી છે; જેમાં રૂ. ૫૦૦૦) આપનાર પેટ્રન, રૂ. ૩૦૦૦) આપનાર વાઇસ પેટ્રન, રૂ. ૧૦૦૦) આપનાર ડોનર, રૂ. ૧૦૦) આપનાર લાઇફ મેમ્બર, રૂ. ૫૦) આપનાર દશ વર્ષાન્તક સભ્ય થઈ શકે છે. અને સાદા ભોજન માટે રૂ. ૨૦૧) તથા મીષ્ટ ભોજનના રૂ. ૩૫૧) આપનાર લાઇફ મેમ્બર પણ થઇ શકે છે. છુટક સાદા ભોજનના રૂ. ૧૨) અને મીષ્ટ ભોજનના રૂપીયા ૨૦) આપનાર વિદ્યાલયને મદદ કરી શકે છે. આ વિદ્યાલયને વાર્ષિક આશરે દસેક હજાર ઉપરાંતનું ખર્ચ છે. વળી જાણીતા શ્રીમંતો તથા સદ્‌ગૃહસ્થો તરફથી મદદ મળી આશરે એક લાખ રૂપીયા જેટલું રોકડ ફંડ પણ આજે થવા પામ્યું છે. આ મહાવિદ્યાલયની વ્યવસ્થા સારૂ એક કાર્યવાહક મંડળ છે. તેના પ્રમુખ બ્રહ્મલીન શ્રી ૧૦૮ સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજ મંડલેશ્વર પછી વર્તમાન શ્રી ૧૦૮ સ્વામી કૃષ્ણાનંદજી મહારાજ મંડલેશ્વર છે. ઉપ પ્રમુખ મંત્રીઓ ખજાનચી તથા વ્યવસ્થાપક કમીટીની નીમણુંક દર વરસે થાય છે. ગુજરાત કાઠીયાવાડની સંસ્કૃત પાઠશાળાઓમાં આ કાશી વિશ્વનાથ સંસ્કૃત મહાવિદ્યાલય એ એક સારી પાઠશાળા તરીકે પ્રસિદ્ધિ પામી છે.

આ મહાવિદ્યાલયનું મકાન શ્રી નાનાલાલ મગનલાલ પતરાળાવાળાના ટ્રસ્ટીઓએ સંવત ૧૯૯૩ માં બંધાવી આપી મહાવિદ્યાલયના ટ્રસ્ટીઓને અર્પણ કર્યું છે. અને સ્વ. મોતીલાલ હીરાભાઇએ પચીસ હજાર રૂપીયાની રકમ આપી મુખ્યત્વે મદદ કરી છે. આ વિદ્યાલયનું કાર્ય શ્રી ૧૦૮ સ્વામી કૃષ્ણાનન્દજી મહારાજ મંડલેશ્વર તથા શેઠ રમણલાલ લલ્લુભાઈ તથા શેઠ ત્રીભોવનદાસ હરગોવનદાસ તથા શેઠ ભોગીલાલ બાલાભાઇ વિગેરેની દેખરેખથી ચાલે છે.

### પર્જન્ય યજ્ઞથી વર્ષા અને ચમત્કારો.

શ્રી ૧૦૮ સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજ મંડલેશ્વર યોગી પણ હતા. યોગની સિદ્ધિઓ પણ જાણતા હતા. મંડલેશ્વર થવા પહેલાં એક વાર ફરૂકાબાદમાં તેઓ શ્રીનું પધારવું થયું. જ્યાં ગંગાજીનું વ્હેણ ગામ નજીકથી દૂર જવાથી સ્થાનિક ધર્મનિષ્ટ ગૃહસ્થોએ સ્નાનાદિ પાણી સારૂ દૂર જવાની હરકત પડતી હોવાથી વ્હેણ નજીક આવે તો સારૂ એમ સ્વામીજીને જણાવ્યું હતું આથી મહારાજશ્રીએ એક દિવસ સવારના વહેલા પ્રાતઃકાળે પાંચેક મણ દુધ મંગાવ્યું અને ગંગાજીમાં અભિષેક કરાવીને તેઓશ્રીએ ગંગાજીની સ્તુતિ કરી ગંગાજી પ્રસન્ન

થયાં અને ગંગાજીનું વ્હેણુ દિવસે દિવસે ગામની નજીક આવવા લાગ્યું હતું.

× × × ×

સ્વામીજી મંડલેશ્વર થવા પહેલાં એકવાર હરિદ્વારમાં સુરતગિરિજી-વાળા બંગલે સ્વામી શ્રી ગિરિશાનન્દજી મહારાજને ત્યાં રહેતા હતા. ત્યાં શંકરજીના મંદિરના સામે એક ઝાડ સુકું થઈ ગયું હતું. તે ઝાડને સ્વામીજીએ યથા વિધિ ઉપનિષદ્‌નો પાઠાદિ કરીને પોતાની સિદ્ધિ અને તપોબળના યોગે લીલું બનાવ્યું હતું.

× × × ×

મંડલેશ્વર થયા પછી સ્વામીજી એક વાર ફરી ફરૂકાબાદમાં ચાતુર્માસ સારૂ ગયા હતા. ત્યારે ચાતુર્માસમાં વરસાદની અછત હતી. દુષ્કાળ જેવી સ્થીતિ ઉભી થઈ હતી. લોકો ભારે ચિંતામાં પડ્યા હોવાની જાણુ સ્વામીજીને થતાં સ્વામીજીએ કાશી વિશ્વનાથના મંદિરમાં હજારો ઘડા પાણીથી ભરાવી મહાદેવજીને પાણીમાં ડુબાડી અભિષેક કરાવ્યો હતો. આથી પરિણામે ઘણીજ વર્ષા થતાં લોકોમાં શાંતિ થઈ હતી. કહે છે કે મહારાજશ્રીના આ લોકો-પકારના કાર્યથી પ્રસન્ન થઇ કેટલાક ગૃહસ્થોએ હરિદ્વારમાં કેટલાક વર્ષ સાધુ સંતોને મદદ કર્તા અન્નક્ષેત્ર ચલાવ્યું હતું.

× × × ×

આશરે ૭ વર્ષ ઉપર અમદાવાદમાં મહારાજશ્રીના ચાતુર્માસ દરમ્યાન વરસાદ આવીને પછીથી બીલકુલ બંધ થઈ ગયા જેવું થયું હતું. અને વરસાદ આવવાની કોઈ આશા લાગતી નહોતી. લોકોમાં દુષ્કાળ પડવાની ભારે ચીંતા થઈ હતી. મહારાજ શ્રી સિદ્ધ સંકલ્પ મહાપુરૂષ હતા. અને ગીતામાં કહ્યા પ્રમાણે यज्ञात् भवति पर्जन्यः અર્થાત્ યજ્ઞથી વરસાદ થાય છે. એ ભગવાન્ શ્રી કૃષ્ણના ગીતાના વચનને દૃઢતાથી માનનાર હતા. તેથી તેઓશ્રીએ પરોપકારાર્થે પર્જન્ય યજ્ઞ કરાવવાનો સંકલ્પ કર્યો. આ યજ્ઞ કરાવવાની મહારાજશ્રીની ઇચ્છાની ખબર તેમના એક ભક્ત સરસપુરવાળા શેઠ શ્રી જીવણલાલ આશાભાઈ પટેલને પડતાં યોગ્ય વિધિથી હજારોના ખર્ચે પર્જન્ય યજ્ઞ કરાવવા મહારાજશ્રીને વિનંતિ કરી. આથી મહારાજશ્રીએ સ્થાનિક ઉપરાંત બહારના કાશી, વડોદરા, સિદ્ધ-પુરાદિથી સારા કર્મકાંડીઓ દ્વારા પોતાશ્રીની અધ્યક્ષતામાં સારી દક્ષિણાદિ આપીને પર્જન્યયજ્ઞ સંવત ૨૦૦૫ ના ભાદરવા માસમાં કરાવ્યો હતો. આ યજ્ઞની સફળતા ઘણીજ સારી થઈ હતી. યજ્ઞ દરમ્યાન અને પછીથી મેઘની

પ્રચંડ ગર્જનાઓ સાથે ઘણીજ સારી વૃષ્ટિ થઈ હતી. લોકોની દુકાળ પડવાની ચીંતા દૂર થઈ આનંદ થયો હતો. મહારાજ શ્રી પ્રત્યે અમદાવાદની હિન્દુ જનતાનો ભક્તિભાવ અને શ્રદ્ધા તો હતી જ પણ આથી વધુ વધારે થઈ અને તેઓ શ્રી સત્ય સંકલ્પ પરોપકારી મહાત્મા મનાવા લાગ્યા.

### ચાતુર્માસાર્થે આગમન અને કૈલાસવાસ.

શ્રી ૧૦૮ સ્વામી શ્રી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજ મંડલેશ્વરં સંવત ૧૯૯૭-ની સાલમાં અમદાવાદમાં જાણીતા શ્રીયુત છબીલરાય બળવંતરાય ભટ્ટ ઈનામદારના આગ્રહથી અમદાવાદ ચાતુર્માસ સારૂ પધાર્યા હતા. અને તેઓશ્રી બૃહદારણ્યકોપનિષદ્‌ની કથાનો ઉપદેશ કરતા હતા. એકાદ માસ પછીથી તેઓ શ્રીને હમેશાં સ્વભાવીક રીતે વખતો વખત શરદી થતી હતી. તે પ્રમાણે શરદી તથા માથામાં દરદ શ્રાવણ માસમાં થવાને લીધે તેઓ માંદગી ભોગવતા હતા. તબીયતમાં સુધારો થાય તેમ લાગતું નહોતું. મહારાજ શ્રી જીવન્મુક્ત દશા ભોગવતા હતા અને છેવટની માંદગી દરમ્યાન બ્રહ્મલીન થતા સુધી ખાતા પાણી પીતા અને દવા લેતા આચમનાદિ કરતા જે તે ક્રિયામાં લીન થઈ જતા અને તે દરમ્યાન મ્હોડેથી ૐ ૐ નો ધ્વની નીકળતો હતો. શ્રી ૐ નમઃ શિવાય. અને રામ નામનો મંત્ર જે તેઓ શ્રીને જીવનમાં ઉચ્ચ સ્થિતિએ લાવનાર હતો તેનો તેઓ શ્રી સતત જાપ કરતા હતા. તેઓ શ્રીની આખર સ્થીતિ સમયે વૈદ્યકીય અને ડૉકટરી ઉપચાર મહારાજ શ્રીના ભક્તો તથા જાણીતા ડૉકટરો અને વૈદ્યો તરફથી થઈ શકે તેટલા તનતોડ મહેનતથી કરી જોવામાં આવ્યા પરંતુ શરીર પ્રકૃતિમાં બીલકુલ સુધારો થવા પામ્યો નહિ. મહારાજ શ્રીની આખરની માંદગીના સમાચારો અમદાવાદમાં જ નહિ પરંતુ ગુજરાત કાઠીયાવાડ મુંબઈ સુરત અને કાશી હરિદ્વાર સુધી દેશભરમાં વાયુવેગે તારથી પહોંચી ગયા. અને સ્વામીજીની તબીયતના ખબર પૂછતા સંખ્યાબંધ કાગળો અને તારો સન્યાસ આશ્રમના વર્તમાન શ્રી ૧૦૮ સ્વામી કૃષ્ણાનંદજી મહારાજ મંડલેશ્વર ઉપર આવવા લાગ્યા. અને તેના કાગળો અને તારોથી જવાબ અપાતા રહ્યા. સાણંદના મહારાણી સાહેબા હીરાબા તો મહારાજ શ્રીની સેવામાં ગમે તેટલા પૈસા દવા વિગેરેમાં ખર્ચવા તૈયાર હતાં જે ખબર પડતાં તુરત જ આવી પહોંચ્યાં હતાં. હજારો સ્ત્રી પુરૂષો મહારાજ શ્રીની તબીયતના સમાચાર પુછવા આવતા હતા. અને અંતિમ દર્શન કરવાને ભાગ્યશાળી થતા હતા. મહારાજ શ્રી જીવન્મુક્ત દશા ભોગવતા શંકર શંભોનું નામ સ્મરણ કરતા અને ૐ નમઃ શિવાય અને રામનામના મંત્રનો જાપ

જપતા જપતા સંવત ૧૯૯૭ના શ્રાવણ વદ ૧૦ ને રવિવાર તા૦ ૧૭-૮-૪૧ ના દિવસે આશરે ૬૪ વર્ષની ઉમરે લાખો સાધુ મહાત્મા સન્યાસીઓ અને ગૃહસ્થી ભક્તોને શોક સાગરમાં મુકીને આ અસાર સંસારનો સદાને માટે ત્યાગ કરીને શાશ્વત શાંતિને સારૂ બ્રહ્મલીન થયા. મહારાજ શ્રી બ્રહ્મલીન થતાં તેઓશ્રીને મેડેથી નીચે લાવીને કુશાસન ઉપર સમાધિસ્થ સ્થીતિમાં જેમના તેમ બેસાડવામાં આવ્યા હતા. આ શોકગ્રસ્ત સમાચાર વાયુ વેગે શહેરમાં તેમ જ સમસ્ત દેશમાં કાશી હરિદ્વાર સુધી પહોંચી ગયા. મહારાજ શ્રીની અન્ત્યેષ્ટિ ક્રિયા (પ્રવાહ) મોક્ષધામ કાશીજીમાં થાય એવી સર્વની ઇચ્છા થઈ. સાણંદનાં મહારાણી સાહેબા એરોપ્લેન દ્વારા મંડલેશ્વર શ્રીજયેન્દ્રપુરીજીના મૃતદેહને ગમે તેટલા ખર્ચે પણ કાશી લેઇ જવામાં આવે તો હજારો રૂપીયા ખર્ચવા તૈયાર થયાં હતાં. અને તેથી કાશીમાં તેઓશ્રીના મૃતદેહની રાહ જોવાતી હતી. મહારાજ શ્રીના મૃતદેહની સ્મશાન યાત્રા પાલખીના રૂપમાં શ્રી છોટાલાલ ભગત વિગેરે અનેક ભકતોની ભજન મંડળીઓ સાથે આગળ અને પાછળ પોલીસના બંદોબસ્ત સાથે ભવ્ય રીતે નિકળી હતી. રસ્તામાં પૈસા એવા ગુલાબજળ અને પુષ્પમાળાઓના ઢગલા થવાથી મહારાજ શ્રીનાં દર્શન માટે વખતો વખત હારો ખસેડવા પડતા હતા. એલીસબ્રીજથી ભદ્ર સુધીના આખાયે રસ્તે બન્ને બાજુ લોકોની સખ્ત ભીડ થવા પામી હતી. સ્વામીજીનું સરઘસ એલીસબ્રીજના આશ્રમેથી વિકટોરીયા ગાર્ડન, ભદ્રકાળી, લાલ દરવાજા, કાંપના હનુમાન થઈ અમદાવાદના સ્ટેશન ઊપર લાવવામાં આવ્યું. સ્મશાન યાત્રામાં જાણીતા નાગરીકો, મીલમાલીકો, વકીલો, ડાકટરો અગ્રેસર શ્રીમાનો, સાધુ, સન્યાસી મહાત્માઓ મંડલેશ્વર શ્રી વિદ્યાનંદજી મહારાજ તથા લાખોની સંખ્યામાં લોકો વરસાદ વરસતો હોવા છતાં મહારાજ શ્રીના અંતિમ દર્શને પધાર્યાં હતા. અમદાવાદની સમસ્ત હિન્દુ જનતાને જ નહિ પરંતુ અન્ય જાતિઓને પણ સ્વામીજીના બ્રહ્મલીન થવા માટે ભારે લાગણી થઈ હતી. સ્વામીજીના મૃતદેહને એરોપ્લેનથી કાશી લઈ જવા માટે સાણંદનાં મહારાણી સાહેબા શ્રી હીરાબાની ઘણીજ ઇચ્છા હતી. ઘણા પ્રયત્નો કરી જોવામાં આવ્યા પણ તેમાં સફળતા ન મળી. આથી અમદાવાદની ધાર્મિક જનતા અને મોક્ષપુરી કાશીમાંની મહાત્માઓ તેમજ ધાર્મિક જનતાને ભારે દીલગીરી થઈ. પરંતુ ભરૂચની ધાર્મિક હિન્દુ જનતાને બ્રહ્મનિષ્ઠ મહાત્મા શ્રી જયેન્દ્રપુરીજીના અંતિમ દર્શન કરાવવાની ઇશ્વરની પ્રબળ ઇચ્છા હશે તેથી સ્વામીજીના મૃતદેહને કાશીનાં પવિત્ર ગંગાજીમાં પધરાવવાનું

ન બનતાં ભરૂચમાં શ્રી નર્મદાજી જેવા પવિત્ર ગંગાજીમાં પધરાવવાને સ્વામીજીની ભક્ત મંડળીનો નિશ્ચય થયો. સ્વામીજીના મૃતદેહને અમદાવાદથી ભરૂચ લઈ જવાની યોગ્ય વ્યવસ્થા કરવામાં આવ્યાની વાત ભરૂચમાં ફેલાઈ ગઈ. સ્વામીજીના મૃત દેહને બરફની પેટીમાં રાખીને અમદાવાદથી મોટરોમાં નડીઆદ ગયા. અને ત્યાંથી સ્વામી શ્રી કૃષ્ણાનંદજી મહારાજ જાણીતા મીલ માલીકો, સદ્‌ગૃહસ્થો અને ભક્તમંડળી સાથે ભરૂચ જઈ પહોંચ્યા. ભરૂચમાં પણ અગાઉથી ખબર પડવાથી હજારોની સંખ્યામાં ધાર્મિક હિન્દુજનતા એકત્ર થઈ ગઈ હતી. બ્રહ્મનિષ્ઠ મહાત્મા શ્રી જયેન્દ્રપુરીજીના મૃતદેહને પૂલ પાસે દશાનના આરે લાવવામાં આવ્યો. મૃત દેહવાળી બરફ ભરેલી પેટી ખોલતાં મહારાજશ્રીને ઓઢાડેલી ચાદર કોરી નીકળ્યાનું કહે છે. ભરૂચની ધાર્મિક જનતા મહારાજશ્રીના મૃતદેહનાં અંતિમ દર્શન કરવાને ભાગ્યશાળી થઈ. સામે કીનારેથી સ્વામી હંસદેવજી પધાર્યા હતા. અભિષેકાદિ અંતિમ ક્રિયા કરાયા પછી તેઓશ્રીને પવિત્ર નર્મદાજીમાં સમાધિસ્થ કરવામાં આવ્યા હતા.

**સ્વામીજી માટે શોક સભાઓ અને ઉદ્‌ગારો.**

પ્રાતઃસ્મરણીય શ્રી ૧૦૮ સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજ તો જીવન્મુક્ત હતા. પરંતુ તેઓશ્રીના બ્રહ્મલીન થવાના સમાચાર કાશી, હરિદ્વાર, મુંબઈ, કલકત્તા લાહોર, અમૃતસર, ચંપારણ્ય, ખંભાત, પેટલાદ, જુનાગઢ, જામનગર, ભાવનગર આદિ સ્થળોએ દેશભરમાં ફેલાઈ જતાં સ્થળે સ્થળે શોક સભાઓ થઈ. એક વીતરાગી મહાન્ મંડલેશ્વરના બ્રહ્મલીન થવાથી દેશની ધાર્મિક હિન્દુ સમાજને ભારે ન પુરાય તેવી ખોટ પડી તે સંબંધી મહારાજશ્રીના માટે સભાઓ ભરીને તેમ જ વ્યક્તિગત રીતે જે લાગણી અને ઉદ્‌ગાર વ્યક્ત કરવામાં આવ્યા તેમાંના થોડાક નીચે આપવામાં આવે છે.

અમદાવાદનાં—જાણીતા મીલમાલીક શેઠ ચીમનલાલ ગીરધરદાસ પારેખના અધ્યક્ષપદે ટાઉનહૉલમાં મોટી સભા મળી હતી. જેમાં મીલ માલીકો, જાણીતા નાગરીકો, વિદ્વાનો અને સ્વામી વિદ્યાનંદજી મહારાજ મંડલેશ્વર પધાર્યા હતા. તેમાં મંડલેશ્વર જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજના બ્રહ્મીભૂત થવાથી ન પુરાય તેવી ભારે ખોટ પડી છે એ મતલબનો ઠરાવ પસાર થયો હતો.

× × × ×

કાશીમાં—અપારનાથમઠ સન્યાસિ સંસ્કૃત કૉલેજમાં તા૦ ૨૨-૮-૪૧ ના રોજ સ્વામી શ્રી કલ્યાણાનંદજીના અધ્યક્ષપદે સભા મળી હતી. તેમાં જણા-

વવામાં આવ્યું:—સંસાર સંયોગ વિયોગનું જ સ્થાન છે. તો પણ સમય સમય ઉપર મહાન્ પુરૂષોનું વિયોગજન્ય દુઃખ થવું અનિવાર્ય છે. આજે એવો જ અવસર કાશી વિદ્વત્ સમાજ આગળ આવ્યો છે. સન્યાસ મંડળના પ્રધાન નાયક, સનાતન ધર્મનો પ્રચાર કરનાર, બ્રહ્મવિદ્યાના મહાન્ પ્રચારક, દર્શન-શાસ્ત્રના અપૂર્વ વિદ્વાન્ શ્રીમત્ પરમહંસ પરિવ્રાજકાચાર્ય શ્રી ૧૦૮ સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજ મંડલેશ્વર આપણને દુઃખ સાગરમાં નિમગ્ન કરી બ્રહ્મીભૂત થયા છે. તેઓશ્રીના વિયોગથી આજ કાશી વિદ્વત્ સમાજ તથા સન્યાસી મંડલ શોકમગ્ન છે. બીજી સભા તા૦ ૨૩-૮-૪૧ ના રોજ ટાઉનહૉલમાં શ્રી મિશ્રજીના સભાપતિત્વમાં થઈ હતી. તેમાં ઉપરની મતલબના ઉદ્ગારો શ્રી ગોપાલશાસ્ત્રી દર્શન કેસરી વિગેરે વિદ્વાન્ પંડિતો અને શાસ્ત્રીઓએ કાઢ્યા હતા.

× × × ×

કલકત્તામાં—તા૦ ૨૪-૮-૪૧ ના રોજ મહામહોપાધ્યાય પંડિત પ્રવર શ્રી અનંતકૃષ્ણજી શાસ્ત્રી મહોદયના સભાપતિત્વમાં સભા થઈ હતી. તેમાં જણાવવામાં આવ્યું—શ્રૃતિ, સ્મૃતિ, પુરાણોક્ત સનાતનધર્મના રક્ષક શ્રોત્રિય બ્રહ્મનિષ્ઠ શ્રી મત્પરમહંસ પરિવ્રાજકાચાર્ય પ્રાતઃસ્મરણીય પરમપૂજ્ય શ્રી ૧૦૮ મહામંડલેશ્વર સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજ દશમો રવિવારે ગુજરાત પ્રાન્તના અમદાવાદ નગરમાં આ માનવ યાત્રા પુરી કરી બ્રહ્મલીન થયા છે. આચાર્ય ચરણે જે સનાતન ધર્મની સેવા કરી છે, તેથી આજ આખો ભારતવર્ષ તેઓશ્રીનો ઋણી છે.

× × × ×

હરિદ્વારમાં—ઋષિકુલ આશ્રમવાસીઓએ દુઃખદ સમાચાર જાણી જણાવ્યું; શ્રી સ્વામીજી મહારાજના મૃત્યુથી એક યોગ્ય વિદ્વાન્ વીતરાગી સન્યાસીનું સ્થાન ખાલી પડયું. તેઓ બ્રહ્મજ્ઞાની હતા અને બ્રહ્મલીન થઈ ગયા. તેઓશ્રીએ દેશ અને ધર્મને માટે જે સેવાઓ કરી છે તે માટે અમે ભક્તિપૂર્વક અમારી શ્રદ્ધાંજલી અર્પણ કરીએ છીએ. અમને વિશ્વાસપૂર્વક આશા છે કે તેઓશ્રીના યોગ્ય ઉત્તરાધિકારી ધર્મ અને દેશ સેવામાં તેઓશ્રીનું અનુકરણ કરશે.

× × × ×

પરમહંસ પરિવ્રાજકાચાર્ય શ્રી ૧૦૮ મંડલેશ્વર સ્વામી મહેશ્વરાનંદજી મહારાજે જણાવ્યું: સમાચાર જાણી ઘણો આઘાત થયો. બધા મહાત્માઓ

ઘણા દુઃખી થયા. પરિવ્રાજક આકાશનો એક સૂર્ય અસ્ત થઇ ગયો. પરંતુ ભગવદ્ ઇચ્છા આગળ શું થઈ શકે છે ?

પરમહંસ પરિવ્રાજકાચાર્ય શ્રી ૧૦૮ સ્વામી કૃષ્ણાનંદજી મહારાજ મંડલેશ્વરે ઉદ્ગાર પ્રકટ કર્યા; "મારે માટે તો પૂજ્ય મંડલેશ્વરજી સર્વસ્વ હતા. તમામ મંડલેશ્વરોની તેઓથી શોભા હતી. તેઓશ્રીની વિદ્વત્તા, ઉદારતા અને સાધુતાએ સન્યાસિઓની પ્રતિષ્ઠાને ઘણા ઉચ્ચ દરજ્જે પહોંચાડી. જો કદી બધા મંડલેશ્વરો મળીને ત્રાજવાના એક પલ્લામાં બેસી જાય અને મંડલેશ્વર જયેન્દ્રપુરીજીને બીજા પલ્લામાં બેસાડવામાં આવત તો તેઓ શ્રીનું ત્રાજવુ ભારે રહેત. એવા અલૌકિક પુરૂષના બ્રહ્મલીન થવાથી સમસ્ત સંસારને ભારે હાનિ થઈ છે."

× × × ×

પરમહંસ પરિવ્રાજકાચાર્ય શ્રી નૃસિંહગિરિજી મહારાજ મંડલેશ્વરે જણાવ્યુંઃ સમાચાર સાંભળીને વજ્રાઘાત થયો. મને તો તેઓ શ્રીનો આશ્રય હતો.

× × × ×

પરમહંસ પરિવ્રાજકાચાર્ય શ્રી ૧૦૮ સ્વામી વિષ્ણુદેવાનંદજીએ શોકાન્જલી અર્પતાં જણાવ્યુંઃ પરમ પૂજ્ય મંડલેશ્વરજી મહારાજના ચાલી જવાથી સન્યાસી જગત સુનું થઈ ગયું છે.

× × × ×

આ ઉપરાંત પ્રાતઃસ્મરણીય મહારાજ શ્રી જયેન્દ્રપુરીજીની વિદ્વતા અને સર્વગુણ સંપન્નતાને લેઇને તેઓશ્રીના બ્રહ્મલીન થયા પછી સાધુ મહાત્માઓ મંડલેશ્વરો અને ભક્તોએ એવા ઉદ્ગારો કાઢયા છે કે તેમના જેવા મંડલેશ્વર થયા નથી અને ભવિષ્યમાં થશે ત્યારે.

શ્રી ૧૦૮ સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજ મંડલેશ્વરના બ્રહ્મલીન થવાથી વિવિધ સ્થળના વિદ્વાનો મહાત્માઓ અને મંડલેશ્વરોના ઉદ્ગારો જોતાં સ્પષ્ટ જણાઈ આવે છે કે બ્રહ્મવિદ્યાવારિધિ મંડલેશ્વર સમ્રાટ સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજે સનાતન ધર્મના રક્ષક અને પ્રચારક તરીકે તથા બ્રહ્મવિદ્યાના પ્રચારક તરીકે સનાતનધર્મની મહાન સેવા કરી છે. તેઓ વિદ્વાનો સાધુ, સન્યાસિ મહાત્માઓ અને મંડલેશ્વરોમાં આકાશમાં એક ચમકતા સૂર્યની પેઠે તેજસ્વી અને મંડલેશ્વરોની શોભારૂપ હતા. વિદ્વત્તા, ઉદારતા અને સાધુતામાં તેઓશ્રીનું સ્થાન અતિ ઉચ્ચ હતું. આ વીરાગી મહાપુરુષના બ્રહ્મલીન થવાથી સન્યાસી

જગત સૂનું થઈ ગયું છે. મંડલેશ્વરોને પણ આઘાત લાગ્યો છે. મંડલેશ્વરોમાં તેમના જેવા અલૌકિક પુરુષના બ્રહ્મલીન થવાથી ન પુરાય તેવી ખોટ પડી છે અને સમસ્ત સંસારને ભારે હાનિ થઈ છે.

## બ્રાહ્મણોની ચોરાસી-બ્રહ્મભોજન.

સ્વામીજી તો જીવન્મુક્ત દશા ભોગવતા હતા. પરંતુ તેઓશ્રીને ઉચીત ષોડષી ક્રિયા સાધુ મહાત્માઓને ભોજન વસ્ત્રાદિ દાન કાશીમાં સારી રીતે કરવામાં આવ્યાં હતાં. અને અમદાવાદમાં પણ અમદાવાદની આસપાસના તમામ બ્રાહ્મણોનું બ્રહ્મભોજન થાય તો સારૂ એવી લોકોની ઈચ્છા થવાથી તેમના જાણીતા ભક્તોના સુપ્રયાસથી બ્રાહ્મણોની ચોરાસી સંવત ૧૯૯૮ ના માહ માસમાં મંડલેશ્વર શ્રી કૃષ્ણાનંદજી મહારાજની અધ્યક્ષતામાં કરવામાં આવી હતી. નિલકંઠ વિગેરેના સાધુ મહાત્માને પણ ભોજન અપાચુ હતુ. તેના અંગે રખાયેલી પાટમાં ઘણા શ્રીમાલીકો, શ્રીમાનો અને વિદ્વાનો, સાધુ મહાત્માઓ, શ્રી નીલકંઠના મહંત શ્રી જગન્નાથજીના મહંત શ્રી નૃસિંહદાસજી વિગેરેએ પધારી શોભામાં અભિવૃદ્ધિ કરી હતી. મહંતો અને વિદ્વાનોએ શ્રી ૧૦૮ સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજીની પ્રશંસા કરી હતી અને વર્તમાન મંડલેશ્વર સ્વામી શ્રી કૃષ્ણાનંદજી મહારાજને આશિર્વાદ અને ભેટ વિગેરે આપવામાં આવ્યાં હતાં. આ મહાન્ પ્રસંગ સર્વના સુપ્રયાસથી શાંતિપૂર્વક થવા પામ્યો હતો.

## મંડલેશ્વર સ્વામીજીનાં સ્મારકો

કાશીમાં—શ્રી ૧૦૮ સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજ મંડલેશ્વરે ગોવિંદ મઠની ગાદી ઉપર આવ્યા પછી સિદ્ધ બાબા અપારનાથ મઠમાં સન્યાસિ સંસ્કૃત પાઠશાળાને સન્યાસિ સંસ્કૃત કોલેજ બનાવી છે. જેમાં વિદ્યાર્થીઓ સાધુ મહાત્માઓ વિદ્વાન્ પંડિતો પાસે અધ્યયન કરે છે. આ કોલેજ અંગે એક છાત્રાલય તેમ જ બીજું એક મળી બે છાત્રાલય તથા શ્રી કાશી વિશ્વનાથ ઔષધાલય વાક્ પ્રવર્ધની સભા તથા શ્રી કાશી વિશ્વનાથ પુસ્તકાલય ચાલે છે. ૐ નમઃ શિવાય મંત્ર કોષ છે. કાશીમાં ગોવિંદમઠમાં શિવ પંચાયતન જયેંદ્રેશ્વર મહાદેવની સ્થાપના અને શિવપુર (ચુપ્પેપુર) માં. શ્રીદ્વાદશ જયોતિઃ લીંગ મંદિરની પ્રતિષ્ઠાથી સ્થાપના કયારનીયે થઈ છે.

અમદાવાદમાં—શ્રી ૧૦૮ સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજ મંડલેશ્વરની પ્રેરણાથી શેઠ મોતીલાલ હીરાભાઈ અને શેઠ બાલાભાઈ દીજવલ્લભદાસની સલાહથી શેઠ શ્રી છોટાલાલ હીરાચંદ એલીસબ્રીજમાં વેદાન્તની કથા સારૂ

પોતાનો આશરે દોઢ લાખ રૂપીયાની કિંમતનો બંગલો સ્વામીજીને અર્પણ કર્યો અને તેમાં દશનામ સન્યાસ આશ્રમની સ્થાપના સ્વામીજીએ કરી છે. જેમાં આજે ઉપનિષદ્, ગીતા, પંચદશી, મહાભારત અને યોગદર્શન વિગેરેની કથા રોજ સાંજના થાય છે.

કાશી વિશ્વનાથ સંસ્કૃત મહાવિદ્યાલયની સ્થાપના સ્વામીજીએ પ્રથમ રૂ૦ ૬૭૨૭) વિદ્યાલયને અર્પણ કરીને કરી છે. જેમાં સ્વ૦ શેઠ શ્રી મોતીલાલ હીરાભાઈના રૂ૦ ૨૫૦૦૦) ની મદદ ઉપરાંત અનેક ભક્તોએ સારી મદદ કરી છે. આથી અમદાવાદના જ નહિ પરંતુ ગુજરાત કાઠીયાવાડના વિદ્યાર્થીઓને સંસ્કૃત ભાષાના ગ્રંથોનું જ્ઞાન મેળવવાને આર્થીક મદદ કરી મહાન્ ઉપકાર કર્યો છે. વળી આ અંગે કાશી વિશ્વનાથ પુસ્તકાલય કે જેની શરૂઆત બ્રહ્મ-ચારી ધર્મદત્તજી તથા સ્વામી કૃષ્ણાનંદજીએ પ્રથમ પુસ્તકો અર્પણ કરી સ્થાપન કર્યું છે. જે વિદ્યાર્થીઓને ઘણું ઉપયોગી થઈ પડયું છે. આ ઉપરાંત વિદ્યાર્થીઓ અને લોકોને દવા આપવા સારૂ શ્રી કાશી વિશ્વનાથ ઔષધાલય સ્વામીજીની પ્રેરણાથી શ્રી ગણુપતરામ મહાદેવીઆ ડૉકટરે તા૦ ૨૦ માહે નવે-મ્બર સને ૧૯૩૬ ના રોજથી શરૂ કરેલું આજે ડૉકટર મૂળશંકર નરસિંહલાલ શુકલ ઘણી સારી રીતે ચલાવી રહ્યા છે; જેનો ઘણા લાભ લે છે તે ઔષધાલયની ઉપયોગીતા બતાવે છે.

સન્યાસ આશ્રમમાં બ્રહ્મલીન સ્વામીજીની પ્રેરણા અને સ્વર્ગસ્થ શેઠ શ્રી બાલાભાઈ વ્રીજવલ્લભદાસની શુભેચ્છાથી શ્રી બાલકાશીવિશ્વનાથ મંદિરની સ્થાપના કરી તેમાં લક્ષ્મીનારાયણ, સૂર્યભગવાન, પાર્વતી, ગણુપતિ, મહાદેવ, ભુવનેશ્વરી માતા, નંદી, હનુમાનાદિ પંચાયતન દેવતાની મૂર્તિઓને બનાવરાવીને પ્રાણ પ્રતિષ્ઠા કરાવી સ્વ૦ બાલાભાઈના સ્મારકરૂપે બનાવીને તેમના પૂત્રો શેઠ ભોગીલાલ બાલાભાઈ વિગેરેએ સંવત ૧૯૯૯ ના જેઠ સુદ ૧૩ ને બુધવારે સન્યાસ આશ્રમને અર્પણ કરેલ છે. જેમાં આશરે દસ હજાર ઉપરાંત ખર્ચવામાં આવ્યા છે.

શ્રીયુત છબીલરાય બળવંતરાય ઈનામદારે પોતાના પૂત્ર મહેન્દ્રકુમારના સ્મરણાર્થે સંવત ૧૯૯૯ માં આસો સુદ ૧૦ ના રોજ શ્રી ૧૦૮ સ્વામી જયેન્દ્ર-પુરીજી મહારાજ મંડલેશ્વરની ભવ્ય મૂર્તિ પ્રાણ પ્રતિષ્ઠા કરાવીને મંદિરમાં પેસતાં સામે બાજુમાં સ્થાપન કરાવી છે.

ભરૂચમાં—શ્રી નર્મદાજીના પવિત્ર તટ ઉપર પૂલ પાસે દશાનના આરે સાણુંદ સંસ્થાન તથા કોઠ સ્ટેટના નામદાર મહારાણા શ્રી ઠાકોર સાહેબ

શ્રી જયવંતસિંહજી રણમલસિંહજીનાં ગંગા સ્વરૂપ માતુશ્રી બા શ્રી હીરાબા સાહેબાએ પોતાના ગુરૂ મહારાજ શ્રી મહામંડલેશ્વર શ્રી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજે સંવત ૧૯૯૭ ના શ્રાવણ વદ ૧૨ ને દિવસે નર્મદાજીમાં સમાધી લીધી તેમના પૂણ્ય સ્મરણાર્થે મંદિર બંધાવી તેમાં જયેન્દ્રેશ્વર મહાદેવ અને પોતાના ગુરૂ મંડલેશ્વર શ્રી જયેન્દ્રપુરીજીની પ્રતિમાની પ્રતિષ્ઠા સંવત ૧૯૯૯ ના વૈશાખ સુદ ૩ ને શુક્રવાર તા૦ ૭-૫-૧૯૪૩ ના રોજ કરવામાં આવી છે. આ શિવ પંચાયતન મંદિરમાં શંકર, વિષ્ણુ, ગણેશ, સૂર્ય, પાર્વતીની મૂર્તિઓની સ્થાપના ઉપરાંત શ્રી ૧૦૮ સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજ મંડલેશ્વરની ભવ્ય મૂર્તિની સ્થાપના સ્વામી કૃષ્ણાનંદજી મહારાજની અધ્યક્ષતામાં ભારે સમારોહ સાથે કરવામાં આવી છે. આમાં આશરે પંદર હજાર ખર્ચવામાં આવ્યા છે.

વળી અમદાવાદમાં સરસપુરવાળા શેઠ શ્રી મંગળદાસ હરગોવનદાસ પટેલ કે જેમણે પોતાનાં ધર્મપત્નિ શ્રી ચંદ્રિકા બ્હેનના કહેવાથી અમદાવાદના સંન્યાસ આશ્રમમાં નીચેનો વિશાળ હોલ આશરે દસ હજાર રૂપીયાના ખરચે રીપેર કરાવી બંધાવ્યો છે. તેમના તરફથી ભરૂચમાં પણ સાધુ સન્યાસીઓના ઉપયોગ માટે સ્વામી શ્રી કૃષ્ણાનંદજી મહારાજની પ્રેરણાથી આશરે પંદર હજારના ખરચે અશોક આશ્રમ બંધાઈ રહ્યો છે. તેમની તરફથી આશ્રમના નિભાવના ખર્ચ સારૂ માસિક રૂ૦ ૭૫) ની વ્યવસ્થા પણ કરવામાં આવી છે.

આ ઉપરાંત ગૃહસ્થોને ઉતરવા સારૂ એક મેડાબંધી બ્લૉક કેટલાક સદ્ગૃહસ્થો તરફથી બંધાઈ રહ્યો છે.

ઉપરની હકીકતથી સાબીત થાય છે કે કાશીમાં ગોવિંદમઠની સંસ્થાઓ, અમદાવાદમાં સન્યાસ આશ્રમમાં આવેલા સન્યાસ આશ્રમ, કાશી વિશ્વનાથ સંસ્કૃત મહાવિદ્યાલય, પુસ્તકાલય, ઔષધાલય અને બાલકાશી વિશ્વનાથ મંદિરાદિ તથા ભરૂચમાં બંધાયેલા શ્રીજયેન્દ્રેશ્વર મહાદેવ અને અશોક આશ્રમાદિ તમામ સંસ્થાઓ બ્રહ્મલીન શ્રી ૧૦૮ સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજ મંડલેશ્વરની પ્રેરણા અને શુભેચ્છાથી કેટલીક તેઓશ્રીના વખતમાં અને બીજી કેટલીક તેમના બ્રહ્મલીન થયા પછી વર્તમાન શ્રી ૧૦૮ સ્વામી કૃષ્ણાનંદજી મહારાજ મંડલેશ્વરની પ્રેરણા અને પ્રભાવનાને લેઇને બ્રહ્મલીન સ્વામીજીના ભક્તો તરફથી થવા પામી છે. જે આજે બ્રહ્મલીન મંડલેશ્વર જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજના ગૌરવ અને સ્મારક રૂપે છે.

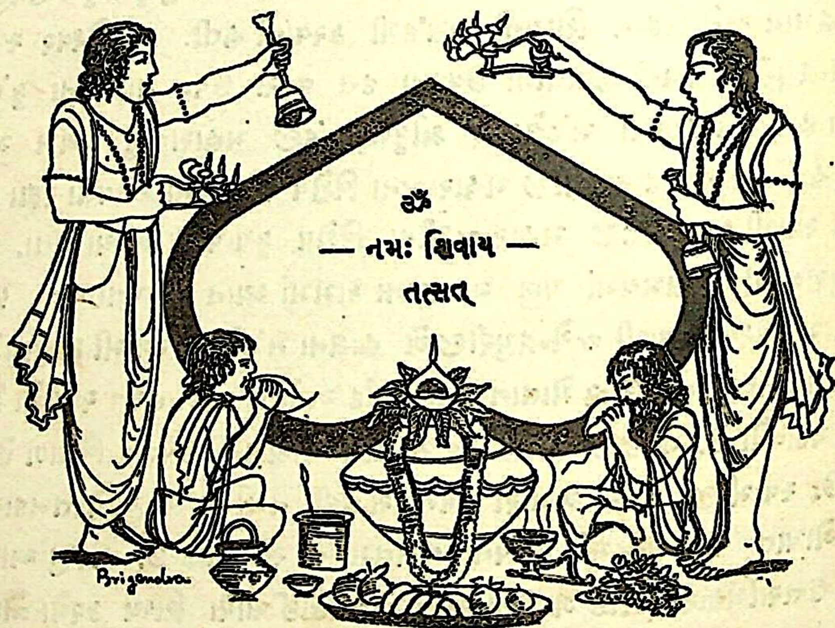
## બ્રહ્મલીન સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજી મંડલેશ્વરના
## ઉત્તરાધીકારી તરીકે સ્વામી શ્રી કૃષ્ણાનન્દજી મંડલેશ્વર.



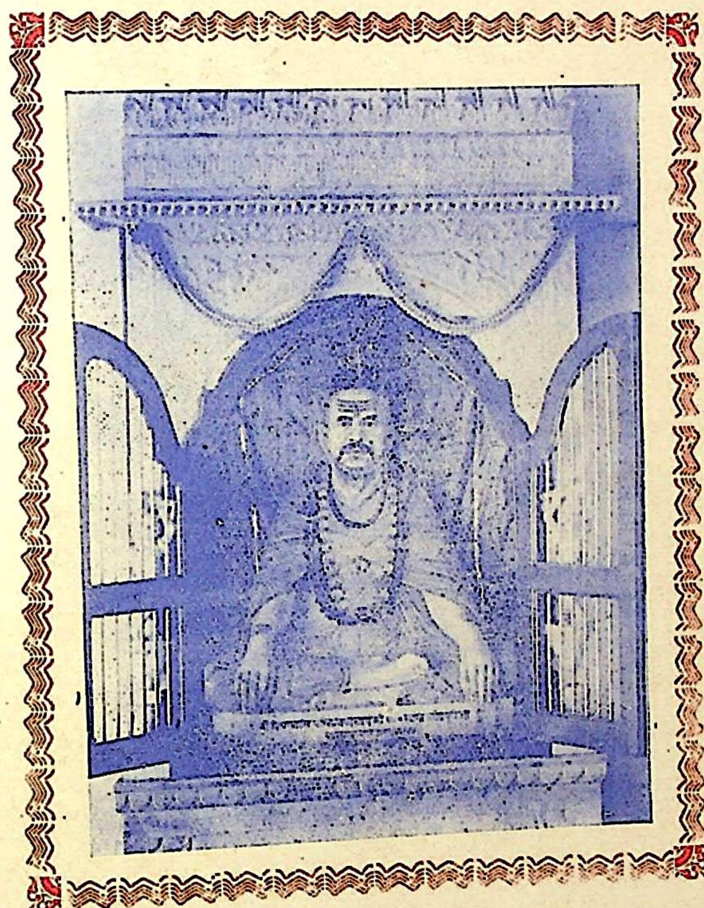
બ્રહ્મલીન શ્રોત્રિય બ્રહ્મનિષ્ઠ શ્રી ૧૦૮ સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજ મંડલેશ્વર કાશીથી અમદાવાદમાં પધાર્યાં અને દશનામ સન્યાસ આશ્રમ અને કાશી વિશ્વનાથ સંસ્કૃત મહાવિદ્યાલયની સ્થાપના કરી છે. તેઓ શ્રી અમદાવાદમાં વખતો વખત ચાતુર્માસાદિ સમયે પધારીને અમદાવાદની ધાર્મિક જનતાને ઉપનિષદ્દની કથા સંભળાવીને ભારે ઉપકાર કરતા હતા. આ દરમ્યાન એક સારા ઉત્તરાધિકારી તરીકે ગાદી ઉપર આવનાર એક વિશેષ ગુણાલંકૃત હોંશિયાર બુદ્ધિમાન અને વિદ્વાન્ શિષ્યની પસંદગી કરવાની હતી. મંડલેશ્વર સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજી તેમની હયાતીના છેવટના દસ વરસ ઉપર નાશિકના કુંભમાં ગયા હતા ત્યાં હાલના મંડલેશ્વર શ્રીકૃષ્ણાનંદજી મહારાજનું પ્રથમ મળવું થયું હતું. ત્યાર બાદ સ્વામીજી મહારાજના વિશેષ સંબંધમાં આવતા રહ્યા હતા તેથી સ્વામી કૃષ્ણાનંદજી મહારાજશ્રીના વિશેષ કૃપાપાત્ર બન્યા હતા. અને મહારાજશ્રીના સમયમાં પણ આશ્રમના કામમાં ધ્યાન આપતા હતા. બ્રહ્મ-લીન મંડલેશ્વર સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજીએ હાલના મંડલેશ્વર સ્વામી કૃષ્ણાનંદજી મહારાજના મસ્તક ઉપર પોતાના આશીર્વાદ અર્પતો વરદ હસ્ત રાખેલો ફોટો પણ પડાવ્યો છે. જે ફોટો અમદાવાદ સન્યાસ આશ્રમના ઉપરના વિશાળ હોલ-માં છે. સ્વામીજી સાથે અમારી અને સંઘવી નગીનદાસ પુરૂષોત્તમદાસની પ્રસંગોપાત વાતચીતોમાં આપના વખતમાં તો સૌ સારૂ છે. પરંતુ આપના પછી ઉત્તરાધિકારી તરીકે ગાદીએ આવે એવો કોઈ સારો શિષ્ય કરવો જોઇએ એમ વાત થતાં તેઓશ્રીએ કહેલું કે હાલ તો સ્વામી કૃષ્ણાનંદજી આશ્રમનું કામ સંભાળે છે પછી તો હરિની ઇચ્છા. આથી વર્તમાન મંડલેશ્વર કૃષ્ણાનંદજી મહારાજ ગાદી ઉપર આવે તેમ લાગતું હતું. અને છેવટે બન્યું પણ તેમજ. શ્રી ૧૦૮ સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજ મંડલેશ્વર બ્રહ્મલીન થતાં કાશીની ગોવિંદ મઠની ગાદી ઉપર મંડલેશ્વર શ્રી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજના ઉત્તરાધિકારી તરીકે શ્રી ૧૦૮ સ્વામી કૃષ્ણાનંદજી મહારાજ મંડલેશ્વર વિદ્વાનો મહાત્માઓ અને સદગૃહસ્થોની ભક્ત મંડળીની સંમતીથી બીરાજ્યા છે. તેઓ બ્રહ્મલીન મંડલેશ્વર શ્રી જયેન્દ્રપુરીજીની કાર્ય પ્રણાલીને અનુસરીને કાશીની

ગોવિંદમઠની ગાદીની સંસ્થાઓની પોતાના પ્રભાવથી દિન પ્રતિદિન ઉન્નતિ કરો અને દેશમાં વેદાન્તની કથા સાથે સનાતનધર્મના પ્રચાર અને રક્ષાનાં કાર્યો ધાર્મિક જનતાના શ્રેયાર્થે કરવા સદા તત્પર રહો. એવી પરમાત્મા પ્રત્યે નમ્ર પ્રાર્થના સાથે આ શ્રી ૧૦૮ સ્વામી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજ મંડલેશ્વરના જીવનચરિત્ર અને તેઓશ્રીના કાર્યને લગતા આ લેખની અત્રે સમાપ્તિ કરવામાં આવે છે.

* ૐ શાંતિઃ શાંતિઃ શાંતિઃ. *



## श्री १०८ स्वामी जयेन्द्रपुरी जी महाराज की संगमरमर की भव्य प्रतिमा



ॐ साङ्गैः सम्पूर्णवेदैर्मुनिभिरभिहितैर्दर्शनैश्चान्यतन्त्रैः ।
सार्धं श्रीशारदाम्बा कमलभवसुता यस्य जिह्वाग्रभागे ॥
मोदान्नृत्यङ्करोति प्रसभमविरतं सत्यलोकं विहाय ।
पायाच्छ्रीसद्यतीन्द्रः सकलनियमिनामग्रणीः श्रीजयेन्द्रः ॥ १ ॥

यह मंदिर और भव्य प्रतिमा जयपुर के प्रसिद्ध कारीगर से छबिलभाई बलवन्तराय जी ने निज व्यय से बनवा तथा प्रतिष्ठा कर संन्यास—आश्रम को अर्पण किया ।

# અમદાવાદના આંગણે મહારાજશ્રીનું આગમન

( લેખક—પ્રવીણકુમાર છબીલરાય ઈનામદાર. )

શ્રીમત પરમહંસ પરિવ્રાજકાચાર્ય શ્રી ૧૦૦૮ સ્વામી શ્રી જયેન્દ્રપુરીજી મહારાજ મહામંડલેશ્વરના ચરણારવિંદમાં તેઓશ્રીનાં યાદદાસ્ત સંસ્મરણોઃ–

अखंड मंगलाकारम् व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

એક વખત મારા હાથમાં રામકૃષ્ણપરમહંસ, શ્રીમદ્ શંકરાચાર્ય અને વિવેકાનંદ જેવા મહાન પુરુષોનાં જીવન ચરિત્રો વાંચવામાં આવતાં કર્તવ્યનું સંસ્મરણ કરતાં મને મહારાજશ્રીના જીવનનો દીપક પ્રજાની અંદર પ્રગટાવવાનો વિચાર થયો અને તેઓશ્રીની પ્રેરણાથી તે દીપક પ્રગટાવવાની અંદર મારા હાથને જે શક્તિ આપી છે તેથી હું તેઓશ્રીનો જેટલો ઉપકાર માનું તેટલો ઓછો જ છે. પ્રથમ મારા પિતાશ્રી લગભગ ૧૯૯૦ ની સાલમાં તેઓશ્રીની સાથે સંપર્કમાં આવ્યા. ગુરુપૂર્ણિમાને દિવસે મારા પિતાજી તેમના મિત્રો સાથે ફરતા ફરતા 'મોતીબાગ' તરફ ગયા તે વખતે મહારાજશ્રીનું પ્રવચન થઈ રહ્યું હતું. તેઓશ્રીની વાણી અમૃત ભરેલી અને લોકોના માનસને જીતનારી હોવાથી તેઓશ્રીએ મારા પિતાજીનું માનસ જીતી લીધું. મારા પિતાજીએ "નિયમિત રીતે દરરોજ પ્રવચનમાં આવીશ" એવો જ્યારે નિશ્ચય કર્યો તેની સાથે તેમણે ચમત્કાર અનુભવ્યો અને હવેથી નિયમિત રીતે પ્રવચન સાંભળવા જવાનો ક્રમ થઈ પડ્યો.

મહારાજશ્રીને આમંત્રણ.

પ્રથમ મારા યજ્ઞોપવિત સંસ્કાર ઉપર ૧૯૯૨ ની સાલમાં વૈશાખ મહિનામાં મહારાજશ્રીને આવવા આમંત્રણ મોકલવામાં આવ્યું અને તેઓશ્રી આમંત્રણ સ્વીકારી અમદાવાદ પધાર્યા. આ પ્રસંગ ઉપર મહોલ્લાની અંદર હજારો માણસોનું ટોળું જેમ કીડીઓ દરમાંથી ઉભરાય તેમ ઉભરાઇ ગયું અને લોકોની મેદની તેઓશ્રીના દર્શનાર્થે મળી અને પોતાના દર્શનનો અમુલ્ય લાભ આપી પોતાની અમૃત વાણીનો પ્રસાદ બધાને ચખાડ્યો અને દરેકના ગૃહમાં જઇને તેમને પવિત્ર કરી નાખ્યા.

ભાઈશ્રી માર્કંડેયરાયનું શોકજનક અવસાન.

તેઓશ્રીનો સ્વભાવ નાના બાળક જેવો લોકોને ચાહનારો અને નિષ્કલંકિત હતો અને મોટા માણસ તરીકે, મહાન વ્યક્તિ તરીકે મોન અને ગંભીર

મુદ્રાવાળો હતો. તેઓ શ્રી વૈશાખ માસના આવેલા કાર્તક મહીના સુધી અમદાવાદ રોકાયા. તેઓશ્રીએ બાકી રહેલી દ્વારકાની જાત્રા પુરી કરવાનો નિશ્ચય કર્યો. દ્વારકાની યાત્રાપુરી કર્યા બાદ તેઓશ્રીએ પોતાના શિષ્ય કૃષ્ણાનંદજી મહારાજ પાસેથી સાંભળ્યું કે છબીલભાઇના પુત્ર માર્કંન્ડરાયનું શોકજનક અવસાન થયું છે અને તેઓશ્રી ઊપર એકાએક વાદળ તૂટી પડયું હોય એમ લાગ્યું, તેથી અમદાવાદ નહિ ઉતરતાં સીધા ધોળકા ગયા અને ત્યાં નિવાસ કર્યો અને બાબતની ખબર અમદાવાદના પ્રતિષ્ઠિત માણસોને પડતાં તેઓ તેઓ શ્રીની પાસે ગયા. ત્યાં મારા પિતાશ્રીનું મુખારવિંદ ફીકકું પડી જવાથી તેમને સંતોષ આપવા ઉપદેશ કર્યો ત્યાં અમદાવાદથી આવેલા સદ્‌ગૃહસ્થોના આગ્રહથી તેઓ એક દિવસ માટે અમદાવાદ પધાર્યા. તેઓશ્રી મારા ભાઇના સ્વર્ગવાસથી વાકેફ હતા. તે વખતે ફક્ત મારા ભાઇનો સ્વર્ગવાસ થયે એક જ માસ થયો હતો.

મહારાજશ્રી અમદાવાદમાં એક દિવસ માટે પધાર્યા છે એવી જાણ થતાં લાખોની સંખ્યામાં લોકોનાં ટોળેટોળાં તેઓશ્રીનું પ્રવચન સાંભળવા આવવા લાગ્યાં.

સાંજનો વખત હતો વાદળ ચોકખું હતું જનસમૂહ શાંત થઈ ગયો હતો, ત્યાંનું વાતાવરણ પણ ઘણું શાંત હતું અને લોકો મહારાજશ્રીનાં ઝરતાં અમૃત વાકયો સાંભળવાને આતુર હોય એમ લાગતું હતું.

### વરસાદનો ચમત્કાર

૧૯૯૫ની સાલમાં ચાતુર્માસ માટે એક ભક્તના બોલાવવાથી તેઓશ્રી અમદાવાદમાં પધાર્યા, તે વખતે અમદાવાદમાં ચોમાસું બેસી ગયા છતાં વરસાદ પડયો નહિ. કિન્તુ એકલા અમદાવાદમાં જ નહિ પણ ઘણાખરાં મોટાં શહેરોમાં અને ગામડાઓમાં પણ વરસાદ નહોતો.

મેઘરાજાની પધરામણી કરવા ગુજરાતના લોકોએ જપ, તપ, યજ્ઞ અને દાન શરૂ કર્યાં છતાં પણ મેઘરાજાની પધરામણી થઈ નહિ.

એક દિવસ મહારાજશ્રીનો ભંડારી જ્યારે બહાર ફરવા જતો હતો. તેવામાં આશ્રમની બહાર નીકળતાં, એક કસાઇના હાથે ગૌ માતા ધ્રસડાતી લઈ જતી જોવામાં આવી ત્યારે ભંડારીએ તે કસાઇને પુછ્યું કે તું આ ગૌ માતાને કયાં લઈ જાય છે. તો તેણે જવાબ આપ્યો કે કસાઈખાનામાં તેને વેચવા લઈ જાઉં છું. આથી તેણે ગાયને છોડાવવાનો વિચાર કર્યો અને કસાઇને આઠ દશ આનાના પૈસા આપી ગૌ માતાને કોઠાર આગળ બાંધી. કયાંનું

પ્રવચન સમાપ્ત થયા પછી જ્યારે મહારાજશ્રી પોતાના ખંડમાં જતા હતા. તેવામાં તેઓશ્રીની દૃષ્ટિ આ ગૌ માતા ઊપર પડી ત્યારે તેઓશ્રીનું હૃદય દ્રવી ગયું. અને ત્યારથી પોતાના મનને બેચેની લાગવા માંડી કરણુ કે તેઓશ્રીના મનને દરેક આત્મા સરખા જ હતા.

બીજે દિવસે આશ્રમની અંદર જે હોજ હતો, તે ગંગાજીના પાણીથી ભરી દેવામાં આવ્યો. અને તે હોજની અંદર અલૌકિક શંકરનું બાણુ મુકવામાં આવ્યું. દરરોજ પરોઢીયાના ૩ વાગે મહારાજશ્રી તે બાણુને સ્નાન કરાવતા હતા. અને ચોવીસે કલાક તે બાણુને હોજની અંદર મુકી રાખવામાં આવતું હતું. આ પ્રમાણે કરવાનું કારણ એટલું જ હતું કે તેઓશ્રી વરસાદ સારા હિંદુસ્તાનની આલમમાં લાવવા માગતા હતા. તેવામાં સરસપુરથી તેઓશ્રીની પધરામણી કરવાનું આમંત્રણ આપવા ભાવિક ભકતો આવ્યા, અને તે લોકોના આગ્રહથી તેઓશ્રી સરસપુર ગયા. પણ આ વખતે તેઓશ્રીનો આત્મા દુભાયા કરતો હતો. થોડા વખતમાં તેઓશ્રીએ પોતાના પરમ ભક્ત જીવણલાલ આશારામ પટેલને બોલાવવા મોકલ્યા. અને તેઓશ્રીએ તેમને કહ્યું કે તમે કાશી તાર કરી દો કે બે દિવસની અંદર કાશીના પ્રખર વિદ્વાનો સાથે ધર્માનંદજી આ તાર પહોંચે કે તરત જ અમદાવાદ આવવા નીકળી જાય. તેમણે મહારાજશ્રીનો આદેશ માથે ચઢાવીને ઉપર કહ્યા પ્રમાણે તાર કર્યો. તેથી ધર્માનંદજી અને પંડિતો આવી પહોંચ્યા. આ પરમાર્થ કરવા માટે જીવણલાલ આશારામ પટેલે પોતાનો હાથ લંબાવ્યો. પર્જન્ય ને મહારૂદ્ર યજ્ઞ કરવા માટે તેમણે તન, મન, અને ધનથી તે સમાપ્ત કરવાની જીજ્ઞાસા દર્શાવી અને યજ્ઞ કરવાની શરૂઆત કરી. છતાં વરસાદ તો ઝરમર ઝરમર પડવા લાગ્યો પણ આથી મહારાજશ્રીને સંતોષ થયો નહિં. સાંજના પુષ્પાંજલી વખતે તેઓશ્રીએ વિચાર કરવા માંડ્યો. આ વખતે બે પરમ ભક્તો તેઓશ્રીની પાસે બેઠા હતા. તે વખતે મહારાજશ્રીએ કુદરત સામે જોઇને ઉદ્ગાર્યું કે હે વરુણ દેવ! તારે પધરામણી કરવી છે કે નહિ. નહિ તો આ ભગવાં વસ્ત્રોને કોણ પૂજશે? અને તું પધરામણી નહિ કરે તો હું હવેથી વિશ્વનાથને ગંગાજીના પાણીમાં સ્નાન કરાવીશ જ નહિ.

આવાં દૃઢ વચનો મહારાજશ્રીના મુખારવિંદમાંથી નીકળતાં અને નીડર શ્રદ્ધા જોઇને વરસાદ મૂશળધાર વરસવા માંડ્યો. અમદાવાદ, સુરત, વડોદરા, ભરૂચ, મુંબઈ, ભાવનગર, જામનગર, કાઠિયાવાડ વિગેરે શહેરોમાંથી

તાર છુટ્યા કે વરસાદ મૂશળધાર વરસ્યો છે. આથી અમદાવાદની પ્રજાને અને જે શહેરના તેમ જ ગામડાના લોકોને તેઓશ્રીના ચમત્કાર વિષે જાણ થઈ તે બધાને મહારાજશ્રીની અંદર શ્રદ્ધા બેઠી અને લોકો ત્યાં સુધી કહેવા લાગ્યા કે આ મહાન વ્યક્તિ તો સાક્ષાત શંકર સ્વરૂપ છે. આથી તેમના દર્શનાર્થે લોકોની મેદની થવા લાગી. અને આ શહેરમાં તેઓશ્રીના નામનો વિજય ડંકો વાગ્યો તેમ જ આખા હિન્દુસ્તાન આલમમાં તેઓશ્રીની વાહવાહ બોલાવા લાગી. પૂર્ણાહુતિને દિવસે લોકો લાખોની સંખ્યામાં આવવા લાગ્યા. અને તેઓશ્રીના દર્શન માટે લોકોની ઠઠ જામી લોકો દેશ દેશથી તેઓશ્રીના દર્શન માટે પધાર્યા. ફીલ્મ પ્રોડયુસરો પણ તેમના દર્શનાર્થે આવવા લાગ્યા તે ભવ્ય પ્રસંગની ફોટોગ્રાફી લેવા તેમ જ મહારાજશ્રીની છબી લેવા ગુજરાતના ફોટોગ્રાફરોની મેદની જામી.

### જગન્નાથજીના મહારાજશ્રી તથા ગુરૂ મહારાજશ્રીનો ભેટો

એક બનાવ મારી યાદદાસ્તમાં આવે છે કે તેઓ નિરઅભિમાની અને અહંકાર રહિત મહાન પુરુષ હતા. જ્યારે જગન્નાથજીના મહારાજશ્રી પર્જન્ય અને મહારૂદ્રની પૂર્ણાહુતિને દિવસે તેઓશ્રીની મુલાકાતે આવ્યા ત્યારે મહારાજનો સત્કાર કરવા સામે ગયા અને એક બીજા ભેટયા તે વખતનો દેખાવ અવર્ણનીય હતો. આ બનાવ આપણને બતાવી આપે છે કે આ બંને મહાન પુરુષોની અંદર લેશમાત્ર પણ અભિમાન હતું જ નહિ. થોડા વખત પછી મહારાજશ્રી કાશી પાછા ફર્યા. અને અમદાવાદમાં બહુ શ્રમ પડવાથી તેઓશ્રીએ આરામ લેવાનો નિશ્ચય કર્યો. અને બે વર્ષ સુધી કોઈ પણ સ્થળે નહિ જવાનો નિશ્ચય કર્યો.

૧૯૯૭ આ પ્રમાણે નિશ્ચય કર્યા બાદ તેઓશ્રીએ મારા પિતાજી ઉપર પત્ર લખી જણાવ્યું કે હું કોઈ પણ ઉપાયે હવે અમદાવાદ આવીશ નહિ. તો મારા ઉપર કોઈ પણ જાતનું ત્યાં આવવાનું દબાણ કરશો નહિ. અને આટલો વખત મને આરામથી કાશીમાં રહેવા દો.

### ફરી મહારાજશ્રીને અમદાવાદનું આમંત્રણ

જ્યારે આ પત્રનો જવાબ નકારમાં આવવાથી જાણે થોડા વખત માટે કાળું વાદળ પોતાના મુખ ઉપર ફરી વળ્યું હોય એમ મારા પિતાજીને લાગ્યું. પણ પોતાના નિશ્ચયમાં ડગ્યા નહિ. અને અમે તે હિસાબે તેઓશ્રીને અમદાવાદમાં પધારવા માટે પત્ર લખી આમંત્રણ મોકલવાનો નિશ્ચય કર્યો, પોતાના મનને

શાંત કરી તેમણે મહારાજશ્રી ઉપર પત્ર લખવાનો નિશ્ચય કર્યો અને જાણે એક બીજા સાથે પિતાપુત્રનો સંબંધ હોય તેવી રીતે જેમ પુત્ર પોતાની વેદના અને સંકટો પિતાજીને જણાવે તેમ તેમણે એક લાંબો પત્ર તેઓશ્રી ઉપર લખ્યો. અને જણાવી દીધું કે જો આપ અમદાવાદ નહિ આવો તો હું મારા નવા મકાનની વાસ્તાની ક્રિયા કરીશ નહિ. અને હું આ નવા મકાનમાં પ્રવેશ કરવાનો નથી. આ પ્રમાણે મહારાજશ્રી ઉપર પત્ર લખ્યો. આ પત્ર મહારાજશ્રીના વાંચવામાં આવતાં અને આવો દઢ નિશ્ચય જાણી મહારાજ શ્રીએ એ પત્રનો જવાબ આપવાનો નિશ્ચય કર્યો. તે ઉપરાંત તેઓશ્રીને મારા પિતાજીમાં શ્રદ્ધા હતી. કે તે લીધેલી જીદ છોડતા નહિ. આ બાબતને જે ગૃહસ્થીઓ મારા પિતાજી સાથે સમાગમમાં આવ્યા છે, તે સારી રીતે જાણે છે. આવો દઢ નિશ્ચય મારા પિતાજીનો જાણી મહારાજશ્રીએ લખ્યું કે "ભક્તોને આધીન ભગવાન છે" અને ભક્તને આધીન ભગવાન વૈકુંઠ છોડી તેને સહાય કરવા ગયા હતા. તો હું કેમ નહિ આવું ? હું જરૂર આવીશ તો તમે ફીકર કરશો નહિ. હું અષાડ સુદ દશમને દિવસે ત્યાં આવીશ. આ પ્રમાણેનો હકારનો જવાબ મારા પિતાજી ઉપર આવતાં તેમના આનંદનો પાર રહ્યો નહિ. અને તે તાર આશ્રમમાં લઇ જઈ પ્રવચન વખતે સભા સમક્ષ વાંચી સંભળાવવામાં આવ્યો. તેથી અમદાવાદની પ્રજા જે નિરાશ થઈ ગઈ હતી તે ઉત્સુકતામાં આવી ગઈ, અને લોકોના મનમાં આનંદનો પાર રહ્યો નહિ. બીજી બાજુએ તે તારની સાક્ષી પુરવા એકાએક કૃષ્ણાનંદજી મહારાજ ઉપર તાર આવ્યો. તે પણ સભા સમક્ષ વાંચી સંભળાવવામાં આવ્યો એટલે જનતાની અંદર અનહદ આનંદ ઉભરાઇ આવ્યો. આ બતાવી આપે છે કે મહારાજશ્રી પ્રત્યે અમદાવાદની પ્રજાને કેટલો ભાવ ( પ્રેમ ) હતો.

## મહારાજશ્રીનું શુભાગમન.

૧૯૪૨ ના ઑગષ્ટ માસમાં સંવત ૧૯૯૭ ના અષાડ સુદ ૧૦ ને દિવસે તેઓ અમદાવાદ પધાર્યા. અને તેઓશ્રીનું લાખો માનવની મેદની વચ્ચે ભાવભીનું ભવ્ય સ્વાગત કરવામાં આવ્યું, અને ભવ્ય સરઘસ કાઢી તેમને સન્યાસ આશ્રમમાં લઈ જવામાં આવ્યા.

થોડા દિવસ સુધી આરામ લઈ તેઓશ્રીએ પોતાના પ્રવચનનો લાભ જનતાને આપવા માંડ્યો. થોડો વખત પ્રવચન કર્યું ન કર્યું એટલામાં તેમના ઉપર કુદરતી આફત આવી પડી અને અહિં આ તેમની તબીયત સારી રહેવા

લાગી નહિં. તેથી તેઓશ્રીએ આશ્રમ લેવાનો નિશ્ચય કર્યો. એક રાત્રીએ તેઓશ્રીને સ્વપ્ન આવ્યું કે મારો દેહ અમદાવાદમાં છુટી ગયો છે. આ સ્વપ્ન વિષે અહિંના પ્રખર જ્યોતિષ શાસ્ત્રી ગીરજાશંકર હરીશંકર જોષી તેઓશ્રીના દર્શનાર્થે આવ્યા હતા. ત્યારે તેમને આ સ્વપ્ન વિષે કહેવામાં આવ્યું પણ તેમણે ઉત્તર આપ્યો કે આ સ્વપ્નથી આપનું આયુષ્ય વધશે, પણ મહારાજશ્રીને ખાતરી થઈ ગઈ કે હું હવે થોડા વખતનો જ મહેમાન છું. આ અરસામાં કાશીથી મહારાજશ્રીના અંગત કામ માટે એ મહાત્મા મળવા આવ્યા. તે વખતે મહારાજશ્રીની તબીયત તો સારી હતી જ નહિ. પણ તેઓશ્રી તે વખતે શુદ્ધમાં તો હતા જ. થોડા વખત પછી કૃષ્ણાનંદજી અને નિષ્કલાનંદજીને બોલાવવામાં આવ્યા, અને તેઓશ્રીએ પોતાનું ભવિષ્ય આ બંને આગળ કહી દીધું કે હવે હું બે ત્રણ દિવસનો જ મહેમાન છું. આ સ્થળ તો મારે મન કાશી જ છે. તો દેહ ત્યાગ પછી તે શરીરને કાશી લઈ જવાની જહેમત ઉઠાવશો જ નહિ. આ પ્રમાણે થોડા વખત સુધી વાતચીત કરીને તેઓશ્રીએ ત્રણ દિવસની સમાધિ લઈ લીધી.

## મહારાજશ્રીની સમાધી અવસ્થા.

આ વખતનું વર્ણન કરવાને હું અશક્તિમાન છું છતાં પણ મારા જ્ઞાન પ્રમાણે જેટલું કરૂં તેટલું ઓછું છે. તે વખત એ હતો કે તેઓશ્રીનું મુખારવિંદ જે ભાવિકોએ જોયું હશે, તેઓને ખબર હશે કે તેઓશ્રીનું મુખારવિંદ ગુલાબના ફુલ જેવું ગુલાબી અને સૂર્ય જેમ પોતાના પૂનઃ પ્રકાશથી દુનિયાને દીપાવી રહ્યો હોય અને તેજસ્વી બનાવી રહ્યો હોય તેમ તેઓશ્રીનું લલાટ દીપી રહ્યું હતું. અને તેઓશ્રીને જે ગુલાબી રજાઈ ઓઢાઢવામાં આવી હતી, તે રજાઈની બરાબર તેઓશ્રીના શરીરનો રંગ લાગતો હતો. અને સાક્ષાત શંકર ભગવાન સમાધિસ્થ હોય તે પ્રમાણે આ દેખાવ દેખાતો હતો. તે ઉપરાંત પવન વેગે નગરમાં મહારાજશ્રીની ગંભીર તબીયતના સમાચાર સાંપડતાં નગરજનો શોકમાં ગરકાવ થઈ ગયા. તેઓશ્રીના દર્શનનો લાભ લેવા લાખો મનુષ્યોની મેદની જમા થઈ ગઈ. અને તે વખતે જુવાનીઆઓને સ્વયં સેવકો થવું પડયું, કે જેથી તેઓશ્રીની સમાધી ભંગ થાય નહિં. અને શાંતિથી લોકો દર્શનનો લભ લઈ શકે. જેમ જેમ આસપાસના પરાંઓ અને ગામડાંઓમાં તેઓશ્રીની માંદગીના સમાચાર સાંભળતાં જ લોકો તેઓશ્રીના દર્શનાર્થે ઉભરાવા લાગ્યા.

(મહારાજશ્રીના સમાધી અવસ્થા દ્વારા દેહ ત્યાગ)

શ્રાવણ વદ ૧૦ ને રવિવારના રોજ તેઓશ્રીએ પોતાના ક્ષણભંગુર દેહનો ત્યાગ કર્યો, અને કાયમને માટે સમાધી લઈ લીધી. પણ કુદરતનો નિયમ ઉલટો જ છે, જે કાર્ય માટે મહારાજશ્રીને બોલાવવામાં આવ્યા હતા તે કાર્ય પુરૂ થયું નહિં. અને જે દિવસે મારે ઘેર વાસ્તાની ક્રિયા હતી. તેને આગલે દિવસે તેઓશ્રીએ પોતાના આત્માને શરીરથી અહંકાર રહીત કરી નાખ્યો. પ્રભુની કુદરત અજબ છે! મનુષ્ય ધારે છે કાંઈ અને કુદરત કરે છે ક્રાંઈ, જે કાર્ય માટે બોલાવવામાં આવ્યા હતા તે કાર્ય નહિ થતાં તેઓશ્રીના શરીરને જળ સમાધિ આપવાની ક્રિયા કરવાની ફરજ પડી.

તે એક દિવસ હતો કે જે આશ્રમની અંદર તરેહ તરેહનાં ફુલ થતાં હતાં અને જેની સુગંધી ફેલાઈ રહી હતી, ફુવારામાંથી ઝીણાં ઝરમર ઝરમર પાણી ઉડી રહ્યાં હતાં, લોકો આનંદથી પ્રવચનનો રસ લઈ રહ્યા, હતા, વાદળ સ્વચ્છ હતું અને ઠંડો પવન ફુંકાતો હતો. દરરોજ પક્ષી કલ્લોલ કરી રહ્યાં હતાં ઝાડ લીલોતરીવાળાં હતાં અને રાત્રી ચંદ્રમાના પ્રકાશથી દેદીપ્યમાન હતી તે વખતે આશ્રમના દેખાવનું દશ્ય શ્વેત ચાંદનીની માફક પ્રકાશીત હતું. શ્રાવણ વદ ૧૦ને રવિવારના દિવસે આશ્રમનો દેખાવ ફળ ફુલ અને સુગંધ વગરનો ન હોય તેવો! ફુવારામાંથી જે ઝરણાં ફૂટી રહ્યાં હતાં તે જાણે શોષાઈ ગયાં ન હોય તેવાં! ઝાડ, પાન, પત્ર જાણે સમુળગાં ખરી પડ્યાં ન હોય તેવાં? પક્ષીઓ આ શહેર છોડી જાણે જંગલોમાં ચાલ્યાં ગયા ન હોય, અને તેઓશ્રીના શોકમાં ગરકાવ થઈ ગયાં ન હોય તેવાં? અને ઘનઘોર વાદળ જાણે છવાઈ ગયું ન હોય તેવું? અને મનુષ્યો પોતાની દીલસોજી બતાવી રહ્યાં હોય તો? તેવાં દિવસ ઉજ્જડ વેરાન લાગતો હતો.

## શ્મશાન યાત્રા

તેઓશ્રીની શ્મશાન યાત્રા ઘણી ભવ્ય હતી. અને લોકોની મેદની લાખોની સંખ્યામાં હતી. અને તેઓશ્રીને એરોપ્લેન દ્વારા કાશી લઈ જવામાં આવનાર છે. એવા ખબર પડતાં લોકોની મેદની કેમ્પના રસ્તે એરોડ્રામ તરફ ગઈ. પણ પાછળથી માલમ પડયું કે હાલના સંજોગો અનુસાર એરોપ્લેનની સગવડ થઈ શકે તેમ નથી. એટલે તેઓશ્રીને જળસમાધિ આપવાનો નિશ્ચય કર્યો. તે દિવસે તેઓશ્રીના માન ખાતર આખા શહેરમાં હડતાળ પાડવામાં આવી અને આખું શહેર શ્મશાનવત લાગતું હતું. અને કોઈ

પણ જાતનો ઉલ્લાસ જોવામાં આવતો નહોતો. ઉપરાંત લોકોનાં મુખારવિંદો નિરાશા ભર્યાં માલમ પડતાં હતાં. લોકો તો ત્યાં સુધી બોલતા હતા કે હવે આવા મહાન પુરૂષ મળવા મુશ્કેલ છે. કે જેઓએ લોકોની સેવામાં પોતાનું આખું જીવન ગરકાવ કરી નાખ્યું હતું. સન્યાસી વર્ગમાં તો આજે તેઓશ્રીની ભારે ખોટ પડી છે, કારણ કે તેઓશ્રી બધાને સમાન જાણતા હતા. અને કોઈના આત્માને દુઃખ થાય તો પોતે સહન કરી શક્તા નહિ. તેઓશ્રીના આશ્રમમાં ગૃહસ્થી કે કોઈ પણ મહાત્મા જતા તો કોઈ દિવસ ભોજન કર્યાં સિવાય જવા જ દેતા નહોતા.

તેઓશ્રીનો પ્રભાવ જનતાની અંદર ઉંડી છાપ પાડે તેવો હતો. તેઓ-શ્રી જેવા શાંત પ્રકૃતિના ગંભીર અને બીજાઓ ઊપર તરત જ ઊંડી છાપ પાડે તેવા મહાન પુરૂષો જુજ પ્રમાણમાં અમારા જોવામાં આવે છે.

કોઈ વ્યક્તિ તેઓશ્રીનું ભુંડું બોલતા તો કદી તેઓશ્રી તે વ્યક્તિ ઊપર ઉશ્કેરાતા નહોતા. પણ પોતે એમ માનતા હતા કે મારા પૂર્વજીવનની અંદર કાંઈ ખોડ ખાંપણ હોવી જોઇએ એમ કહી તેઓશ્રી હસી કાઢતા અને તેને સારો ઉપદેશ આપી વિદાય કરતા કે જેથી તે શરમિંદો પડી જતો.

અમદાવાદની જનતાનો મોટો ભાગ તેઓશ્રીને પોતાના ગુરુ તરીકે માને છે. અને તેઓશ્રીની પ્રતિમા ઘણાખરાના મકાનોની અંદર પૂજા સ્થાનમાં જોવામાં આવે છે. અને તેઓશ્રીના આપેલા ઉપદેશનો બરાબર અભ્યાસ કરતા માલમ પડે છે. હાલમાં તેઓશ્રીનું નામ ભાગ્યે જ અને કમનશીબે કોઈ વ્યક્તિ નહિ જાણતી હોય. બીજી રીતે નહિ તો વરસાદના અને તેઓશ્રીના દેહત્યાગના ચમત્કારથી આખા શહેરની જનતા તેઓશ્રીને જાણે છે. તેઓશ્રીએ તો આખા હિન્દુસ્તાનની આલમમાં પોતાના નામનો વિજય ડંકો વગાડી આ દુનિયાનો ત્યાગ કરી ચાલ્યા ગયા. હવે તો આપણે બધાને તેઓશ્રી પાછળ મુકી ગએલા ઉપદેશને અને ધર્મને આગળ ધપાવવાનું કાર્ય જ કરવાનું બાકી રહ્યું છે.

શ્રાવણ વદ ૧૦ને દિવસે મુશળધાર વરસાદ ગુજરાતમાં વરસતો હતો. છતાં પણ તેઓશ્રીને નર્મદાજીમાં જળસમાધિ આપવાનો દ્રઢ નિશ્ચય કર્યો. તેઓશ્રીને ૧૨ને મંગળવારના રોજ ભરૂચના પરમહંસ દેવ હંસદેવજી મહારાજની હાજરીમાં જળસમાધિ આપવામાં આવી અને સંન્યાસીને જે ક્રિયા કરવામાં આવે છે તે ક્રિયાથી તેઓશ્રીને જળસમાધિ આપવામાં આવી.

જ્યારે જળ સમાધિ આપવામાં આવી ત્યારે હજારો લોકોની આંખો-માંથી અશ્રુધારા વહેવા લાગી અને પરમહંસ હંસદેવે પણ લોકોની મેદનીમાં કહ્યું કે આપણે આજે ભારતવર્ષમાં એક મહાન પુરૂષ ગુમાવ્યો છે. અને તે ખોટ કોઈ પણ પુરી શકશે નહિ. જે લોકોએ તેઓશ્રીની સેવાનો લાભ ઉઠાવ્યો છે. તે બધા પાવન થઈ ગયા છે. પોતાના દેહનો ઉદ્ધાર કરવા આવા મહાન પુરૂષોને સેવવા જોઈએ. દરેક મનુષ્યો એ ભારતભૂમિની અને કુદરતની પ્રાર્થના કરવી જોઈએ કે આવા મહાન પુરુષો સર્જે અને લોકોના જીવનનો અંધકાર દૂર કરી તેઓનો ઉદ્ધાર કરે.

### ભરૂચમાં મંદીર તથા મહારાજશ્રીની પ્રતિમાની સ્થાપના.

૧૯૯૮ ભરૂચમાં મહારાજશ્રીને જળસમાધિ આપ્યા તેઓશ્રીનું નામ અમર રાખવા માટે થોડાક દીવસ પછી સાંણુંદ સ્ટેટનાં રાજમાતા શ્રીહીરબા-સાહેબે પોતાના મનમાં સંકલ્પ કર્યો કે તે જગ્યા ઉપર ગુરૂમહારાજશ્રીનો સ્મારક બનાવવો જોઈએ. થોડા વખત પછી કૃષ્ણાનંદ મહારાજશ્રીએ જગ્યા આશ્રમ માટે જોવાનો વિચાર કર્યો. અને થોડા જ વખત દરમ્યાન ભરૂચમાં બે ત્રણ ગૃહસ્થોએ અને સાણંદનાં રાજમાતાએ અને અમે બધા ભેગા મળીને જગ્યા રાખી, ત્યાં પ્રથમ મંદિર બંધાવવાનું કામકાજ શરૂ કર્યું. અમે તેટલા ખર્ચે પણ મંદિર બંધાવવાનું બીડું સાંણંદનાં રાજમાતાએ ઝડપ્યું. અને ત્યાં જયેન્દ્રેશ્વર મહાદેવનું મંદિર બંધાવવામાં આવ્યું. અને મહારાજશ્રીની મૂર્તિની પ્રતિષ્ઠા કરવાનો વિચાર કર્યો. મૂર્તિ ખાસ કરીને જયપુર બનાવવા આપવામાં આવી. અને કારીગરે આબેહુબ મૂર્તિ બનાવી આપી, અને તેની પ્રતિષ્ઠા શુભ દિન વૈશાખ સુદ પાંચમ ને રોજ નક્કી કરી, ભવ્ય રીતે મૂર્તિની પ્રતિષ્ઠા કરવામાં આવી. તેની ક્રિયા ઉપર હજારો માણસો ભરૂચ ગયા. અને તે દિવસે જાણે ભરૂચમાં મેળો ભરાયો ન હોય? તેવો પ્રસંગ લાગવા માંડયો, વૈશાખ સુદ પાંચમની રાતનો આછો આછો ચંદ્રમા પોતાનાં શિતળ કિરણો તે મહાદેવના ઉપર અને મહારાજશ્રીની પ્રતિમા ઉપર પાડતો હતો. તે ઉપરાંત મહારાજશ્રીની પ્રતિમાની સ્થાપના એવી રીતે કરવામાં આવી હતી. કે દિવસના ભાગમાં સૂર્ય પોતાનો પૂર્ણ પ્રકાશ તે મૂર્તિ ઉપર આપતો હતો. અને રાત્રે ચંદ્રમા પોતાનાં શિતળ કિરણો મહારાજશ્રીના મુખારવિંદ ઉપર પાડતો હતો. અને જાણે મહારાજશ્રીની પ્રતિમા કોઈ પ્રવચન આપી રહી ન હોય! તેવો આબેહુબ ભાસ થતો હતો. અને તે જગ્યા એટલી બધી રમણીય છે કે જેની પૂર્વ દિશાએ ટ્રેઇન જવાનો લોખંડનો

પૂલ આવેલો છે. અને તે મંદિર પાસે થઇને નિર્મળ સરિતા નર્મદા વહી રહી છે. અને આસપાસ ફળફૂલ વાવીને વિશાળ બાગ જેવું બનાવવામાં આવ્યું છે.

અને નર્મદાજી મહારાજશ્રીની પ્રતિમાને પોતે આવીને સ્નાન કરાવી ન જતાં હોય એમ લાગે છે. આ આખો પ્રસંગ મારી આંખ આગળ તરી આવે છે. અને ત્યાં ગરમી તો માલમ પડતી જ નથી. આ નિરાલી જગ્યા એટલી બધી રમણીય લાગે છે કે ત્યાંથી પાછા ફરવું એટલે ઘરમાં કોઈ માણસના સ્વર્ગવાસ થયા જેવું લાગે છે. અને સંસારનો ત્યાગ કરવાને થોડા વખત માટે ઇચ્છા થાય છે. હાલમાં ત્યાં આશ્રમ બંધાવવાનું કામકાજ ચાલુ છે. અને બે ગૃહસ્થો તરફથી આશ્રમની અંદર બેઠા ઘાટનો બંગલો બાંધવાનું કામ પણ શરૂ થઈ ગયું છે. અને લગભગ હવે પુરૂં થવા પણ આવ્યું છે. આ જગ્યા હવે કાયમ ખાતર હિંદુઓ માટે તિર્થનું ધામ બની જશે. અને લાખો માણસોનો સમૂહ તેઓશ્રીના શંકર સ્વરૂપ દીને મેળાના રૂપમાં જશે અને તે રમણીય સ્થળ જોવાનો અને મહારાજશ્રીની પ્રતિમાના દર્શનનો અમુલ્ય લાભ લેશે.

### અમદાવાદમાં પણ મંદીર તથા પ્રતિમાની સ્થાપના.

૧૯૯૯, ભરૂચમાં પ્રતીમાની પ્રતીષ્ઠા થયા બાદ. અમદાવાદમાં સંન્યાસાશ્રમમાં શ્રી વિશ્વનાથ ભગવાનનું કોઈ સ્વતંત્ર મંદીર ન હોવાથી ખીજા થઈ પ્રોત્સાહીત થતા શ્રીમાન્ શેઠ ભોગીલાલ બાલાભાઈએ પોતાના સદ્ગત પિતાશ્રીના સંસ્મરણાર્થે શ્રી કાશી વિશ્વનાથના મંદીરની પ્રતિષ્ઠા કરી.

ભરૂચમાં મહારાજશ્રીની પ્રતિમાની પ્રતિષ્ઠા થઈ ગઈ એટલે અમદાવાદમાં પણ મૂર્તિની સ્થાપના કરવાનો વિચાર થયો. કારણ કે અમદાવાદ તો મહારાજશ્રીનું કાયમનું સ્થાન હતું. તેઓશ્રીની પ્રતિમાની પ્રતિષ્ઠા કરવાનો વિચાર ચાલતો હતો તેવામાં એક શોકજનક બનાવ બની ગયો. તે બનાવ એ હતો કે ૨૧ વર્ષની પુખ્ત ઉંમરના મહેન્દ્રકુમાર સ્વર્ગવાસી થયા, તેથી અમદાવાદમાં આ બાબતની સ્નેહીઓ અને સગાં વહાલાંઓને ખબર પડતાં હાહાકાર થઈ ગયો. અને લોકોએ ત્યાં સુધી કહ્યું કે ધાડ તો ભક્તને ત્યાં જ હોય છે. તેવી રીતે એક કુદરતી ફટકો મારા પિતાજીને પડ્યો. પણ મેં તે દુઃખ ભુલી જઇને મહારાજશ્રીની પ્રતિમાની પ્રતિષ્ઠા કરવાનો વિચાર કર્યો, અને સ્વર્ગસ્થ મહેન્દ્રકુમાર છબીલરાય ઇનામદારના સ્મરણાર્થે તે મૂર્તિની સ્થાપના આસો સુદ ૧૦ વિજયા દશમીને દિવસે મૂર્તિની સ્થાપના કરવાનું કાર્ય આરંભ્યું, 'ગુજરાત

સમાચાર' અને 'સંદેશ' જેવા દૈનિક સમાચારમાં જનતાને ખબર આપવામાં આવી કે આસો સુદ ૧૦ને વિજયાદશમીના દિવસે મહારાજશ્રીની પ્રતિમાની સ્થાપના કરવામાં આવશે.

આ જાણુ થતાં અમદાવાદની જનતાની લાખો માણસની મેદની વચ્ચે તે ભવ્ય તિથિ ઉજવવામાં આવી. આ પ્રસંગ ઉપર કાશીના પ્રખર વિદ્વાન્ પંડિતોને આમંત્રણ આપવામાં આવ્યું હતું. અને અમદાવાદના વિદ્વાન પંડિતોને પણ આમંત્રણ આપવામાં આવ્યું હતું.

લોકોની ઠઠ તો એટલી બધી થઈ હતી. કે શ્વાસ લેવો પણ ભારે પડી જાય તેવી સ્થિતિ ઉપસ્થિત થઈ હતી. આ વખતે સૂર્ય દેદીપ્યમાન હતો. અને પોતાનો સ્વયં પ્રકાશ આ પ્રતિમા ઉપર આવ્યા કરતો હતો.

### આશ્રમની શોભા.

આ મૂર્તિની સ્થાપના એવી સરસ રીતે કરી છે કે આશ્રમની પૂર્વ બાજુએ સાબરમતી નદી વહે છે. અને પશ્ચિમ બાજુએ બાગ અને વચ્ચે ફુવારો મુકવામાં આવ્યો છે. અને મંદિર એવું ઠંડકવાળું બાંધવામાં આવ્યું છે કે ત્યાંથી ઉઠવું પણ ન ગમે એવી રમણીય જગ્યા માલમ પડે છે.

અહિંઆં દરરોજ નિયમિત રીતે પ્રવચન થયા કરે છે. ને દર ચાતુર્માસે મંડલેશ્વરને આમંત્રણ આપવામાં આવે છે. હજારોની સંખ્યામાં જનતા તે પ્રવચન સાંભળવાનો અને મહારાજશ્રીની પ્રતિમાના દર્શનનો લાભ ઉઠાવે છે.

અમદાવાદની જનતાનાં અહોભાગ્ય કે આવા મહાન પુરૂષે પોતાની સ્થુલ કાયા અમદાવાદને અર્પણ કરીને આપણને ઋણી બનાવ્યા. આપણે તેઓશ્રી માટે ગમે તેટલું કરીએ છતાં પણ આપણે તેઓશ્રીના દેવાદાર જ છીએ. માટે તેઓશ્રીના દેવામાંથી મુક્ત થવા આપણે કુદરતને તેઓશ્રી જેવા મહાન પુરૂષ સર્જવા માટે આપણે આપણા તનમનથી પ્રાર્થીએ એટલું ઓછું જ છે.

અમદાવાદના રહેવાસીઓમાંથી જેટલા લોકો તેઓશ્રીના સત્સંગમાં આવ્યા છે. તે બધાનાં હૃદયમાં તેઓશ્રી હંમેશને માટે બિરાજમાન થયેલા છે.

જે મનુષ્યને તેઓશ્રીનો સાક્ષાત્કાર કરવો હોય તો તે ખરા દિલથી તેઓશ્રીનું રટન કર્યાજ કરે તો તેના હૃદયમાં હંમેશને માટે બિરાજમાન થશે.

ૐ ગુરૂ આશિર્વાદ.

॥ ઇતિ શિવમ્ ॥

# મહારાજશ્રીનો મહિમા

મહિમા એટલે શું ? મહિમા એટલે મહાન પુરુષના ગુણગાન ગાવાં અને તેઓનો મુખ્ય ઉદ્દેશ શો છે તે સમજી તેને અમલમાં મુકવો અને બને તેટલાં વખાણ કરવાં અને તેઓશ્રીના દેવામાંથી મુક્ત થઈ તેઓશ્રીના નામનો વર્ણનાત્મક મહિમા ગાવો તેને મહિમા કહે છે.

મહારાજશ્રીના આત્માની કીંમત જનતાને તેમ જ કુદરતને હતી, તેઓશ્રીના શરીરની કીંમત જનતાના હૃદયની અંદર કાયમને માટે કોતરાયેલી રહેશે. તેઓશ્રીના શરીરની અમુલ્ય કીંમત જેટલી આંકીએ તેટલી ઓછી જ છે.

તેઓશ્રીના દેહને હિમાલયની ઉપમા આપતાં કાંઈક અંશે અતિશયોક્તિ જેવું લાગે તો તે કાર્ય નિંદાને પાત્ર લેખાય નહિ તેઓશ્રીના દેહને હિમાલયની ઉપમા આપી ઉંચી કક્ષાએ લઈ જવો એ લેખકની લખવાની શૈલી ઉપર આધાર રાખે છે.

હિમાલય જેમ નાના મોટા પર્વતો શિખરો, નદીઓ, અને બરફના પહાડો ટકાવી રાખવાની શક્તિ રાખે છે અને ભાર સહન કરે છે છતાં પણ કોઈ દિવસ ક્રોધાયમાન થતો નથી, પણ પોતાનો ચીરસ્થાયી ઉલ્હાસ અને મોટું મન ધારણ કરતો હોય એમ માલમ પડે છે તેવી રીતે મહારાજશ્રી દુનિયા ઉપરની આવી પડેલી વિટંબણાઓ સુખો દુઃખો અને અજ્ઞાની મનુષ્યોનાં પત્થરોની દિવાલો કોતરી નાખે તેવાં કઠોર વચનો તેમ જ તેઓને જ્ઞાનના પ્રકાશમાં લાવતાં તેઓશ્રીને જે મહેનત ઉઠાવવી પડે છે તે તેઓશ્રીનો ચિરસ્થાયી ઉલ્હાસ ગંભીરતા અને ઉદાર મનનો પુરાવો કરે છે.

ઉનાળાના સમયમાં હિમાલયમાંથી જેમ નદીઓ બરફના પહાડો ઓગાળી પોતાના પ્રવાહોનો વેગ વધારી પર્વતો ઉપર નાચતી, ગાન કરતી છેવટે સપાટ પ્રદેશોમાં વહી દરિયાને મળીને શાંત થઈ જાય છે તેવી રીતે તેઓશ્રીના અગાધ જ્ઞાન બુદ્ધિ રૂપી નદી, પ્રખર વિદ્વાનો સાથે વાદવિવાદ કરી પોતાના જ્ઞાનને એવી રીતે અફળાવતા હતા કે તેમાંથી ચકમક ઝરી અજ્ઞાનને પ્રકાશિત કરી તેઓશ્રી તેઓને અગાધ વિદ્યાનું ભાન કરાવતા અને જ્ઞાનરૂપી પાણી પીવડાવી પોતાની મતિને શાન્ત કરી દેતા હતા. તેઓશ્રીનું માનસ સાગર જેટલું વિશાળ અને ગંભીરતા ધારણ કરેલું હતું. મહારાજશ્રીમાં સર્વગુણો

રહેલા હતા તેઓ શ્રી મહાન પુરૂષ તરીકે ખરેખર હતા. તે નીચેના દ્રષ્ટાંત ઉપરથી જાણી શકશો.

મહારાજશ્રી વિદ્યાની અંદર પ્રખર વિદ્વાન પુરૂષ હતા. તે સર્વ લોક સારી રીતે સમજી શકે છે. તેઓશ્રીએ ધર્મ અને વેદાંતનો હિંદભરમાં પ્રચાર કરવા માટે પોતાની જીંદગી તે કાર્યોમાં ખર્ચી નાંખી તેઓશ્રીએ અમદાવાદમાં એલિસબ્રીજ સાબરમતીના તીરે એક સંન્યાસ આશ્રમ સ્થાપ્યો. અને વેદાંતની અમૃત વાણીનો પ્રચાર કરી લોકોના અજ્ઞાનને દૂર કરી જ્ઞાનનો અખંડ પ્રકાશ ફેલાવ્યો.

મહારાજશ્રીમાં નમ્રતા હતી તેનો પુરાવો એ છે કે તેઓશ્રી દરેકને નમ્રતાથી સવાલનો જવાબ આપતાં પછી ભલેને તે રાજા મહારાજા કે ગરીબ હોય ? તેઓશ્રીની ચાહના બંન્ને પક્ષ ઉપર સરખી હતી. છતાં પણ તેઓશ્રી ગરીબ ઉપર અહંભાવના રાખતા અને તેઓના સુખ દુઃખનાં સરખા ભાગીદાર રહેતા. તેઓશ્રી પાસે કોઈ નિરાશિત થઈ જતું તો પાછા ફરતી વખતે પ્રફુલ્લીત મુખારવિંદ સાથે આવતો એ તેઓશ્રીની નમ્રતાનો પુરાવો કરે છે.

મહારાજશ્રી પરોપકારી હતા તે ઉપરના ત્રણ દાખલાથી સમજી શકાશે. તેઓશ્રી હંમેશા પારકાનું ભલું કરવામાં રાજી રહેતા અને તેઓશ્રી મનુષ્ય ખાતર બદનામ થવામાં અને પોતાની કીર્તિ ઉપર પાણી ફરી જશે તેની ફિકર કર્યા વગર પારકાના ભલામાં પોતાનું હિત સમાયેલું છે તેવું તેઓશ્રી સમજતા હતા. પરોપકાર કરવાની ખાતર તો તેઓશ્રી મણ્ડલેશ્વરોમાં થતા વિખવાદને સમાવી દેવા માટે પોતાની બનતી કોશીશ કરતા આ દષ્ટાંત તેઓશ્રીના પરોપ-કારની સાબીતી પૂરે છે.

મહારાજશ્રીને ઇશ્વર પર શ્રદ્ધા હતી તેમાં લેશમાત્ર પણ શંકા જેવું નથી. તેઓશ્રી પોતાનો ઘણો ખરો વખત પ્રભુની ઉપાસનામાં કાઢતા અને કલાકોના કલાક સુધી સમાધિષ્ઠ રહેતાં અને તે પ્રમાણે સર્વને ઇશ્વર સ્તવન કરવાનો ઉપ-દેશ આપતા અને જપ જપવા માટેનો મંત્ર આપતા. જ્યારે મહારાજશ્રી માંદગીને બિછાને પડયા હતા ત્યારે તેઓશ્રીના હસ્તમાં માળા જોઇને તેઓ-શ્રીના પરમ શિષ્ય કૃષ્ણાનંદજી મણ્ડલેશ્વરે કહ્યું, "આપ જ્ઞાની થઇને અજ્ઞાનીની માફક આ શું કરો છો ?"

તેઓશ્રીએ તેમને ઉપદેશ આપ્યો, "એક વખત એક મહારાજાને ત્યાં કોઈ એક નોકર હતો તે હંમેશાં કચરો કાઢતો હતો ત્યારે તેને કચરો ફેંકવાની ટેવ હતી.

તેને એક દિવસ મહારાજનો પડી ગયેલો હીરો જડયો તેણે તે લઈ લીધો અને માલદાર બન્યો. તેની કચરો ફેંદવાની દરરોજની ટેવ જોઇને મહારાજાએ કહ્યું. હવે તને હીરો તો મલી ગયો હવે શા સારૂ કચરો ફેંદો છો ? ત્યારે નોકરે ઉત્તર આપ્યો જે કચરો ફેંદવાથી મને હીરો પ્રાપ્ત થયો તે હીરાથી હું માલદાર બન્યો તો શા સારૂ ન ફેંદુ ? તેવી રીતે હું મ્હારા અંતિમ સમયે શા માટે પ્રભુનું સ્મરણ ન કરૂં કે જેથી મને હીરારૂપી પ્રભુ મળી જાય અને આ અજરામર અવિકારી આત્માનો ક્ષણભંગુર દેહમાંથી ત્યાગ કરી દઉં.

મહારાજશ્રી પોતાના આત્માને બીજાના આત્માના જેવો ગણતા અને ઊંચ નીચનો ભેદભાવ રાખતા નહતા. કોઇના આત્માને દુઃખ થાય તો તે પોતાના આત્માને દુઃખ થયું હોય એવું સમજતા હતા.

અને દરેકના આત્માને પોતાના આત્મામાં જોવાની શક્તિ ધરાવતા હતા. તેનો દાખલો મેં મહારાજશ્રીના આગમનના વર્ણનમાં જણાવ્યો છે તે ઉપરાંત ઝાડ, પાન, ફળ, ફુલમાં પણ પોતાનો આત્મા છે એવું જ તે માનતા હતા. તેનો દાખલો મોજુદ છે. એક મહાત્માએ આશ્રમની અંદર આવેલા આસોપાલવના વૃક્ષમાં એક ખીલો માર્યો હતો જ્યારે તે મહારાજશ્રીના દેખવામાં આવ્યો ત્યારે તેઓશ્રીના મનને ભારે દુઃખ થયું અને સાચવી રહીને તે ખીલો ઉખાડી નાંખવાનું કહેવામાં આવ્યું. પણ જ્યારે તેમાંથી પાણી નીકળતું જોવામાં આવ્યું ત્યારે મહારાજશ્રીએ તેને ઉપદેશ કર્યો કે જુઓ આ વૃક્ષને કેટલું દુઃખ થાય છે ? આપણા શરીરમાં ખીલો મારે તો શું થાય ?

તે દ્રષ્ટાંત બતાવી આપે છે કે તેઓશ્રીએ જીવીત અને નિર્જીવ એમ બધી વસ્તુઓમાં પોતાનો આત્મા સમાયેલો છે એમ પુરવાર કરી બતાવ્યું હતું.

તેઓશ્રીમાં ૧. વિદ્યા, ૨. નમ્રતા, ૩. સદાચાર, ૪. પરોપકાર ૫. ઇશ્વર પર શ્રદ્ધા, ૬. પોતાના આત્માને દરેકના આત્મામાં જોવા એમ છ ગુણો તેઓશ્રીએ સંપાદન કર્યાં હતા. તેથી સાબીત થાય છે કે તેઓશ્રી એક મહાન વ્યક્તિ હતા.



# स्वामी श्री शिवानन्दजी धन्वन्तरि-गुरु वैद्यराज, योगी

## गीतामन्दिर, अहमदाबाद ।



गेयं गीता नाम सहस्रं, ध्येयं श्री पति रूप मजस्रम् ।
नेयं 'सज्जन, सङ्गे चित्तं, देयं दीन जनाय च वित्तम् ॥

वेद शास्त्र पुराणादि सद्ग्रन्थों में मनुष्य के कल्याण के लिए विस्तार के साथ सब कुछ लिखा गया है। वहाँ मनुष्य-जीवन के सम्बन्ध में क्या ? बल्कि—अखिल-विश्व की समस्या हल करने के उपाय बताये गए हैं। तथा सभी तरह की शङ्काओं का समाधान युक्ति युक्त प्रकार से किया गया है। यह कथन सुनने और कहने में जितना रुचिकर है उतना ही समझने में अति कठिन है। अर्थात्—सर्वसाधारण शास्त्रों की बातों को नहीं समझ सकते। उस के तत्त्व को सन्त-महात्मा ही सब को ठीक-ठीक बोधन करा सकते हैं। शास्त्र-समुद्र के मंथन करने वाले वे ही हैं। वे ही उन तत्त्वों को सर्व साधारण तक अनायास पहुँचाने में समर्थ हैं। फूलों के मधु को मक्षिका जैसा उद्यमी प्राणी ही सब तक पहुँचा सकता है। जिन महापुरुषों के तथा उन के सत्संग की महिमा शास्त्र-पुराणों में ऋषि-मुनि गायन कर गये हैं आज हम एक ऐसे ब्रह्मलीन संन्यासी महापुरुष के विषय में कुछ कहकर अपने रोम-रोम को सफल करना चाहते हैं जिन्होंने अकारण परोपकार भाव से संसार का कल्याण-साधन किया है। वे थे काशी निवासी श्री १००८ सत्परमहंस परिव्राजकाचार्य्य-वेदान्तभास्कर स्वामी श्री जयेन्द्रपुरीजी महाराज महामण्डलेश्वर।

छात्रावस्था में स्वामी जी के साथ पढने वाले जितने विद्यार्थी थे उन में आप सर्व प्रथम रहते थे। हमने आप को जिस विरक्त-स्थिति में छात्रावस्था में देखा था मण्डलेश्वर के प्रतिष्ठित पदारूढ होने पर भी अन्त तक आप उसी हालत में रहे। आप के ऊपर जैसी सरस्वती की कृपा थी वैसे ही आप लक्ष्मी के कृपापात्र भी रहे। आप के पास जो भी कुछ आता था ( बहुत कुछ आता था ) उसे साधु-सन्तों पण्डितों तथा विद्यार्थी आदि को बांट दिया करते थे। आपने काशीस्थ संन्यासि-संस्कृत-पाठशाला को जो अर्थाभाव के कारण मानो टूट ही चुकी थी उस का उद्धार कर के उसे कालेज ( महा विद्यालय ) का रूप प्रदान किया जो आज भी संस्कृत का प्रचार करता हुआ काशी में नामवरी के साथ चल रहा है। आपने अपूर्ण ब्रह्मसूत्र शारीरिक भाष्य के प्रथम खण्ड को पूर्ण कर के वेदान्त के जिज्ञासुओं की आकाङ्क्षा पूर्ण की। बद्री नारायण और कैलाश की यात्रा आपने स्वयं ही नहीं की प्रत्युत अनेक संन्यासियों को भी इस लाभ में सम्मिलित किया। आप जैसे ऊँचे दर्जे के उपदेशक थे वैसे ही उच्च कोटि के अध्यापक भी थे। आप श्रीने काशी में बहुत काल तक शास्त्राध्ययन कराया है।

यों तो आपने सभी देशों में घूमकर धर्म्मोपदेश दिया है, किंतु—इधर कुछ दिनों से आप की गुजरात देश पर बड़ी कृपा थी। अहमदाबाद के संन्यासि—आश्रम में श्री विश्वनाथ—संस्कृत—पाठशाला स्थापित करके उस देश में संस्कृत प्रचार में साहाय्य प्रदान किया।

आप की वेदान्त—सिद्धान्त में बड़ी निष्ठा थी, आप यथार्थ में ब्रह्मनिष्ठ, ब्रह्म-श्रोत्रिय संन्यासी थे। जैसे आप वेदान्ती थे, वैसे ही शंकर भगवान् के परम उपासक भी थे। आपने सनातनधर्म प्रचार में जो सहायता पहुँचाई वह वर्णनातीत है।

हम भगवान् शंकर से प्रार्थना करते हैं कि—स्वामीजी के अभाव से जो स्थान रिक्त हो गया है उस की पूर्ति हो, जिस से सनातनधर्म के प्रचार की धारा का अवरोधन होने पावे।

वेतो ब्रह्मनिष्ठ थे, ब्रह्म में लीन हो गये, अतः उन का शरीर आज इस पवित्र भारत भूमि पर उसी सङ्घात के रूप में नहीं है। किंतु यह जो उन के 'जीवन-चरित' का आयोजन हो रहा है, बस अब वही मूर्तिमान् होकर हमें पथ प्रदर्श करावेगा। राम, कृष्ण, व्यास, वशिष्ठ, आचार्य शङ्कर, आदि ऐश्वर्य पूर्ण विभूतियाँ आज हमारे साथ नहीं है, पर उन का उपदेश आज भी हमें वैसे ही अमृत पान करा रहा है, जिस प्रकार उस समय करा रहा था जब उन का पाँच भौतिक स्वरूप हमारे साथ था।

अब तक ऐसे महापुरुष का जीवन चरित हमारे सामने न होना बड़ी त्रुटि की बात थी। जिन सज्जनों के हृदय में यह शुभ प्रेरणा हुई उस की हम प्रशंसा करते हैं।

हम ब्रह्मीभूत महानिर्वाण पीठाधीश महामण्डलेश्वरजी के चरणों में श्रद्धा-ञ्जलि समर्पित करते हुए अपने कथन को इस लिए यहीं समाप्त कर देने पर बाध्य होते हैं कि ऐसे सन्त के गुणगान करने के लिए 'असित गिरिसमं स्यात्' श्लोक में वर्णित सामग्री हमारे पास नहीं है। फिर भी हम इतना अवश्य कहेंगे कि—साधु-समाज का उन्होंने बड़ा उपकार किया है। सन्तों के पठन भोजन निवास आदि के लिए काशी में पाठशाला, अन्नसत्र, मठ, बगीचा बनाकर बहुत सौकर्य प्रदान किया है। और सब से बड़ी बात तो यह कि—गृहस्थों को सदुपदेश देकर साधुओं के प्रति बदले हुए उन के विपरीत भाव को संशोधित कर दिया।

आज भी आप का नाम करण किया हुआ गोविन्द-मठ महासंस्थान अनेक संन्यासियों की पवित्र सेवा सम्पादन कर रहा है। ऐसे प्रातः स्मरणीय महापुरुष के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए हम नतमस्तक होते हैं। इति शम्।

—※—

गीताधर्म प्रेस, [illegible], काशी।

